BC-05

वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

व्यावसायिक अर्थशास्त्र

BC-05

वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

व्यावसायिक अर्थशास्त्र

पाठ्यक्रम अभिकल्प समिति

अध्यक्ष

प्रो.(डॉ.)नरेश दाधीच
कुलपति
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा(राजस्थान)

संयोजक/सदस्य

संयोजक
प्रो. (डॉ.) एम. डी. अग्रवाल
से. नि. आचार्य(वाणिज्य)
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालयी, कोटा

सदस्य सचिव
प्रो.(डॉ.) अनाम जैतली
निदेशक(अकादमिक)
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

सदस्य

1. **प्रो.(डॉ.)आर. के. दीक्षित**
आचार्य एवं अध्यक्ष,ई. ए. एफ. एम. विभाग
राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर
2. **प्रो.(डॉ.) एस. जे. लालवानी**
आचार्य, व्यावसायिक वित्त एवं अर्थशास्त्र
वाणिज्य एवं प्रबन्ध संकाय
जयनारायण व्यास विश्वविद्यालय, जोधपुर
3. **प्रो.(डॉ.) आई. वी. त्रिवेदी**
आचार्य,बैंकिंग एण्ड बिजनेस इकोनॉमिक्स
मोहन लाल सुखड़िया विश्वविद्यालय,उदयपुर
4. **डॉ. एस. जी. शर्मा**
सह-आचार्य एवं अध्यक्ष, ए. बी. एस. टी. विभाग
राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर
5. **डॉ. पुखराज दाधीच**
राजकीय महाविद्यालय, अजमेर

संपादन तथा पाठ लेखन

सम्पादक

1. **प्रो. (डॉ.) एम. डी. अग्रवाल**
से. नि. आचार्य(वाणिज्य)
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

लेखक — इकाई संख्या

1. **डॉ. गोपाल सिंह** **(1,2,3,4)**
व्याख्याता, ई. ए. एफ. एम. विभाग
राजकीय वाणिज्य महाविद्यालय,कोटा
2. **प्रो. (डॉ.) लता अग्रवाल** **(5,6)**
आचार्य, ई. ए. एफ. एम. विभाग
राजस्थान विश्वविद्यालय,जयपुर
3. **प्रो. (डॉ.) क्षमा अग्रवाल** **(7,8,9)**
आचार्य, ई. ए. एफ. एम. विभाग
राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर
4. **डॉ. वी. के. गुप्ता** **(10)**
सहायक आचार्य, ई. ए. एफ. एम. विभाग
राजस्थान विश्वविद्यालय,जयपुर
5. **डॉ. ममता जैन** **(11,12)**
सहायक आचार्य, ई. ए. एफ. एम. विभाग
राजस्थान विश्वविद्यालय,जयपुर
6. **डॉ. ओ. पी. गुप्ता** **(13,14)**
व्याख्याता,ई. ए. एफ. एम. विभाग
एम .डी. कॉलेज, श्रीगंगानगर
7. **डॉ. कृष्णा गुप्ता** **(15,16,18,19)**
सहायक आचार्य, ई. ए. एफ. एम. विभाग
राजस्थान विश्वविद्यालय,जयपुर
8. **प्रो. डॉ. सोमदेव आचार्य,** **(17,20)**
ई. ए. एफ. एम. विभाग
राजस्थान विश्वविद्यालय,जयपुर

अकादमिक एवं प्रशासनिक व्यवस्था

प्रो. (डॉ.) नरेश दाधीच	प्रो. (डॉ.) एम. के. घडोलिया	योगेन्द्र गोयल
कुलपति	निदेशक	प्रभारी
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय,कोटा	संकाय विभाग	पाठ्य सामग्री उत्पादन एवं वितरण विभाग

पाठ्यक्रम उत्पादन

योगेन्द्र गोयल

सहायक उत्पादन अधिकारी

वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

पुनः उत्पादन - जून 2011 **ISBN No.- 13/978-81-8496-195-9**

इस सामग्री के किसी भी अंश को व. म. खु. वि., कोटा की लिखित अनुमति के बिना किसी भी रूप में 'मिमियोग्राफी' (चक्रमुद्रण) द्वारा या अन्यथा पुन: प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है।

व. म. खु.वि., कोटा द्वारा वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा के लिये मुद्रित एवं प्रकाशित।

BC-05

व्यावसायिक अर्थशास्त्र

वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

अनुक्रमणिका

इकाई व इकाई का नाम		पृष्ठ संख्या
इकाई 1.	व्यावसायिक अर्थशास्त्र का अर्थ, प्रकृति एवं क्षेत्र	7–20
इकाई 2.	उपभोक्ता व्यवहार : गणनावाचक दृष्टिकोण	21–42
इकाई 3.	उपभोक्ता व्यवहार : क्रमवाचक दृष्टिकोण(उदासीनता वक्र विश्लेषण)	43–61
इकाई 4.	अर्थव्यवस्था की आधारभूत समस्याएँ	62–75
इकाई 5.	मांग की अवधारणा एवं इसके निर्धारक तत्व, मांग का नियम	76–90
इकाई 6.	मांग की लोच	91–106
इकाई 7.	अल्पकाल में उत्पादन फलन : परिवर्तनशील अनुपातों का नियम	107–125
इकाई 8.	दीर्घकाल में उत्पादन फलन : पैमाने के प्रतिफल	126–144
इकाई 9.	उत्पादक का सन्तुलन – साधनों का न्यूनतम लागत संयोग	145–157
इकाई 10.	लागत एवं आगम विश्लेषण	158-179
इकाई 11.	पूर्ण प्रतियोगिता में मूल्य एवं उत्पादन निर्धारण	180–193
इकाई 12.	एकाधिकार एवं विभेदात्मक एकाधिकार के अन्तर्गत मूल्य एवं उत्पादन निर्धारण	194–207
इकाई 13.	एकाधिरात्मक प्रतियोगिता के अन्तर्गत कीमत एवं उत्पादन निर्धारण	208–221
इकाई 14.	अल्पाधिकर के अन्तर्गत कीमत एवं उत्पादन निर्धारण	222–237
इकाई 15.	वितरण का सीमान्त उत्पादकता सिद्धान्त	238–253
इकाई 16.	मजदूरी का आधुनिक सिद्धान्त	254–266
इकाई 17.	लगान	267–279
इकाई 18.	ब्याज का सिद्धान्त : प्रतिष्ठित, किन्स एवं आधुनिक	280–298
इकाई 19.	लाभ : अवधारणा एवं सिद्धान्त	299–315
इकाई 20.	राष्ट्रीय आय विश्लेषण	316–329

इकाई-1

व्यावसायिक अर्थशास्त्र का अर्थ, प्रकृति एवं क्षेत्र (Meaning, Nature and Scope of Business Economics)

इकाई की रूपरेखा

1.1 उद्देश्य
1.2 प्रस्तावना
1.3 व्यवसायिक अर्थशास्त्र का अभ्युदय एवं अर्थ
1.4 व्यवसायिक अर्थशास्त्र की विशेषताएँ
1.5 व्यावसायिक अर्थशास्त्र की प्रकृति
1.6 व्यावसायिक अर्थशास्त्र का क्षेत्र
1.7 व्यावसायिक अर्थशास्त्र का महत्त्व
1.8 व्यावसायिक अर्थशास्त्र का अन्य विषयों से सम्बन्ध
1.9 सारांश
1.10 शब्दावली
1.11 स्व-परख प्रश्न
1.12 उपयोगी पुस्तकें

1.1 उद्देश्य

- इस इकाई के अध्ययन से आप :
- व्यावसायिक अर्थशास्त्र का अर्थ एवं उसकी विशेषताओं के बारे में ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।
- व्यावसायिक अर्थशास्त्र की प्रकृति के बारे में जान सकेंगे ।
- व्यावसायिक अर्थशास्त्र के क्षेत्र के बारे में समझ पैदा कर सकेंगे ।
- व्यवसायिक अर्थशास्त्र का महत्त्व तथा इसका अन्य विषयों से सम्बन्ध के बारे जानकारी प्राप्त कर सकेंगे

1.2 प्रस्तावना

आधुनिक गत्यात्मक एवं जटिल युग में परम्परागत अर्थशास्त्र के कोरे सिद्धान्त अधिक काम के नहीं रह गये हैं । इसलिए द्‌वितीय विश्वयुद्ध पश्चात आर्थिक सिद्धान्तों को व्यावसायिक जगत की व्यावहारिक समस्याओं के विश्लेषण एवं समाधान के लिए खुलकर प्रयोग किया जाने लगा । इससे अर्थशास्त्र की एक नवीन और विशिष्ट शाखा का जन्म हुआ, जिसे व्यावसायिक अर्थशास्त्र का नाम दिया जाता है । यह एक निरन्तर विकासमान विषय है । इस इकाई में हम व्यावसायिक अर्थशास्त्र के अर्थ, प्रकृति एवं क्षेत्र के बारे में विस्तारपूर्वक अध्ययन करेंगे । इसके

अतिरिक्त हम इस इकाई में व्यावसायिक अर्थशास्त्र के महत्त्व एवं इसके अन्य विषयों से सम्बन्ध के बारे में भी जानकारी करेंगे ।

1.3 व्यावसायिक अर्थशास्त्र का अभ्युदय एवं अर्थ (Emergence and Meaning of Business Economics)

आर्थिक-व्यावसायिक जगत अधिक जटिल और गत्यात्मक हो गया है' इसलिए अब व्यवसाय एवं उद्योग जगत की व्यावहारिक समस्याओं का समाधान परम्परागत अर्थशास्त्र के सिद्धान्तों द्वारा संभव नहीं है । द्वितीय विश्वयुद्ध के पश्चात् से लगातार व्यावसायिक संगठन अपनी प्रबन्धकीय समस्याओं के विश्लेषण एवं समाधान के लिए अर्थशास्त्र की नवीन अवधारणाओं, वैज्ञानिक विधियों तथा आर्थिक विश्लेषण की गणितीय एवं सांख्यिकीय पद्धतियों का प्रयोग करने लगे हैं। इस कारण से एक नवीन विषय **'व्यावसायिक अर्थशास्त्र'** का जन्म एवं विकास हुआ । अर्थशास्त्र की इस विशिष्ट शाखा के विकास से अब आर्थिक सिद्धान्तों का व्यावसायिक जगत की व्यावहारिक समस्याओं के समाधान में खुलकर प्रयोग होने लगा है । व्यावसायिक अर्थशास्त्र को **'प्रबन्धकीय अर्थशास्त्र'(Managerial Economics)** के नाम से भी जाना जाता है । कुछ अर्थ वेत्ता इसे **फर्म का अर्थशास्त्र (Economics of the Firm)**अथवा **फर्म का सिद्धान्त** भी कहते हैं । **नॉरमन एफ० दफ्ती (Norman F. Dufuty)** के शब्दों में "इसमें अर्थशास्त्र के उस भाग का समावेश होता है जिसे फर्म का सिद्धान्त कहते हैं और जो व्यवसायी को निर्णय लेने में पर्याप्त सहायक हो सकता है ।" व्यावसायिक अर्थशास्त्र की इसी प्रकार की मिलती-जुलती परिभाषा **बेट्स तथा पार्किन्सन (Bates and Parkinson)** ने भी दी है । उनके अनुसार, "व्यावसायिक अर्थशास्त्र फार्मों के आचरण का सैद्धान्तिक एव व्यावहारिक अध्ययन है ।"

व्यावसायिक अर्थशास्त्र की कुछ अन्य महत्त्वपूर्ण परिभाषाएँ नीचे दी जा रही हैं.

जोयल डीन (Joil Dean) के अनुसार, " प्रबन्धकीय अर्थशास्त्र का उद्देश्य यह बताना है कि आर्थिक विश्लेषण का व्यावसायिक नीतियों के निर्धारण में कैसे प्रयोग किया जा सकता है ?("The purpose of Managerial Economics is show how Economic Analysis can be used in formulating business policies?").

स्पेन्सर तथा **सीगलमेन (Spencer and Siegel man)** के अनुसार,, "प्रबन्धकीय अर्थशास्त्र आर्थिक सिद्धान्त एवं व्यावसायिक व्यवहार का इस उद्देश्य से किया गया एकीकरण है, जिससे प्रबन्धकों को निर्णय लेने तथा भावी नियोजन करने मे सुविधा होती है ।" (Managerial Economics is the integration of economic theory with business practice for the purpose of facilitating decision making and forward planning by management.)

हैन्स (W.W. Haynes) के अनुसार, " प्रबन्धकीय अर्थशास्त्र निर्णय लेने में प्रयुक्त होने वाला अर्थशास्त्र है । यह अर्थशास्त्र की एक विशिष्ट शाखा है, जो अर्थशास्त्र के निरपेक्ष सिद्धान्त तथा प्रबन्धकीय व्यवहार के बीच अन्तराल को पाटने में सेतु का काम करता है । यह

समस्याओं के स्पष्टीकरण, सूचनाओं के संगठन एवं मूल्यांकन तथा वैकल्पिक कार्य-पद्धतियों की तुलना में आर्थिक विश्लेषण के उपकरणों के प्रयोग पर बल देता है । " व्यावसायिक अर्थशास्त्र की उपर्युक्त परिभाषाओं के विश्लेषण-विवेचन करने के पश्चात हम यह कह सकते हैं कि यह ज्ञान की वह शाखा है जिसमें आर्थिक विश्लेषण के सिद्धान्तों का व्यावसायिक प्रबन्ध की समस्याओं के समाधान करने तथा व्यावसायिक नीतियों के निर्धारण के लिए प्रयोग किया जाता है । दूसरे शब्दों में कहें तो व्यावसायिक अर्थशास्त्र, **आर्थिक सिद्धान्त (Economic Theory)** का एक भाग है जो सामान्य रूप में **व्यावसायिक गतिविधियों (Business Activities)** से सम्बन्धित है तथा विशिष्ट रूप में व्यावसायिक संगठनों में निर्णयन प्रक्रिया में उत्पन्न व्यावसायिक समस्याओं से सम्बन्धित है । वास्तव में, यह व्यवसाय एवं प्रबन्ध के क्षेत्र में **आर्थिक सिद्धान्तों एवं व्यावसायिक व्यवहारों का एकीकरण (Integration of Economic theory and business practices)** है । व्यावसायिक अर्थशास्त्र, अर्थशास्त्र एव व्यावसायिक प्रबन्ध की सीमा-रेखा पर स्थित है तथा यह व्यावसायिक प्रबन्ध एवं अर्थशास्त्र में **सम्पूरकता एवं सेतु (Complementarity and bridge)** का काम करता है । इस दृष्टि से व्यावसायिक अर्थशास्त्र ज्ञान की वह शाखा है जिसमें आर्थिक विश्लेषण की अवधारणाओं, विधियों एवं उपकरणों का व्यावहारिक व्यावसायिक समस्याओं के विश्लेषण एवं निराकरण में प्रबन्ध द्वारा समुचित नीति-निर्धारण हेतु अध्ययन एवं प्रयोग किया जाता है ।

मूलतः व्यावसायिक अर्थशास्त्र **फर्म अथवा व्यावसायिक इकाई के स्तर पर निर्णय-प्रक्रिया, निर्णय प्रारूप तथा निर्णय चरों (Decision Process, Decision Model and Decision Variables)** पर ध्यान केन्द्रित करता है । व्यावसायिक प्रबन्धकों के लिए भविष्य की अनिश्चितताओं एवं पूर्ण ज्ञान के अभाव में सही निर्णय लेने तथा सटीक नियोजन करना अत्यन्त कठिन होता है । इसलिए इन कठिन एवं जटिल कार्यो को सही तरीके से सम्पन्न करने में व्यावसायिक अर्थशास्त्र सहायक होता है ।

1.4 व्यावसायिक अर्थशास्त्र की विशेषताएँ (Characteristics of Business Economics)

व्यावसायिक अथवा प्रबन्धकीय अर्थशास्त्र की प्रमुख विशेषताएँ अग्रांकित हैं :

1. व्यष्टि अर्थशास्त्रीय प्रकृति (Micro Economic Nature) : व्यावसायिक अर्थशास्त्र का स्वभाव व्यष्टि अथवा सूक्ष्म अर्थशास्त्रीय है क्योंकि इसके अन्तर्गत एक फर्म के आचरण का अध्ययन किया जाता है । चूँकि, **फर्म एक व्यष्टि आर्थिक इकाई** है, इसलिए व्यावसायिक अर्थशास्त्र स्वभाव से मूलतः व्यष्टि अर्थशास्त्रीय है । इसके अन्तर्गत न तो सम्पूर्ण अर्थ व्यवस्था का अध्ययन किया जाता है और न ही किसी व्यक्ति विशेष की क्रियाओं का । यह तो व्यावसायिक फर्म के आचरण का सैद्धान्तिक एवं व्यावहारिक अध्ययन है । इसलिए **व्यावसायिक अर्थशास्त्र मूलतः व्यष्टि आर्थिक विश्लेषण है ।**

2. **फर्म सिद्धान्त अथवा फर्म का अर्थशास्त्र (Theory of Firm or Economics of Firm)** : व्यावसायिक अर्थशास्त्र में उन सभी आर्थिक सिद्धान्तों, अवधारणाओं, विधियों एवं

प्रतिरूपों (Models)का अध्ययन एवं प्रयोग किया जाता है जिन्हें ' फर्म सिद्धान्त' अथवा ' फर्म के अर्थशास्त्र' के अन्तर्गत सम्मिलित किया जाता है । उदाहरण के लिए, व्यावसायिक अर्थशास्त्र में भी फर्म के अर्थशास्त्र की तरह लागत एवं आगम विश्लेषण, माँग एवं पूर्ति विश्लेषण, उत्पादन एवं कीमत निर्धारण, फर्म का अनुकूलतम स्तर, लाभ का अधिकतमीकरण आदि का अध्ययन किया जाता है । यहाँ यह बात ध्यान देने योग्य है कि व्यावसायिक अर्थशास्त्र में वितरण के ' लाभ सिद्धान्त' का तो अध्ययन किया जाता है, किन्तु अन्य सिद्धान्तों का अध्ययन नहीं किया जाता है ।

3. **समष्टि आर्थिक चरों का प्रयोग (Use of Macro Economic Variables)** : व्यावसायिक अर्थशास्त्र में समष्टि आर्थिक चरों का भी अध्ययन किया जाता है क्योंकि इनका फर्म के (व्यष्टिगत) आर्थिक निर्णयों पर भी प्रभाव पड़ता है । समष्टि अर्थशास्त्र के अध्ययन से एक व्यावसायिक फर्म को अर्थव्यवस्था के उन बाह्य तत्त्वों (Exogenous factors) एवं सम्पूर्ण परिवेश को समझने में मदद मिलती है जिन पर उसका कोई नियंत्रण नहीं होता है । एक फर्म को अपने कार्य-कलापों को अनुकूलतम स्तर पर बनाये रखने के लिए अर्थव्यवस्था के समग्र वातावरण एवं बाहरी शक्तियों का सही एवं उचित आकलन करना आवश्यक हो जाता है ताकि वह तदनुरूप नीतिगत निर्णय ले सके और भावी नियोजन कर सके । इसलिए समष्टि अर्थशास्त्र के वे चर जो फर्म विशेष को प्रभावित करते हैं, उन सभी का अध्ययन व्यावसायिक अर्थशास्त्र में किया जाता है । इन समष्टिगत चरों में राजकोषीय नीति, मौद्रिक नीति, औद्योगिक नीति, आयात-निर्यात नीति (वाणिज्यिक नीति), श्रम नीति, व्यापार चक्र, सामान्य मूल्य-स्तर, राष्ट्रीय आय आदि महत्त्वपूर्ण हैं, जिनकी अनदेखी कोई भी व्यावसायिक फर्म नहीं कर सकती ।

4. **वर्णनात्मक न होकर निर्धारात्मक (Normative In-stead of Descriptive)**: व्यावसायिक अर्थशास्त्र अपने स्वभाव से वर्णनात्मक न होकर निर्धारात्मक अथवा निर्देशात्मक है, क्योंकि इसके अन्तर्गत विभिन्न अर्थशास्त्रीय चरों का वर्णन न करके उनका अच्छे-बुरे की दृष्टि से निर्धारण किया जाता है और उसके आधार पर दिशा-निर्देशन प्राप्त किया जाता है । उदाहरण के लिए, आर्थिक सिद्धान्त में माँग के नियम का अध्ययन इस बात का पता लगाने के लिए किया जाता है कि कीमत में परिवर्तन का माँग पर क्या प्रभाव पड़ेगा ?, किन्तु इस बात का अध्ययन नही किया जाता है कि यह प्रभाव अच्छा है या बुरा । किन्तु व्यावसायिक अर्थशास्त्र में यह निर्धारण किया जाता है कि यह प्रभाव अच्छा है अथवा बुरा, इस प्रकार व्यावसायिक अर्थशास्त्र में विभिन्न निर्णयों के फर्म पर पड़ने वाले अच्छे एवं बुरे प्रभावों की व्याख्या की जाती है और तदनुरूप ही निर्णय लिए जाते हैं ।

5. **केस अध्ययन विधि पर अधिक बल (More Emphasis on Case Study Method)**: व्यावसायिक अर्थशास्त्र सैद्धान्तिक अध्ययन पर कम तथा इसके स्थान पर व्यावहारिक एवं यथार्थपरक स्थितियों के केस विधि द्वारा अध्ययन पर अधिक जोर देता है । अत: यह महज सैद्धान्तिक विषय न होकर व्यावहारिक उपयोगिता एवं मार्गदर्शन का विषय है ।

6. **अधिक परिष्कृत एवं विकासमान विषय (More refined and developing subject)**: व्यावसायिक अर्थशास्त्र परम्परागत अर्थशास्त्र की तुलना में अधिक परिष्कृत विषय है

क्योंकि इसके अन्तर्गत विश्लेषण हेतु आधुनिक सांख्यिकीय एवं गणितीय विधियों तथा वैज्ञानिक उपकरणों का प्रयाग किया जाता है । इतना ही नहीं, इसमें क्रियात्मक अनुसंधान (Operational Research) की विधियों एवं कम्प्यूटरों का भी प्रयोग किया जाता है । व्यावसायिक अर्थशास्त्र के मॉडल अधिक वैज्ञानिक एवं व्यावहारिक होते हैं क्योंकि वे अपेक्षाकृत कम अवास्तविक मान्यताओं पर आधारित होते हैं । व्यावसायिक अर्थशास्त्र की अवधारणाएँ एवं प्रतिरूप (Model) अनिश्चितताओं के जोखिम भरे आर्थिक हालातों के अन्तर्गत प्रबन्धकों को यथा संभव सही निर्णय लेने में सहायक होते हैं । व्यावसायिक अर्थशास्त्र एक नवोदित और विकासमान विषय है जिसका जन्म द्वितीय विश्वयुद्ध काल में हुआ और तब से लेकर आज तक यह निरन्तर सुधार और विकास की ओर अग्रसर है । यह ज्ञान की अपेक्षाकृत नवीन एव व्यावहारिक शाखा है जो निरन्तर सुधार, परिष्करण एवं विकास की ओर अग्रसर है ।

7. **विज्ञान तथा कला दोनों (Both Science and Art)**: व्यावसायिक अर्थशास्त्र एक साथ विज्ञान तथा कला दोनों है । यह न केवल व्यवस्थित ज्ञान का भण्डार है, वरन् उसका उपयोगकर्ता भी है । यह न केवल उपकरण निर्माता ही नहीं, वरन उपकरण प्रयोगकर्ता भी है (Not only tool maker, but also tool user) ।

व्यावसायिक अर्थशास्त्र समन्वयात्मक प्रकृति का ज्ञान है क्योंकि इसके अन्तर्गत व्यष्टि एवं समष्टि अर्थशास्त्र, सिद्धान्त और व्यवहार के बीच तालमेल बिठाया जाता है । यह प्रबन्धकों को सही निर्णय लेने में सहायता करता है और साथ में उन्हें यह भी निर्देशित करता है कि उन्हें क्या करना चाहिए और क्या नहीं । इस दृष्टि से व्यावसायिक अर्थशास्त्र निर्देशात्मक प्रकृति (Perspective nature) का है ।

1.5 व्यावसायिक अर्थशास्त्र की प्रकृति (Nature of Business Economics):

व्यावसायिक अर्थशास्त्र की परिभाषा एवं विशेषताओं को समझ लेने के पश्चात हमारे लिए उसकी प्रकृति को समझना आसान है । व्यावसायिक अर्थशास्त्र के अन्तर्गत आर्थिक सिद्धान्तों का व्यावहारिक प्रयोग व्यावसायिक एवं प्रबन्धकीय निर्णयों तथा भावी नियोजन के लिए किया जाता है ताकि व्यावसायिक समस्याओं के समाधान में उचित दिशा-निर्देश मिल सके । अत: **व्यावसायिक अर्थशास्त्र विज्ञान एवं कला दोनों का सम्मिश्रण (Combination of both Science and Art)** है । व्यावसायिक अर्थशास्त्र की प्रकृति का विस्तार से विवेचन करने के लिए यहाँ यह समझ लेना आवश्यक है कि यह विज्ञान और कला दोनों किस प्रकार है ।

व्यावसायिक अर्थशास्त्र विज्ञान के रूप में (Business Economics as a Science): किसी भी विषय के व्यवस्थित एवं क्रमबद्ध ज्ञान को विज्ञान की संज्ञा दी जाती है । विज्ञान के अन्तर्गत किसी घटना के **कारण एवं प्रभाव (Cause and Effect)**का अध्ययन किया जाता है, विषय से सम्बन्धित नियमों का प्रतिपादन किया जाता है, उन्हें सत्य की कसौटी पर कसा जाता है और उनसे पूर्वानुमान लगाये जाते हैं । विज्ञान की परिभाषा की कसौटी पर यदि व्यावसायिक अर्थशास्त्र को परखा जाये, तो हम निश्चित रूप से कह सकते हैं कि यह एक विज्ञान

है क्योंकि इसके भी कुछ निश्चित नियम एवं सिद्धान्त हैं जिनके द्वारा व्यावसायिक घटनाओं के कारण एवं प्रभाव का अध्ययन किया जाता है तथा इन सिद्धान्तों की सत्यता को जाँचा-परखा जाता है । इतना ही नहीं व्यावसायिक अर्थशास्त्र में व्यवसाय सम्बन्धी पूर्वानुमान भी लगाये जाते हैं और भविष्यवाणी भी की जाती है । वस्तुत: व्यावसायिक अर्थशास्त्र आर्थिक सिद्धान्तों का एक व्यवस्थित एवं क्रमबद्ध अध्ययन है, जिसका प्रयोग व्यावहारिक व्यावसायिक समस्याओं के निराकरण के लिए किया जाता है । अत: यह सुस्पष्ट है कि व्यावसायिक अर्थशास्त्र एक विज्ञान है ।

अब यहाँ यह प्रश्न उठता है कि **व्यावसायिक अर्थशास्त्र कौनसा विज्ञान है? (Which type of Science is?)** क्या यह वास्तविक विज्ञान है अथवा आदर्श विज्ञान ' इस प्रश्न का उत्तर जानने से पूर्व इन दोनों प्रकार के विज्ञान का अर्थ समझना आवश्यक है ।

वास्तविक विज्ञान (Real Science): इसे शुद्ध विज्ञान (Pure Science) के नाम से भी जाना जाता है । यह वह विज्ञान है जो किसी घटना के **कारण एवं प्रभाव की निरपेक्ष व्याख्या** करता. है अर्थात् वस्तुस्थिति **'क्या है ?" (What is?)** से अवगत कराता है । यह एक प्रकार का सैद्धान्तिक विश्लेषण है जो हमें केवल किसी घटना की यथार्थ स्थिति से अवगत कराता है अर्थात यह उद्देश्यों के प्रति तटस्थ रहता है (It is neutral between ends) ।

आदर्श विज्ञान (Normative Science) : यह वह विज्ञान है जो किसी घटना के कारण एवं प्रभाव के साथ-साथ यह भी बताता है कि **"क्या होना चाहिए ?" (What Should be?)** अर्थात् घटना की वस्तुस्थिति को स्पष्ट करने के साथ-साथ अच्छे-बुरे को ध्यान में रखकर सलाह-मशवरा, सुझाव एवं अभिमत (Suggestion and Opinion) भी देता है कि क्या होना चाहिए? यह एक नीति प्रथा है जहाँ क्या होना चाहिए और क्या नहीं होना चाहिए? (Dos and Don't DOs) को ध्यान में रखकर निर्णय किये जाते हैं ।

वास्तविक और आदर्श विज्ञान का अर्थ समझ लेने के पश्चात अब यह कहा जा सकता है कि व्यावसायिक अर्थशास्त्र में दोनों विज्ञानों की विशेषताएँ विद्यमान है । व्यावसायिक अर्थशास्त्र जहाँ एक तरफ व्यावसायिक घटनाओं के न केवल कारण एवं प्रभाव का अध्ययन करता है, वहीं दूसरी ओर उनके अच्छे-बुरे परिणामों को ध्यान में रखकर प्रबन्धकों को "क्या होना चाहिए ?" के बारे में दिशा निर्देश प्रदान करता है । वस्तुत: व्यावसायिक अर्थशास्त्र एक आदर्श विज्ञान है क्योंकि इसके अन्तर्गत व्यावसायिक फर्मो की गतिविधियों, घटनाओं एवं समस्याओं का न केवल सैद्धान्तिक विश्लेषण किया जाता है, बल्कि उनके व्यावहारिक उपयोगी समाधान भी ढूँढें जाते हैं । जैसाकि पूर्व में व्यावसायिक अर्थशास्त्र की विशेषताओं के अन्तर्गत स्पष्ट किया जा चुका है कि व्यावसायिक अर्थशास्त्र की प्रकृति **वर्णनात्मक न होकर निर्धारात्मक एवं निर्देशात्मक (Perspective rather than descriptive)** है । इसलिए ही इसके अन्तर्गत साधनों के अध्ययन की अपेक्षा साध्यों के अध्ययन पर अधिक बल दिया जाता है तथा उनके अच्छे-बुरे के बारे में निर्णय लिया जाता है । इससे यह स्पष्ट है कि **'व्यावसायिक अर्थशास्त्र उद्देश्यों के प्रति तटस्थ नहीं है (Business Economics is not neutral between ends)** । व्यवहार में एक प्रबन्धक वस्तुस्थिति का अध्ययन कर उसके पास उपलब्ध सभी विकल्पों में से सर्वश्रेष्ठ

विकल्प का चुनाव करता है ताकि फर्म अधिकतम लाभ के अपने अभी ट लक्ष्य को प्राप्त कर सके । व्यावसायिक अर्थशास्त्र में उचित एवं अनुचित पर विचार कर लेने के पश्चात नीति-निर्धारण का कार्य किया जाता है । उदाहरण के लिए, किसी फर्म के द्वारा अपनी वस्तु की कीमत में वृद्धि के निर्णय से उसकी बिक्री और लाभ में कमी आती है, तो फर्म अपनी वस्तु की कीमत में वृद्धि नहीं करेगी क्योंकि ऐसा करना उसके हित में है ।

व्यावसायिक अर्थशास्त्र कला के रूप में (Business Economics as an Art): व्यावसायिक अर्थशास्त्र कला है या नहीं-इसको जानने से पूर्व यह जान लेना आवश्यक है कि कला किसे कहते हैं?

किसी भी कार्य को सर्वोत्तम तरीके से करने की क्रिया को कला कहते हैं । दूसरे शब्दों में कहें तो **ज्ञान को व्यवहार में लागू करने की क्रिया** को कला कहते हैं । इस दृष्टि से व्यावसायिक अर्थशास्त्र भी कला है क्योंकि इसके अन्तर्गत आर्थिक सिद्धान्तों को व्यावसायिक जगत की समस्याओं के विश्लेषण और सर्वोत्तम समाधान के लिए प्रयोग किया जाता है । व्यावसायिक प्रबन्धक अनेक उपलब्ध विकल्पों से सर्वश्रेष्ठ विकल्प का चुनाव करता है और उसे व्यावहारिक क्रियान्विति का अमली-जामा पहनाता है । वह अपने व्यवसाय का संचालन अनेक प्रकार की अनिश्चितताओं के भँवर के बीच में इस प्रकार करता है वह अपने अभीष्ट लक्ष्य को प्राप्त कर सके । वह सदैव वैकल्पिक प्रयोग वाले सीमित साधनों में से केवल उन्हीं का चुनाव करता है जो न केवल अधिक उत्पादक हों वरन् मितव्ययितापूर्ण भी हों ।

एक व्यावसायिक फर्म आर्थिक सिद्धान्तों के प्रयोग द्वारा अपने लिए अनुकूलतम /सर्वश्रेष्ठ स्थितियाँ उत्पन्न कर उनका अपने हित में प्रयोग करती है । यह सब व्यावसायिक अर्थशास्त्र के ज्ञान और उसके प्रयोग बिना संभव नहीं है । चूंकि व्यावसायिक अर्थशास्त्र आर्थिक सिद्धान्त एवं व्यावसायिक व्यवहार का समन्वय है, इसलिए इसे समन्वय की इस क्रिया के कारण ही कला कहा जाता है । जोसेफ मेसी के शब्दों में "प्रबन्धकीय अर्थशास्त्र प्रबन्ध द्वारा आर्थिक सिद्धान्तों को व्यावसायिक निर्णय लेने की प्रक्रिया में प्रयोग करना है ।" अतः हम यह कह सकते हैं कि व्यावसायिक अर्थशास्त्र एक कला है क्योंकि इसके अन्तर्गत आर्थिक सिद्धान्तों, विधियों एवं उपकरणों का प्रयोग व्यावसायिक नीति-निर्धारण में किया जाता है ।

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि व्यावसायिक अर्थशास्त्र विज्ञान और कला दोनों है क्योंकि यह एक ऐसा शास्त्र है जो न केवल उपकरण निर्माता है, वरन् उपकरण प्रयोगकर्ता भी है ।

1.6 व्यावसायिक अर्थशास्त्र का क्षेत्र (Scope of Business Economics)

व्यावसायिक अर्थशास्त्र परंपरागत इसके क्षेत्र में निरन्तर विस्तार होता रहा है । व्यावसायिक अर्थशास्त्र के क्षेत्र के बारे में अर्थशास्त्री एक मत नहीं हैं । कुछ अर्थशास्त्री **खेलों के सिद्धान्त, रेखीय कार्यक्रम, सामग्री प्रतिरूपों** तथा **क्रियात्मक अनुसंधान** को इसके क्षेत्र के अन्तर्गत सम्मिलित करते हैं, तो कुछ नहीं । किन्तु अब धीरे-धीरे इन सभी का प्रयोग अधिकांश व्यावसायिक अर्थशास्त्रियों द्वारा किया जाने लगा है । इसका मूल कारण यह है कि इनके प्रयोग

से व्यावसायिक अर्थशास्त्र न केवल सैद्धान्तिक रूप से समृद्ध होता है, वरन् उसकी व्यावहारिक उपादेयता भी बढ़ जाती है । व्यावसायिक अर्थशास्त्र के क्षेत्र के अन्तर्गत उन सभी आर्थिक सिद्धान्तों, अवधारणाओं, प्रतिरूपों तथा विश्लेषण की विधियों का समावेश होता है जो व्यावसायिक प्रबन्धकों को उनके व्यवसाय के सम्बन्ध में निर्णय लेने एवं भावी नियोजन करने में सहायक होती हैं । सामान्यतया आर्थिक विश्लेषण के निम्नांकित पहलू व्यावसायिक अर्थशास्त्र के क्षेत्र में सम्मिलित किये जाते हैं:

1. **माँग विश्लेषण एवं माँग पूर्वानुमान (Demand Analysis and Demand Forecasting)** : व्यावसायिक अर्थशास्त्र के अन्तर्गत फर्म द्‌वारा उत्पादित की जाने वाली वस्तु की माँग से सम्बन्धित सिद्धान्तों, नियमों एवं अवधारणाओं का अध्ययन किया जाता है तथा माँग पूर्वानुमान की विभिन्न विधियों द्‌वारा वस्तु की भावी माँग का अनुमान लगाया जाता है । फर्म अनिश्चितताओं एवं जोखिम के वातावरण में काम करती है इसलिए सही निर्णय के लिए प्रबन्धक वस्तु की माँग विश्लेषण के साथ-साथ माँग का पूर्वानुमान भी लगाते हैं । माँग पूर्वानुमानों के आधार पर ही प्रबन्धक उत्पादन सारणियों का निर्माण करते हैं । **माँग विश्लेषण और मांग पूर्वानुमान ही प्रबन्धकीय निर्णयों एवं नियोजन का आधार होता है** क्योंकि माँग विश्लेषण एवं माँग पूर्वानुमान सही होने पर ही फर्म अधिकतम लाभ कमा सकती है, अन्यथा उसे हानि उठानी पड़ सकती है ।

माँग विश्लेषण एवं पूर्वानुमान के अन्तर्गत फर्म की वस्तु की बाजार में औसतन कितनी माँग है ?, उसकी माँग को प्रभावित करने वाले कौन-कौन से तत्व हैं , बाजार में उस वस्तु के कौन-कौन से स्थानापन्न उपलब्ध हैं, भविष्य में वस्तु की अनुमानित माँग कितनी होगी आदि बातों का अध्ययन किया जाता है । इन सब बातों का ठीक से ज्ञान प्राप्त करने के लिए माँग के निर्धारक तत्त्वों, माँग के नियम, माँग की लोच, माँग पूर्वानुमान की विधियाँ, मनोवैज्ञानिक कारकों तथा बाहरी परिवेश के प्रभाव का भी अध्ययन किया जाता है ।

2. **उत्पादन नियोजन एवं प्रबन्ध (Production Planning and Management)** : प्रत्येक फर्म माँग के अनुरूप अपनी वस्तु का, न्यूनतम लागत पर उत्पादन कर अधिकतम लाभ कमाना चाहती है । इसके लिए उसे अपने उत्पादन की योजना बनानी पड़ती है जिससे यह सुनिश्चित किया जा सकें कि किस वस्तु का; कितना, कब और कैसे उत्पादन किया जाये और इस हेतु उत्पादन के साधनों का प्रबन्ध कैसे किया जाये तथा किस साधन की कितनी-कितनी मात्रा उत्पादन प्रकार्य में लगायी जाये ? इन सबके लिए व्यावसायिक अर्थशास्त्र में **उत्पादन फलन** का अध्ययन किया जाता है । **अल्पकालीन उत्पादन फलन में उत्पत्ति के नियमों (Laws of Returns)** तथा **दीर्घकालीन उत्पादन फलन के अन्तर्गत पैमाने के प्रतिफल (Returns to Scale)** का विवेचन किया जाता है ।

3. **उत्पादन एवं लागत विश्लेषण (Production and Cost Analysis)** : फर्म के लाभ नियोजन, कीमत निर्धारण एवं उस पर प्रभावी नियंत्रण के लिए प्रबन्धकों को उत्पादन की मात्रा का निर्धारण तथा उसमें लगने वाली लागतों का विश्लेषण और नियंत्रण करना आवश्यक होता है । लागत विश्लेषण के अन्तर्गत विभिन्न प्रकार की लागतों का विश्लेषण कर उत्पादन की मात्रा और

उनके बीच पाये जाने वाले सम्बन्ध का पता लगाया जाता है । इसके अलावा, इसके अन्तर्गत रेखीय कार्यक्रम तथा सम-विच्छेद बिन्दु विश्लेषण (Break Even Point Analysis) का भी अध्ययन किया जाता है ।

4. **मूल्य निर्धारण नीतियाँ एवं व्यवहार (Pricing Policies and Practices)** : मूल्य निर्धारण व्यावसायिक अर्थशास्त्र का एक महत्त्वपूर्ण अंग है क्योंकि एक बडी सीमा तक फर्म की सफलता उसकी मूल्य निर्धारण नीतियों पर ही निर्भर करती है । इसके अन्तर्गत बाजार के **विभिन्न प्रारूपों (Forms of Markets)में मूल्य निर्धारण सिद्धान्तों, नीतियों एवं व्यवहारों का अध्ययन किया जाता है ।** विभेदात्मक मूल्य निर्धारण तथा विभिन्न प्रकार की छूट योजनाओं का अध्ययन भी इसी के अन्तर्गत आता है । मूल्य पूर्वानुमानों के अतिरिक्त, फर्म की अल्पकालीन एवं दीर्घकालीन मूल्य नीतियों तथा विक्रय सम्बन्धी समस्याओं का अध्ययन भी इसी के अन्तर्गत आता है ।

5. **लाभ प्रबन्ध (Profit Management)** : प्रत्येक फर्म का अन्तिम उद्देश्य अपने लाभ को अधिकतम करना होता है । दीर्घकाल में फर्म की सफलता का मापदण्ड भी लाभ की मात्रा ही होती है । लाभ फर्म के आगम और लागतों की मात्रा पर निर्भर करता है जो अनेक आन्तरिक और बाह्य घटकों से प्रभावित होते हैं । यदि फर्म को इन कारकों की सही जानकारी हो, तो लाभ का अनुमान और विश्लेषण करना सरल हो जाता है । चूँकि फर्म भविष्य की अनिश्चितताओं के वातावरण में आशाओं एवं अनुमानों के आधार पर कार्य करती है, इसलिए लाभ का नियोजन एवं प्रबन्ध करना आवश्यक हो जाता है । अत: व्यावसायिक अर्थशास्त्र के अन्तर्गत लाभ सम्बन्धी अवधारणाओं, लाभ नियोजन एवं इसकी विधियों, लाभ की प्रकृति, लाभ-मापन, लाभ के अधिकतमीकरण की रीतियों तथा उपयुक्त लाभ नीति का अध्ययन किया जाता है ।

6. **पूँजी प्रबन्ध (Capital Management)** : व्यावसायिक फर्मो को विभिन्न परियोजनाओं में समय-समय पर पूँजी विनियोजन करना पड़ता है । पूँजी प्रबन्ध के अन्तर्गत विनियोगों के लिए आवश्यक वित्तीय साधन जुटाने पूँजी की लागत, पूँजी पर प्रत्याय की दर तथा विभिन्न परियोजनाओं में से किसी एक अथवा अधिक उपयुक्त परियोजना का विवेकपूर्ण चुनाव सम्मिलित होता है ।

7. **अनिश्चितताओं के अन्तर्गत निर्णयन सिद्धान्त (Decision Theory Under Uncertainties)** : प्रबन्धकों को अनेक निर्णय अनिश्चितता के वातावरण में लेने पड़ते हैं । ये अनिश्चितताएँ अनेक एवं नाना प्रकार की हो सकती हैं । उदाहरण के लिए, माँग की अनिश्चितता, लागत की अनिश्चितता, पूँजी की अनिश्चितता आदि-आदि । अनिश्चितताओं की इन स्थितियों में सही एवं उपयुक्त निर्णय लेने. के लिए अनेक गणितीय एवं सांख्यिकीय विधियों का विकास किया गया है और आर्थिक विश्लेषण के उपकरणों को इस तरीके से परिष्कृत किया जा रहा है ताकि अनिश्चितताओं के मध्य निर्णय प्रक्रियाओं को अधिक तर्कपूर्ण एवं वैज्ञानिक आधार प्रदान किया जा सके । अब संक्रिया-अनुसंधान और कम्प्यूटरों का भी प्रयोग किया जाने लगा है । **अनिश्चितताओं के अन्तर्गत निर्णय सिद्धान्तों का निर्माण एवं प्रयोग व्यावसायिक अर्थशास्त्र का एक अति-महत्त्वपूर्ण भाग है ।**

8. **विक्रय प्रोत्साहन एवं व्यूह रचना (Sales Promotion and Strategy)** : फर्म की सफलता और अधिकतम लाभ प्राप्ति के उद्देश्य की पूर्ति एक बड़ी सीमा तक उसकी विक्रय व्यूह रचना पर निर्भर करती है, इसलिए प्रबन्धकों को इस पर विशेष ध्यान देना पड़ता है । बढ़ती प्रतिस्पर्धा के आधुनिक युग में सुदृढ़ विक्रय व्यूह रचना का महत्व और अधिक बढ़ जाता है । वास्तव में देखा जाये, तो वस्तु की विक्रय लागतें तथा बिक्री की मात्रा दोनों ही उसकी विक्रय व्यूह रचना पर निर्भर करती हैं । विक्रय वृद्धि के लिए **विज्ञापन. आकर्षक विक्रय योजनाएँ, ग्राहक सेवा, विक्रय लागतों में कमी करना विक्रय प्रबन्ध अथवा विक्रय व्यूह रचना आदि समस्त क्रियाएँ** व्यवसायिक अर्थशास्त्र के क्षेत्र की परिधि में आती हैं ।

9. **अन्य (Others)** : इसके अन्तर्गत निम्नलिखित समाविष्ट हैं :

   (i) **सरकारी की आर्थिक नीतियाँ (Economics Policies of the Government)** : सरकार की राजकोषीय. मौद्रिक, औद्योगिक वाणिज्यिक, मूल्य एवं श्रम नीतियों का फर्म के कार्यो एवं नीतिगत निर्णयों पर गहरा एवं दूरगामी प्रभाव पड़ता है । इसलिए इन सबका अध्ययन व्यावसायिक अर्थशास्त्र के अन्तर्गत किया जाता है ।

   (ii) **समष्टिगत आर्थिक घटक (Macro Economic Variables)** : एक फर्म के क्रिया-कलाप अर्थव्यवस्था के समष्टिगत आर्थिक घटकों से भी प्रभावित होते हैं, इसलिए इनका अध्ययन भी व्यावसायिक अर्थशास्त्र के अन्तर्गत किया जाता है । इनमें मुख्य रूप से राष्ट्रीय आय, राष्ट्रीय उपभोग, बचतें एवं विनियोग, सामान्य मूल्य-स्तर, व्यापार चक्र, गरीबी एवं बेरोजगारी आते हैं ।

1.7 व्यावसायिक अर्थशास्त्र का महत्व (Importance of Business Economics)

व्यावसायिक अर्थशास्त्र के महत्त्व अथवा उसकी भूमिका को व्यावसायिक नीतियों के निर्माण और व्यावसायिक निर्णय के सन्दर्भ में ही समझा जा सकता है, जो इस प्रकार है :

1. अनिश्चितताओं तथा जोखिमों को कम करने में सहायक;
2. नियोजन एवं निर्णयन में सहायक;
3. माँग विश्लेषण एवं पूर्वानुमान में सहायक;
4. व्यावसायिक नीतियों के निर्माण एवं निर्धारण में सहायक,
5. लागत विश्लेषण एवं नियंत्रण में सहायक;
6. भावी नियोजन में सहायक;
7. फर्म के बाह्य वातावरण को समझने में सहायक;
8. व्यावसायिक संगठन के स्वरूप के निर्धारण में सहायक,
9. आर्थिक सिद्धान्तों तथा व्यावसायिक व्यवहारों के बीच उचित समन्वय एवं एकीकरण करने में सहायक;
10. परियोजना मूल्यांकन एवं उससे सम्बन्धित निर्णय लेने में सहायक; तथा

11. व्यावसायिक समस्याओं के विश्लेषण एवं समाधान हेतु व्यावहारिक प्रतिरूप **(Model)** बनाने में सहायक

1.8 व्यावसायिक अर्थशास्त्र का अन्य विषयों से सम्बन्ध (Relation of Business Economics with other Subjects)

व्यावसायिक अर्थशास्त्र अपनी स्वयं की प्रकृति से अनेक अन्य विषयों से घनिष्ठ रूप से सम्बन्धित है तथा उन पर एक सीमा तक आधारित है । यह ज्ञान की एक ऐसी नवीन और विशिष्ट शाखा है जिसके उद्भव एवं विकास में अनेक विषयों का योगदान रहा है । इसके भलीभाँति अध्ययन एवं प्रयोग करने के लिए एक साथ अनेक विषयों का ज्ञान होना आवश्यक है । **व्यावसायिक अर्थशास्त्र अपने स्वभाव एवं चरित्र में मूलत: अन्त: विषयक विषय (Inter-Disciplinary Subject)** है । इसलिए व्यावसायिक अर्थशास्त्र को समझने के लिए निम्नांकित विषयों का ज्ञान होना आवश्यक है.

1. अर्थशास्त्र और अर्थ मिति (Economics and Econometrics) - इसके अन्तर्गत व्यष्टि एवं समष्टि अर्थशास्त्र दोनों का ज्ञान होना आवश्यक है;
2. गणित (Mathematics),
3. संक्रिय अनुसंधान (Operational Research);
4. सांख्यिकी (Statistics)
5. लेखा शास्त्र (Accounting);
6. निर्णयन सिद्धान्त (Decision-making Theory); तथा
7. मनोविज्ञान एवं संगठनात्मक व्यवहार (Psychology and Organizational Behaviour)

उपर्युक्त उल्लिखित विषयों से व्यावसायिक अर्थशास्त्र का गहरा सम्बन्ध है इसलिए इनके ज्ञान के बिना व्यावसायिक अर्थशास्त्र की अकादमिक और व्यावहारिक उपादेयता संदिग्ध एवं सीमित हो जाती है ।

1.9 सारांश (Summary)

व्यावसायिक अर्थशास्त्र ज्ञान की वह नवीन एवं विशिष्ट शाखा है जिसमें आर्थिक विश्लेषण की अवधारणाओं, विधियों एवं उपकरणों का व्यवसाय की व्यावहारिक समस्याओं के विश्लेषण एवं उनके समाधान हेतु अध्ययन एवं विवेचन किया जाता है । यह फर्मो के आचरण का सैद्धान्तिक एवं व्यावहारिक अध्ययन है । इसका उद्देश्य यह बताना है कि आर्थिक विश्लेषण का व्यावसायिक नीतियों के निर्धारण में कैसे प्रयोग किया जा सकता है? व्यावसायिक अर्थशास्त्र की प्रमुख विशेषताएँ में. व्यष्टि अर्थशास्त्रीय प्रकृति, फर्म सिद्धान्त, समष्टिगत आर्थिक चरों का प्रयोग, वर्णनात्मक न होकर निधारात्मक एवं निर्देशात्मक होना, अध्ययन की केस विधि पर अधिक बल, अधिक परिष्कृत एवं विकासमान विषय तथा विज्ञान एवं कला दोनों होना है ।

व्यावसायिक अर्थशास्त्र विज्ञान एवं कला दोनों का सम्मिश्रण है । यह मूलत: आदर्श विज्ञान है क्योंकि यही **'क्या है?** से अधिक महत्त्व **'क्या होना चाहिए?'** पर दिया जाता है । व्यावसायिक अर्थशास्त्र केवल उपकरण निर्माता न होकर उपकरण प्रयोगकर्ता भी है । इसलिए यह विज्ञान के साथ -साथ कला भी है । व्यावसायिक अर्थशास्त्र के क्षेत्र के अन्तर्गत माँग विश्लेषण एवं माँग पूर्वानुमान. उत्पादन नियोजन एवं प्रबन्ध, उत्पादन एवं लागत विश्लेषण, मूल्य निर्धारण नीतियाँ एवं व्यवहार लाभ प्रबन्ध, पूँजी प्रबन्ध, अनिश्चितताओं के अन्तर्गत निर्णयन सिद्धान्त विक्रय प्रोत्साहन एवं व्यूह रचना आदि को सम्मिलित किया जाता है । व्यावसायिक अर्थशास्त्र का महत्त्व व्यावसायिक नीतियों के निर्माण, व्यावसायिक निर्णयन एवं भावी नियोजन करने में है । यह अन्त: विषयक होने के कारण ज्ञान की अनेक विधाओं (अर्थशास्त्र, गणित, सांख्यिकी, संक्रिया अनुसंधान, लेखा शास्त्र, निर्णयन सिद्धान्त, मनोविज्ञान एवं संगठनात्मक व्यवहार) से सम्बन्धित है ।

1.10 शब्दावली (Key Words)

1. **व्यावसायिक अर्थशास्त्र (Business Economics)** : व्यावसायिक अर्थशास्त्र आर्थिक सिद्धान्त एवं व्यावसायिक व्यवहार का इस उद्देश्य से किया गया एकीकरण है जिससे प्रबन्धकों को निर्णय लेने तथा भावी नियोजन करने में सुविधा होती है । इसे प्रबन्धकीय अर्थशास्त्र और फर्म का अर्थशास्त्र के नाम से भी जाना जाता

2. **समष्टि आर्थिक चर (Macro-Economic Variable)** : ये वे आर्थिक घटक होते हैं जिनका सम्बन्ध सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था से होता है । जैसे राष्ट्रीय आय, सामान्य मूल्य-स्तर, व्यापार चक्र इत्यादि ।

3. **बाहय तत्व (Exogenous Factors)** : ये वे तत्त्व होते हैं जिन पर किसी फर्म का कोई नियंत्रण नहीं होता है, यथा, सरकारी नीतियाँ, माँग व प्रतिस्पर्धा में होने वाले परिवर्तन, तकनीकी परिवर्तन इत्यादि ।

4. **वर्णनात्मक (Descriptive)** : इसके अन्तर्गत किसी घटना के कारण एवं प्रभाव का केवल वर्णन किया जाता है । उदाहरण के लिए महँगाई वृद्धि के क्या-क्या कारण हैं और उसका विभिन्न वर्गो पर क्या प्रभाव पड़ता है?

5. **निर्धारात्मक (Determinative/Normative)** : इसके अन्तर्गत विभिन्न आर्थिक चरों का वर्णन न करके उनका अच्छे-बुरे की दृष्टि से निर्धारण किया जाता है और उसके आधार पर दिशा-निर्देशन प्राप्त कर तदनुरूप निर्णय लिए जाते हैं ।

6. **केस विधि (Case Study Method)** : अध्ययन कीं इस विधि के अन्तर्गत सैद्धान्तिक/अकादमिक अध्ययन के स्थान पर व्यावहारिक एवं यथार्थ परक स्थितियों के विशिष्ट मामलों (Specific Cases) के अध्ययन को अधिक महत्त्व दिया जाता है । वस्तुत: यह व्यावहारिक अध्ययन की एक गहन एवं विस्तृत विधि है ।

7. **विज्ञान (Science)** यह किसी विषय के ज्ञान के व्यवस्थित एवं क्रम बद्ध अध्ययन का शास्त्र है जहाँ ज्ञान करने पर बल दिया जाता है ।

8. **कला (Art):** यह प्राप्त ज्ञान को व्यवहार में लागू करने की सर्वोत्तम विधि है । इसमें विज्ञान से प्राप्त ज्ञान को व्यावहारिक समस्याओं के समाधान के लिए क्रियान्वित किया जाता है ।

9. **वास्तविक विज्ञान (Real Science):** इसके अन्तर्गत किसी घटना के केवल कारण एवं प्रभाव का ही अध्ययन किया जाता है । यह उद्देश्यों के प्रति तटस्थ होती है और केवल 'क्या है?' का ही अध्ययन करती

10. **आदर्श विज्ञान (Normative Science)** : इसके अन्तर्गत 'क्या होना चाहिए'? का अध्ययन किया जाता है क्योंकि यह उद्देश्यों के प्रति तटस्थ नहीं होती है । इसमें किसी घटना के अच्छे-बुरे होने का अध्ययन किया जाता है और उसके आधार पर यथोचित निर्णय लिए जाते हैं ।

11. **माँग पूर्वानुमान (Demand Forecasting)** : किसी वस्तु की माँग का भविष्य की किसी निश्चित अवधि के लिए अनुमान लगाना ही माँग पूर्वानुमान कहलाता है । यह मूल्य एवं मात्रा दोनों में लगाया जाता है ।

12. **उत्पादन नियोजन (Production Planning)** : किसी वस्तु का कितना, कब और कैसे उत्पादन किया जाये? - इस स्कंध में योजना बनाना उत्पादन नियोजन कहलाता है ।

13. **उत्पादन फलन (Production Function)** : यह उत्पादन के साधनों और उत्पादन की मात्रा के बीच भौतिक सम्बन्धों की व्याख्या करता है ।

14. **विक्रय व्यूह रचना (Sales Strategy)** : किसी वस्तु के विक्रय हेतु अपनाये जाने वाली रणनीति को विक्रय व्यूह रचना कहते हैं । इसका उद्देश्य वस्तु की बिक्री की मात्रा को बनाये रखना अथवा उसमें निरन्तर व द्धि करना होता है ।

15. **अन्त: विषयक विषय (Inter-Disciplinary Subject)** : यह एक ऐसा विषय होता है जिसका सम्बन्ध एक से अधिक विषयों से होता है । आजकल अन्त: विषय अध्ययन अधिक महत्त्वपूर्ण होता जा रहा है ।

1.11 स्व-परख प्रश्न (Self Exercises)

1. व्यावसायिक अर्थशास्त्र की परिभाषा दीजिए ।
2. व्यावसायिक अर्थशास्त्र की चार प्रमुख विशेषताओं पर प्रकाश डालिए ।
3. व्यावसायिक अर्थशास्त्र की प्रकृति संक्षेप में स्पष्ट कीजिए ।
4. व्यावसायिक अर्थशास्त्र को आदर्श विज्ञान क्यों कहा जाना चाहिए?
5. व्यावसायिक अर्थशास्त्र को कला भी कहा जाता है । क्यों ?
6. व्यावसायिक अर्थशास्त्र का अन्य किन विषयों से सम्बन्ध है ?
7. व्यावसायिक अर्थशास्त्र की परिभाषा दीजिए एवं इसकी विशेषताओं पर प्रकाश डालिए ।
8. व्यावसायिक अर्थशास्त्र की प्रकृति को विस्तारपूर्वक समझाइए । अपने उत्तर की पुष्टि में उदाहरण दीजिए ।
9. व्यावसायिक अर्थशास्त्र के क्षेत्र का विस्तारपूर्वक विवेचन कीजिए ।
10. व्यावसायिक अर्थशास्त्र के महत्त्व पर प्रकाश डालिए ।

11. "व्यावसायिक अर्थशास्त्र आर्थिक सिद्धान्त एवं व्यावसायिक व्यवहार का इस उद्देश्य से किया गया एकीकरण है जिससे प्रबन्धकों को निर्णय लेने तथा भावी नियोजन करने में सुविधा होती है ।" इस कथन का विवेचन कीजिए ।

1.12 उपयोगी पुस्तकें

1. व्यावसायिक अर्थशास्त्र : पी०सी० अग्रवाल एवं एम0डी0 अग्रवाल, रमेश बुक डिपो, जयपुर ।
2. व्यावसायिक अर्थशास्त्र सिंह, गोदारा एवं गर्ग, कालेज बुक हाउस, जयपुर ।
3. Business Economics: Misra and Puri, Himalaya Publications, New Delhi.
4. Business Economics: Agarwal & Som Deo, Ramesh Book Depot, Jaipur.

इकाई-2 :

उपभोक्ता व्यवहार : गणनावाचक दृष्टिकोण
(Consumer Behaviour : Cardinal Approach)

इकाई की रूपरेखा

2.1 उद्देश्य
2.2 प्रस्तावना
2.3 गणनावाचक दृष्टिकोण
2.4 उपयोगिता के प्रकार
2.5 सीमान्त उपयोगिता ह्रास नियम
2.6 सम-सीमान्त उपयोगिता नियम
2.7 उपभोक्ता की बचत
2.8 सारांश
2.9 शब्दावली
2.10 स्व-परख प्रश्न
2.11 उपयोगी पुस्तकें

2.1 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन से आप :

* उपयोगिता की माप के गणनावाचक दृष्टिकोण का ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे ।
* सीमान्त उपयोगिता ह्रास नियम तथा सम-सीमान्त उपयोगिता नियम के बारे में जान सकेंगे ।
* उपभोक्ता की बचत की अवधारणा और उसकी माप को समझ सकेंगे ।

2.2 प्रस्तावना

इस इकाई में हम उपभोक्ता व्यवहार के गणनावाचक दृष्टिकोण के बारे में विस्तृत अध्ययन करेंगे । उपयोगिता की माप के गणनावाचक दृष्टिकोण की विशेषताओं के अतिरिक्त हम इस इकाई में सीमान्त उपयोगिता ह्रास नियम, सम-सीमान्त उपयोगिता नियम तथा उपभोक्ता की बचत के बारे में अध्ययन करेंगे ।

2.3 गणनावाचक दृष्टिकोण (Cardinal Approach)

क्या आपने कभी सोचा कि आप अपने जीवन में प्रतिदिन अनेक वस्तुओं का उपयोग क्यों करते हैं? इस प्रश्न का सरल सा उत्तर यह है कि हम जिन वस्तुओं का उपयोग करते हैं, उनसे हमें उपयोगिता (Utility) मिलती है । जिन वस्तुओं से हमें अधिक उपयोगिता मिलती है, हम उनका उपयोग प्राथमिकता के आधार पर करते हैं और जिन वस्तुओं से हमें उपयोगिता नहीं मिलती, हम उनका उपयोग नहीं करते । अब यहाँ यह प्रश्न उठता है कि उपयोगिता क्या है?

अर्थशास्त्र में किसी वस्तु की **उपयोगिता का अर्थ उसकी मानवीय आवश्यकता को सन्तुष्ट करने की क्षमता (want satisfying power of the commodity)** से लगाया जाता है, चाहे वह वस्तु लाभप्रद हो अथवा हानिकारक। इसे **'वस्तु का तुष्टि गुण'** (आवश्यकता पूर्ति की शक्ति) भी कहा जाता है । यहाँ यह बात अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है कि हम अनेक ऐसी वस्तुओं का उपयोग करते हैं, जिनमें हमारे लिए उपयोगिता तो होती है, किन्तु वे हमारे लिए लाभदायक (Usefulness) नहीं होती । उदाहरण के लिए, शराब, सिगरेट, गाँजा, विषाक्त पदार्थ इत्यादि किसी उपभोक्ता के लिए उपयोगिता तो रख सकते हैं, किन्तु लाभप्रद नहीं होते । वस्तु विशेष की उपयोगिता उसकी आवश्यकता की तीव्रता पर निर्भर करती है तथा यह सापेक्षिक होती है । **किरजनर** के अनुसार, "उपयोगिता चयन की क्रिया के रूप में तभी प्रकट होती है जब हम दो वस्तुओं की तुलना करते है ।" उपयोगिता वस्तुगत (Objective) न होकर विषयगत (Subjective) होती है इसलिए यह **व्यक्तिगत, स्थानगत एवं समय गत** होती है, अर्थात् देश, काल व परिस्थितियों के अनुसार बदलती रहती है ।

उपयोगिता की माप के बारे में दो परस्पर विरोधी दृष्टिकोण प्रचलित हैं । प्रथम दृष्टिकोण उपयोगिता को मापनीय मानता है; जबकि द्वितीय दृष्टिकोण उपयोगिता को मापनीय नहीं मानता । प्रथम दृष्टिकोण, जिसे गणनावाचक दृष्टिकोण कहते हैं, का अध्ययन हम इसी इकाई में करेंगे और द्वितीय दृष्टिकोण, जिसे क्रम वाचक दृष्टिकोण कहते हैं, का अध्ययन हम अगली इकाई में करेंगे ।

गणनावाचक दृष्टिकोण की विशेषताएँ (Characteristics of Cardinal Approach)

उपयोगिता की माप के गणनावाचक दृष्टिकोण की निम्नांकित विशेषताएँ हैं.

1. उपयोगिता मापनीय चर है;
2. उपयोगिता को मुद्रा रूपी पैमाने से मापा जा सकता है;
3. वस्तु विशेष के लिए उपभोक्ता द्वारा चुकायी जा सकने वाली अधिकतम कीमत अथवा उसके लिए अधिकतम किया जा सकने वाला मौद्रिक त्याग ही, उस वस्तु से मिलने वाली उपयोगिता की माप है । यही ध्यान देने योग्य बात यह है कि वस्तु विशेष के लिए उपभोक्ता द्वारा चुकायी गयी वास्तविक कीमत उससे मिलने वाली उपयोगिता की माप नहीं है । वस्तु विशेष के लिए उपभोक्ता द्वारा चुकायी जा सकने वाली अधिकतम कीमत उस वस्तु की वास्तविक कीमत से कम, अधिक या उसके बराबर हो सकती है;
4. उपयोगिता को गणनावाचक अंकों (Cardinal Numbers) में व्यक्त किया जा सकता है । गणनावाचक अंकों का एक निश्चित आकार होता है और इनकी परस्पर तुलना की जा सकती है । शून्य से लेकर 9 तक के अंक गणनावाचक अंक हैं और इन्हें आनुपातिक रूप में प्रकट किया जा सकता है । उदाहरण के लिए, एक विद्यार्थी के लिए एक पुस्तक की उपयोगिता 10 के बराबर है और एक पेन की उपयोगिता 20 के बराबर है, तो यहाँ 10 तथा 20 की संख्या गणनावाचक अंक हैं तथा पेन की उपयोगिता पुस्तक की

उपयोगिता से दुगनी होना इन वस्तुओं से मिलने वाली उपयोगिता की आनुपातिक अभिव्यक्ति है ।

5. गणनावाचक दृष्टिकोण के प्रतिपादक एवं समर्थक अर्थशास्त्रियों को **गणनावाचक अर्थशास्त्री** (Cardinal Economist) कहते हैं । इन अर्थशास्त्रियों में मार्शल एवं पीगू का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है, तथा
6. उपयोगिता की माप के गणनावाचक दृष्टिकोण के आधार पर उपभोक्ता व्यवहार के अध्ययन की विधि को **उपयोगिता विश्लेषण (Utility Analysis)** कहते हैं ।

2.4 उपयोगिता के प्रकार (Kinds of Utility)

उपयोगिता निम्नांकित तीन प्रकार की हो सकती है :

1. **सीमान्त उपयोगिता (Marginal Utility)** : सीमान्त उपयोगिता किसी वस्तु के उपयोग की सीमान्त (अन्तिम) इकाई की उपयोगिता होती है **। प्रो० बोल्डिंग(Boulding)** के शब्दों में, "किसी वस्तु की किसी मात्रा की सीमान्त उपयोगिता कुल उपयोगिता में वह वृद्धि है जो उपभोग में वस्तु की एक और इकाई की वृद्धि के परिणामस्वरूप होती है ।"

एक उदाहरण द्वारा हम सीमान्त उपयोगिता के अर्थ एवं उसकी गणना को आसानी से समझ सकते हैं । माना कि एक उपभोक्ता किसी समय विशेष में X वस्तु की दो इकाइयों का उपभोग करता है जिससे उसे कुल उपयोगिता 16 के बराबर प्राप्त होती है । यदि वह उस वस्तु की तीसरी इकाई का उपभोग करता है, तो उसकी कुल उपयोगिता बढकर 24 हो जाती है । यहाँ वस्तु की तीसरी और अन्तिम इकाई की उपयोगिता 6 है और यही सीमान्त उपयोगिता है । सीमान्त उपयोगिता को ज्ञात करने के लिए निम्नलिखित गणितीय सूत्र का प्रयोग किया जाता है:

X वस्तु की सीमान्त उपयोगिता (MUx) $= \frac{X \text{ वस्तु की कल उपयोगिता में परिवर्तन } (dTUx)}{X \text{ वस्तु की कुल मात्रा में परिवर्तन } (dQx)}$

or

$$MUx=\frac{dTUx}{dQx}$$

उपर्युक्त उदाहरण के आधार पर सीमान्त उपयोगिता निम्नलिखित प्रकार से ज्ञात की जा सकती है,

$$MUx= \frac{24-18}{3-2}=\frac{6}{1}=6$$

सीमान्त उपयोगिता के बारे में मुख्य बातें (Important Points) :

(i) सीमान्त उपयोगिता वस्तु के उपभोग की सीमान्त (अन्तिम)इकाई की उपयोगिता होती है। इसे अतिरिक्त इकाई से प्राप्त उपयोगिता भी कहा जाता है ।

(ii) सीमान्त उपयोगिता वस्तु के उपभोग में एक इकाई के परिवर्तन के कारण कुल उपयोगिता में होने वाले परिवर्तन की दर की माप है ।

(iii) सीमान्त उपयोगिता वस्तु की दो क्रमिक इकाइयों से प्राप्त कुल उपयोगिता के अन्तर को स्पष्ट करती है ।

(iv) सीमान्त उपयोगिता का सम्बन्ध सदैव उपभोग की एक इकाई से होता है ।

(v) वस्तु की अगली इकाइयों से प्राप्त सीमान्त उपयोगिता प्रायः गिरती हुई होती है ।

(vi) सीमान्त उपयोगिता का कोई स्थिर बिन्दु न होकर परिवर्तनशील बिन्दु होता है, जो वस्तु के उपभोग परिवर्तन के साथ परिवर्तित होता रहता है ।

(vii) सीमान्त उपयोगिता धनात्मक, शून्य एवं ऋणात्मक हो सकती है ।

1. **कुल उपयोगिता (Total Utility):** किसी समय विशेष में एक वस्तु की उपभोग की गई समस्त इकाइयों से प्राप्त उपयोगिता का योग ही कुल उपयोगिता कहलाता है । दूसरे शब्दों में, किसी वस्तु की उपभोग की गयी विभिन्न इकाइयों से प्राप्त अलग-अलग उपयोगिता का जोड़ कुल उपयोगिता कहलाती है । **तालिका संख्या 2.1** के अनुसार, वस्तु की कुल 5 इकाइयों से प्राप्त उपयोगिता का जोड़ 13 है, जो कुल उपयोगिता है । **प्रोO मेयर्स** सीमान्त उपयोगिता के योग को कुल उपयोगिता कहते हैं । उन्हीं के शब्दो में, "किसी वस्तु की उत्तरोत्तर इकाइयों के उपभोग के परिणामस्वरूप प्राप्त सीमान्त उपयोगिता का योग कुल उपयोगिता है ।"

कुल उपयोगिता के बारे में महत्त्वपूर्ण बातें (Important Points) :

(i) कुल उपयोगिता वस्तु के उपभोग की समस्त इकाइयों से प्राप्त उपयोगिता का योग है ।

(ii) कुल उपयोगिता में होने वाला परिवर्तन सीमान्त उपयोगिता में परिवर्तन की दर पर निर्भर करता है ।

(iii) कुल उपयोगिता प्रारम्भ में एक सीमा तक घटती हुई दर से बढ़ती है, एक निश्चित बिन्दु पर जाकर स्थिर हो जाती है तथा उसके पश्चात गिरती हुई होती है ।

(iv) कुल उपयोगिता सदैव धनात्मक होती है ।

X वस्तु की इकाइयाँ (Units of X Commodity)	**प्राप्त उपयोगिता (Utility Received)**	**कुल उपयोगिता (Total Utility)**	**सीमान्त उपयोगिता (Marginal Utility)**		**विवरण (Remarks)**
1	8	8	8,	धनात्मक	कुल उपयोगिता घटती हुई दर से बढ़ती हुई है|
2	5	8+5=13	5		
3	2	8+5+2=15	2		
4	0	8+5+2+0=15	0}	शून्य	कुल उपयोगिता स्थिर एवं अधिकतम है|

5	-2	8+5+2+0+(-2)=13	−2}	ऋणात्मक	कुल उपयोगिता गिरती हुई है।

सीमान्त उपयोगिता और कुल उपयोगिता का सम्बंध (Relations between Marginal Utility and Total Utility) :

सीमान्त उपयोगिता और कुल उपयोगिता का एक दूसरे से घनिष्ठ सम्बन्ध है । इनके बीच निम्नलिखित सम्बंध पाया जाता है

(i) जब तक सीमान्त उपयोगिता धनात्मक होती है, तब तक कुल उपयोगिता बढ़ती हुई होती है, किन्तु कुल उपयोगिता के बढ़ने की दर घटती हुई होती है ।

(ii) जब सीमान्त उपयोगिता शून्य होती है, तो कुल उपयोगिता अधिकतम होती है । यही उपभोक्ता का अधिकतम (पूर्ण) संतुष्टि बिन्दु होता है ।

(iii) जब सीमान्त उपयोगिता ऋणात्मक होती है, तो कुल उपयोगिता घटने लगती है । इस स्थिति में उपभोक्ता वस्तु का प्रयोग नहीं करता ।

सीमान्त उपयोगिता और कुल उपयोगिता का अर्थ, गणना एवं उनके आपसी सम्बन्ध को **तालिका संख्या 2.1** तथा **रेखाचित्र संख्या 21** के द्वारा आसानी से समझा जा सकता है ।

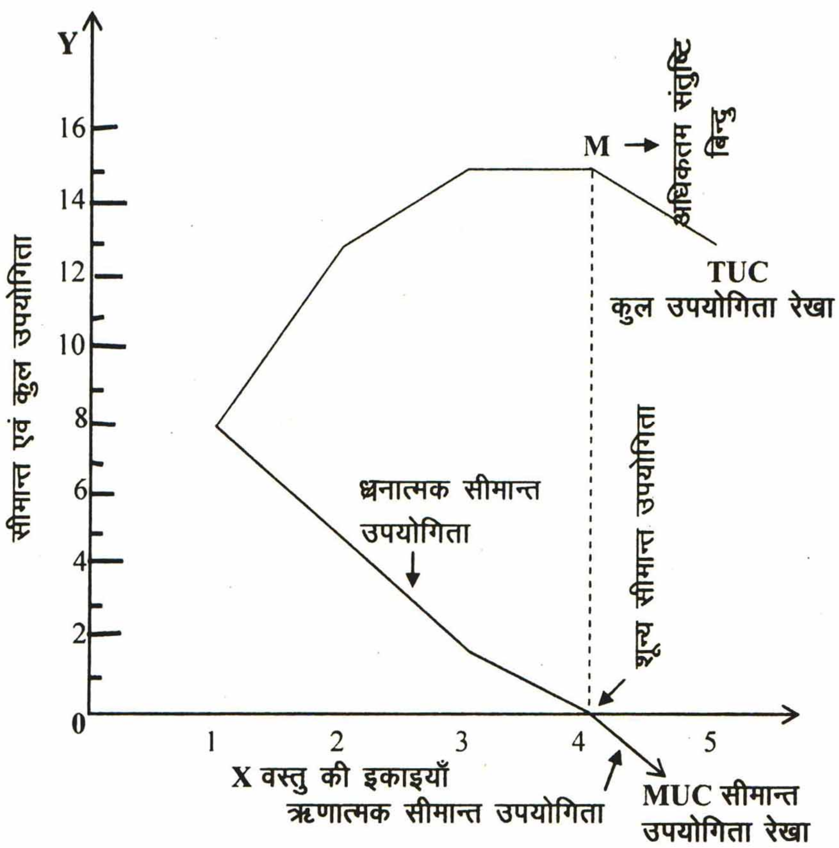

3. **औसत उपयोगिता (Average Utility):** किसी वस्तु की कुल उपयोगिता में वस्तु की उपभोग की गयी कुल इकाइयों की संख्या का भाग देने पर जो भागफल आता है, उसे औसत उपयोगिता कहते हैं । सूत्र रूप

$$\textbf{औसत उपयोगिता (AU)=} \frac{\text{कुल उपयोगिता } (TU)}{\text{कुल इकाइयों की संख्या (N)}}$$

औसत उपयोगिता सीमान्त उपयोगिता की तरह गिरती हुई होती है, किन्तु शून्य अथवा ऋणात्मक नहीं होती । आर्थिक विश्लेषण की दृष्टि से सीमान्त उपयोगिता तथा कुल उपयोगिता का ही अधिक महत्त्व है ।

2.1 सीमान्त उपयोगिता ह्रास नियम (Law of Diminishing Marginal Utility)

मानवीय आवश्यकताएँ अनंत हैं और उनकी पूर्ति के साधन सीमित हैं । इसलिए हम चाहकर भी सभी आवश्यकताओं को एक साथ पूरा नहीं कर सकते । किन्तु **आवश्यकता विशेष की किसी समय विशेष में पूर्ण सन्तुष्टि अवश्य कर सकते हैं** । आवश्यकताओं की इस महत्त्वपूर्ण विशेषता पर ही सीमान्त उपयोगिता हास नियम आधारित है । इस नियम का सर्वप्रथम विवरण **बेन्थम (Bentham)** के आर्थिक सिद्धान्तों में मिलता है, किन्तु उपभोग के क्षेत्र में इस नियम का सर्वप्रथम उल्लेख करने का श्रेय **एच०एच० गोसेन (H.H. Gossen)** को जाता है । इसलिए इस नियम को **गोसेन का प्रथम नियम (First Law of Gossen)** कहा जाता है । ब्रिटिश अर्थशास्त्री **मार्शल (Marshall)** को इस नियम की विस्तृत व्याख्या करने का श्रेय जाता है ।

किसी वस्तु की उपयोगिता उस वस्तु की आवश्यकता की तीव्रता (Intensity of want) पर निर्भर करती है । जैसे-जैसे हम आवश्यकता की पूर्ति करते जाते हैं, वैसे-वैसे उसकी तीव्रता कम होती जाती है जिसके परिणामस्वरूप वस्तु की अगली इकाइयों से प्राप्त सीमान्त उपयोगिता क्रमश: गिरने लगती है । दूसरे शब्दों में, किसी वस्तु की उत्तरोत्तर इकाइयों से मिलने वाली सीमान्त उपयोगिता क्रमश: घटती जाती है । उपभोग के क्षेत्र में सीमान्त उपयोगिता की इस असमान प्रवृत्ति को व्यक्त करने के कारण ही इस नियम को सीमान्त उपयोगिता हास नियम कहते हैं । **हेण्डरसन** के शब्दों में, "किसी व्यक्ति के लिए किसी वस्तु की सीमान्त उपयोगिता उसकी मात्रा में प्रत्येक वृद्धि के साथ घटती जाती है" । **एडवर्ड नेविन** ने इस नियम को परिभाषित करते हुए लिखा है कि "किसी वस्तु की अतिरिक्त इकाइयों के उपभोग से प्राप्त अतिरिक्त सन्तुष्टि उपभोग की मात्रा में वृद्धि के साथ-साथ घटती जाती है ।"

सीमान्त उपयोगिता ह्रास नियम हमें यह बताता है कि अन्य बातें समान रहने पर किसी वस्तु की उपभोग की जाने वाली मात्रा और उससे प्राप्त होने वाली सीमान्त उपयोगिता में ऋणात्मक (विपरीत) सम्बन्ध पाया जाता है, अर्थात् जैसे-जैसे वस्तु की मात्रा बढ़ती जाती है, वैसे-वैसे उपभोग की प्रत्येक अगली इकाई से प्राप्त सीमान्त उपयोगिता गिरती चली जाती है । उपयोगिता की इस ह्रासमान प्रवृत्ति को **तालिका संख्या 2.2** तथा **रेखाचित्र' संख्या 2.2 (A तथा B)** में दर्शाया गया है ।

तालिका संख्या 2.2

X वस्तु की इकाइयाँ (Units of X Commodity)	**सीमान्त उपयोगिता (Marginal Utility)**		**कुल उपयोगिता (Total Utility)**	
1	8	सीमान्त उपयोगिता क्रमश : गिरती हुई है।	8	घटती दर से बढ़ती हुई है।
2	6		14	
3	3		17	
4	0		17	अधिकतम है।
5	-1		16	गिरती हुई है।

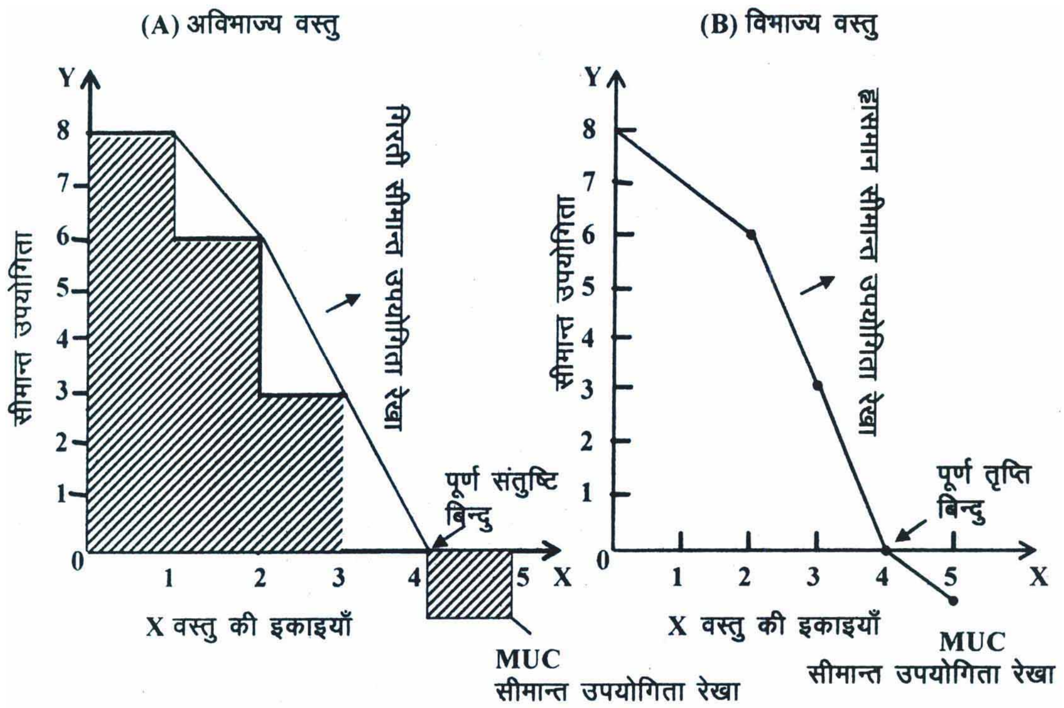

रेखाचित्र संख्या 2.2

तालिका संख्या 2.2 को देखने से पता चलता है कि X वस्तु की प्रत्येक अगली इकाई की सीमान्त उपयोगिता क्रमश : घटती हुई है । पहली इकाई से 8, दूसरी से 6, तीसरी से 3, चौथी से 0 (शून्य) तथा पाँचवीं इकाई से - 1 (ऋणात्मक) सीमान्त उपयोगिता मिलती है । चौथी इकाई की सीमान्त उपयोगिता शून्य है, किन्तु कुल उपयोगिता अधिकतम है । यहाँ उपभोक्ता पूर्ण सन्तुष्टि बिन्दु पर होता है । इसके पश्चात वस्तु की पाँचवीं इकाई के प्रयोग करने पर उपभोक्ता को ऋणात्मक संतुष्टि (-1) मिलती है, जिसे अनुपयोगिता (Disutility कहा जाता है । उपभोक्ता प्राय: ऐसी स्थिति में वस्तु का उपभोग नहीं करता क्योंकि उसे वस्तु के उपभोग करने से संतुष्टि के स्थान पर असंतुष्टि होती है ।

रेखाचित्र 2.2 (A) में वस्तु की प्रत्येक इकाई से मिलने वाली उपयोगिता को अलग-अलग आयत द्वारा दिखाया गया है । प्रत्येक अगली इकाई का आयत का आकार क्रमश: कम होता जा रहा है, जो इस बात का प्रमाण है कि वस्तु की प्रत्येक अगली इकाई से प्राप्त सीमान्त उपयोगिता क्रमश: घटती हुई है । जब सीमान्त उपयोगिता रेखा चौथी इकाई पर OX अक्ष को स्पर्श करती है, तो वही सीमान्त उपयोगिता शून्य है । OX अक्ष के नीचे का आयत ऋणात्मक सीमान्त उपयोगिता को प्रदर्शित करता है । यह रेखाचित्र अविभाज्य वस्तुओं के लिए है । विभाज्य वस्तु से प्राप्त समान सीमान्त उपयोगिता को रेखाचित्र संख्या 2.2(B) में प्रदर्शित किया गया है । इसमें सीमान्त उपयोगिता रेखा निरन्तर बायें से दायीं ओर गिरती हुई है, जो वस्तु की प्रत्येक अगली इकाई से प्राप्त सीमान्त उपयोगिता में होने वाली कमी को दर्शाती है ।

नियम की अब तक दी गयी परिभाषाओं तथा व्याख्या से यह लगता है कि वस्तु की प्रत्येक अगली इकाई से प्राप्त सीमान्त उपयोगिता सदैव घटती हुई होती है, किन्तु ऐसा होना आवश्यक नहीं है । यह हो सकता है कि उपभोग की प्रारम्भिक अवस्था में वस्तु से प्राप्त सीमान्त उपयोगिता बढ़ती हुई हो । इसी बात को दृष्टिगत रखते हुए आधुनिक अर्थशास्त्री **प्रो० बोल्डिंग** ने इस नियम को परिभाषित किया है । उनके शब्दों में "जब कोई उपभोक्ता, अन्य सभी वस्तुओं के उपभोग को स्थिर रखते हुए किसी एक वस्तु के उपभोग में वृद्धि करता है, तो परिवर्तनशील वस्तु की सीमान्त उपयोगिता अन्तत: अवश्य घटती है ।" बोल्डिंग की परिभाषा से यह स्पष्ट होता है कि उपभोग की निरन्तरता के क्रम में एक बिन्दु ऐसा अवश्य आता है जब वस्तु की सीमान्त उपयोगिता अनिवार्य रूप से घटती हुई होती है । प्रारम्भ में हो सकता है कि वस्तु की कुछ इकाइयों से उपभोक्ता को बढ़ती हुई उपयोगिता मिल रही हो, किन्तु एक बिन्दु के पश्चात वस्तु की अगली इकाइयों से प्राप्त उपयोगिता निश्चित रूप से घटती हुई प्राप्त होगी ।

नियम की महत्त्वपूर्ण बातें (Important Points About the Law) :

1. नियम यह स्पष्ट नहीं करता है कि वस्तु से प्राप्त सीमान्त उपयोगिता में ह्रास किस दर से होता है अर्थात् सीमान्त उपयोगिता में गिरावट की दर क्या होती है ?
2. उपभोग की जाने वाली वस्तु की प्रत्येक अगली इकाई से प्राप्त सीमान्त उपयोगिता प्राय: घटती हुई होती है।
3. विभिन्न वस्तुओं से प्राप्त सीमान्त उपयोगिता में गिरावट की दर भिन्न-भिन्न हो सकती है, जो उनकी आवश्यकता की तीव्रता पर निर्भर करती है ।
4. वस्तु की अगली इकाइयों से प्राप्त सीमान्त उपयोगिता धनात्मक, शून्य अथवा ऋणात्मक हो सकती है ।
5. नियम का सम्बन्ध वस्तु की सीमान्त उपयोगिता से है न कि उसकी कुल उपयोगिता से। हो सकता है कि सीमान्त उपयोगिता के गिरते हुए होने पर भी कुल उपयोगिता बढती हुई हो, जैसाकि तालिका संख्या 2.2 में वस्तु के उपभोग की प्रारम्भिक तीन इकाइयों से उपभोक्ता को गिरती हुई सीमान्त उपयोगिता प्राप्त होती है, किन्तु उसकी कुल उपयोगिता बढ़ती हुई है ।

नियम की मान्यताएँ (Assumptions of the Laws) : अर्थशास्त्र के अन्य नियमों की भाँति यह नियम भी **'अन्य बातों के समान रहने पर** ही क्रियाशील होता है । इस नियम की क्रियाशीलता निम्नांकित मान्यताओं पर आधारित है:

1. उपभोग की जाने वाली वस्तु की सभी इकाइयों समरूप होनी चाहिए ।
2. वस्तु की उपभोग इकाइयाँ उपयुक्त एवं प्रामाणिक होनी चाहिए ।
3. वस्तु के उपभोग में निरन्तरता होनी चाहिए ।
4. उपभोक्ता की मानसिक स्थिति सामान्य एवं समान बनी रहनी चाहिए ।
5. उपभोक्ता की आय, आदत, रूचि तथा फैशन में परिवर्तन नहीं होना चाहिए ।
6. उपभोग की जाने वाली वस्तु तथा उसकी स्थानापन्न वस्तुओं की कीमतों में परिवर्तन नहीं होना चाहिए ।
7. आवश्यकता अनेक वस्तुओं की सामूहिक न होकर एक ही होनी चाहिए ।
8. उपभोक्ता दुःखमय अवस्था (Pain Economy) में नहीं होना चाहिए अर्थात् यह नियम उपभोक्ता की सुखमय अवस्था (Pleasure Economy) में ही लागू होता है ।

नियम के अपवाद(Exceptions to the Law): कुछ परिस्थितियों में यह नियम लागू नहीं होता है, जिन्हें नियम के अपवाद कहा जाता है । ये अपवाद वास्तविक एवं दिखावटी दोनों प्रकार के हो सकते हैं ।

(अ) दिखावटी या नाम मात्र के अपवाद (Apparent or Alleged Exceptions): ये वे अवास्तविक अपवाद हैं जो नियम की शर्तें पूरी न होने के कारण दिखते हैं । इस श्रेणी में निम्नलिखित अपवादों को रखा जाता है:

1. वस्तु की उपभोग इकाई के उपयुक्त व प्रमाणिक न होने पर नियम लागू नहीं होता है;
2. दुर्लभ, विलक्षण एवं अप्राप्य वस्तुओं पर नियम लागू नहीं होता है, यथा डाक टिकट, पुराने चित्र, सिक्के, दुर्लभ मूर्तियाँ आदि ।
3. मुद्रा, धन व शक्ति संचय, शान-शौकत एवं दिखावे की इच्छा पर नियम लागू नहीं होता है ।
4. मादक पदार्थों विशेषकर शराब के सेवन पर नियम लागू नहीं होता है ।
5. कुछ वस्तुओं या सेवाओं के प्रयोग में विस्तार पर नियम लागू नहीं होता है, जैसे किसी नगर में दूरभाष सम्पर्क बिन्दुओं की संख्या में वृद्धि होने पर नियम लागू नहीं होता है ।

(ब) वास्तविक अपवाद (Real Exceptions):

1. **प्रोO टॉजिग (Taussing)** ने मधुर संगीत तथा रसीली कविता गीत को नियम का वास्तविक अपवाद बताया है ।
2. **प्रो0 पीगू (Pigou)** ने प्रदर्शन प्रभाव के कारण नियम के क्रियाशील न होने की बात कही है । उनके अनुसार, "किसी वस्तु की उपयोगिता दूसरों के पास उस वस्तु की मात्रा पर निर्भर करती है ।" इस कारण से एक उपभोक्ता के पास जब तक अन्य उपभोक्ताओं के बराबर वस्तु की मात्रा नहीं हो जाती, तब तक उसकी उपयोगिता बढ़ती हुई होती है ।

3. **प्रोO बोल्डिंग** ने स्पष्ट किया है कि कभी-कभी वस्तु के उपभोग की प्रारम्भिक अवस्था में सीमान्त उपयोगिता बढ़ती हुई हो सकती है ।

यहाँ यह कहने में कोई अतिशयोक्ति नहीं है कि सीमान्त उपयोगिता हास नियम एक सर्वव्यापी नियम है जो सभी परिस्थितियों में देर-सवेर (Sooner or Latter) अवश्य लागू होता है । **प्रोO बोल्डिंग** की परिभाषा के परिक्षेप्य में देखें, तो इस नियम का कोई वास्तविक अपवाद नहीं है ।

नियम का महत्व (Importance of Law):

1. यह नियम माँग के नियम का आधार है ।
2. यह नियम सम-सीमान्त उपयोगिता नियम का आधार है ।
3. यह नियम उपभोक्ता की बचत की अवधारणा का आधार है ।
4. यह नियम मूल्य सिद्धान्त का आधार है ।
5. यह नियम वस्तु के प्रयोग मूल्य(Value in Use) तथा विनिमय मूल्य(Value in Exchange) के अन्तर को स्पष्ट करता है ।
6. यह नियम उत्पादन एवं उपभोग में विविधता एवं जटिलता की व्याख्या करता है ।
7. यह नियम आधुनिक प्रगतिशील कर प्रणाली का आधार है ।
8. यह नियम समाज में आय एवं धन के पुनर्वितरण का सैद्धान्तिक आधार प्रस्तुत करता है।

नियम के लागू होने के कारण (Reasons for the application of the Law) : **प्रो0 बोल्डिंग** ने नियम की क्रियाशीलता के निम्नांकित दो कारण बताये हैं :

1. **वस्तुएँ एक दूसरे की पूर्ण स्थानापन्न नहीं होती हैं** इसलिए उन्हें एक दूसरे के स्थान पर एक सीमा तक ही प्रयोग किया जा सकता है या उनका एक निश्चित अनुपात में ही प्रयोग किया जा सकता है । उदाहरण के लिए, चाय में चीनी एक निश्चित अनुपात में ही काम में ली जाती है, इसलिए चाय की मात्रा स्थिर रख कर यदि चीनी की मात्रा बढ़ायी जाती है, तो चीनी की प्रत्येक वृद्धि से सीमान्त उपयोगिता घटती हुई दर से प्राप्त होगी ।
2. **किसी आवश्यकता विशेष को पूर्णत: सन्तुष्ट किया जा सकता है** क्योंकि प्रथम, उपभोक्ता की उपभोग क्षमता सीमित होती है और द्वितीय, वस्तु के उपभोग में वृद्धि के साथ-साथ आवश्यकता की तीव्रता कम होती चली जाती है । वस्तुत: किसी वस्तु से प्राप्त उपयोगिता उसकी आवश्यकता की तीव्रता पर निर्भर करती ई और वस्तु की मात्रा तथा आवश्यकता की तीव्रता के बीच विपरीत सम्बंध पाया जाता है । सूत्र रूप में
   वस्तु की उपभोग मात्रा में वृद्धि $\rightarrow$आवश्यकता की तीव्रता में कमी $\rightarrow$सीमान्त उपयोगिता में कमी
3. **वस्तु के विविध प्रयोग: प्रो0 बामोल (Baumal)** के मतानुसार वस्तुओं के एक से अधिक प्रयोग होने के कारण भी सीमान्त उपयोगिता हास नियम लागू होता है । सामान्य रूप से उपभोक्ता किसी वस्तु को सर्वप्रथम उसके सबसे महत्त्वपूर्ण प्रयोग में काम में लेता है

और तत्पश्चात् क्रमशः उसके कम महत्त्वपूर्ण प्रयोगों में काम में लेता है, परिणामस्वरूप वस्तु की अगली इकाइयों से प्राप्त उपयोगिता गिरती हुई होती है ।

2.6 सम-सीमान्त उपयोगिता नियम (Law of Equi- Marginal Utility)

सम-सीमान्त उपयोगिता के अनेक नाम हैं । इसे अधिकतम सन्तुष्टि का नियम, उपभोग का नियम, तटस्थता का नियम, मितव्ययता का नियम आदि नामों से भी जाना जाता है । आधुनिक अर्थशास्त्री इसे **आनुपातिकता का नियम (Law of Proportionally)** कहते हैं । **प्रोO लेफ्टविच** इसे **आय आवंटन का सिद्धान्त (Principal of Income Allocation)** कहते हैं । इस नियम का सर्वाधिक प्रचलित नाम **प्रतिस्थापन का नियम (Law of Substitution)** है । इसे **गोसेन का द्वितीय नियम (Second Law of Gossen)** भी कहा जाता है । इस नियम के प्रयोग द्वारा एक उपभोक्ता अपने संतुलन की स्थिति प्राप्त कर सकता है ।

उपभोक्ता का साम्य (Consumer's Equilibrium) : एक उपभोक्ता अपनी सीमित आय से अधिकतम संतुष्टि प्राप्त करना चाहता है । इसलिए जब उसे अपनी सीमित आय को व्यय करने के ढंग से अधिकतम संतुष्टि मिल रही होती है, तो वह संतुलन की स्थिति में होता है। दूसरे शब्दों में, जब उपभोक्ता अपने वर्तमान व्यय करने के ढंग में कोई परिवर्तन नहीं करना चाहता है, तो वह साम्य की स्थिति में होता है । यदि वह अपनी आय को व्यय करने के तरीके में परिवर्तन करता है, तो उसका संतुष्टि का स्तर पहले की अपेक्षा कम हो जाएगा । सम-सीमान्त उपयोगिता नियम उपभोक्ता को साम्य की स्थिति प्राप्त करने में मार्गदर्शन करता है ।

नियम की परम्परागत परिभाषा एवं व्याख्या (Traditional Definition and Explanation) : प्रोO मार्शल के अनुसार, 'यदि किसी व्यक्ति के पास ऐसी वस्तु है जो विभिन्न प्रयोगों में काम लायी जा सकती है, तो वह उसको उन प्रयोगों में इस प्रकार बॉटेगा कि उसकी सीमान्त उपयोगिता सभी प्रयोगों में समान रहे; क्योंकि यदि वस्तु की सीमान्त उपयोगिता एक प्रयोग में दूसरे प्रयोग की अपेक्षा अधिक है, तो वह दूसरे प्रयोग से इसकी कुछ मात्रा हटाकर तथा उसका उपयोग पहले में करके लाभ प्राप्त कर सकता है । " **मार्शल** की परिभाषा के आधार पर नियम की परिभाषा को इस प्रकार सूत्रबद्ध किया जा सकता है :

वस्तु के में प्रयोग की सीमान्त उपयोगिता= वस्तु के Y प्रयोग की सीमान्त उपयोगिता

= वस्तु के अन्य प्रयोगों की सीमान्त उपयोगिता ।

प्रो0 हिक्स के अनुसार, "जब प्रत्येक अवस्था में व्यय की सीमान्त इकाइयों से उपयोगिता में समान वृद्धि प्राप्त होती है, तो उपयोगिता अधिकतम होती हैं । " **प्रो0 हिक्स** ने सम-सीमान्त उपयोगिता नियम की व्याख्या मुद्रा के सन्दर्भ में की है । व्यवहार में हम वस्तुओं को मुद्रा के माध्यम से क्रय करते हैं । इस परिभाषा के आधार पर नियम को निम्नांकित प्रकार से सूत्रबद्ध किया जा सकता है

X वस्तु पर व्यय की सीमान्त इकाई = Y वस्तु पर व्यय की सीमान्त इकाई
की उपयोगिता की उपयोगिता

यहाँ ध्यान रखने योग्य बात यह है कि व्यय की सीमान्त इकाई वस्तु विशेष पर उपभोक्ता द्वारा खर्च की गयी व्यय की अन्तिम इकाई (रूपया) है । नियम की इस परिभाषा के सन्दर्भ में हम एक उदाहरण द्वारा उपभोक्ता के साम्य को समझेंगे । माना कि एक उपभोक्ता के पास 8रू0 हैं, जिन्हें वह X तथा Y वस्तु पर खर्च करना चाहता है । यही यह मान लिया गया है कि प्रत्येक वस्तु की एक इकाई एक रूपये के बराबर है । तालिका संख्या 2.3 में दोनों वस्तुओं की विभिन्न इकाइयों से प्राप्त सीमान्त उपयोगिता को दर्शाया गया है, जो सीमान्त उपयोगिता ह्रास नियम की क्रियाशीलता के कारण क्रमश: गिरती हुई हैं । कोष्ठकों में दोनों वस्तुओं पर उपभोक्ता द्वारा व्यय किये गये रूपयों के क्रम को दिखाया गया है, जो दोनों वस्तुओं की तुलनात्मक उपयोगिता पर आधारित है ।

तालिका संख्या 2.3

मुद्रा की इकाइयाँ	**X वस्तु से प्राप्त सीमांत उपयोगिता**	**Y वस्तु से प्राप्त सीमांत उपयोगिता**
1	50(1)	20(4)
2	40(2)	10(6)
3	28(3)	6(7)
4	15(5)	3
5	**6**(8)	1
6	2	0

तालिकानुसार उपभोक्ता X वस्तु पर कुल पाँच रू0 तथा Y वस्तु पर कुल तीन रू0 खर्च करता है जिसके परिणामस्वरूप उसको कुल उपयोगिता 175 प्राप्त होती है । यही X वस्तु पर खर्च किया गया पाँचवा रू० सीमान्त व्यय इकाई है जिसकी उपयोगिता 6 है और इसी प्रकार Y वस्तु पर खर्च किया गया तीसरा रू० सीमान्त व्यय इकाई है जिसकी उपयोगिता भी 6 है ।

यदि उपभोक्ता अपने 8 रूपयों को दोनों वस्तुओं पर किसी अन्य प्रकार खर्च करे, तो उसकी कुल उपयोगिता 175 से कम होगी, जो इस नियम की सत्यता की कसौटी है । इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि उपभोक्ता इस नियम का पालन कर अधिकतम संतुष्टि के लक्ष्य तक पहुँच सकता है । इस उदाहरण में नियम की निम्नांकित दोनों शर्त पूरी हो रही हैं जिसके कारण उपभोक्ता साम्य की स्थिति में है.

(i) X वस्तु पर व्यय की सीमान्त इकाई = Y वस्तु पर व्यय की
की उपयोगिता (6) सीमान्त इकाई की उपयोगिता (6)

(ii) कुल आय = कुल व्यय
8 रू. = 8 रू. (5 रू. X वस्तु पर + 3 रू. Y वस्तु पर)

रेखाचित्र संख्या 2.3 द्वारा भी इस नियम को समझा जा सकता है ।

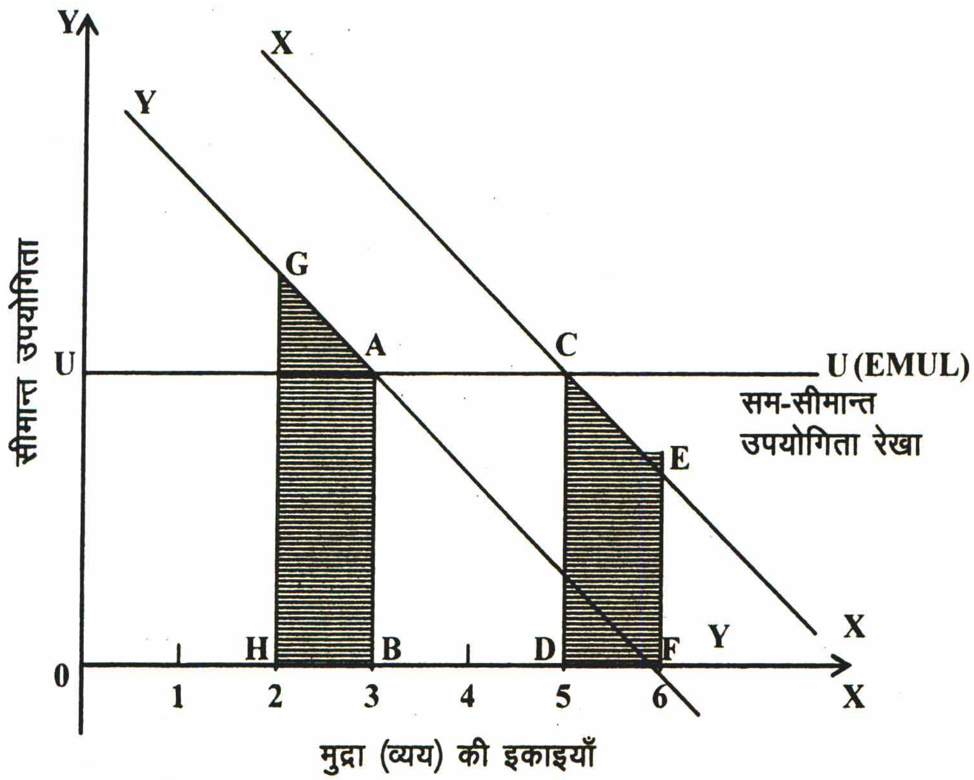

रेखाचित्र संख्या 2.3

नियम की आधुनिक परिभाषा एवं व्याख्या (Modern Definition and Explanation) : नियम की परम्परागत व्याख्या अनेक दोषों से ग्रसित है । इनमें सबसे प्रमुख दोष यह है कि इसमें वस्तुओं की कीमतों पर ध्यान नहीं दिया गया है । नियम की आधुनिक व्याख्या के अनुसार उपभोक्ता अपने संतोष को अधिकतम करने के लिए उपभोग की जाने वाली वस्तुओं से प्राप्त सीमान्त उपयोगिता को बराबर करने के स्थान पर वस्तुओं से प्राप्त सीमान्त उपयोगिता और उनके मूल्यों के अनुपात को बराबर करता है । **प्रो0 पी०सी० जैन** के शब्दों में, "एक उपभोक्ता विभिन्न वस्तुओं पर मुद्रा इस प्रकार व्यय करेगा कि विभिन्न वस्तुओं की सीमान्त उपयोगिताएँ उनकी कीमतों के अनुपात में हों ।" **सूत्र रूप में :**

$$\frac{\text{X वस्तु की सीमान्त उपयोगिता (MUx)}}{\text{X वस्तु की कीमत (Px)}} = \frac{\text{Y वस्तु की सीमान्त उपयोगिता (MUy)}}{\text{Y वस्तु की कीमत (Py)}}$$

प्रो0 बोल्डिंग ने उपभोक्ता साम्य के लिए **भारित सीमान्त उपयोगिता के समानीकरण** पर बल दिया है । उन्हीं के शब्दों में, “व्यय का सर्वोत्तम वितरण वह वितरण होता है जिसके अन्तर्गत व्यय की सभी मदों की भारित सीमान्त उपयोगिता बराबर होती है ।" **सूत्र रूप में.**

X वस्तु की भारित सीमान्त उपयोगिता = Y वस्तु की भारित सीमान्त उपयोगिता

(WMUx) = (WMUy)

वस्तु की सीमान्त उपयोगिता में उसके मूल्य का भाग देने से उस वस्तु की भारित सीमान्त उपयोगिता प्राप्त होती है ।

उदाहरण द्वारा स्पष्टीकरण. माना कि एक उपभोक्ता के पास 17 रू0 हैं जिन्हें वह X तथा Y वस्तुओं पर व्यय करना चाहता है । यही X वस्तु की कीमत 2 रू0 तथा Y वस्तु की कीमत 3 रू0 प्रति किलोग्राम है । दोनों वस्तुओं की विभिन्न मात्राओं की सीमान्त उपयोगिता **तालिका संख्या 2.4** में दी गयी है ।

तालिका संख्या 2.4

मात्रा (किलोग्राम मे)	X वस्तु की सीमांत उपयोगिता	Y वस्तु की सीमांत उपयोगिता
1	100	60
2	80	40
3	50	<u>30</u>
4	<u>20</u>	15
5	10	8

इस उदाहरण में उपभोक्ता अधिकतम संतुष्टि के लिए X वस्तु की चार किलोग्राम तथा Y वस्तु की तीन किलोग्राम मात्रा क्रय करेगा क्योंकि यही पर दोनों वस्तुओं से प्राप्त सीमान्त उपयोगिता ठीक उनके मूल्य के अनुपात में हैं और उपभोक्ता की कुल आय और व्यय एक दूसरे के बराबर हैं । यहाँ नियम की निम्नांकित दोनों शर्तें पूरी हो रही हैं.

(i) $\frac{MUx}{PX} = \frac{MUy}{pY}$ **or** $\frac{20}{2} = \frac{30}{3}$ **or 10=10**

(ii) कुल आय = कुल व्यय

17 रू. = 17 रू.

कुल व्यय ज्ञात करने के लिए निम्नांकित सूत्र काम में लिया जाता है

कुल व्यय = (Qx.Px)+ (Qy. Py)

= (4 X 2) + (3 X 3)

= Rs 17

यहाँ Q वस्तु की मात्रा तथा P कीमत है ।

नियम की आलोचनाएँ / सीमाएँ / कठिनाइयाँ (Criticism/ Limitations/ Difficulties): व्यवहार में निम्नांकित कठिनाइयों के कारण सम-सीमान्त उपयोगिता नियम का प्रयोग करना उतना आसान नहीं है जितना कि इस नियम की व्याख्या से लगता है :

1. व्यवहार में अनेक वस्तुओं का छोटे-छोटे टुकड़ों में विभाजन संभव नहीं है । इसलिए अविभाज्य वस्तुओं की सीमान्त उपयोगिता को विभाज्य वस्तुओं की सीमान्त उपयोगिता के बराबर नहीं किया जा सकता है।

2. टिकाऊँ वस्तुओं के बारे में निश्चित बजट अवधि की मान्यता लाग नहीं होती है क्योंकि उपभोक्ता इन्हें एक निश्चित बजट अवधि में खरीदता है, किन्तु इनका प्रयोग निश्चित बजट अवधि के पश्चात भी करता है ।
3. वस्तुओं की सीमित उपलब्धि अथवा अनुपलब्धि की स्थिति में उपभोक्ता चाहकर भी उनकी सीमान्त उपयोगिता को बराबर नहीं कर सकता ।
4. वस्तुओं की कीमतों में निरन्तर परिवर्तन होते रहने के कारण उपभोक्ता की वस्तुओं से सम्बन्धित उपयोगिता गणनाएँ बेकार हो जाती हैं और उनकी आपस में तुलना भी नहीं की जा सकती है ।
5. अनेक बार अज्ञानता और लापरवाही के कारण उपभोक्ता को विभिन्न वस्तुओं से मिलने वाली उपयोगिता की सही जानकारी नहीं होती है ।
6. पूरक वस्तुओं के सम्बन्ध में यह नियम लागू नहीं होता है क्योंकि प्रमुख वस्तु के बिना उनकी उपयोगिता की जानकारी नहीं होती है ।
7. आदत, रीति-रिवाज और फैशन के कारण अनेक बार उपभोक्ता वस्तुओं से मिलने वाली उपयोगिता को ध्यान में रखे बिना ही अपनी आय को खर्च कर देता है ।
8. सभी उपभोक्ता विवेकशील एवं हिसाबी स्वभाव के नहीं होते हैं । वे अपने स्वभाव (ा,3१1ंग़०।) के अनुसार अपनी आय को व्यय करते हैं ।
9. यह नियम अनेक अवास्तविक एवं दोषपूर्ण मान्यताओं पर टिका हुआ है । व्यवहार में, न तो उपयोगिता की सही गणना की जा सकती है और न ही मुद्रा की सीमान्त उपयोगिता स्थिर रहती है, जैसा कि यह नियम मानकर चलता है ।

निष्कर्ष : उपर्युक्त आलोचनाओं / कठिनाइयों के बावजूद भी यह नहीं कहा जा सकता है कि यह नियम पूर्णत: काल्पनिक एवं अव्यावहारिक है । वस्तुत: यह नियम जीवन का मार्गदर्शक सिद्धान्त है जिसका प्रयोग हर उपभोक्ता जाने-अनजाने में मौटे रूप में अवश्य करता है । **प्रो0 चैपमेन** के शब्दों में, "हम अपनी आय का वितरण सम-सीमान्त उपयोगिता नियम के अनुसार उस अर्थ में करने के लिए विवश नहीं होते जिस अर्थ में हवा में पत्थर फेंके जाने पर वह जमीन पर वापस गिरने के लिए विवश होता हैं, परन्तु वास्तव में हम मौटे तौर पर ऐसा करते हैं क्योंकि हम समझदार हैं ।"

नियम का क्षेत्र एवं महत्त्व (Scope and Importance of the Law) : प्रोO रोबिन्स प्रतिस्थापन के नियम को **'अर्थशास्त्र का नियम'** कहते हैं और शेष अन्य नियमों को 'उप-नियमों' की श्रेणी में रखते हैं । इस नियम की क्रियाशीलता की व्यापकता आर्थिक जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में है । **मार्शल** के अनुसार, "प्रतिस्थापन के सिद्धान्त का प्रयोग आर्थिक खोज के लगभग प्रत्येक क्षेत्र में होता है ।" यह नियम उपभोग, उत्पादन, विनिमय, वितरण एवं राजस्व के क्षेत्र में समान रूप से लागू होता है । जैसा कि पूर्व में स्पष्ट किया जा चुका है कि उपभोग के क्षेत्र में इस नियम के प्रयोग द्वारा एक उपभोक्ता अपनी सीमित आय से अधिकतम संतुष्टि प्राप्त कर सकता है । उत्पादन के क्षेत्र में एक उत्पादक न्यूनतम लागत पर अधिकतम उत्पादन कर अपने लाभ को अधिकतम कर सकता है । उसे इस उद्देश्य की प्राप्ति हेतु कम उत्पादक

अथवा महँगे साधनों के स्थान पर अधिक उत्पादक अथवा सस्ते साधनों का तब तक प्रतिस्थापन करते रहने पड़ता है जब तक की निम्नांकित स्थिति नहीं आ जाती है :

$$\frac{\text{X साधन की सीमान्त उत्पादकता (MPx)}}{\text{X साधन की कीमत (Px)}} = \frac{\text{Y साधन की सीमान्त उत्पादकता (MPy)}}{\text{Y साधन की कीमत (Py)}}$$

विनियम के क्षेत्र में इस नियम का प्रयोग कर विनियम संतुलन की निम्नांकित आदर्श स्थिति को प्राप्त किया जा सकता है :

वस्तु की सीमान्त उपयोगिता = मुद्रा की सीमान्त उपयोगिता
(MU) (P)

वितरण के क्षेत्र में निम्नांकित तीन समस्याएँ होती हैं जिनका समाधान सम-सीमान्त उपयोगिता नियम द्वारा किया जाता है: (i) उत्पादन के साधनों का पुरस्कार निर्धारण; (ii) आय एवं धन के वितरण की विषमताएँ तथा (iii) उत्पादन के साधनों का विभिन्न प्रयोगों में आवंटन । वितरण के क्षेत्र में इस नियम को **'सम-सीमान्त उत्पादकता'**'नियम कहते हैं।

राजस्व के क्षेत्र में सरकार अधिकतम सामाजिक कल्याण के उद्देश्य की प्राप्ति प्रतिस्थापन के नियम को लागू करके करने का प्रयास करती है । राजस्व का '**अधिकतम सामाजिक लाभ का सिद्धान्त'** इसी नियम पर आधारित है । इस सिद्धान्त की पालना हेतु सरकार :

(i) विभिन्न स्रोतों पर कर भार इस प्रकार डाले कि प्रत्येक स्रोत का सीमान्त त्याग एक दूसरे के बराबर हो
(ii) विभिन्न मदों पर इस प्रकार व्यय करें ताकि प्रत्येक मद से प्राप्त सीमान्त लाभ (उपयोगिता) बराबर हो; तथा
(iii) समाज से प्राप्त कुल आय का सीमान्त त्याग उसके ऊपर किये गये कुल व्यय के सीमान्त लाभ के बराबर हो ।

2.7 उपभोक्ता की बचत (Consumer’s Surplus)

उपभोक्ता की बचत के बारे में सर्वप्रथम विचार सन् 1844 में फ्रांसीसी इंजीनियर **आर०जे० ड्यूपिट (Dupit)** ने प्रस्तुत किये, किन्तु इस अवधारणा का वैज्ञानिक विश्लेषण प्रो0 मार्शल ने 1879 में किया । उन्होंने तब इसे **'उपभोक्ता की लगान' (Consumer’s rent)** का नाम दिया । बाद में 1890 में उन्होंने इस अवधारणा की और अधिक गहन एवं विस्तृत व्याख्या की और इसे **'उपभोक्ता की बचत'** कहा । **बोल्डिंग** इसे **'क्रेता की बचत'(Buyer’s Surplus)** कह कर पुकारते हैं ।

हम अपने दैनिक जीवन में अनेक ऐसी वस्तुओं का उपयोग करते हैं जिनसे प्राप्त उपयोगिता उनकी कीमत की तुलना में कहीं अधिक होती है, जैसे माचिस, समाचार पत्र, नमक आदि । यदि ये वस्तुएँ बाजार में प्रचलित मूल्य पर न मिलें, तो हम इनके लिए अधिक कीमत चुकाने को तैयार हो जाते हैं । एक उपभोक्ता किसी वस्तु के प्रयोग से वंचित रहने की अपेक्षा उसके लिए जो कीमत चुकाने को तैयार हो जाता है और जो कीमत वह वास्तव में चुकाता है, इन दोनों के अन्तर को ही उपभोक्ता की बचत कहते हैं । मार्शल के अनुसार, “किसी वस्तु के उपभोग से वंचित रहने की अपेक्षा एक व्यक्ति (उपभोक्ता) जो कीमत चुकाने को तैयार हो जाता है और

जो कीमत वास्तव में चुकाता है, इनका अन्तर ही इस अतिरेक सन्तुष्टि की आर्थिक माप है । इसे उपभोक्ता की बचत कहा जा सकता है ।" उदाहरण के लिए समाचार पत्र पढ़ने से वंचित रहने की अपेक्षा एक उपभोक्ता उसके लिए तीन रू0 तक दे सकता है, किन्तु उसे समाचार पत्र दो रू0 में ही मिल जाता है, तो इस प्रकार उसे समाचार पत्र से एक रू0 की अतिरिक्त संतुष्टि मिलती है । इस अतिरिक्त संतुष्टि को ही उपभोक्ता की बचत कहते हैं ।

प्रो॰ पेन्सन के अनुसार, "हम जो कुछ चुकाने को तैयार होते हैं और हमें जो कुछ चुकाना पड़ता है, उनके अन्तर को उपभोक्ता की बचत कहते हैं । " **सूत्र रूप में.**

उपभोक्ता की बचत = (जो कुछ चुकाने को तैयार हैं - जो कुछ चुकाना पड़ता है)

प्रो0 टॉजिग के शब्दों में,"उपभोक्ता की बचत, कुल उपयोगिता और कुल विनिमय मूल्य को मापने वाली राशियों का अन्तर है ।" **सूत्र रूप में :**

उपभोक्ता की बचत = (कुल उपयोगिता - कुल विनिमय मूल्य)

उपभोक्ता की बचत की अवधारणा का आधार सीमान्त उपयोगिता ह्रास नियम है । इस नियम की क्रियाशीलता के कारण ही वस्तु की उत्तरोत्तर इकाइयों से प्राप्त उपयोगिता क्रमशः गिरती हुई होती है । इसलिए वस्तु की प्रारम्भिक इकाइयों की उपयोगिता अधिक तथा बाद की इकाइयों की उपयोगिता कम होती है । चूँकि बाजार में वस्तु की प्रत्येक इकाई की कीमत समान होती है इसलिए उपभोक्ता की बचत गिरती हुई होती है । उपभोक्ता उस बिन्दु पर वस्तु का क्रय करना बन्द कर देता है जहाँ उसकी उपयोगिता और कीमत ठीक एक दूसरे के बराबर (MU =P) हो जाती है । यहाँ उपभोक्ता की बचत शून्य होती है । उपभोक्ता की बचत की अवधारणा, इसके आधार और माप को **तालिका संख्या 2.5** तथा **रेखाचित्र संख्या 2.4** के द्वारा आसानी से समझा जा सकता है ।

तालिका संख्या 2.5

1	**2**	3	**4(2-3)**
X वस्तु की इकाइयां	**जो मूल्य चुकाने को तैयार हैं या सीमांत उपयोगिता (MU) (रु. में)**	**जो मूल्य चुकाते हैं या बाजार कीमत (P) (रु. में)**	**उपभोक्ता की बचत (CS) (रु. में)**
1	60	20	60-20=40 } MU>P
2	50	20	50-20=30 } MU>P
3	40	20	40-20=20 } MU>P
4	30	20	30-20=10 } MU>P
5	20	20	$20-20=0$ } MU=P
	कुल उपयोगिता =200 (TU)	**कुल कीमत = 100 (TP)**	**कुल उपभोक्ता = 100 की बचत (CS)**

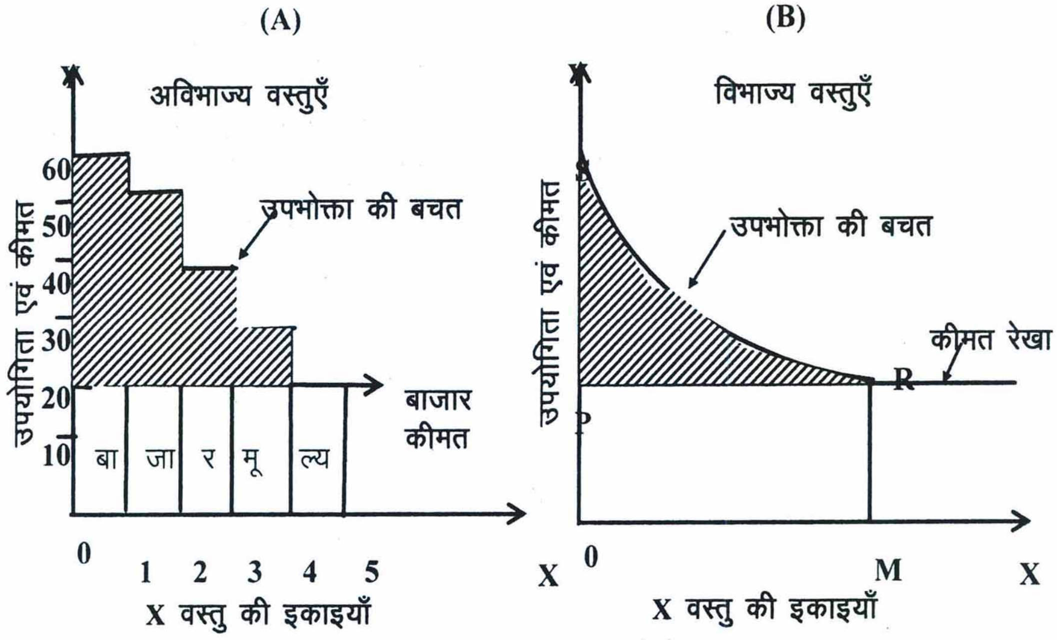

रेखाचित्र संख्या 2.4

अविभाज्य शील वस्तुओं से प्राप्त उपभोक्ता की बचत को रेखाचित्र 2.4(A) में दर्शाया गया हैं । चित्र में प्रत्येक चतुर्भुज (Rectangular) वस्तु की इकाई से प्राप्त उपयोगिता को बताता है तथा चतुर्भुजों का छायांकित भाग वस्तु की कीमत के ऊपर उसकी उपयोगिता के आधिक्य को बताता है, जो उपभोक्ता की बचत है ।

रेखाचित्र 2.4 (B) विभाज्य वस्तुओं से प्राप्त उपभोक्ता की बचत को प्रकट करता है । चित्रानुसार वस्तु की कुल उपयोगिता OSRM है तथा कुल कीमत OPRM है । अत: इन दोनों का अन्तर PSR उपभोक्ता की बचत है ।

उपभोक्ता की बचत को मापने के लिए निम्नलिखित गणितीय सूत्र प्रयोग किया जाता है

उपभोक्ता की बचत = (कुल उपयोगिता) - (वस्तु की क्रय की गई इकाइयों की संख्या X वस्तु की प्रति इकाई कीमत)

सूत्र में तालिका संख्या 2.5 के अंकों को प्रतिस्थापित करने पर.

उपभोक्ता की बचत = (200) – (5 X 20) 100 रू. है ।

उपभोक्ता की बचत की माप की कठिनाइयाँ (Difficulties in Measurement of Consumer's Surplus) : व्यवहार में, निम्नांकित कठिनाइयों की वजह से उपभोक्ता की बचत की सही माप कर पाना अत्यन्त कठिन कार्य हैं

1. उपयोगिता की गणनावाचक माप संभव नही है, जिसके बिना उपभोक्ता की बचत की माप करना संभव नहीं है ।
2. मुद्रा की सीमान्त उपयोगिता सदैव स्थिर नहीं रहती है, किन्तु उपभोक्ता की बचत की अवधारणा इस गलत मान्यता पर आधारित है कि मुद्रा की सीमान्त उपयोगिता सदैव स्थिर रहती है ।

3. उपभोक्ताओं की आर्थिक स्थिति में अन्तर होने के कारण विभिन्न उपभोक्ताओं के लिए समान वस्तु से प्राप्त उपभोक्ता की बचत भी भिन्न-भिन्न होती है क्योंकि उनके द्वारा चुकाये जा सकने वाला मूल्य उनकी आर्थिक स्थिति पर निर्भर करता है ।
4. उपभोक्ताओं के पसन्दगी अधिमान में अन्तर होने के कारण उनके द्वारा वस्तु के लिए चुकाये जा सकने वाले मूल्य में अन्तर होता है, परिणामस्वरूप उनको प्राप्त उपभोक्ता की बचत भी भिन्न-भिन्न होती है ।
5. स्थानापन्न वस्तुओं की उपस्थिति एवं उपलब्धि के कारण विचाराधीन वस्तु से प्राप्त उपयोगिता की सही गणना करना संभव नही है, फलस्वरूप उपभोक्ता की बचत की सही माप कर पाना अत्यन्त कठिन है ।
6. जीवन रक्षक एवं प्रतिष्ठा सूचक वस्तुओं से प्राप्त उपभोक्ता की बचत अनिश्चित, भ्रामक एवं हास्यास्पद होती है क्योंकि ऐसी वस्तुओं के लिए उपभोक्ता किसी भी सीमा तक त्याग करने को तैयार हो जाता है ।
7. **प्रो0 पैटन** के अनुसार जब उपभोक्ता वस्तु की अतिरिक्त इकाइयाँ क्रय करता है, तो वस्तु की अतिरिक्त इकाइयों के साथ-साथ उससे पूर्व क्रय की गयी इकाइयों की भी उपयोगिता कम हो जाती है । मार्शल ने उपभोक्ता की बचत का माप करते समय इस बात का ध्यान में नहीं रखा है ।

सेम्यूलसन जैसे आधुनिक अर्थशास्त्री उपभोक्ता की बचत को गणितीय पहेली के साथ ऐतिहासिक और सैद्धान्तिक रूचि का विषय मानते हैं । वे इस अवधारणा को काल्पनिक, अवैज्ञानिक और अव्यावहारिक मानते हैं और इसलिए इसे अर्थशास्त्र के अध्ययन से बाहर निकाल देने के पक्षधर हैं । । लेकिन इसका अर्थ यह नहीं है कि उपभोक्ता की बचत की अवधारणा का हमारे जीवन में कोई महत्त्व नहीं है । **प्रो0 रोबर्टसन** इसे बौद्धिक दृष्टि से सम्मानीय तथा व्यावहारिक कार्यो में मार्गदर्शन की दृष्टि से लाभदायक मानते हैं ।

उपभोक्ता की बचत का महत्त्व (Importance of Consumer’s Surplus)

सैद्धान्तिक महत्त्व :

1. यह अवधारणा वस्तुओं के प्रयोग मूल्य (Value in Use) एवं विनिमय मूल्य (Value in Exchange) में पाये जाने वाले अन्तर को स्पष्ट करती है ।
2. यह हमें हमारे सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक एवं राजनैतिक वातावरण से प्राप्त लाभों का ज्ञान कराने में सहायक सिद्ध होती है ।

व्यावहारिक महत्त्व :

1. इस अवधारणा के आधार पर हम एक देश की विभिन्न समयों में आर्थिक प्रगति की तुलना कर सकते हैं और साथ-ही-साथ एक ही समय में दो देशों की आर्थिक प्रगति की भी तुलना कर सकते हैं ।
2. इस अवधारणा के द्वारा हम अंतरराष्ट्रीय व्यापार से प्राप्त लाभों की गणना कर सकते हैं और साथ ही साथ इस प्रश्न का उत्तर भी पा सकते हैं कि किसी देश द्वारा वस्तुओं का आयात क्यों किया जाता है? इतना ही नहीं, इससे देश की सरकार को अपनी आयात-निर्यात नीति निर्धारित करने में भी सहायता मिलती है ।

3. इस अवधारणा से एकाधिकारी को अपनी वस्तु का मूल्य निर्धारण करने और उसमें परिवर्तन की सीमा निश्चित करने मे मदद मिलती है ।
4. सरकार अपनी कर नीति और आर्थिक सहायता नीति (Taxation and Subsidy Policy) का निर्धारण उपभोक्ता की बचत को ध्यान में रखकर करती है । दूसरे शब्दों में, यह सरकार की राजको नीति के निर्माण में सहायक होती है ।
5. आजकल विनियोग परियोजनाओं का चयन उनके लागत-लाभ विश्लेषण करने के पश्चात ही किया जाता है । इस विश्लेषण में उपभोक्ता की बचत महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती है।

2.8 सारांश (Summary)

अर्थशास्त्र में किसी वस्तु की उपयोगिता उसकी मानवीय आवश्यकता को संतुष्ट करने की शक्ति के अर्थ में प्रयुक्त होती है, चाहे वह वस्तु लाभप्रद हो या हानिकारक । गणनावाचक अर्थशास्त्री उपयोगिता को मापनीय मानते हैं । उनके अनुसार, उपयोगिता को मुद्रा रूपी पैमाने द्वारा मापा जा सकता है तथा उसे गणनावाचक अंकों में व्यक्त किया जा सकता है । किसी वस्तु के लिए एक उपभोक्ता द्वारा चुकायी जा सकने वाली कीमत ही उसकी उपयोगिता की माप है । एक वस्तु की उपभोग की गयी सभी इकाइयों की उपयोगिता के योग को कुल उपयोगिता कहते हैं । उपभोग की अतिरिक्त या अन्तिम इकाई की उपयोगिता को सीमान्त उपयोगिता कहते हैं । सीमान्त उपयोगिता और कुल उपयोगिता एक दूसरे से घनिष्ठ रूप में सम्बन्धित हैं । सीमान्त उपयोगिता धनात्मक, शून्य एवं ऋणात्मक हो सकती है, जबकि कुल उपयोगिता सदैव धनात्मक होती है । सीमान्त उपयोगिता ह्रास नियम सीमान्त उपयोगिता की ह्रासमान प्रवृत्ति पर आधारित है, जो यह बताता है कि अन्य बातों के समान रहने पर, किसी वस्तु की उत्तरोत्तर इकाइयों से प्राप्त सीमान्त उपयोगिता क्रमश: गिरती हुई होती है । वस्तुओं की अपूर्ण स्थानापन्नता, उनके विविध प्रयोग तथा आवश्यकता विशेष को पूर्णत: संतुष्ट किये जा सकने के कारण यह नियम लागू होता है ।

सम-सीमान्त उपयोगिता अथवा प्रतिस्थापन के नियम का प्रयोग कर एक उपभोक्ता अपनी सीमित आय से अधिकतम संतुष्टि के लक्ष्य को प्राप्त कर सकता है । उपयोगिता विश्लेषण में इस नियम का प्रयोग उपभोक्ता साम्य के विवेचन में किया जाता है । इस नियम के अनुसार एक उपभोक्ता तब साम्य की स्थिति में होता है, जब वह अपनी दी हुई आय को विभिन्न वस्तुओं पर इस प्रकार व्यय करें कि विभिन्न वस्तुओं की सीमान्त उपयोगिताएँ ठीक उनकी कीमतों के अनुपात में हों । प्रतिस्थापन का नियम आर्थिक विश्लेषण के प्रत्येक क्षेत्र में लागू होता है, किन्तु व्यवहार में अनेक कठिनाइयों के कारण इस नियम का अक्षरशः पालन कर पाना संभव नहीं है । उपभोक्ता की बचत वस्तु की कीमत के ऊपर उससे प्राप्त उपयोगिता का आधिक्य है, जिसे हम कुल उपयोगिता और कुल विनिमय मूल्य के अन्तर द्वारा माप सकते हैं । इस अवधारणा का आधार सीमान्त उपयोगिता ह्रास नियम है । इस नियम की क्रियाशीलता के कारण ही वस्तु की अगली इकाइयों से प्राप्त उपभोक्ता की बचत गिरती हुई होती है । यद्यपि उपभोक्ता की बचत की सही माप करने में अनेक व्यावहारिक कठिनाइयाँ हैं, किन्तु इसके ज्ञान से अनेक सैद्धान्तिक एवं व्यावहारिक लाभ भी हैं ।

2.9 शब्दावली (Key Words)

1. **स्थानापन्न वस्तुएँ (Subsitute) :** ये वे वस्तुएँ होती हैं जो किसी आवश्यकता विशेष की संतुष्टि हेतु. एक दूसरे के स्थान पर प्रयुक्त की जा सकती हैं, जैसे चाय व कॉफी ।

2. **प्रयोग मूल्य (Value in Use) :** किसी वस्तु के प्रयोग मूल्य से आशय उस वस्तु के उपभोक्ता के व्यावहारिक जीवन में वास्तविक महत्त्व से लिया जाता है । प्रयोग मूल्य का आधार वस्तु की कुल उपयोगिता होती है । प्रयोग मूल्य का सम्बन्ध वस्तु की बाजार कीमत से नहीं होता । उदाहरण के लिए, पानी के बिना हमारा जीवन खतरे में पड़ सकता है, किन्तु इसके लिए हमें कोई कीमत चुकानी नहीं पडती है ।

3. **विनिमय मूल्य (Value in Use) :** किसी वस्तु का विनिमय मूल्य उस वस्तु की प्रचलित बाजार कीमत होती है । विनिमय मूल्य का आधार वस्तु की सीमान्त उपयोगिता होती है।

4. **उपभोक्ता साम्य (Consumer's Equilibrium) :** जब कोई उपभोक्ता अपनी दी हुई सीमित आय से अधिकतम संतुष्टि प्राप्त कर रहा होता है, तो वह संतुलन की स्थिति में होता है । इस स्थिति में वह अपनी आय को खर्च करने के ढंग में परिवर्तन नहीं करता क्योंकि ऐसा करने से उसका संतुष्टि-स्तर कम हो जाता

5. **प्रतिष्ठा सूचक वस्तुएँ (Prestigious Goods) :** ये वे वस्तुएँ होती हैं जिनकी कीमत बढ़ने पर उपयोगिता बढती है और इस कारण इन्हें उपभोक्ता ऊँचे दामों पर क्रय करके अपने मिथ्या दम्भ (Snobe appeal) को संतुष्ट करते हैं, जैसे दुर्लभ चित्र, मूर्तियाँ इत्यादि ।

2.10 स्व-परख प्रश्न (Self Exercises)

लघु उत्तरात्मक प्रश्न (Short Answer Questions) :

1. सीमान्त उपयोगिता और कुल उपयोगिता में अन्तर स्पष्ट कीजिए ।
2. सीमान्त उपयोगिता क्यों गिरती हुई होती है?
3. सीमान्त उपयोगिता और कुल उपयोगिता के बीच पाये जाने सम्बन्ध को स्पष्ट कीजिए ।
4. सीमान्त उपयोगिता ह्रास नियम की महत्त्वपूर्ण बातों पर प्रकाश डालिए ।
5. उपभोक्ता के साम्य का अर्थ स्पष्ट कीजिए ।
6. सीमान्त उपयोगिता ह्रास नियम को स्पष्ट कीजिए ।
7. उपयोगिता की माप के गणनावाचक दृष्टिकोण की विशेषताएँ बताइए ।
8. सीमान्त उपयोगिता हास नियम क्यों लागू होता है ।
9. उपभोक्ता की बचत का अर्थ स्पष्ट कीजिए ।
10. उपभोक्ता की बचत को मापने का सूत्र स्पष्ट कीजिए ।
11. उपभोक्ता की बचत की अवधारणा का आधार क्या है? समझाइए ।

निबन्धात्मक प्रश्न (Essay type Questions) :

1. सीमान्त उपयोगिता और कुल उपयोगिता में अन्तर स्पष्ट कीजिए और इनके बीच पाये जाने वाले सम्बन्ध को तालिका एवं रेखाचित्र द्वारा समझाइए ।

2. सीमान्त उपयोगिता ह्रास नियम की आलोचनात्मक व्याख्या कीजिए ।
3. सम-सीमान्त उपयोगिता की व्याख्या कीजिए । वास्तविक जीवन में इस नियम को लागू करने में आने वाली कठिनाइयों पर प्रकाश डालिए ।
4. "प्रतिस्थापन का नियम आर्थिक जाँच के सभी क्षेत्रों में लागू होता है ।" विवेचना कीजिए।
5. उपभोक्ता की बचत की अवधारणा की व्याख्या कीजिए । क्या उपभोक्ता की बचत की सही माप संभव है? कारण सहित स्पष्ट कीजिए ।

2.11 उपयोगी पुस्तकें

1. **व्यावसायिक अर्थशास्त्र : पीOसीOअग्रवाल एवं एम०डी० अग्रवाल रमेश बुक डिपो जयपुर।**
2. **व्यावसायिक अर्थशास्त्र : सिंह, गोदारा एवं गर्ग, कॉलेज बुक हाउस. जयपुर ।**
3. **Business Economics: Misra and Puri, Himalaya Publications, Mumbai.**
4. **Business Economics: M. D. Agarwal and Som Deo, Ramesh Book Depot, Jaipur.**

इकाई-3

उपभोक्ता व्यवहार : क्रम वाचक दृष्टिकोण (उदासीनता वक्र विश्लेषण)

Consumer Behaviour: Ordinal Approach (Indifference Curve Analysis)

इकाई की रूपरेखा

3.1 उद्देश्य

3.2 प्रस्तावना

3.3 क्रम वाचक दृष्टिकोण

3.4 उदासीनता वक्र का अर्थ एवं परिभाषा

3.5 उदासीनता वक्रों की विशेषताएँ

3.6 उदासीनता वक्र विश्लेषण द्वारा उपभोक्ता साम्य का विवेचन

3.7 सारांश

3.8 शब्दावली

3.9 स्व-परख प्रश्न

3.10 उपयोगी पुस्तकें

3.1 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन से आप :

* उपभोक्ता व्यवहार के क्रम वाचक दृष्टिकोण के बारे में जान सकेंगे ।
* उदासीनता वक्र का अर्थ और उसकी विशेषताओं के बारे में ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे ।
* उदासीनता वक्र विश्लेषण द्वारा उपभोक्ता के साम्य के बारे में समझ पैदा कर सकेंगे ।

3.2 प्रस्तावना

उदासीनता वक्र विश्लेषण उपभोक्ता व्यवहार के अध्ययन की एक वैकल्पिक विधि है जो मार्शल और उसके समर्थकों द्वारा प्रतिपादित उपभोक्ता व्यवहार के अध्ययन के उपयोगितावादी विश्लेषण पर सुधार का प्रतीक है । इस इकाई में हम उपभोक्ता व्यवहार और उपभोक्ता साम्य का विश्लेषण क्रम वाचक दृष्टिकोण से करेंगे । इसके अलावा, हम इस इकाई में उदासीनता वक्र के अर्थ और उसकी विशेषताओं का भी अध्ययन करेंगे ।

3.3 क्रम वाचक दृष्टिकोण (Ordinal Approach)

उपयोगिता की माप का गणनावाचक दृष्टिकोण उपयोगिता की संख्यात्मक माप करता है, किन्तु इसके ठीक विपरीत उपयोगिता की माप का क्रम वाचक दृष्टिकोण उपयोगिता की गणनावाचक अंकों में माप में विश्वास नहीं करता । इस दृष्टिकोण के अनुसार, विभिन्न वस्तुओं

से प्राप्त उपयोगिता को गणनावाचक अंकों में तो मापा नहीं जा सकता; किन्तु वस्तुओं के महत्त्व के आधार पर यह अवश्य बताया जा सकता है कि 'अमुक वस्तु' शेष वस्तुओं से कम या अधिक उपयोगिता रखती है । दूसरे शब्दों में. विभिन्न वस्तुओं को उपभोक्ता की पसन्दगी के आधार पर एक निश्चित क्रम (Order or Rank) में व्यवस्थित किया जा सकता है । उपभोक्ता द्वारा विभिन्न वस्तुओं को अपने पसन्दगी अधिमान के आधार पर एक निश्चित प्राथमिकता क्रम (Order of Preference) में व्यक्त किये जा सकने के कारण ही उपयोगिता की माप के इस दृष्टिकोण को क्रम वाचक दृष्टिकोण कहते हैं ।

क्रम वाचक दृष्टिकोण की विशेषताएँ. क्रम वाचक दृष्टिकोण की निम्नांकित विशेषताएँ हैं

1. उपयोगिता की गणनावाचक माप न तो संभव है और न ही आवश्यक । निम्नलिखित तर्कों के आधार पर यह दृष्टिकोण उपयोगिता को मापनीय नहीं मानता :

(i) उपयोगिता एक मनोवैज्ञानिक, अमूर्त एवं विषयगत अवधारणा है जिसे किसी भी वस्तुगत पैमाने से मापा नहीं जा सकता है ।

(ii) उपयोगिता व्यक्तिगत, स्थानगत एवं समय गत होने के कारण देश, काल एवं परिस्थितियों के अनुसार परिवर्तित होती रहती है । अत: ऐसे परिवर्तनशील तत्त्व की सही माप करना अत्यन्त कठिन कार्य है ।

(iii) मार्शल द्वारा प्रयुक्त मुद्रारूपी मापदण्ड उपयोगिता को मापने का कोई निश्चित एवं विश्वसनीय आधार नहीं है, क्योंकि मुद्रा के स्वयं के मूल्य में निरन्तर उच्चावचन होते रहते हैं ।

2. विभिन्न वस्तुओं से मिलने वाली उपयोगिता को क्रम वाचक अंकों में व्यक्त किया जा सकता है, जैसे प्रथम, द्वितीय तृतीय चतुर्थ -----आदि । गणित में क्रम वाचक संख्याएँ उन संख्याओं को कहते हैं जिनके क्रम की जानकारी तो होती है, किन्तु उनके निश्चित आकार की नहीं । उदाहरण के लिए - द्वितीय, प्रथम से क्रम में बाद में आता है, किन्तु यह नहीं कहा जा सकता कि यह प्रथम से दुगना है या आधा । क्रम वाचक दृष्टिकोण के आधार पर उपभोक्ता यह बता सकता है कि उसे X वस्तु Y वस्तु से अधिक पसन्द है, किन्तु वह यह नहीं बतला सकता है कि उसे X वस्तु Y वस्तु की तुलना में कितनी अधिक पसन्द है । संक्षेप में कहें, तो क्रम वाचक दृष्टिकोण के अनुसार **उपयोगिता को निश्चित एवं निरपेक्ष संख्या (Definite and Absolute Numbers) में व्यक्त नहीं किया जा सकता है ।**

3. क्रम वाचक दृष्टिकोण उपयोगिता को मापे बिना ही उपभोक्ता व्यवहार का अध्ययन उदासीनता वक्र विश्लेषण विधि के द्वारा करता है ।

4. क्रम वाचक दृष्टिकोण के प्रतिपादक एवं समर्थक अर्थशास्त्रियों को **क्रम वाचक अर्थशास्त्री** कहा जाता है । इन अर्थशास्त्रियों में **प्रो॰ जेOआरOहिक्स** तथा **आर॰जी॰डी0 ऐलन** का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है । **प्रो0 हिक्स** ने 1956 में अपनी रचना "A Revision of Demand Theory" में उदासीनता वक्र विश्लेषण को परिमार्जित और संशोधित रूप में प्रस्तुत किया था ।

3.4 उदासीनता वक्र का अर्थ एवं परिभाषा (Meaning and Definition of Curve)

उदासीनता वक्र का अर्थ एवं परिभाषा जानने के लिए उदासीनता अनुसूची (Indifference Schedule)का ज्ञान होना आवश्यक है । वाटसन के अनुसार, 'राक उदासीनता अनुसूची दो वस्तुओं के संयोगों की सूची है, सूची इस प्रकार व्यवस्थित की गयी है कि उपभोक्ता संयोगों के प्रति उदासीनता रहता है, किसी एक को अन्य की तुलना में पसन्द नहीं करता ।"

("An Indifference Schedule is a list of Combinations of two Commodities, the list being so arranged that a consumer is indifferent to the Combinations, preferring none of any others.")

सरल शब्दों में, एक उदासीनता अनुसूची दो वस्तुओं के उन सभी वैकल्पिक संयोगों को दर्शाती है जिनसे किसी उपभोक्ता को प्रति इकाई समय में समान संतुष्टि मिलती है और इसलिए वह उनके प्रति उदासीन रहता है । उदाहरण के लिए, एक काल्पनिक उदासीनता अनुसूची नीचे दी जा रही है । इस अनुसूची में X तथा Y वस्तु के उन सभी संयोगों को बताया गया है जिनसे एक उपभोक्ता को समान संतुष्टि मिलती है । इसलिए उपभोक्ता अनुसूची के किसी एक संयोग को अन्य संयोगों की तुलना में प्राथमिकता प्रदान नहीं करता है अर्थात् वह उनके प्रति उदासीन रहता है ।

उदासीनता अनुसूची (Indifference Schedule)

संयोग (Combination)	X वस्तु की इकाइयां (Units of X commodity)	Y वस्तु की इकाइयां (Units of Y commodity)	X के लिए Y की सीमांत प्रतिस्थापन दर (MRSxy)	संतुष्टि स्तर
A	1	15	-	सभी संयोगो से समान संतुष्टि प्राप्त होती है।
B	2	10	5y=1x	
C	3	6	4y=1x	
D	4	3	3y=1x	
E	5	1	2y=1x	

यदि हम उपर्युक्त उदासीनता अनुसूची को रेखाचित्र के रूप में निरूपित (चित्रित) कर दें, तो इससे जो वक्र बनेगा, वही उदासीनता वक्र कहलाता है । सरल शब्दों में, **उदासीनता अनुसूची का चित्रीयकरण ही उदासीनता वक्र कहलाता है** । उपर्युक्त उदासीनता अनुसूची के आधार पर खींचे गये उदासीनता वक्र (IC) रेखाचित्र -3.1 को देखने से पता चलता है कि यह X तथा Y वस्तु के समान संतुष्टि प्रदान करने वाले संयोगों को जोड़ने वाला एक बिन्दु-पथ (Locus of Points) है । चूंकि उदासीनता वक्र के प्रत्येक बिन्दु पर प्रदर्शित दो वस्तुओं के संयोगों से समान संतुष्टि

मिलती है, इसलिए इसे **समान संतुष्टि वक्र (ISO-Satisfaction Curve)**अथवा **सम-उपयोगिता वक्र (ISO-Utility Curve)** भी कहते हैं । **प्रो0 जे0 के0 स्मिथ (J.K.Smith)** के शब्दों में, "यह वस्तुओं के उन संयोगों को प्रदर्शित करने वाला मार्ग है जिनके प्रति व्यक्ति उदासीन रहता है, इसलिए इसे उदासीनता वक्र कहते हैं ।"

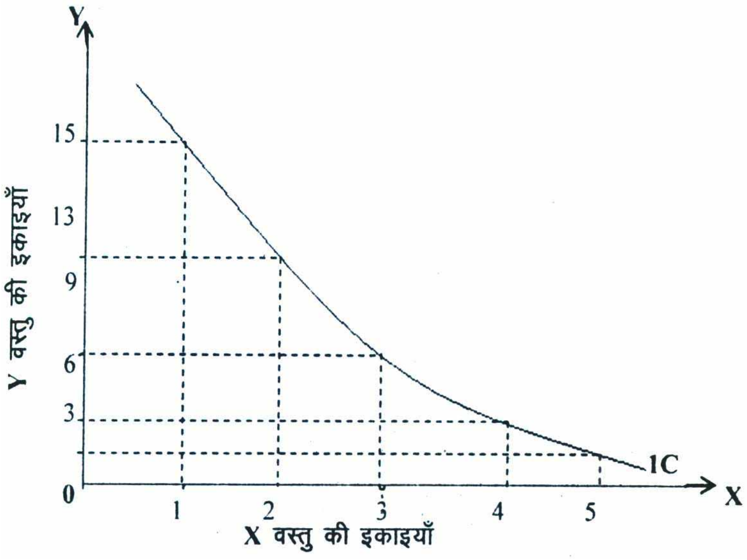

रेखाचित्र –3.1

उदासीनता मानचित्र (Indifferent Map) : उदासीनता मानचित्र अनेक उदासीनता वक्रों का संग्रह है जो एक ही मानचित्र में दर्शाये गये हों । एक उपभोक्ता के उदासीनता मानचित्र में असंख्य उदासीनता वक्र हो सकते है । **प्रो0 मेयर्स उदासीनता वक्र परिवार को उदासीनता मानचित्र कहते हैं** । जैसे-जैसे कोई उदासीनता वक्र मूल (उद्‌गम) बिन्दु से दूर हटता जाता है, वह संतुष्टि के अपेक्षाकृत ऊँचे स्तर और विलोमश: नीचे स्तर का प्रतीक होता है । जैसा कि **रेखाचित्र संख्या 3.2** में दर्शाया गया है कि IC1, IC9 से अधिक संतुष्टि का और IC2 से कम संतुष्टि का प्रतीक है । उदासीनता वक्रों की तुलना भौगोलिक मानचित्र की समोच्च रेखाओं (Contour lines) से की जाती है । जिस प्रकार एक ऊँची समोच्च रेखा समुद्र तल से अधिक, किन्तु समान ऊँचाई वाले स्थानों को दर्शाती है, ठीक उसी प्रकार एक ऊँचा उदासीनता वक्र संतुष्टि के ऊँचे स्तर, किन्तु समान सन्तुष्टि वाले बिन्दुओं (संयोगों) को दर्शाता है । एक ऊँचे उदासीनता वक्र पर उसके नीचे स्थित उदासीनता वक्र अधिक सन्तुष्टि मिलती है क्योंकि उसके सभी बिन्दुओं पर या तो किसी एक वस्तु की मात्रा अधिक होगी या फिर दोनों वस्तुओं की मात्रा अधिक होगी । किन्तु यही ध्यान रहे कि एक उदासीनता वक्र के सभी बिन्दु समान संतुष्टि वाले होते हैं ।

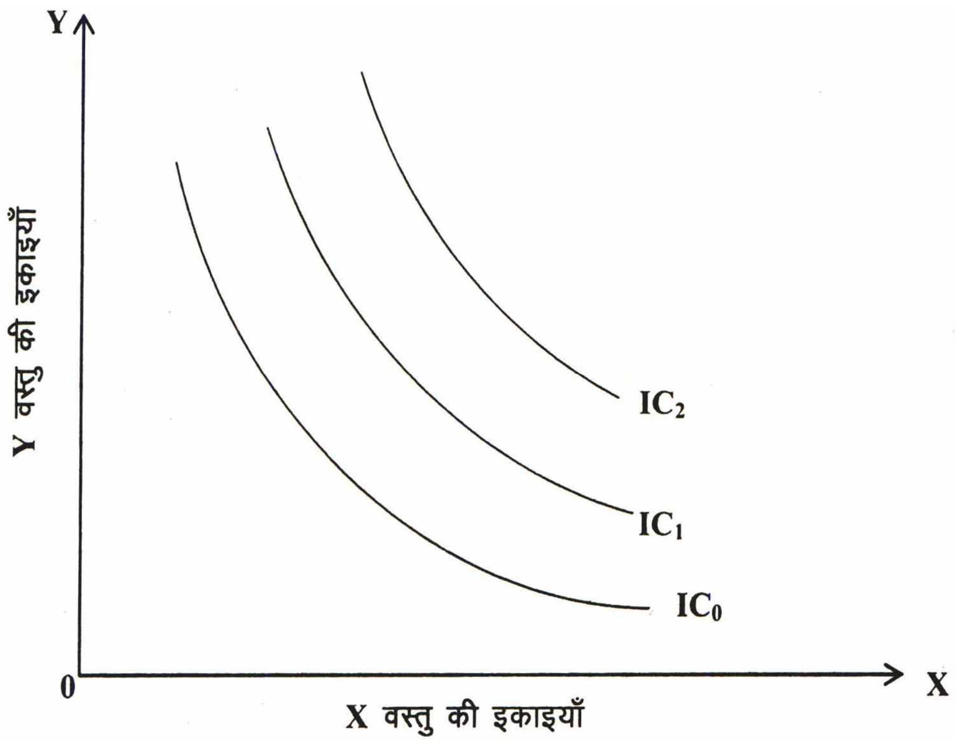

रेखाचित्र–3.2

प्रतिस्थापन की सीमान्त दर (Marginal Rate of Substitution) : उदासीनता वक्र विश्लेषण में प्रतिस्थापन की सीमान्त दर अवधारणा का व्यापक महत्त्व है । इसे बोलचाल की सुविधा की दृष्टि से सीमान्त प्रतिस्थापन दर भी कहते हैं । वस्तुत: यह दर X एवं Y वस्तुओं की वैकल्पिक इकाइयों की पारस्परिक विनिमय दर है । उदाहरण के लिए, Y वस्तु के स्थान पर X वस्तु के प्रतिस्थापन की दर (Marginal Rates of Substitution of X for Y or MRSxy) Y वस्तु की वह मात्रा है जिसे उपभोक्ता X वस्तु की एक अतिरिक्त इकाई प्राप्त करने के लिए त्यागने को तत्पर है । संतुष्टि के पूर्ववत (समान) स्तर पर बने रहने के लिए उपभोक्ता जैसे-जैसे X वस्तु की एक अतिरिक्त इकाई बढ़ाता है, वैसे-वैसे उसे Y वस्तु की मात्रा कम करनी पड़ती है । प्रत्येक अगली बार X वस्तु की समान वृद्धि के लिए Y वस्तु की त्यागी जाने वाली मात्रा क्रमश: घटती जाती है अर्थात् हर बार उपभोक्ता में वस्तु की एक अतिरिक्त इकाई की वृद्धि के लिए X वस्तु की पहले से कम मात्रा का त्याग करना चाहता है । उदाहरण के लिए, उदासीनता अनुसूची में B,C,D तथा E संयोगों में उपभोक्ता X वस्तु की एक अतिरिक्त इकाई की वृद्धि के लिए Y वस्तु की क्रमश: 5,4,3 2 इकाइयों का त्याग करने को तत्पर है । दूसरे शब्दों में, X वस्तु की एक इकाई लगातार Y वस्तु की घटती इकाइयों का प्रतिस्थापन करती है । प्रतिस्थापन की सीमान्त दर की घटती प्रवृत्ति के कारण ही इसे **'प्रतिस्थापन का सामान सीमान्त दर सिद्धान्त (Principal of Diminishing Marginal rate of Substitution) कहते हैं** । इस सिद्धान्त की क्रियाशीलता का कारण मनुष्य का स्वयं का मनोविज्ञान है । उपभोक्ता के पास जैसे -जैसे किसी वस्तु की मात्रा बढ़ती जाती है, वैसे-वैसे

उसकी आवश्यकता की तीव्रता (वस्तु का महत्त्व) घटती जाती है, परिणामस्वरूप उसकी अतिरिक्त इकाइयों से प्राप्त उपयोगिता घटती जाती है । इसके विपरीत. उपभोक्ता के पास जिस वस्तु की मात्रा घटती जाती है, वैसे-वैसे उसकी आवश्यकता की तीव्रता बढती जाती है जिसके परिणामस्वरूप उस वस्तु की शेष बची इकाइयों की उपयोगिता बढ जाती है । दो वस्तुओं के संयोग में जिस वस्तु की मात्रा बढ़ती है, उसका दूसरी वस्तु के सन्दर्भ में सीमान्त महत्व (Marginal Significance) घटता जाता है । यही कारण है कि X वस्तु की समान वृद्धि के लिए उपभोक्ता वस्तु का क्रमश: पहले से कम त्याग करने को तैयार होता है ।

प्रतिस्थापन की घटती सीमान्त दर को **रेखाचित्र- 3.3** के. द्‌वारा आसानी से समझा जा सकता है । रेखागणितीय भाषा में उदासीनता वक्र के किसी बिन्दु विशेष पर प्रतिस्थापन की सीमान्त दर उस वक्र के ढाल (Slope of IC) का परिचायक होती है । उपभोक्ता जब उदासीनता वक्र पर दायीं ओर नीचे के बिन्दु पर जाता है, तो MRSxy, गिरती हुई होती है । रेखाचित्र में उपभोक्ता जब A से B,C,D, तथा E बिन्दु की ओर जाता है, तो MRS xy क्रमश: गिरती हुई है जिसे इस प्रकार व्यक्त किया जा सकता है

AF>BG>CH>DJ

इस प्रकार उदासीनता वक्र के A से B बिन्दु पर जाने पर MRSxy AF है, जबकि B से C बिन्दु पर जाने से यह BG ही रह जाती है जो मह से कम है और आगे यह D व E बिन्दु पर. क्रमश: गिर कर CH व DJ रह जाती है ।

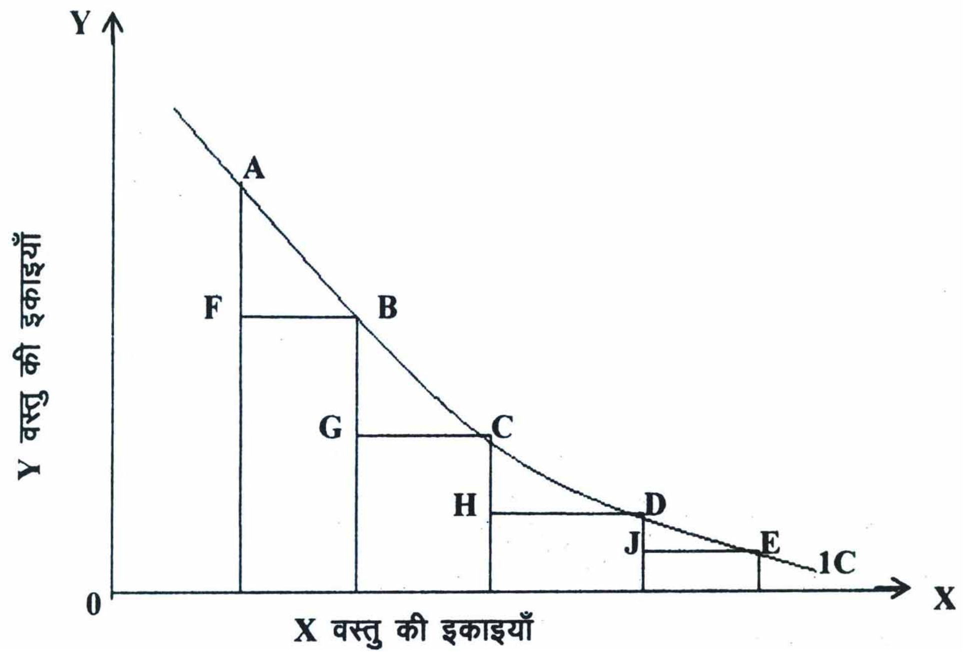

रेखाचित्र–3.3

उदासीनता वक्र विश्लेषण की प्रमुख मान्यताएँ (Main Assumptions of Indifference Curve Analysis):

1. उपभोक्ता का व्यवहार विवेकशील होता है और उसका उद्देश्य अपनी सीमित आय से अधिकतम संतुष्टि प्राप्त करना है ।
2. उपयोगिता की संख्यात्मक (गणनावाचक) माप संभव नहीं है, किन्तु उसकी क्रम वाचक (Ordinal) अभिव्यक्ति की जा सकती है ।
3. विश्लेषण की सरलता के लिए यह मान लिया गया है कि उपभोक्ता केवल दो वस्तुओं (X एवं Y) के वैकल्पिक संयोग लेता है । उपभोक्ता अधिकतम संतुष्टि प्रदान करने वाले संयोग को सबसे पहले खरीदना चाहेगा और क्रमश: अन्य को ।
4. विचाराधीन दोनों वस्तुओं की बाजार कीमतें विश्लेषण अवधि में दी हुई एवं स्थिर रहती हैं और इनकी पूर्ण जानकारी उपभोक्ता को होती है ।
5. उपभोक्ता के पास दोनों वस्तुओं में से किसी की भी इतनी ज्यादा मात्रा नहीं है कि उनसे उसकी आवश्यकता पूर्णत: संतुष्ट हो चुकी हो अर्थात् उपभोक्ता किसी भी वस्तु के उपभोग से पूर्णत: संतुष्ट नहीं होता है ।
6. उपभोक्ता की उदासीनता तथा पसन्दगी अधिमान दोनों संगति पूर्ण (Transitive) हैं । उदाहरण के लिए, जब उपभोक्ता A तथा B और B तथा C संयोगों के बीच उदासीन है, तो वह आवश्यक रूप से तथा संयोगों के बीच भी उदासीन रहेगा ।

3.5 उदासीनता वक्रों की विशेषताएँ (Characteristics of Indifference)

तटस्थता वक्रों की निम्नांकित विशेषताएँ होती हैं :

1. **उदासीनता वक्र दायीं ओर नीचे की तरफ झुकते हुए होते हैं (Indifference Curves Slope):** उदासीनता वक्र बायें से दायीं ओर नीचे की तरफ झुकते हुए होते हैं अर्थात् उदासीनता वक्रों का ढाल ऋणात्मक होता है क्योंकि सन्तुष्टि-स्तर को समान रखने के लिए उपभोक्ता जैसे-जैसे एक वस्तु (X) की मात्रा बढ़ाता है, तो उसे दूसरी वस्तु (Y) की मात्रा घटानी पड़ती है, अन्यथा वह दोनों वस्तुओं के सभी संयोगों (बिन्दुओं) के प्रति उदासीन नहीं रह सकेगा । हम यह पहले ही जान चुके हैं कि उदासीनता वक्र के सभी बिन्दु समान सन्तुष्टि प्रदान करते हैं । **रेखाचित्र 3.1** इस बात को दर्शाता है ।

उदासीनता वक्र बायें से दाहिनी ओर ऊपर उठते हुए नहीं होते हैं अर्थात् उनका ढाल धनात्मक नहीं होता है । ये OX अक्ष के समानान्तर/क्षैतिज (Horizontal) भी नहीं होते और न ही OX अक्ष के समानान्तर/अनुलम्ब (Vertical) होते हैं । उपर्युक्त तीनों प्रकार के तटस्थता वक्रों को रेखाचित्र 3.4 में दर्शाया गया है जो इस बात को बताते हैं कि इनके A तथा B संयोगों से उपभोक्ता को समान संतुष्टि नहीं मिलती क्योंकि यही एक वस्तु की मात्रा में व द्धि के साथ दूसरी वस्तु की मात्रा नहीं घटती है ।

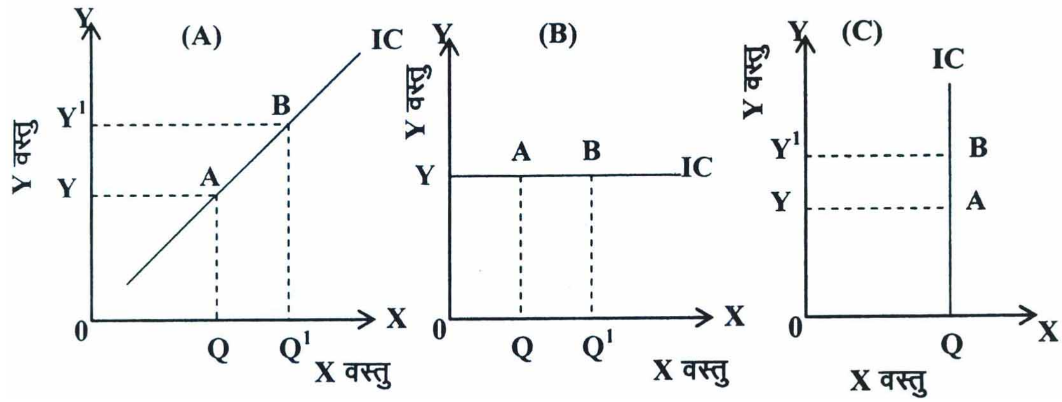

रेखाचित्र –3.4

2. **उदासीनता वक्र मूल बिन्दु की ओर उन्नतोदर होते हैं (Indifference Curves are Convex to the Origin)** उदासीनता वक्र अपने उद्गम बिन्दु की ओर उन्नतोदर (उत्तल) होते हैं अर्थात् उदासीनता वक्र का ऊपरी (बायॉ) भाग सापेक्षिक रूप से ढालू और निचला (दायाँ) भाग सापेक्षिक रूप से समतल होता है । दूसरे शब्दों में बायीं ओर से दायीं ओर उदासीनता वक्र का ढाल कम होता जाता है । इसका मुख्य कारण घटती प्रतिस्थापन की सीमान्त दर है । **रेखाचित्र 3.1** को देखें, तो आप पायेंगे कि MRSxy जो पहले 5 थी, वह क्रमशः गिरगर 4,3 व 2 हो जाती है । तकनीकी दृष्टि से उदासीनता वक्र की उन्नतोदरता (Convexity) दोनों वस्तुओं की स्थानापन्नता पर निर्भर करती है । दोनों वस्तुएँ एक दूसरे की जितनी निकट स्थानापन्न होती हैं, उदासीनता वक्र की उन्नतोदरता उतनी ही कम एवं विलोमशः अधिक होती है ।

कुछ स्थितियों में तटस्थता वक्र मूल बिन्दु के प्रति उन्नतोदर न होकर भिन्न आकृति का हो सकता है । उदाहरण के लिए, अगर दो वस्तुएँ एक दूसरे की पूर्ण स्थानापन्न हैं, तो उदासीनता वक्र दोनों अक्षों को मिलाने वाली एक सीधी रेखा होती है । इसका कारण यह है कि दोनों वस्तुओं के बीच पूर्ण स्थानापन्नता होने के कारण प्रतिस्थापन की सीमान्त दर (MRS) समान एवं स्थिर रहती है। रेखाचित्र संख्या 3.5 दर्शाता है की सभी बिन्दुओं पर MRS_{xy} समान (AG = BH = CJ = DK) है।

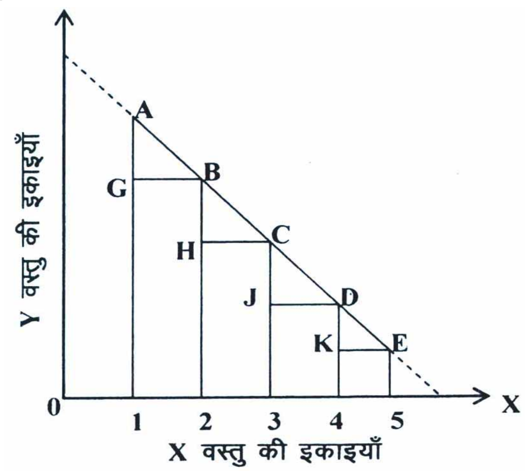

रेखाचित्र –3.5

यदि दो वस्तुएँ एक दूसरे की पूर्ण पूरक हैं, तो उदासीनता वक्र का ढ़ाल अंग्रेजी वर्णमाला के 'L' अक्षर के आकार का होता है । पूर्ण पूरक वस्तुएँ एक निश्चित अनुपात (1:1) में ही काम में ली जाती हैं । **रेखाचित्र संख्या 3.6** इस बात को परिलक्षित करता है ।

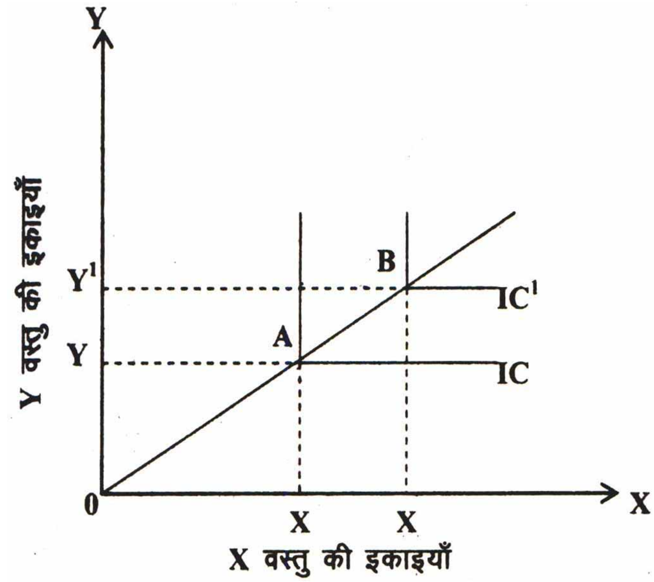

रेखाचित्र –3.6

3. **उदासीनता वक्र न तो एक दूसरे को छूते हैं और न ही काटते हैं (Indifference Curves neither touch nor interest each other) :** उदासीनता वक्र नदी के दो किनारों की भाँति होते हैं जो आपस में कभी एक दूसरे से नहीं मिलते । उदासीनता वक्र न तो एक दूसरे को स्पर्श करते हैं और न ही एक दूसरे को काटते हैं । यदि दो उदासीनता वक्र परस्पर एक दूसरे को काटते हैं, तो इससे उनकी **संक्राम्यता की मान्यता भंग हो जाती है** । दो उदासीनता वक्रों के काटने के बिन्दु पर दोनों उदासीनता वक्र समान संतुष्टि प्रदर्शित करते हैं, जो असंभव है क्योंकि दो उदासीनता वक्र अलग-अलग संतुष्टि को प्रदर्शित करने वाले वक्र होते हैं । **रेखाचित्र संख्या 3.**7 इसी विरोधाभास की स्थिति को दर्शाता है । चित्र में IC पर उपभोक्ता A व B संयोगों के बीच तटस्थ है तथा इसी प्रकार IC1 पर वह A तथा C संयोगों के बीच तटस्थ है क्योंकि चित्रानुसार A = B एवं A= C है, अत: B =C होना चाहिए अर्थात् उपभोक्ता को B तथा C संयोगों के बीच तटस्थ होना चाहिए; किन्तु वास्तव में ऐसा होना संभव नहीं है । कोई भी उपभोक्ता B संयोग की तुलना में C संयोग को ही पसन्द करेगा क्योंकि इसमें Y वस्तु की Y1Y2 मात्रा अधिक है; जबकि X की समान । अत: यह सार निकलता है कि उदासीनता वक्र एक दूसरे को नहीं काटते ।

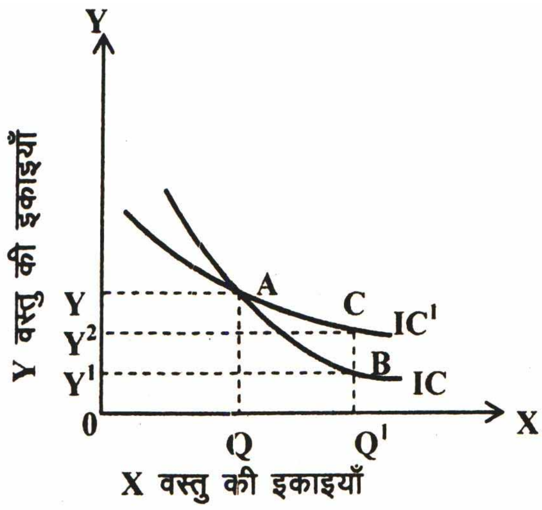

रेखाचित्र 3.7

उदासीनता वक्रों की उपर्युक्त तीन विशेषताएँ इनके आधारभूत लक्षण हैं । इनके अलावा इनकी निम्नांकित विशेषताएँ भी बतायी जाती हैं

4. **उदासीनता वक्र किसी भी अक्ष को स्पर्श नहीं कर सकता (An Indifference Curve Cannot touch either axis) :** तकनीकी दृष्टि से एक उदासीनता वक्र दोनों में से किसी भी अक्ष को नहीं छू सकता क्योंकि यदि यह किसी भी अक्ष को छू लेता है, तो दो वस्तुओं के संयोग की मान्यता ही समाप्त हो जाती है । जैसा कि **रेखाचित्र संख्या 3.8** में प्रदर्शित किया गया है कि यदि IC A बिन्दु पर OX अक्ष को स्पर्श करता है, तो यही A संयोग में Y वस्तु की मात्रा शून्य हो जाती है । इसी प्रकार IC1 B बिन्दु पर OY अक्ष को छू लेता है तो यही B संयोग में X वस्तु की मात्रा शून्य होती है । ऐसी स्थिति में A तथा B संयोगों को एक ही वस्तु होने के कारण संयोग नहीं कहा जा सकता ।

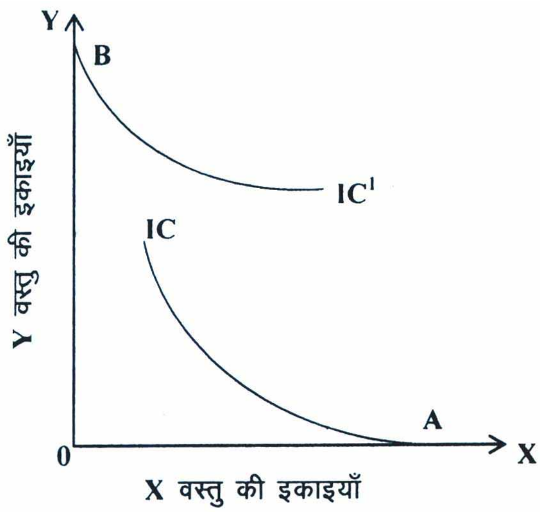

रेखाचित्र 3.8

5. **उदासीनता वक्रों का परस्पर समानान्तर होना आवश्यक नहीं है (Indifference Curves are not necessarily parallel to each other):** जिस प्रकार किसी नदी के दोनों किनारे उसकी सम्पूर्ण लम्बाई में समानान्तर नही होते, ठीक वैसे ही दो उदासीनता वक्रों का परस्पर समानान्तर होना आवश्यक नहीं है । इसका कारण यह है कि सभी उदासीनता वक्रों में प्रतिस्थापन की सीमान्त दर (MRS) समान होना आवश्यक नहीं है । विभिन्न उदासीनता वक्रों की प्रतिस्थापन की सीमान्त दर भिन्न-भिन्न हो सकती है जिसके कारण ये परस्पर समानान्तर नहीं होते हैं । **रेखाचित्र संख्या 3.9** यही बात प्रदर्शित करता है कि IC तथा IC1 परस्पर समानान्तर नहीं हैं ।

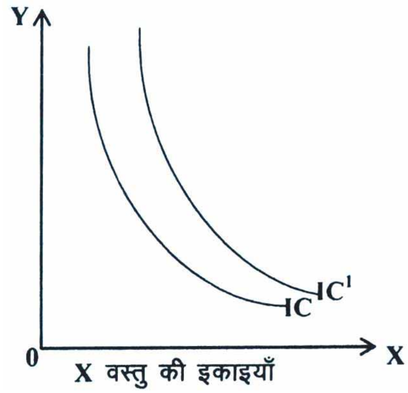

रेखाचित्र 3.9

6. **एक उदासीनता वक्र के दायीं ओर स्थित कोई भी उदासीनता वक्र संतुष्टि का अपेक्षाकृत ऊँचा स्तर और दोनों वस्तुओं के श्रेष्ठ संयोग को व्यक्त करता है (Any Indifference curve right to an Indifference curve represents a higher level of satisfaction and preferably better combination of two goods) :** इसका प्रमुख कारण यह है कि किसी भी उदासीनता वक्र के दायीं ओर स्थित ऊँचा उदासीनता वक्र वस्तुओं क ऐसे संयोगों को बताता है जिनमें किसी एक अथवा दोनों वस्तुओं की अधिक मात्रा होती है । इस बात को **रेखाचित्र संख्या 3.10** से आसानी से समझा जा सकता है । चित्रानुसार 1C पर स्थित A व B बिन्दु के प्रति उपभोक्ता तटस्थ रहता है क्योंकि ये दोनों संयोग एक ही उदासीनता वक्र पर स्थित होने के कारण समान संतुष्टि के प्रतीक हैं। C बिन्दु 1C के दायीं ओर एक ऊँचे उदासीनता वक्र 1C1 पर स्थित होने के कारण द्रव A व B बिन्दु की तुलना में अपेक्षाकृत सन्तुष्टि के ऊँचे स्तर का प्रतीक है, इसलिए उपभोक्ता का पसन्दगी अधिमान इसके प्रति अधिक होगा। IC1 पर स्थित C संयोग में 1C पर स्थित A संयोग की तुलना X वस्तु की AC मात्रा अधिक है और B संयोग की तुलना में Y वस्तु की BC मात्रा अधिक है। इसी प्रकार मूल उदासीनता वक्र के बायीं ओर स्थित कोई उदासीनता वक्र संतुष्टि के नीचे स्तर का प्रतीक होता है । ऐसे उदासीनता वक्र के किसी भी बिन्दु पर दोनों वस्तुओं में से किसी एक अथवा दोनों वस्तुओं की मात्रा कम होती है।

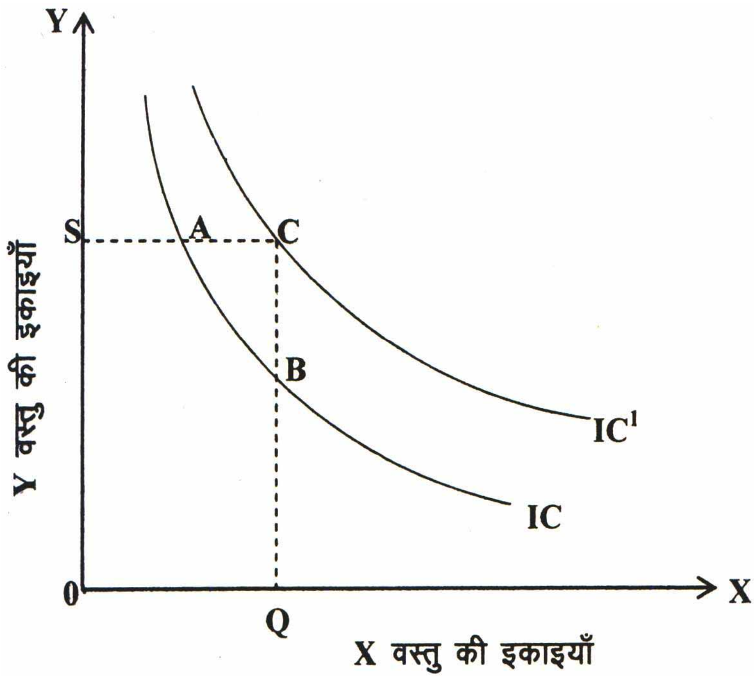

रेखाचित्र 3.10

7. **उपभोक्ता के उदासीनता मानचित्र में असंख्य उदासीनता वक्र हो सकते हैं (Consumer's Indifference Map may have Indifference Curves):** एक उपभोक्ता अपने लिए दो वस्तुओं के अनेक संयोग बना सकता है जिसके कारण उसके उदासीनता मानचित्र में अनेक/असंख्य उदासीनता वक्र हो सकते हैं (A consumer may have series of indifference curves as per his choice) ।

8. **एक उदासीनता वक्र पर स्थित सभी बिन्दु समान सन्तुष्टि को प्रकट करते हैं (All points on an Indifference Curve represent equal satisfaction) :** जैसा कि उदासीनता वक्र के अर्थ एवं परिभाषा को स्पष्ट करते हुए पहले ही बताया चुका है कि एक उदासीनता वक्र पर स्थित सभी बिन्दु समान संतुष्टि प्रदान करने वाले दो वस्तुओं के संयोगों को व्यक्त करते हैं । इसी कारण इन्हें समान संतुष्टि वक्र (Iso-satisfaction curve) भी कहते हैं ।

9. **उदासीनता वक्र मूलत: अण्डाकार होते हैं (Indifference Curves are Basically Eleptle)**: उदासीनता वक्र सिद्धान्त: अपने सर्वांगीण रूप में अण्डाकार होते हैं, किन्तु प्राय: रेखाचित्र में इनके केवल उसी भाग को दिखाया जाता है जिसका ढ़ाल ऋणात्मक होता है और जो मूल बिन्दु के प्रति उन्नतोदर होता है । सिद्धान्त रूप में उदासीनता वक्र के अण्डाकार होने का यह कारण है कि जब एक सीमा के पश्चात् किसी वस्तु की अधिक मात्रा प्रयोग करने पर उससे ऋणात्मक संतुष्टि (Negative Satisfaction) मिलती है, तो उसकी क्षतिपूर्ति के लिए अर्थात् संतुष्टि समान स्तर पर बने रहने के लिए उपभोक्ता को दूसरी वस्तु की भी मात्रा बढ़ानी पडती है, जो वस्तुत: अव्यावहारिक स्थिति है । इस स्थिति को **रेखाचित्र संख्या 3.11** में दर्शाया गया है।

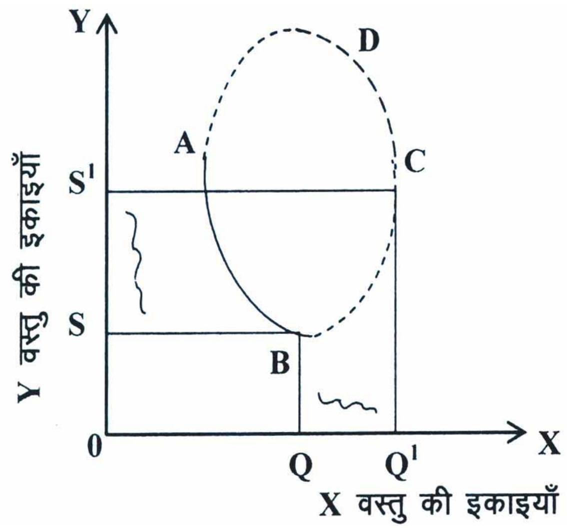

रेखाचित्र – 3.11

चित्रानुसार उपभोक्ता को B बिन्दु पर X वस्तु की शून्य सीमान्त संतुष्टि प्राप्त होती है और इसके पश्चात् यदि वह इस वस्तु की मात्रा बढ़ाता है, तो उसे ऋणात्मक संतुष्टि प्राप्त होगी। इसलिए वह इस ऋणात्मक संतुष्टि की क्षतिपूर्ति हेतु Y वस्तु की मात्रा तब तक बढाता रहेगा जब तक की उसे पूर्ववत संतुष्टि प्राप्त नहीं हो जाती । इससे यह स्पष्ट है कि B बिन्दु के पश्चात् उपभोक्ता को समान सन्तुष्टि प्राप्ति हेतु X वस्तु में वृद्धि के साथ-साथ Y वस्तु की मात्रा भी बढानी पड़ती है । चित्रानुसार C बिन्दु पर X व Y दोनों वस्तुओं की मात्रा B बिन्दु से अधिक है। X वस्तु की QQ1 मात्रा तथा Y वस्तु की SS1 मात्रा अधिक है ।

3.6 उदासीनता वक्र विश्लेषण द्‌वारा उपभोक्ता साम्य का विवेचन (Explanation of Consumer’s Equilibrium Through Indifference Curve Analysis)

प्रो0 मार्शल ने उपयोगिता विश्लेषण द्‌वारा उपभोक्ता साम्य की विवेचना की है । मार्शल के गणनावाचक दृष्टिकोण के अन्तर्गत एक उपभोक्ता सम-सीमान्त उपयोगिता नियम का पालन करके अपनी सीमित आय को विभिन्न वस्तुओ पर खर्च कर अधिकतम सन्तुष्टि प्राप्त कर सकता है । उपयोगिता विश्लेषण उपयोगिता को मापनीय मानकर चलता है । इसके विपरीत क्रम वाचक दृष्टिकोण अनेक कारणों की वजह से उपयोगिता को मापनीय नहीं मानता और न ही उपयोगिता को मापने की आवश्यकता महसूस करता है । हाँ, यह इतना अवश्य मानकर चलता है कि विभिन्न वस्तुओं से प्राप्त उपयोगिता को एक निश्चित क्रम में व्यक्त किया जा सकता है । उदासीनता वक्र विश्लेषण के अन्तर्गत उपभोक्ता साम्य का विवेचन क्रम वाचक दृष्टिकोण पर आधारित है । इससे पूर्व की इकाई में यह स्पष्ट किया जा चुका है कि उपभोक्ता संतुलन की स्थिति में तब होता है जब वह अपनी दी हुई आय को विभिन्न वस्तुओं पर इस प्रकार व्यय करें कि उसका संतुष्टि का स्तर अधिकतम हो । उदासीनता वक्र विश्लेषण के अन्तर्गत एक उपभोक्ता उस समय संतुलन की स्थिति में होता है, जब वह, वस्तुओं के प्रति रूचियों व उनकी कीमतों के

स्थिर रहने पर, अपनी निश्चित आय को इस प्रकार व्यय करता है कि उससे उसे अधिकतम संतुष्टि मिल रही होती है ।

उपभोक्ता संतुलन की मान्यताएँ (Assumptions of Consumer's Equilibrium) : उदासीनता वक्र विश्लेषण विधि के अन्तर्गत उपभोक्ता साम्य अग्रांकित मान्यताओं पर आधारित है.

1. उपभोक्ता के पास एक उदासीनता मानचित्र होता है जो उसके दो वस्तुओं के विभिन्न संयोगों के प्रति पसन्दगी क्रम को प्रदर्शित करता हैं ।
2. किसी समय विशेष में उपभोक्ता के पास दो वस्तुओं पर व्यय की जाने वाली आय सीमित और निश्चित है और वह अपनी सम्पूर्ण आय को दोनों वस्तुओं पर ही खर्च करता है ।
3. विश्लेषण की अवधि में वस्तुओं के मूल्य स्थिर एवं निश्चित हैं तथा उपभोक्ता को उनकी पूर्ण जानकारी है।
4. प्रत्येक वस्तु की सभी इकाइयाँ समरूप तथा विभाज्य हैं ।
5. विश्लेषण की अवधि में उपभोक्ता की रूचियों एवं आदतों में परिवर्तन नहीं होता है ।
6. उपभोक्ता विवेकशील है अर्थात वह अपनी सीमित आय को बुद्धिमतापूर्ण ढंग से व्यय करके अधिकतम संतुष्टि प्राप्त करना चाहता है ।

उपभोक्ता संतुलन की शर्तें (Conditions of Consumer's Equilibrium) : उदासीनता वक्र विश्लेषण के द्वारा उपभोक्ता उस समय साम्य की स्थिति में होता है, जब निम्नांकित तीन शर्तें पूरी होती हों :

1. सन्तुलन बिन्दु पर बजट रेखा उदासीनता वक्र की स्पर्श रेखा (Tangent) हो,
2. सन्तुलन बिन्दु पर बजट रेखा तथा उदासीनता वक्र का ढाल समान हो; तथा
3. सन्तुलन बिन्दु पर उदासीनता वक्र मूल बिन्दु की ओर उन्नतोदर हो अर्थात् सन्तुलन बिन्दु पर प्रतिस्थापन की सीमान्त दर (MRS) घटती हुई हो ।

उपभोक्ता साम्य की उपर्युक्त तीनों शर्तों की विस्तृता व्याख्या एवं स्पष्टीकरण क्रमशः इस प्रकार है:

1. **संतुलन बिन्दु पर बजट रेखा उदासीनता वक्र की स्पर्श रेखा हो (The Budget Line Should be tangent to the Indifference Curve at the point of Equilibrium) :** उपभोक्ता साम्य की स्थिति में उस बिन्दु पर होगा जहाँ बजट रेखा उदासीनता वक्र की स्पर्श रेखा होगी अर्थात सन्तुलन बिन्दु पर उपभोक्ता की बजट रेखा उदासीनता वक्र को स्पर्श करती हुई होनी चाहिए ।

बजट रेखा : यह रेखा दो वस्तुओं के उन विभिन्न संयोगों को दर्शाती है जो एक उपभोक्ता दोनों वस्तुओं की दी हुई कीमतों पर अपनी निश्चित आय को व्यय करके प्राप्त कर सकता है । दूसरे शब्दों में, बजट रेखा उपभोक्ता की दी हुई निश्चित आय को दोनों वस्तुओं पर उनकी प्रचलित निश्चित कीमतों पर व्यय करने की सभी संभावनाओं एवं अनुपात को व्यक्त करती है । अतः यह दोनों वस्तुओं की दी हुई कीमतों पर उपभोक्ता की दी गई आय से **प्राप्य**

सभी संयोगों (Attainable Combinations) को बताने वाली रेखा होती है । बजट रेखा को **कीमत रेखा, व्यय रेखा, कीमत अवसर रेखा, उपभोग संभावना रेखा** अथवा **कीमत-आय रेखा** के नाम से भी जाना जाता है । **रेखाचित्र संख्या-3.12** में AB एक काल्पनिक बजट रेखा है । इससे यह पता चलता है कि यदि उपभोक्ता अपनी सम्पूर्ण आय को X वस्तु पर खर्च करे, तो उसे X वस्तु की अधिकतम OB मात्रा प्राप्त हो सकती है । यदि वह अपनी सम्पूर्ण आय को Y वस्तु पर खर्च करें, तो उसे Y वस्तु की अधिकतम OA मात्रा मिलेगी । किन्तु उपभोक्ता अपनी आय को किसी एक वस्तु पर व्यय करने के बजाय दोनों वस्तुओं पर ही व्यय करता है । उदाहरण के लिए, उपभोक्ता C बिन्दु पर अपनी सम्पूर्ण आय को व्यय करके X की OB1 मात्रा तथा Y की OA1 मात्रा क्रय कर सकता है और इसी प्रकार वह दोनों वस्तुओं के अन्य संयोगों को प्राप्त कर सकता है । यहाँ यह बात ध्यान देने योग्य है कि बजट रेखा के भीतर तथा उस पर स्थित सभी संयोग प्राप्य - संयोग होते हैं और इसके ऊपर स्थित सभी संयोग अप्राप्य संयोग होते हैं क्योंकि उनको उपभोक्ता अपनी दी हुई आय से वस्तुओं की प्रचलित कीमतों पर क्रय नहीं कर सकता ।

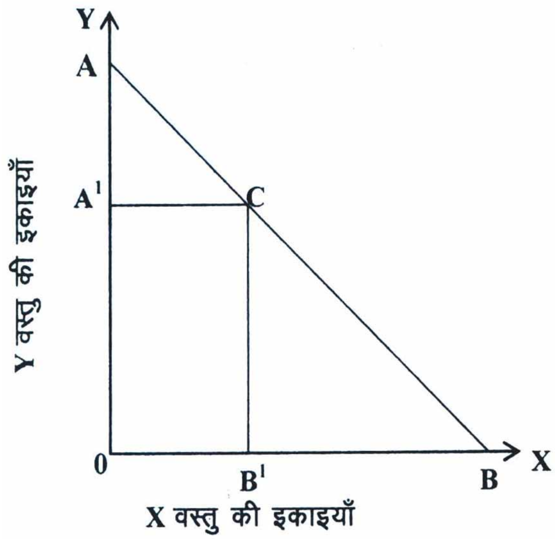

रेखाचित्र संख्या 3.12

रेखाचित्र संख्या 3.13 में AB बजट रेखा है जो इस मान्यता पर खींची गयी है कि उपभोक्ता की व्यय योग्य आय 100 रू0 है तथा X वस्तु की बाजार कीमत 5रू0 प्रति इकाई तथा Y वस्तु की बाजार कीमत 10 रू0 प्रति इकाई है । उदासीनता वक्र IC बजट रेखा को C एवं D बिन्दुओं पर काटता है, किन्तु इन बिन्दुओं पर उपभोक्ता साम्य की स्थिति में नहीं होता है क्योंकि इन बिन्दुओं पर बजट रेखा उदासीनता वक्र IC की स्पर्श रेखा नहीं है । उक्त चित्र में बजट रेखा उदासीनता वक्र IC1 को E बिन्दु पर स्पर्श करती है, जहाँ वह X वस्तु की 10 इकाइयाँ तथा Y वस्तु की 5 इकाइयाँ क्रय करके अपनी सम्पूर्ण आय को व्यय कर देता है । IC1 पर स्थित E बिन्दु ही उपभोक्ता का साम्य बिन्दु है जहाँ उसे अधिकतम संतुष्टि प्राप्त होती है । C व D बिन्दुओं की तुलना में E बिन्दु ऊँचे उदासीनता वक्र पर स्थित होने के कारण अधिक संतुष्टि का प्रतीक है । चित्र में F बिन्दु IC1 से ऊँचे उदासीनता वक्र IC2 पर स्थित है, अत:

अपेक्षाकृत अधिक संतुष्टि का प्रतीक तो है, किन्तु वह बजट रेखा के बाहर होने के कारण अप्राप्य संयोग है, जिसे उपभोक्ता अपनी दी हुई आय तथा X व Y वस्तुओं की दी हुई कीमतों पर क्रय कर पाने में असमर्थ है ।

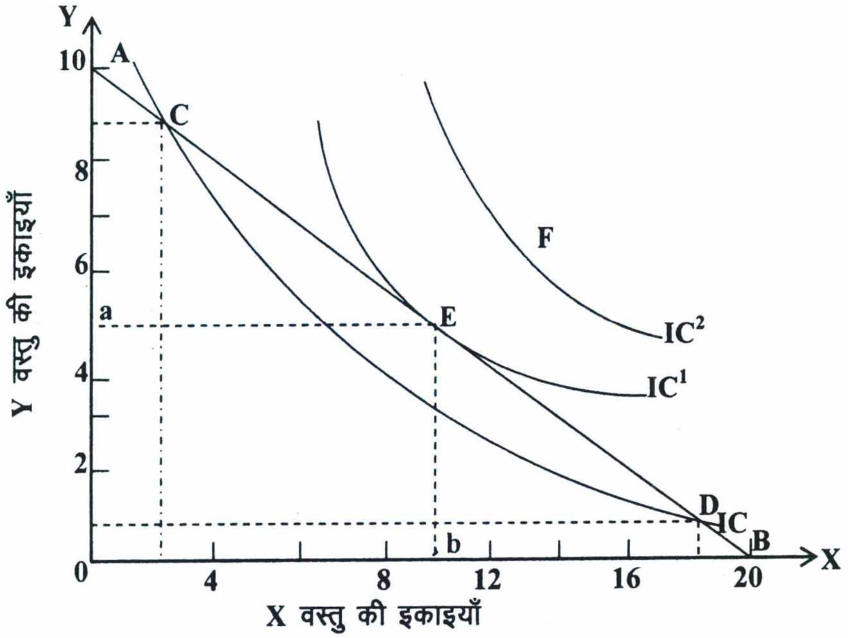

रेखाचित्र 3.13

2. **संतुलन बिन्दु पर बजट रेखा और उदासीनता वक्र का ढाल समान हो (The Slope of Budget Line and Indifference curve should be the same at the point of equilibrium)** उपभोक्ता संतुलन की इस दूसरी शर्त का आशय यह है कि उपभोक्ता के संतुलन बिन्दु पर **दोनों वस्तुओं के बीच की प्रतिस्थापन की सीमान्त दर तथा दोनों वस्तुओं का कीमत अनुपात समान होना चाहिए । रेखाचित्र 3.1**3 में IC1 के E बिन्दु पर X तथा Y वस्तुओं के बीच प्रतिस्थापन की सीमान्त दर (MRSxy) तथा इन दोनों वस्तुओं का कीमत अनुपात (Price ratio of X and Y) समान है । अत: यहाँ उपभोक्ता संतुलन की दूसरी शर्त भी पूरी हो जाती है अर्थात् E बिन्दु पर बजट रेखा (AB) का ढाल तथा उदासीनता वक्र (IC1) का ढाल समान है ।

AB बजट रेखा का ढाल X व Y वस्तुओं की कीमतों के अनुपात का सूचक है । AB ल रेखा का ढाल $\frac{\text{लम्ब(Perpendicular)}}{\text{आधार(Base)}}$ द्वारा ज्ञात किया जा सकता है । अत: AB बजट ढाल $\frac{OA}{OB}$ है । यहाँ OA से अभिप्राय $\frac{I}{P_y}$ से तथा OB से अभिप्राय $\frac{I}{P_X}$ से है । AB रेखा का ढ़ाल = $\frac{I}{P_y} \Big/ \frac{I}{P_x}$ अथवा $\frac{I}{P_y} \times \frac{P_x}{I}$ अथवा $\frac{P_X}{P_Y}$ है । यहाँ I उपभोक्ता की आय है, Px तथा Py X तथा Y वस्तु की कीमत है । उदासीनता वक्र का ढाल वस्तुओं के मध्य प्रतिस्थापन की सीमान्त

दर (MRS) को प्रकट करता है । चित्र में E बिन्दु पर उदासीनता वक्र IC^1 का ढाल MRSxy= $\frac{\Delta y}{\Delta x}$ है जो बजट रेखा के ढाल $\frac{P_X}{P_Y}$ के बराबर है ।

सूत्र रूप में.

$$\frac{P_x}{P_y} = MRS_{XY}\left[\frac{\Delta y}{\Delta x}\right]$$

3. **संतुलन बिन्दु पर उदासीनता वक्र मूल बिन्दु की तरफ उन्नतोदर हो (Indifference curve should be convex to the origin at the point of equilibrium) :** उपभोक्ता के स्थायी साम्य के लिए यह आवश्यक है कि सन्तुलन बिन्दु पर उदासीनता वक्र अपने मूल बिन्दु की ओर उन्नतोदर होना चाहिए अर्थात प्रतिस्थापन की सीमान्त दर घटती हुई होनी चाहिए । दूसरे शब्दों में X वस्तु की Y वस्तु के लिए प्रतिस्थापन की सीमान्त दर (MRS xy) घटती हुई होनी चाहिए । यदि संतुलन बिन्दु पर उदासीनता वक्र मूल बिन्दु की तरफ उन्नतोदर दर न होकर नतोदर है, तो संतुलन की दोनों शर्तें पूरी होने के पश्चात भी उपभोक्ता स्थायी संतुलन की स्थिति में नहीं होगा - जैसा कि **रेखाचित्र संख्या 3.14** में उदासीनता वक्र IC के C बिन्दु से स्पष्ट है । उपभोक्ता का स्थायी संतुलन बिन्दु उदासीनता वक्र IC1 का E बिन्दु है जहाँ उपभोक्ता साम्य की तीनों शर्तें एक साथ पूरी होती है ।

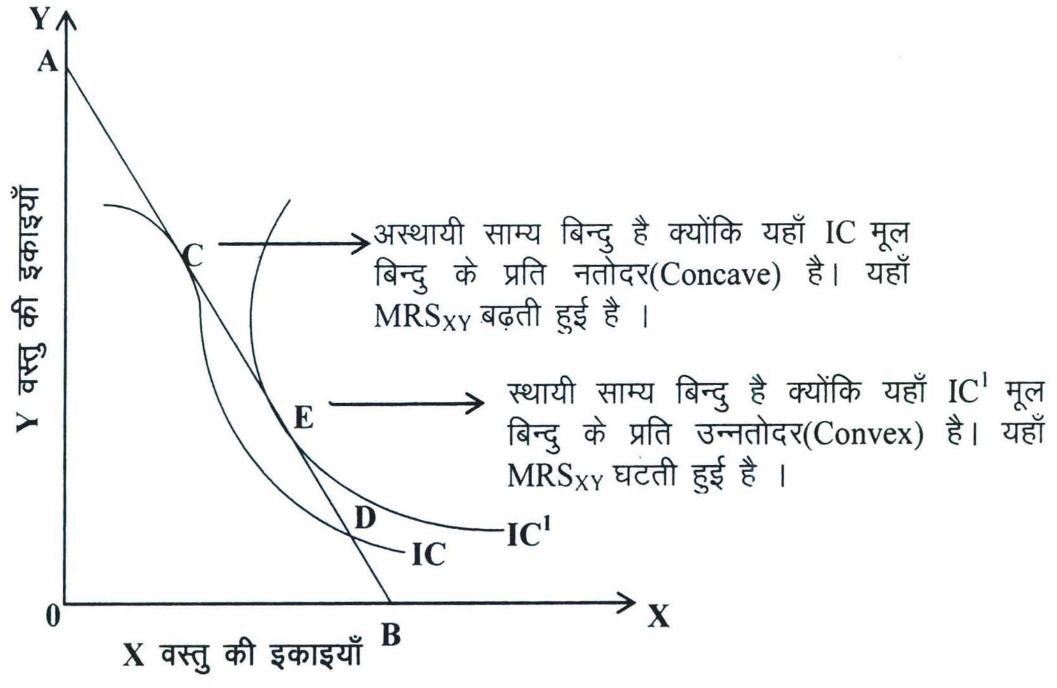

रेखाचित्र संख्या 3.14

3.7 सारांश (Summary)

उदासीनता वक्र विश्लेषण उपभोक्ता व्यवहार के अध्ययन की एक वैकल्पिक विधि है, जो उपयोगिता की माप के क्रम वाचक दृष्टिकोण पर आधारित है । क्रम वाचक दृष्टिकोण न तो उपयोगिता की संख्यात्मक माप में विश्वास करता है और न ही इसकी आवश्यकता महसूस करता है । इस दृष्टिकोण के अनुसार उपयोगिता की गणनावाचक माप किये बिना ही उपभोक्ता व्यवहार का अध्ययन किया जा सकता है । प्रो0हिक्स और ऐलन द्वारा प्रतिपादित एवं विकसित की गयी इस विधि द्वारा एक उपभोक्ता विभिन्न वस्तुओं से मिलने वाली उपयोगिता को उसके अपने पसन्दगी अधिमान के अनुसार एक निश्चित प्राथमिकता क्रम में व्यक्त कर सकता है । क्रम वाचक दृष्टिकोण के प्रतिपादक एवं समर्थक अर्थशास्त्रियों को क्रम वाचक अर्थशास्त्री कहते हैं ।

उदासीनता वक्र उपभोक्ता की उदासीनता अनुसूची पर आधारित होता है । जब हम उदासीनता अनुसूची को एक ग्राफ पर अंकित कर देते हैं, तो जो रेखा अथवा वक्र उभरकर आता है, वही उदासीनता वक्र कहलाता है । एक उदासीनता अनुसूची दो वस्तुओं के उन विभिन्न संयोगों को प्रकट करती है जिनसे किसी उपभोक्ता को प्रति इकाई समय में समान संतुष्टि मिलती है और इसलिए वह उनके प्रति उदासीन रहता है । उदासीनता वक्रों की निम्नांकित विशेषताएँ हैं :

(i)एक उदासीनता वक्र पर स्थित सभी बिन्दु समान संतुष्टि के प्रतीक होते हैं - इस कारण उन्हें समान संतुष्टि वक्र भी कहते हैं, (ii) उदासीनता वक्र दायीं ओर नीचे की तरफ झुकते हुए होते हैं, (iii) उदासीनता वक्र मूल बिन्दु के प्रति उन्नतोदर दर होते हैं, (iv) उदासीनता वक्र परस्पर न तो एक दूसरे को छूते हैं और न ही काटते हो (v) उदासीनता वक्र किसी भी अक्ष को स्पर्श नहीं करते, (vi) उदासीनता वक्रों का एक दूसरे के समानान्तर होना आवश्यक नहीं हैं (vii) एक उदासीनता वक्र के दायीं ओर स्थित कोई भी उदासीनता वक्र संतुष्टि का अपेक्षाकृत ऊँचा स्तर और दोनों वस्तुओं के श्रेष्ठ संयोग को व्यक्त करता है; (viii) उपभोक्ता के उदासीनता मानचित्र में असंख्य उदासीनता वक्र हो सकते हैं, तथा (ix) उदासीनता वक्र मूलत: अण्डाकार होते हैं । उदासीनता वक्र विश्लेषण विधि के अन्तर्गत उपभोक्ता के साम्य की निम्नांकित तीन शर्तें हैं:

1. संतुलन बिंदु पर बजट रेखा उदासीनता वक्र की स्पर्श रेखा (Tangent) होनी चाहिए ;
2. संतुलन बिन्दु पर बजट रेखा तथा उदासीनता वक्र का ढाल समान होना चाहिए, तथा
3. संतुलन बिन्दु पर उदासीनता वक्र मूल बिन्दु की ओर उन्नतोदर (Convex to the origin) होना चाहिए

अर्थात संतुलन बिन्दु पर प्रतिस्थापन की सीमान्त दर (MRS) घटती हुई होनी चाहिए । जिस बिन्दु पर उपर्युक्त वर्णित तीनों शर्तें पूरी होती हैं, वहीं पर ही उपभोक्ता का स्थायी साम्य होता है ।

3.8 शब्दावली (Key Words)

1. **संयोग(Combination) :** एक संयोग में दो वस्तुओं की एक निश्चित मात्रा होती है जिससे उपभोक्ता को एक निश्चित संतुष्टि मिलती है । दो वस्तुओं के विभिन्न संयोग समान अथवा असमान (कम या अधिक) संतुष्टि प्रदान करने वाले हो सकते हैं ।

2. **प्राप्य संयोग (Attainable combination):** ये दो वस्तुओं के वे संयोग होते है जिन्हें एक उपभोक्ता अपनी दी हुई आय से उन वस्तुओं की निश्चित कीमतों पर क्रय करने में समर्थ होता है ।

3. **अप्राप्य संयोग (Unattainable combination)** : ये दो वस्तुओं के वे संयोग होते हैं जिन्हें एक उपभोक्ता अपनी सीमित एवं निश्चित आय से उन वस्तुओं की दी हुई कीमतों पर क्रय करने में असमर्थ होता है ।

4. **उन्नतोदर (Convex) :** जब उदासीनता वक्र का ऊपरी बायाँ भाग सापेक्षिक रूप से ढ़ालू (Steep) तथा निचला दायाँ भाग सापेक्षिक रूप से समतल (Horizontal) होता है, तो उदासीनता वक्र मूल बिन्दु की ओर उन्नतोदर होता हैं । इसका मुख्य कारण प्रतिस्थापन की सीमान्त दर का घटती हुई होना है ।

5. **बजट रेखा (Budget Line):** इसे कीमत आय रेखा, उपभोग संभावना रेखा, व्यय रेखा आदि अनेक नामों से जाना जाता है । यह रेखा दो वस्तुओं के उन सभी संभव संयोगों को प्रदर्शित करती है जिन्हें एक उपभोक्ता अपनी दी हुई सीमित आय से उन दोनों वस्तुओं की निश्चित कीमत पर क्रय करने में समर्थ होता है ।

3.9 स्व-परख प्रश्न

1. उदासीनता अनुसूची से आप क्या समझते हैं?
2. उदासीनता वक्र का अर्थ स्पष्ट कीजिए ।
3. क्रम वाचक दृष्टिकोण को स्पष्ट कीजिए ।
4. उदासीनता वक्रों की तीन महत्त्वपूर्ण विशेषताओं को स्पष्ट कीजिए ।
5. प्रतिस्थापन की सीमान्त दर क्या है'
6. उपभोक्ता संतुलन की शर्तें लिखिए ।
7. उदासीनता वक्र एक दूसरे को क्यों नहीं काटते ?
8. उदासीनता वक्र मूल बिन्दु के प्रति क्यों उन्नतोदर होते है?
9. उदासीनता वक्र क्या होते हैं? उनकी विशेषताएँ स्पष्ट कीजिए ।
10. उपभोक्ता साम्य को उदासीनता वक्र विश्लेषण द्वारा समझाइए ।
11. उदासीनता वक्रों की विशेषताओं का विस्तारपूर्वक वर्णन कीजिए ।

3.10 उपयोगी पुस्तकें:

1.	व्यावसायिक अर्थशास्त्र	:	पी०सी० अग्रवाल एवं एम०डी० अग्रवाल, रमेश बुक डिपो, जयपुर ।
2.	व्यावसायिक अर्थशास्त्र	:	सिंह, गोदारा एवं गर्ग, कॉलेज बुक हाउस, जयपुर
3.	Business Economics	:	Misra and Puri, Himalaya Publications, Delhi
4.	Business Economics	:	Agarwal & Som Deo, Ramesh Book Depot, Jaipur.

इकाई-4

अर्थव्यवस्था की आधारभूत समस्याएँ
(Basic Problems of an Economy)

इकाई की रूपरेखा

4.1 उद्देश्य
4.2 प्रस्तावना
4.3 आर्थिक समस्या का अर्थ
4.4 आर्थिक प्रणाली का अर्थ एवं प्रकार
4.5 अर्थव्यवस्था की आधारभूत समस्याएँ/कार्य
4.6 सारांश
4.7 शब्दावली
4.8 स्व-परख प्रश्न
4.9 उपयोगी पुस्तकें

4.1 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन से आप :

* आर्थिक समस्या का अर्थ और उसके उत्पन्न होने के कारण के बारे में ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे ।
* आर्थिक प्रणाली का अर्थ समझ सकेंगे और आर्थिक प्रणाली के प्रकारों की जानकारी कर सकेंगे ।
* अर्थव्यवस्था की आधारभूत समस्याओं को जान सकेंगे ।

4.2 प्रस्तावना

सभी प्रकार की अर्थव्यवस्थाओं को असीमित आवश्यकताओं और साधनों की सीमितता के कारण उत्पन्न समस्याओं से जूझना पडता है । इस इकाई में हम आर्थिक समस्या के अर्थ एवं उसके उत्पन्न होने के कारणों का अध्ययन करेंगे और साथ ही साथ इस बात का भी अध्ययन करेंगे कि अर्थव्यवस्था/आर्थिक प्रणाली क्या है और इसको किन-किन आधारभूत समस्याओं का सामना करना पड़ता है? रोचक तथ्य यह है कि सभी प्रकार की अर्थव्यवस्थाओं - चाहे पूँजीवादी हो अथवा समाजवादी या फिर मिश्रित - को कमोवेश रूप में समान समस्याओं का सामना करना पड़ता है । इन सबका विस्तारपूर्वक हम यहाँ अध्ययन करेंगे ।

4.3 आर्थिक समस्या का अर्थ (Meaning of Economic Problem)

मानवीय आवश्यकताएँ न केवल अनन्त हैं, वरन् उनकी तीव्रता में भी अन्तर होता है, जबकि आवश्यकताओं की सन्तुष्टि के लिए उपलब्ध साधन सीमित एवं वैकल्पिक प्रयोग वाले होते

हैं । ऐसी स्थिति में मानव आचरण चयन करने अथवा निर्णय लेने के रूप में प्रकट होता है । इसे **प्रो० रोबिन्स** मानवीय क्रिया का **आर्थिक पहलू** कहते हैं । वस्तुतः यही आर्थिक समस्या है । मूलतः चयन करने की समस्या संसाधनों की दुर्लभता अथवा सीमितता के कारण उत्पन्न होती है । इसलिए यह कहा जाता है कि सभी प्रकार की अर्थव्यवस्थाओं में, चाहे वे पूँजीवादी हों या समाजवादी अथवा मिश्रित, आधारभूत आर्थिक समस्या साधनों की सीमितता की है । इसलिए यह कहा जाता हे कि **सभी आर्थिक समस्याओं की जड़ संसाधनों की सीमितता है ।**

आर्थिक समस्या के उत्पन्न होने के कारण (Reasons of Origin of Economic Problem) : आर्थिक समस्या के उत्पन्न होने के निम्नांकित प्रमुख कारण हैं

1. **असीमित साध्य (Unlimited Ends) :** मानवीय आवश्यकताएँ, जिन्हें रोबिन्स साध्य कहते हैं, न केवल आकाश की भाँति अनन्त हैं, वरन् उनमें निरन्तर वृद्धि होती रहती है । यह समय, ज्ञान और विकास के साथ बढ़ती रहती हैं । ये परस्पर प्रतिस्पर्धी और बारम्बार (recurring) उत्पन्न होती रहती हैं । आवश्यकतओं की अनन्तता के कारण सभी आवश्यकताओं को एक साथ संतुष्ट करना संभव नहीं है । इस कारण से आवश्यकताओं के चुनाव की समस्या उत्पन्न होती है ।

2. **सीमित साधन (Scare Resources) :** आवश्यकताओं को संतुष्ट करने वाले साधन सापेक्षिक रूप में सीमित होते हैं अर्थात् साधनों की पूर्ति उनकी माँग की तुलना में कम होती है । यही कारण है कि हम चाहकर भी सभी मानवीय आवश्यकताओं को एक साथ संतुष्ट नहीं कर सकते, फलस्वरूप चुनाव की समस्या उत्पन्न हो जाती है अर्थात् यह निश्चित करना पड़ता है कि उपलब्ध साधन का किस आवश्यकता की संतुष्टि हेतु प्रयोग किया जाये ?

3. **साधनों के वैकल्पिक प्रयोग (Alternative Uses of Resources) :** साधनों की सीमितता के अतिरिक्त एक अन्य महत्त्वपूर्ण विशेषता उनके वैकल्पिक प्रयोग की है अर्थात् साधनों के दो अथवा दो से अधिक प्रयोग होते हैं । इस कारण से किसी साधन के दो या अधिक प्रयोगों में से किसी एक प्रयोग में काम लेने से सम्बन्धित चयन की समस्या उत्पन्न होती है । यदि साधनों के वैकल्पिक प्रयोग न होकर केवल एक ही प्रयोग होता, तो फिर चुनाव की समस्या उत्पन्न नहीं होती । साधनों के वैकल्पिक प्रयोग के कारण ही यह तय करना पड़ता है कि किस साधन को किस प्रयोग में काम में लिया जाये?

4. **साध्यों की तीव्रता में अन्तर (Difference in Intensity of Ends) :** आवश्यकताएँ न केवल असीमित हैं वरन् उनके सापेक्षिक महत्त्व में भी अन्तर होता है । उदाहरण के लिए कुछ आवश्यकताएँ अधिक महत्त्वपूर्ण होती हैं, तो कुछ कम महत्वपूर्ण होती हैं । आवश्यकताओं की तीव्रता में अन्तर होने के कारण उनके चयन की समस्या उत्पन्न हो जाती है । यदि सभी आवश्यकताएँ समान महत्त्व की होती, तो फिर उनके चयन का प्रश्न ही पैदा नहीं होता । आवश्यकताओं की तीव्रता में अन्तर के आधार पर ही हम आवश्यकताओं को अनिवार्य, आरामदायक एवं विलासिता की श्रेणी में विभाजित करते हैं । जिन आवश्यकताओं की तीव्रता अधिक होती है, उन्हें हम सबसे पहले संतुष्ट करते हैं और शेष को बाद में उनकी तीव्रता के आधार पर संतुष्ट किया जाता है ।

प्रो० रोबिन्स के अनुसार कोई भी आर्थिक समस्या तभी उत्पन्न होती है जब उपर्युक्त चारों तत्त्व एक साथ विद्‌यमान होते हैं । इनमें से किसी भी तत्त्व की अनुपस्थिति के कारण यदि कोई समस्या उत्पन्न होती है, तो वह आर्थिक समस्या न होकर तकनीकी समस्या होगी ।

साध्यों का साधनों से समायोजन (Adjustments of Ends with Means) : उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि वास्तव में कोई भी आर्थिक समस्या असीमित आवश्यकताओं की सन्तुष्टि हेतु सीमित एवं वैकल्पिक प्रयोग वाले साधनों के समायोजन की है और यह समस्या चयन के रूप में प्रकट होती है । यदि साध्य दिये हुए हों, तो उन्हें न्यूनतम साधनों के प्रयोग से प्राप्त करने की समस्या है और यदि साधन दिये हुए हों, तो उन दिये हुए साधनों से अधिक से अधिक साध्यों को संतुष्ट करने की समस्या है । इन दोनों ही स्थितियों में असीमित आवश्यकताओं के सन्दर्भ में वैकल्पिक प्रयोग वाले सीमित साधनों के सर्वश्रेष्ठ एवं मितव्ययितापूर्ण प्रयोग की आवश्यकता है जिससे अधिकतम आर्थिक कल्याण के लक्ष्य को प्राप्त किया जा सके । इस सन्दर्भ में साधनों के सर्वोत्तम आवंटन और उनकी कार्यकुशलता का प्रश्न किसी भी व्यक्ति अथवा अर्थव्यवस्था के लिए सर्वोच्च महत्व का होता है ।

4.4 आर्थिक प्रणाली का अर्थ एवं प्रकार (Meaning and Type of Economic System)

आर्थिक प्रणाली का अर्थ उस संस्थागत और वैधानिक ढाँचे से है जिसके अन्तर्गत आर्थिक क्रियाएँ सम्पादित की जाती हैं । वस्तुतः यह वह व्यवस्था है जिसके द्‌वारा लोगों की आर्थिक क्रियाएँ (उपभोग, उत्पादन, विनिमय, वितरण एवं राजस्व) जीवन निर्वाह के लिए सामाजिक दृष्टि से संगठित की जाती हैं । **मैनुअल गोटलिएव** के शब्दों में "एक आर्थिक प्रणाली जटिल मानवीय सम्बन्धों की एक क्रमिक प्रक्रिया है जो वस्तुओं और सेवाओं की विभिन्न निजी तथा सार्वजनिक आवश्यकताओं को संतुष्ट करने के उद्देश्य से सीमित साधनों का उपयोग करती है ।"

आर्थिक प्रणाली निम्नांकित तीन- प्रकार की होती हैं '

1. **पूँजीवादी आर्थिक प्रणाली (Capitalist economic System):** इसे **स्वतंत्र उद्‌यम वाली अर्थव्यवस्था** कहा जाता है । इसके अन्तर्गत उत्पादन के अधिकांश साधन निजी व्यक्तियों तथा संस्थाओं के हाथों में होते हैं और जिनका प्रयोग निजी लाभों को अधिकतम करने के लिए किया जाता है । पूँजीवादी अर्थव्यवस्था कीमत तंत्र (Price Mechanism) पर आधारित होती है जहाँ समस्त आर्थिक निर्णय बाजार की माँग और पूर्ति की स्वतंत्र शक्तियों के द्‌वारा किये जाते हैं । ऐसी अर्थ व्यवस्था में निजी क्षेत्र का दबदबा रहता है ।

2. **समाजवादी आर्थिक प्रणाली (Socialist Economic System) :** इसे **केन्द्रीकृत नियोजन प्रणाली** भी कहा जाता है । इसके अन्तर्गत उत्पादन के अधिकांश साधनों पर स्वामित्व एवं नियंत्रण सरकार के हाथों में होता है । इसके अन्तर्गत प्रमुख आर्थिक निर्णय सरकार अथवा केन्द्रीय नियोजन सत्ता द्‌वारा लिंए जाते हैं । यह 'बहुजन हिताय बहुजन सुखाय (Greatest good of the greatest number) के सिद्धान्त पर संचालित होती है । 'अधिकतम सामाजिक कल्याण' इसका ध्येय वाक्य होता है इसलिए यह समानता और न्याय के सिद्धान्तों पर टिकी होती है । इस अर्थव्यवस्था में सार्वजनिक क्षेत्र का दबदबा होता है ।

3. **मिश्रित आर्थिक प्रणाली (Mixed Economic System):** यह पूँजीवादी और समाजवादी आर्थिक प्रणालियों का सम्मिश्रण होती है । इसमें सार्वजनिक क्षेत्र तथा निजी क्षेत्र का सह-अस्तित्व पाया जाता है । इस प्रणाली में कीमत तंत्र और नियोजन तंत्र दोनों मिलकर अर्थव्यवस्था का संचालन करते हैं । **प्रो0ए0एम0 खुसरो** के अनुसार इसमें स्वतंत्र और नियंत्रित बाजार का भी सह-अस्तित्व पाया जाता है । भारतीय अर्थव्यवस्था मिश्रित आर्थिक प्रणाली का सुन्दर उदाहरण है । मिश्रित आर्थिक प्रणाली में एक साथ पूँजीवादी और समाजवादी आर्थिक प्रणाली के गुण-दोष देखे जा सकते हैं ।

4.5 अर्थव्यवस्था की आधारभूत समस्याएँ/कार्य (Basic Problems/ Functions of an Economy)

आवश्यकताओं की असीमितता तथा साधनों की सीमितता के कारण प्रत्येक अर्थव्यवस्था को अनेक आधारभूत आर्थिक समस्याओं का सामना करना पड़ता है । अर्थव्यवस्था की आधारभूत समस्याओं को **अर्थव्यवस्था की केन्द्रीय समस्याएँ (Central Problems of an Economy)** अथवा **अर्थव्यवस्था के प्रमुख कार्य (Main Functions of an Economy)** भी कहा जाता है। सीमित साधनों और असीमित साध्यों के बीच उपयुक्त सामंजस्य बिठाने की समस्या प्रत्येक आर्थिक प्रणाली में सदैव विद्यमान रहती है । प्रत्येक अर्थव्यवस्था को कुछ आधारभूत समस्याओं का सामना करना पड़ता है, चाहे उसका स्वरूप कैसा ही क्यों न हो । सभी अर्थव्यवस्थाओं को कुछ आधारभूत कार्य सम्पन्न करने पड़ते हैं, जिन्हें उनकी आधारभूत समस्याएँ भी कहा जाता है।

अर्थव्यवस्था के आधारभूत कार्यो (समस्याओं) के बारे में अर्थशास्त्री एकमत नही हैं । **प्रो0 सेम्यूलसन** तथा **प्रो0फरग्यूसन एवं क्रेप्स** ने आर्थिक प्रणाली के तीन प्रमुख कार्य बताये हैं; जबकि **प्रो0नाइट एवं लेफ़्टीवच** के मतानुसार अर्थव्यवस्था के प्रमुख कार्य पाँच हैं । प्रो0हाम ने आर्थिक प्रणाली के सात आधारभूत कार्य बताये है।

प्रो0 सेम्यूलसन के अनुसार, "प्रत्येक आर्थिक प्रणाली को तीन मूलभूत समस्याओं का सामना करना पड़ता है (i) संभावित वस्तुओं व सेवाओं की क्या-क्या किस्में कितनी मात्रा में उत्पादित की जाय,(ii) इन वस्तुओं के उत्पादन में आर्थिक साधनों का प्रयोग किस प्रकार किया जाये; तथा (iii) किनके लिए वस्तुओं का उत्पादन किया जाये अर्थात् विभिन्न व्यक्तियों या उनके समूहों में आय का वितरण कैसे हो?

प्रो0फरग्यूसन एवं क्रेप्स के अनुसार प्रत्येक आर्थिक प्रणाली को तीन प्रकार के आर्थिक निर्णय लेने पड़ते हैं (i) किस वस्तु का उत्पादन किया जाये ;(ii) किस तरह उत्पादन किया जाय, तथा (iii) उत्पादन को कौन प्राप्त करे?

प्रो0 नाइट एवं प्रो0 लेपटविच ने अर्थव्यवस्था के निम्नांकित आधारभूत कार्यो अथवा केन्द्रीय समस्याओं का उल्लेख किया है:

1. किस वस्तु का उत्पादन किया जाये,
2. उत्पादन को किस प्रकार संगठित किया जाये,
3. उत्पादन का वितरण किस प्रकार किया जाये;

4. अल्पकाल में स्वल्प पूर्ति का राशनिंग कैसे किया जाये;तथा
5. उत्पादन क्षमता को किस प्रकार स्थिर रखा जाये तथा उत्पादन क्षमता का विकास कैसे हो?

विभिन्न अर्थशास्त्रियों के विचारों एवं दृष्टिकोण के आधार पर किसी भी आर्थिक प्रणाली के प्रमुख कार्य/केन्द्रीय समस्याएँ अथवा आधारभूत समस्याएँ निम्नांकत हैं, जिन्हें विस्तारपूर्वक यहाँ स्पष्ट किया जा रहा है ।

1. **क्या उत्पादन किया जाए और कितना उत्पादन किया जाए? (What is to be produced and how much to be produced?) :** प्रत्येक अर्थव्यवस्था की सर्वप्रथम समस्या/ कार्य यह निर्धारित करना है कि उपलब्ध साधनों से किन वस्तुओं और सेवाओं का कितना-कितना उत्पादन किया जाये ताकि उपभोक्ताओं की आवश्यकताओं की यथासंभव संतुष्टि की जा सके । क्या उत्पादन किया जाय-इस बात का निर्धारण करने के लिए यह देखना होगा कि अर्थव्यवस्था में कौन-कौनसी आवश्यकताएँ समग्र रूप से अधिक महत्त्वपूर्ण हैं और उनकी किस सीमा तक संतुष्टि की जानी है ? जैसाकि पहले स्पष्ट किया जा चुका है कि साधन सीमित होते हैं ओ आवश्यकताएँ अनन्त । अत: उत्पादन की संरचना का निर्धारण समाज की सापेक्षिक आवश्यकताओं, उनकी तीव्रता तथा साधनों की उपलब्धता के सामंजस्य से किया जाता है । अर्थव्यवस्था 'को यह निर्धारित करना होता है कि उपलब्ध साधनों से कितना पूँजीगत माल उत्पादित किया जाय और कितना उपभोक्तागत माल? यदि पूँजीगत माल अधिक उत्पादित किया जाता है, तो फिर उपभोक्तागत माल का उत्पादन कम होगा और इसके विपरीत उपभोक्तागत माल का उत्पादन अधिक किया जाता है, तो पूँजीगत माल का उत्पादन कम होगा क्योंकि किसी समय बिन्दु विशेष पर साधन सीमित एवं स्थिर होते हैं । इस बात को **रेखाचित्र संख्या 4.1** से आसानी से समझा जा सकता है । चित्र में AB उत्पादन संभावना वक्र (Production Possibility Curve) है । इसके R बिन्दु पर अर्थव्यवस्था OM उपभोक्ता वस्तुओं तथा OK पूँजीगत वस्तुओं का उत्पादन कर रही है । यदि उपभोक्ता वस्तुओं का उत्पादन बढ़ाकर ON किया जाता है जैसा कि उत्पादन संभावना वक्र का S बिन्दु प्रदर्शित करता है, तो पूँजीगत वस्तुओं का उत्पादन OK से घटकर OL रह जाता है ।

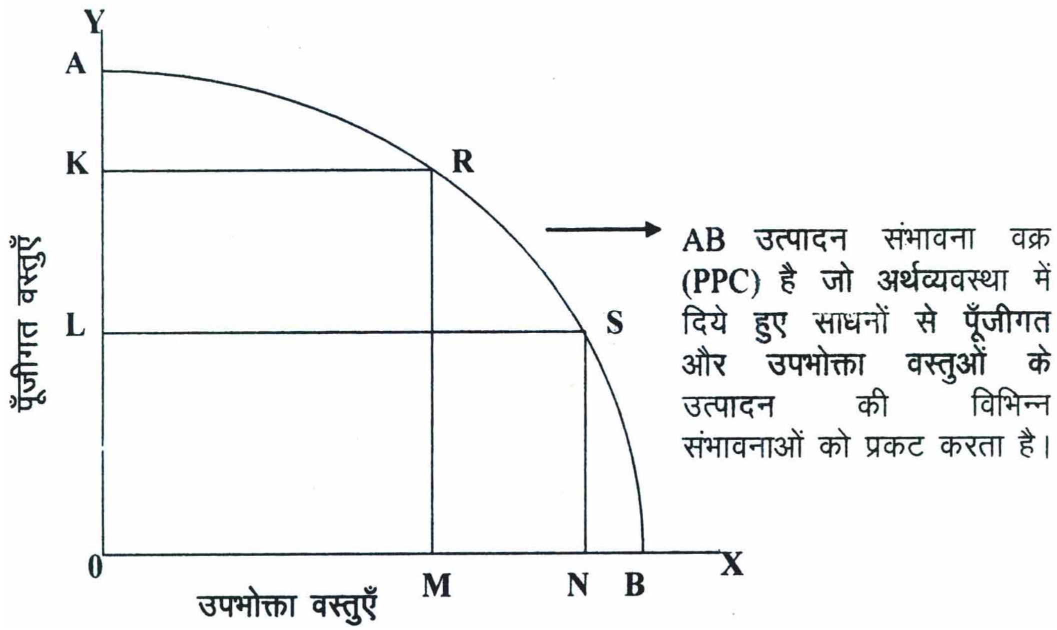

रेखाचित्र संख्या 4.1

किसी अर्थव्यवस्था में केवल पूँजीगत अथवा उपभोक्ता वस्तुओं के उत्पादन से अधिकतम संतुष्टि का लक्ष्य प्राप्त नहीं किया जा सकता । उपभोक्तागत माल का उत्पादन वर्तमान की आवश्यकताओं की पूर्ति से सम्बन्धित होता है, जबकि पूँजीगत माल का उत्पादन भविष्य की आवश्यकताओं की संतुष्टि से होता है । इसलिए इन दोनों वस्तुओं के उत्पादन का निर्धारण करते समय वर्तमान और भविष्य की आवश्यकताओं की संतुष्टि के बीच उपयुक्त सामंजस्य बिठाना पड़ता है ।

एक स्वतंत्र उद्‌यमवाली पूँजीवादी अर्थव्यवस्था में क्या और कितना उत्पादन किया जाय' का निर्धारण कीमत तंत्र के द्‌वारा किया जाता है । उपभोक्तागत सामूहिक रूप से जिन-जिन वस्तुओं के क्रय के लिए अपना मुद्रारूपी मत अधिक (ऊँची कीमतें) देते हैं, उन वस्तुओं का अधिक उत्पादन किया जाता है और जिनके लिए कीमतें कम देते है, उनका उत्पादन कम किया जाता है । उपभोक्ताओं द्‌वारा प्रकट किया गया मुद्रा रूपी मत विभिन्न वस्तुओं के प्रति उनके अधिमानों पर निर्भर करता हैं, किन्तु समाजवादी अर्थव्यवस्था में क्या और कितना उत्पादन किया जाय का निर्धारण **सरकार** अथवा **केन्द्रीय नियोजन सत्ता** द्‌वारा समाज के अधिकतम लाभ को दृष्टिगत रखते हुए किया जाता है । मिश्रित अर्थव्यवस्था में इस प्रश्न का समाधान सरकारी आदेशों तथा स्वतंत्र कीमत प्रणाली के समन्वित उपयोग द्‌वारा किया जाता है ।

1. **उत्पादन कैसे किया जाए अथवा उत्पादन का संगठन क्या हो ?(How to produce or what should be the organization of production?) :** एक अर्थव्यवस्था की दूसरी महत्त्वपूर्ण समस्या (कार्य) यह निर्धारित करना होता है कि उत्पादन कैसे किया जाए अथवा उत्पादन का संगठन क्या हो ? इस बात का निर्धारण करना इसलिए आवश्यक है कि वांछित वस्तुओं का निर्धारित मात्रा में उत्पादन कम से कम लागत पर किया जा सके । इस उद्देश्य की प्राप्ति हेतु विभिन्न साधनों का अनुकूलतम संयोजन आवश्यक है जिसके अन्तर्गत निम्नांकित

बातें आती हैं: (i) साधनों का प्रयोग अधिक महत्वपूर्ण कार्यो में करना; (ii) सर्वश्रेष्ठ तकनीक का प्रयोग करना; (iii) साधनों के दुरूपयोग को रोकना तथा (1४) न्यूनतम लागत पर अधिकतम उत्पादन करना ।

अर्थव्यवस्था में उत्पादन के संगठन के स्वरूप का निर्धारण करने के लिए निम्नांकित बातों पर विचार करना आवश्यक होता है :

(i) साधनों को उन उद्योगों /प्रयोगों में कैसे वितरित किया जाए जिनके द्वारा उत्पादित वस्तुओं को उपभोक्ता अधिक वरीयता देते हैं और इसके विपरीत साधनों को उन उद्योगों/प्रयोगों में जाने से कैसे रोका जाय जिनके उत्पादन को उपभोक्ता कम वरीयता प्रदान करते हैं,

(ii) कौन-कौन सी वस्तुएँ सार्वजनिक क्षेत्र में उत्पादित की जाएं और कौन सी वस्तुएँ निजी क्षेत्र में ?;

(iii) विभिन्न उद्योगों में किन-किन फार्मों को उत्पादन करना है और वे आवश्यक साधन कैसे प्राप्त करेंगी ?; तथा

(iv) उत्पादन के लिए कौन सी तकनीक उत्तम है ?

एक अर्थव्यवस्था को उत्पादन का ऐसा संगठन चुनना चाहिए जो समाज द्वारा चाही गयी वस्तुओं का उत्पादन इच्छित मात्रा में कुशलता के साथ कर सके । **रेखाचित्र 4.2** द्वारा उत्पादन के कुशल संगठन को स्पष्ट किया गया है । चित्र में AB उत्पादन संभावना वक्र है जो उपलब्ध साधनों से पूँजी एवं उपभोक्ता वस्तुओं के उत्पादन की संभावना व्यक्त करता है । AB वक्र के ऊपर तथा भीतरी सभी बिन्दु दोनों वस्तुओं के उन संयोगों को बताते हैं जिन्हें अर्थव्यवस्था में उपलब्ध साधनों से प्राप्त किया जा सकता है । इन्हें **प्राप्य संयोग** कहा जाता है । AB वक्र से बाहर स्थित बिन्दु (F तथा G) उन संयोगों को बताते हैं जिन्हें उपलब्ध साधनों से प्राप्त नहीं किया जा सकता है । इन्हें **अप्राप्य संयोग** कहा जाता है । AB वक्र के

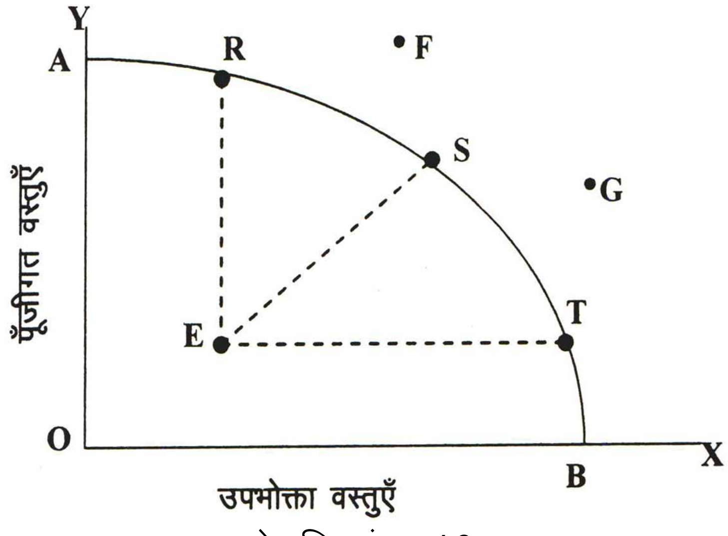

रेखाचित्र संख्या 4.2

भीतरी भाग में स्थित E बिन्दु प्राप्य संयोग तो है, किन्तु यह उत्पादन संगठन की अकुशलता का प्रतीक है । AB वक्र पर स्थित R,S तथा T बिन्दु उत्पादन के कुशल संगठन के

प्रतीक हैं क्योंकि E बिन्दु की तुलना में R बिन्दु पर पूँजीगत वस्तुओं का अधिक तथा T बिन्दु पर उपभोक्ता वस्तुओं का अधिक और S बिन्दु पर पूँजीगत तथा उपभोक्ता दोनों प्रकार की वस्तुओं का अधिक उत्पादन किया जा सकता है ।

पूँजीवादी अर्थव्यवस्था में उत्पादन का संगठन मूल्य तंत्र द्वारा निर्धारित होता है । उत्पादनकर्त्ताओं का उद्देश्य न्यूनतम लागत पर अधिकतम उत्पादन द्वारा अपने लाभ को अधिकतम करना होता है, अत: वे महँगे साधनों के स्थान पर सस्ते साधनों का प्रतिस्थापन करते हैं । उत्पादक उन वस्तुओं का अधिक उत्पादन करते हैं जिनकी माँग उपभोक्ताओं द्वारा अधिक की जाती है । उत्पादन का सर्वोत्तम संगठन तब होता है जब प्रत्येक साधन का सीमान्त उत्पादन और उसके मूल्य का अनुपात उत्पादन में प्रयुक्त अन्य साधनों के सीमान्त उत्पादन और उनके मूल्य के अनुपात के बराबर हो । सूत्र रूप में:

$$\frac{MPx}{Py} = \frac{MPy}{Py} =\text{-} \text{---------} \frac{MPn}{Pn}$$

समाजवादी अर्थव्यवस्था में उत्पादन का संगठन अधिकतम सामाजिक कल्याण के ध्येय को ध्यान में रखकर योजनाबद्ध तरीके से सरकार अथवा केन्द्रीय नियोजन सत्ता द्वारा किया जाता है । मिश्रित अर्थव्यवस्था में उत्पादन के संगठन की समस्या का समाधान प्रभावी सरकारी हस्तक्षेप एवं नियंत्रण से होता है । उत्पादन संगठन में मूल्य तंत्र का प्रयोग उस सीमा तक किया जाता है जहाँ तक वह सार्वजनिक हित में होता है । इस प्रकार मिश्रित अर्थव्यवस्था में उत्पादन संगठन का निर्धारण नियोजन तंत्र तथा कीमत तंत्र के उपयुक्त सामंजस्य द्वारा किया जाता है ।

3. **उत्पादन का वितरण किन में किया जाए अथवा वितरण कैसे किया जाए ?(To whom the production is to be distributed or how distribution is to be done?) :** एक अर्थव्यवस्था का तीसरा महत्त्वपूर्ण कार्य (केन्द्रीय समस्या) देश के कुल उत्पादन (राष्ट्रीय आय) को उत्पादन के विभिन्न साधनों में कुशल एवं न्यायोचित ढंग से वितरित करना है । इस बात के निर्धारण में आर्थिक तत्त्वों के साथ-साथ राजनैतिक एवं नैतिक तत्त्वों को भी ध्यान में रखना पड़ता है ।

पूँजीवादी अर्थव्यवस्था में कुल उत्पादन का वितरण कीमत-तंत्र द्वारा होता है । उत्पादित वस्तुओं का वितरण व्यक्तिगत आय पर निर्भर करता है इसलिए जिनकी आय अधिक होती है, उन्हें अधिक अनुपात में वस्तुओं और सेवाएँ मिलती हैं । स्वतंत्र उद्यम वाली अर्थव्यवस्था में व्यक्ति की आय (i) उत्पादन के साधनों की मात्रा (ii) उत्पादन के साधनों की कीमते / प्रतिफल; तथा (iii) उत्पादन के साधनों की कुशलता पर निर्भर करती है । कीमत तंत्र साधनों को उत्पादन प्रक्रिया में अनुचित ढंग से लगाने के कारण आय में उत्पन्न होने वाले अन्तर को मिटाता है, किन्तु साधनों के स्वामित्व के अन्तर से उत्पन्न आय अन्तर को नहीं मिटाता । इसलिए सरकार को इस हेतु प्रगतिशील करारोपण, आर्थिक सहायता (Subsidy) सामाजिक सुरक्षा तथा अन्य कदमों का सहारा लेना पडता है ।

समाजवादी अर्थव्यवस्था में राष्ट्रीय आय का वितरण पूर्व नियोजित तरीके से सामाजिक उद्देश्यों के अनुरूप सरकारी आदेशों द्वारा होता है । व्यक्ति की कुशलता व सामाजिक न्याय उत्पादन के वितरण के प्रमुख आधार होते हैं ताकि कमोबेश रूप में आय समानता के लक्ष्य की प्राप्ति हो सके । मिश्रित अर्थव्यवस्था में उत्पादन का वितरण एक बडी सीमा तक कीमत-तंत्र

द्वारा होता है । सरकार कीमत-तंत्र द्वारा होने वाले वितरण के दोषों को दूर करने के लिए अनेक कदम उठाकर आय व धन की असमानताओं को कम करने तथा आर्थिक शोषण को रोकने का प्रयास करती है । सरकार द्वारा उठाये जाने वाले कदमों में प्रगतिशील करारोपण, न्यूनतम मजदूरी, उचित वेतन प्रणाली, आर्थिक सहायता, सामाजिक सुरक्षा, आय व सम्पत्ति की अधिकतम सीमा का निर्धारण, निजी क्षेत्र की क्रियाओं पर प्रभावी नियंत्रण आदि सम्मिलित होते हैं ।

4. **अति अल्पकाल में राशनिंग व्यवस्था (Rationing in very short period) :** एक अर्थव्यवस्था का चतुर्थ महत्त्वपूर्ण कार्य (समस्या) वस्तुओं की उपलब्ध पूर्ति को अल्पकाल में उनकी माँग के अनुसार समायोजन करने का है । यह समस्या इसलिए उत्पन्न होती है कि अनेक बार अल्पकाल में कुछ वस्तुओं की माँग उनकी पूर्ति की तुलना में अधिक हो जाती है । इसलिए माँग और पूर्ति के बीच अल्पकालीन असंतुलन उत्पन्न हो जाता है । इस असंतुलन को दूर करने के लिए वस्तु की स्थिर पूर्ति का राशनिंग दो प्रकार से किया जाता है । प्रथम, अर्थव्यवस्था के विभिन्न उपभोक्ताओं के बीच वस्तु का आवंटन इस प्रकार करना जिससे सभी आय-स्तर वाले उपभोक्ताओं को न्यायोचित कीमत पर वस्तु नियमित रूप से उपलब्ध होती रहे । द्वितीय, वस्तु की पूर्ति को एक निश्चित समयावधि में इस प्रकार वितरित करना कि अभाव की स्थिति में वस्तु की पूर्ति नियमित रखी जा सके । पूँजीवादी आर्थिक प्रणाली में माँग और पूर्ति के अल्पकालीन असंतुलन को कीमत प्रणाली स्वत: ही समाप्त कर देती है । वस्तु की माँग उसकी पूर्ति से अधिक होने के कारण वस्तु की कीमतों में वृद्धि होगी जिससे कुछ समय पश्चात माँग घटकर पूर्ति के बराबर हो जाती है । पूँजीवादी अर्थव्यवस्था में सट्टा (Speculation) भी वस्तु की माँग और पूर्ति में असंतुलन को दूर करने का काम करता है । समाजवादी अर्थव्यवस्था में सरकार नियंत्रित वितरण प्रणाली राशनिंग के द्वारा माँग और पूर्ति के अल्पकालीन असंतुलन को दूर करती है । मिश्रित अर्थव्यवस्था में यह कार्य आशिक रूप से कीमत-तंत्र तथा आशिक रूप से सरकार द्वारा किया जाता है ।

5. **आर्थिक अनुरक्षण एवं विकास (Economic maintenance and growth) :** अर्थव्यवस्था की पंचम समस्या न केवल अपनी वर्तमान उत्पादन क्षमता को भविष्य में बनाये रखने की है, वरन् उसके विकास एवं विस्तार की भी है । अर्थव्यवस्था के इस कार्य मे निम्नांकित तीन बातें सम्मिलित हैं:

(i) पूँजी स्टॉक के ह्रास के सन्दर्भ मे अर्थव्यवस्था की उत्पादन क्षमता को यथा स्थिर बनाये रखना;

(ii) बढ़ती हुई जनसंख्या के सन्दर्भ में अर्थव्यवस्था की उत्पादन क्षमता को यथा स्थिर बनाये रखना, तथा

(iii) उत्पादन विधियों में सुधार कर अर्थव्यवस्था की उत्पादन क्षमता में वृद्धि करना ।

प्रथम दो बातें अर्थव्यवस्था के अनुरक्षण से सम्बन्धित हैं, जबकि तीसरी बात आर्थिक विकास की वृद्धि दर से सम्बन्धित है ।

आर्थिक विकास के फलस्वरूप अर्थव्यवस्था उत्पादन के वर्तमान स्तर से उच्च उत्पादन स्तर पर चली जाती है जिसका निरूपण **रेखाचित्र संख्या 4.3** में किया गया है । अर्थव्यवस्था का

प्रारम्भिक उत्पादन संभावना वक्र AB है । इस वक्र के सन्दर्भ में F तथा G बिन्दु अप्राप्य संयोग हैं क्योंकि ये AB वक्र के बाहर स्थित हैं । माना कि अर्थव्यवस्था अब विकास के ऊँचे

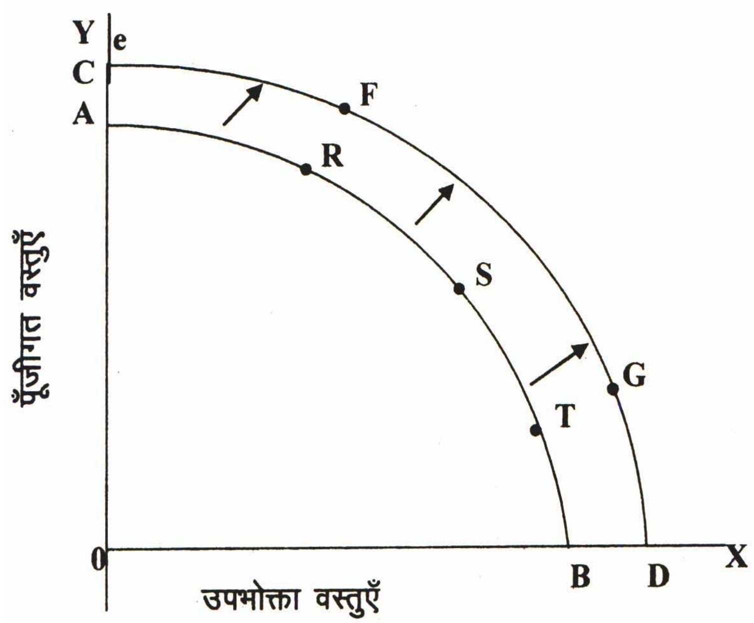

रेखाचित्र संख्या 4.3

सोपान पर पहुँच जाती है जिसके फलस्वरूप उत्पादन संभावना वक्र AB से बदल कर CD हो जाता है । F तथा G बिन्दु जो पहले अप्राप्य संयोग थे, वे अब CD उत्पादन संभावना वक्र पर स्थित होने के कारण प्राप्य संयोग बन जाते हैं अर्थात् CD उत्पादन संभावना वक्र आर्थिक विकास(उत्पादन क्षमता में वृद्धि) का प्रतीक है । **एक स्वतंत्र उद्यमवाली पूँजीवादी अर्थव्यवस्था** में आर्थिक अनुरक्षण एवं विकास का कार्य एक सीमा तक मूल्य तंत्र द्वारा होता रहता है । अनुरक्षण के लिये ह्रास लागत में सम्मिलित होने से कीमत में वृद्धि के द्वारा उपभोग में कमी कर उत्पादन क्षमता को बनाये रखने के लिए साधन उपभोग से उत्पादन में रह जाते हैं । श्रमिकों की कार्यकुशलता में सुधार एवं विकास भी बहुत कुछ कीमततंत्र से प्रेरित होते हैं । पूँजी निर्माण में वृद्धि अधिक ब्याज व लाभ की आशा में होती है । उत्पादन विधियों में सुधार भी अधिक लाभ कमाने की आशा से किया जाता है । संक्षेप में, पूँजीवादी अर्थव्यवस्था में प्रतिस्पर्धात्मक कीमतों के कारण विकास एवं विस्तार का कार्य चलता रहता है।

समाजवादी अर्थव्यवस्था में आर्थिक अनुरक्षण एवं विकास का कार्य सरकार द्वारा निर्धारित नीतियों से होता है । सरकार वर्तमान और भविष्य के महत्त्व को जनहित की दृष्टि से देख कर ही विनियोग एवं विकास का कार्य हाथ में लेती है । **मिश्रित अर्थव्यवस्था** में आर्थिक अनुरक्षण एवं विकास के लिए कीमत-तंत्र एवं सरकारी नियोजन-तंत्र का समन्वित प्रयोग किया जाता है । सरकार उन क्षेत्रों में विनियोग एवं विकास के कार्य हाथ में लेती है जहाँ निजी क्षेत्र विनियोग करने में रूचि नहीं रखता हो अथवा जहाँ सुरक्षा की दृष्टि से निजी क्षेत्र को विनियोग करने की छूट नहीं दी जा सकती हो ।

6. **साधनों का पूर्ण उपयोग अथवा पूर्ण रोजगार की व्यवस्था (Full utilization or full employment) :** एक आर्थिक प्रणाली की छठी समस्या (कार्य) यह है कि देश में उपलब्ध संसाधनों का पूर्ण उपयोग हो अथवा उन्हें पूर्ण रोजगार मिल सके जिससे कोई भी साधन अप्रयुक्त (बेरोजगार) न रहे । साधनों के पूर्ण रोजगार का अभिप्राय उनके उपयोग के उस स्तर से है जिसे समाज उपयोग करने हेतु तैयार है । अगर अर्थव्यवस्था में साधनों के पूर्ण रोजगार की प्रवृत्ति हो, तो पूँजीगत एवं उपभोक्ता दोनों प्रकार की वस्तुओं की पूर्ति बढायी जा सकती है जिसे **रेखाचित्र** 4.4 द्वारा समझा जा सकता है । चित्र में AB उत्पादन संभावना वक्र अपूर्ण रोजगार की स्थिति को दर्शाता है । इसके दायीं ओर स्थित CD उत्पादन संभावना वक्र पूर्ण रोजगार की स्थिति में संभावित उत्पादन की मात्रा को प्रदर्शित करता है । AB उत्पादन संभावना वक्र के प्रत्येक बिन्दु पर उत्पादन का संभावित स्तर CD उत्पादन संभावना वक्र के सभी बिन्दुओं से कम है । इससे यह स्पष्ट होता है कि पूर्ण रोजगार की स्थिति में उत्पादन का स्तर बेरोजगारी की स्थिति की तुलना में अधिक रहता है ।

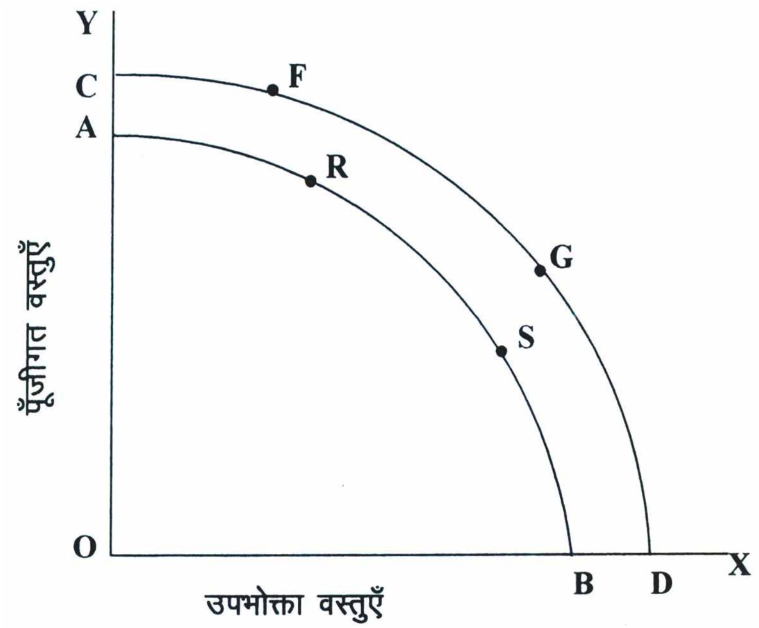

रेखाचित्र संख्या 4.4

पूँजी वादी अर्थव्यवस्था में पूर्ण रोजगार की व्यवस्था को कीमत प्रणाली पर आधारित किया जाता है । पूर्ण रोजगार हेतु ब्याज दर कम करके विनियोगों को प्रोत्साहित किया जाता है । इसके अलावा, इस हेतु मौद्रिक एवं राजकोषीय नीति का भी सहारा लिया जाता है । **समाजवादी अर्थव्यवस्था** में सरकार योजनाबद्ध तरीके से रोजगार के अवसरों में वृद्धि कर साधनों का पूर्ण उपयोग करने का प्रयास करती है । **मिश्रित अर्थव्यवस्था** में यह कार्य कीमत प्रणाली तथा विभिन्न सरकारी नीतियों के माध्यम से उपयुक्त तालमेल बिठाकर किया जाता है ।

7. अन्य समस्याएँ/कार्य (Others Problems/Functions) :

(i) **मुद्रा की क्रय शक्ति में स्थिरता की समस्या (Stability in purchasing power of money)** : मुद्रा-स्फीति की समस्या से प्राय: सभी अर्थव्यवस्थाएँ पीड़ित रहती हैं । जब मुद्रा की

पूर्ति अर्थव्यवस्था में उपलब्ध वस्तुओं और सेवाओं से अधिक हो जाती है, तो सामान्य मूल्य-स्तर बढ़ जाता है और बचत की गयी मुद्रा की क्रय शक्ति घट जाती है । इसके विपरीत मुद्रा-संकुचन की स्थिति में वस्तुओं और सेवाओं की कीमतों में गिरावट के कारण मुद्रा की क्रय शक्ति बढ़ जाती है और अर्थव्यवस्था मंदी का शिकार हो जाती है । अर्थव्यवस्था में मुद्रा-प्रसार और मुद्रा-संकुचन की स्थिति को अच्छा नहीं माना जाता है ।

पूँजीवादी अर्थव्यवस्था में सरकारी नियंत्रण के अभाव के कारण मुद्रा की क्रय शक्ति में उतार-चढ़ाव की समस्या अधिक विकट होती है जिसे. मौद्रिक नीति, राजकोषीय नीति अथवा भौतिक नियंत्रणों के द्वारा रोकने के प्रयास किए जाते हैं । **समाजवादी अर्थव्यवस्था** में प्रभावी सरकारी नियंत्रण के कारण मुद्रा की क्रय शक्ति में स्थिरता बनाये रखना आसान है । **मिश्रित अर्थव्यवस्था** में यह कार्य सरकारी नियंत्रण को प्रभावी बनाकर तथा मौद्रिक एवं राजकोषीय नीतियों के समन्वित प्रयोग करके किया जाता है ।

(ii) **साधनों के अनुकूलतम अथवा कुशलतम उपयोग की समस्या (Problems of optimum and efficient utilization of resources) :** आवश्यकताओं के सन्दर्भ में साधनों की सीमितता सभी प्रकार की अर्थव्यवस्थाओं की केन्द्रीय आर्थिक समस्या है । इसलिए प्रत्येक अर्थव्यवस्था के सामने उपलब्ध साधनों के अनुकूलतम एवं कुशलतम उपयोग की समस्या सदैव मुँह बायें खड़ी रहती है । उपभोग उत्पादन एवं वितरण में यदि साधनों का उपयोग कुशलतम एवं श्रेष्ठ ढंग से होता है, तो अर्थव्यवस्था में उत्पादन, आय, रोजगार एवं उत्पादकता में वृद्धि होती है । वस्तुओं की गुणवत्ता में सुधार और उनकी लागत में कमी आती है । इन सबके परिणामस्वरूप आर्थिक विकास और सामाजिक कल्याण का मार्ग प्रशस्त होता है । पूँजीवादी अर्थव्यवस्था में कीमत तंत्र द्वारा साधनों का अनुकूलतम उपयोग नहीं हो पाता; जबकि समाजवादी अर्थव्यवस्था में केन्द्रीय नियोजन के कारण साधनों का सापेक्षिक रूप से अधिक अच्छा उपयोग होता है ।

निष्कर्ष (Conclusion) : प्रत्येक अर्थव्यवस्था को उपर्युक्त सभी कार्य एक साथ सम्पन्न करने पड़ते हैं । ये सभी कार्य एक दूसरे से सम्बन्धित हैं । ये कार्य सैद्धान्तिक दृष्टि से बड़े सरल लगते हैं, किन्तु व्यवहार में इन कार्यो का कुशलतापूर्वक सम्पादन करना अत्यन्त कठिन है । एक अर्थव्यवस्था की सफलता इन कार्यो के कुशल सम्पादन में निहित रहती है ।

4.6 सारांश (Summary)

साध्यों की असीमितता साधनों की सीमितता, साधनों के वैकल्पिक प्रयोग तथा साध्यों की तीव्रता में अन्तर - ये चारों तत्व एक साथ विद्यमान होने पर ही कोई आर्थिक समस्या उत्पन्न होती है । रोबिन्स के अनुसार आर्थिक समस्या चयन करने अथवा निर्णय लेने के रूप में प्रकट होती है जो मूलत: साधनों की दुर्लभता के कारण उत्पन्न होती है । साधनों की सीमितता ही सभी आर्थिक समस्याओं की जड़ है । अत: अधिकतम आर्थिक कल्याण की दृष्टि से सीमित साधनों का सर्वश्रेष्ठ एवं मितव्ययितापूर्ण प्रयोग किया जाना अत्यावश्यक है । आर्थिक प्रणाली (अर्थव्यवस्था) उस संस्थागत और वैधानिक ढाँचे को कहते हैं जिसके अन्तर्गत सभी प्रकार की आर्थिक क्रियाएँ सम्पादित की जाती हैं । एक आर्थिक प्रणाली पूँजीवादी, समाजवादी तथा मिश्रित

में से किसी भी प्रकार की हो सकती है । वैश्वीकरण के इस युग में अर्थव्यवस्थाओं का रूझान पूँजीवादी आर्थिक प्रणाली की ओर है । एक अर्थव्यवस्था को निम्नांकित समस्याओं को सामना करना पड़ता है, जिन्हें अर्थव्यवस्था के कार्य भी कहा जाता है:

(i) क्या उत्पादन किया जाए और कितना उत्पादन किया जाए?
(ii) उत्पादन कैसे किया जाए अथवा उत्पादन का संगठन कैसा हो 7
(iii) उत्पादन का वितरण किन में किया जाए अथवा वितरण कैसे किया जाए '
(iv) अति अल्पकाल में राशनिंग व्यवस्था;
(v) आर्थिक अनुरक्षण एवं विकास '
(vi) साधनों का पूर्ण उपयोग अथवा पूर्ण रोजगार की व्यवस्था, तथा
(vii) अन्य-मुद्रा की क्रय शक्ति में स्थिरता बनाये रखना तथा साधनों का अनुकूलतम उपयोग करना ।

4.7 शब्दावली (Key Words)

1. **आर्थिक समस्या (Economic Problem):** आर्थिक समस्या आवश्यकताओं की असीमितता,साधनों की दुर्लभता, साधनों के वैकल्पिक प्रयोग तथा आवश्यकताओं की तीव्रता में अन्तर के कारण होती है । वस्तुत: यह चयन करने अथवा निर्णय लेने की समस्या है ।

2. **आर्थिक प्रणाली (Economic System):** यह एक ऐसा संस्थागत और वैधानिक ढाँचा है जिसके अन्तर्गत सभी प्रकार की आर्थिक क्रियाएँ सम्पादित की जाती हैं ।

3. **पूँजीवादी अर्थव्यवस्था (Capitalist Economy) :** इसे स्वतंत्र उद्यमवाली अर्थव्यवस्था कहते हैं । इसके अन्तर्गत उत्पादन के साधनों के विशाल भाग पर निजी व्यक्तियों/संस्थाओं का स्वामित्व एवं नियंत्रण होता है जो अपने लाभ को अधिकतम करने का प्रयत्न करते हैं । यह अर्थव्यवस्था कीमत-तंत्र पर आधारित होती है ।

4. **समाजवादी अर्थव्यवस्था (Socialist Economy) :** इसके अन्तर्गत अधिकांश साधनों पर स्वामित्व एवं नियंत्रण सरकार के हाथों में होता है । इसका संचालन केन्द्रीय नियोजन सत्ता द्वारा अधिकतम सामाजिक लाभ के लिए किया जाता है ।

5. **मिश्रित अर्थव्यवस्था (Mixed Economy) :** यह पूँजीवादी और समाजवादी अर्थव्यवस्था का सम्मिश्रण होती है । इसके अन्तर्गत सार्वजनिक एवं निजी क्षेत्र के सह-अस्तित्व के साथ स्वतंत्र और नियंत्रित बाजार का भी सह-अस्तित्व देखने को मिलता है ।

6. **कीमत-तंत्र (Price Mechanism) :** यह पूँजीवादी अर्थव्यवस्था का आधार स्तम्भ है । कीमत-तंत्र का आधार स्वतंत्र माँग और पूर्ति की शक्तियाँ होती हैं जो मिलकर किसी वस्तु की कीमत का निर्धारण करती हैं ।

7. **प्राप्य संयोग (Attainable Combination**): उत्पादन संभावना वक्र के ये वे उत्पादन संभावना बिन्दु होते हैं जिन्हें दिये गये साधनों से प्राप्त किया जा सकता है । ये किसी उत्पादन संभावना वक्र के भीतरी भाग अथवा उस पर स्थित होते हैं ।

8. **अप्राप्य संयोग (Unattainable Combination):** ये उत्पादन संभावना वक्र के बाहरी भाग पर स्थित बिन्दु होते हैं जिन्हें दिये गये उत्पादन के साधनों से प्राप्त नहीं किया जा सकता है ।

9. **पूँजीगत वस्तुएँ (Capital Goods):** ये वे वस्तुएँ होती हैं जो उपभोक्ता वस्तुओं के उत्पादन में काम आती हैं । इन्हें उत्पादक वस्तुएँ भी कहा जाता है ।

10. **उपभोक्ता वस्तुएँ(Consumer Goods):** ये वे वस्तुएँ होती हैं जो उपभोक्ताओं की आवश्यकताओं की प्रत्यक्ष संतुष्टि हेतु काम में आती हैं ।

4.8 स्व- परख प्रश्न

1. आर्थिक समस्या को'परिभाषित कीजिए ।
2. आर्थिक समस्या क्यों उत्पन्न होती है?
3. आर्थिक प्रणाली सो आप क्या समझते हैं ?
4. पूँजीवादी अर्थव्यवस्था को परिभाषित कीजिए
5. समाजवादी आर्थिक प्रणाली का अर्थ स्पष्ट कीजिए ।
6. मिश्रित अर्थव्यवस्था को परिभाषित कीजिए ।
7. एक अर्थव्यवस्था की प्रमुख समस्याओं के नाम बताइये ।
8. आर्थिक समस्या को स्पष्ट कीजिए ओर इसके उत्पन्न होने के कारणों पर विस्तारपूर्वक प्रकाश डालिए ।
9. एक आर्थिक प्रणाली की मुख्य समस्याओं/कार्यो का विवेचन कीजिए ।
10. आर्थिक प्रणाली का अर्थ स्पष्ट करते हुए इसकी केन्द्रीय समस्याओं पर प्रकाश डालिए ।

4.9 उपयोगी पुस्तकें -

1. व्यावसायिक अर्थशास्त्र	:	पी०सी० अग्रवाल एवं एम0डी० अग्रवाल, रमेश बुक डिपो, जयपुर ।
2. व्यावसायिक अर्थशास्त्र	:	गोपाल सिंह, गोदारा एवं गर्ग, कालेज बुक हाउस, जयपुर
3. Business Economics	:	Misra and Puri, Himalaya Publications, Delhi.
4. Business Economics	:	M. D. Agarwal and Som Deo, Ramesh Book Depot, Jaipur.

इकाई-5

मांग की अवधारणा एवं इसके निर्धारक तत्व, मांग का नियम (Concept of demand and its determines, Laws of demand)

इकाई की रूपरेखा

5.0 उद्देश्य

5.1 प्रस्तावना

5.2 मांग का अभिप्राय:

- 1 मांग के प्रकार
- 2 मांग अनुसूची

5.3 मांग का नियम

- 1 मांग के नियम की व्याख्या
- 2 मांग के नियम के अपवाद
- 3 मांग में वृद्धि या कमी
- 4 मांग में विस्तार एवं संकुचन

5.4 मांग को प्रभावित करने वाले तत्व

5.5 सारांश

5.6 शब्दावली

5.7 स्वपरख प्रश्न

5.8 उपयोगी पुस्तकें

5.0 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के बाद आप इस योग्य हो सकेंगे कि:

1. मांग के अर्थ, विभिन्न प्रकार की मांग और मांग अनुसूचियों की व्याख्या कर सकें ।
2. मांग के नियम की व्याख्या कर सकें ।
3. मांग को प्रभावित या निर्धारित करने वाले विभिन्न घटकों का वर्णन कर सकें ।

5.1 प्रस्तावना

मांग की नियम प्रत्यक्ष एवं परोक्ष रूप में सभी आर्थिक क्रियाओं को प्रभावित करता है । इच्छा, आवश्यकता, मांग अलग-अलग अवस्थायें है । मानवीय मनोवृत्ति मनुष्य को अच्छे से अच्छा उपभोग करने की प्रेरणा देती है । किन्तु मनुष्य के पास इन असीमित इच्छाओं की पूर्ति के लिए सीमित साधन होते है । उनमें से जिन इच्छाओं की पूर्ति के लिए वे सीमित साधन खर्च

करने को तैयार होते है तो वे आवश्यकतायें बन जाती है । और जिन आवश्यकताओं को वास्तव में पूरा कर लिया जाता है वे मांग कहलाती है ।

5.2 मांग की अभिप्राय

प्रो. जे एस मिल (J.S. Mill) के अनुसार "मांग शब्द का अभिप्राय: मांगी गयी उस मात्रा से लगाया जाना चाहिए जो एक निश्चित कीमत पर क्रय की जाती है । "

प्रो. बेन्हम (Benham) के अनुसार "किसी दी गई कीमत पर वस्तु की मांग वस्तु की वह मात्रा है जो उस कीमत पर एक निश्चित समय में खरीदी जाती है । "

(i) वस्तु की इच्छा (Desire)

(ii) वस्तु खरीदने के लिए पर्याप्त साधन (Sufficient resources)

(iii) साधन व्यय करने की तत्परता (Willingness to pay)

(iv) निश्चित कीमत (Given price)

(v) निश्चित समयावधि (Given time period)

मांग के प्रकार (Kinds of demand) - किसी भी वस्तु या सेवा के लिए मांग की मात्रा तीन बातों पर निर्भर करती है ।

(i) वस्तु की कीमत (ii) उपभोक्ता की आय (iii) संबंधित वस्तुओं की कीमतें । इन्हीं बातों के आधार पर

मांग के तीन प्रकार है ।

(1) मूल्य मांग (Price demand) - किसी भी वस्तु की मूल्य मांग एक निश्चित समय अवधि में उन मांग मात्राओं को बताती है जो विभिन्न मूल्यों पर उपभोक्ता द्वारा क्रय की जाती है । मांग को प्रभावित करने वाले अन्य घटकों-आय, रूचि, फैशन आदि को स्थिर मान लिया गया है ।

रेखाचित्र में मांग वक्र DD' ऊपर बायें से नीचे दाहिनी और गिरकर ऋणात्मक ढाल यह बताता है कि मूल्य के बढने पर मांग घटती तथा मूल्य के घटने पर मांग बढ़ती है। चित्र में जब वस्तु की कीमत OP है, तब वस्तु की मांग OQ1 है । कीमत बढ़कर OP1 हो जाती है तब मांग घटकर OQ रह जाती है । एक उपभोक्ता की मांग व्यक्तिगत मांग कहलाती है और सामूहिक मांग बाजार मांग कहलाती है । मूल्य मांग वक्र रेखाचित्र 5.1 में दिखायी गई है ।

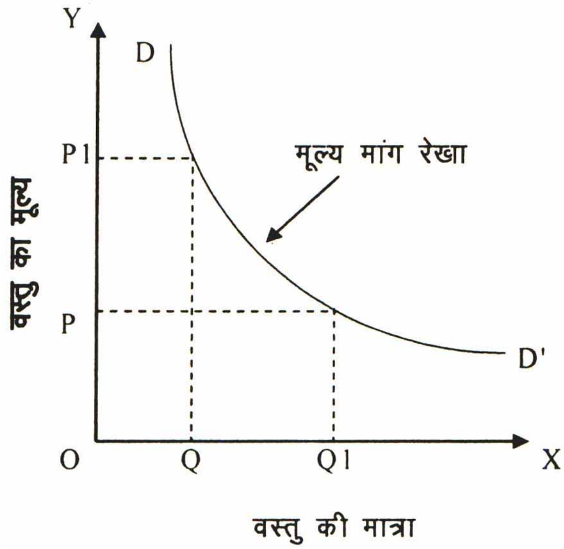

रेखा चित्र 5.1

(2) आय मांग (Income demand) आय मांग का अर्थ यह है कि जब एक उपभोक्ता निश्चित समय में वस्तु व संबंधित वस्तु के मूल्य स्थिर रहने पर आय के विभिन्न स्तरों पर उसकी विभिन्न मात्राएं खरीदने को तैयार है । मूल्य के साथ-साथ रूचि, फैशन, आदत व स्वभाव को स्थिर मान लिया गया है ।

आय मांग में उपभोक्ता की आय तथा वस्तु की मांगी गयी मात्राओं के संबंध को व्यक्त किया जाता है । वस्तुओं और सेवाओं को दो भागों में बांटा जा सकता है ।

(i) **श्रेष्ठ या उत्तम वस्तुएं (Superior goods)** - ऐसी वस्तुओं की मांग उपभोक्ता की आय बढ़ने के साथ बढ़ती है तथा आय घटने के साथ घटती है । इसलिए मांग रेखा बायें से दायें को ऊपर उठती हुई होती है ।

आय मांग वक्र DD है तथा OT आय स्तर पर मांग OQ है । किन्तु OT1 आय स्तर पर मांग बढ़कर OQ हो जाती है । इस स्थिति में उपभोक्ता P से P1 नये संतुलन पर पहुँच जाता है । इसे रेखाचित्र 5.2 से देखा जा सकता है ।

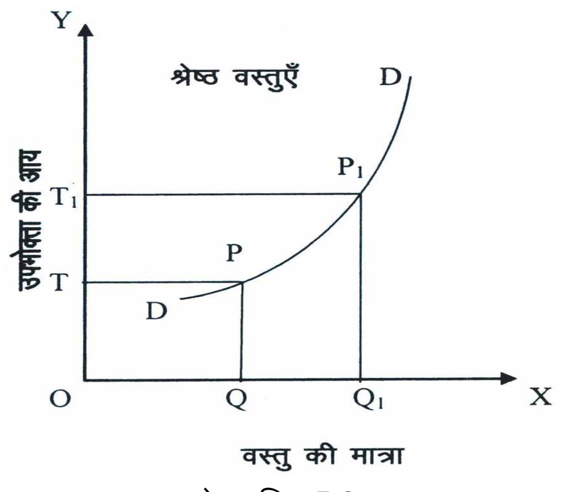

रेखा चित्र 5.2

(ii) **निकृष्ट वस्तुयें अथवा गिफिन वस्तुएं (Inferior goods)** - ऐसी वस्तुओं और सेवाओं की माँग आय बढ़ने के साथ घट जाती है । और आय घटने के साथ बढ़ जाती है । इन वस्तुओं के संबंध में उपभोक्ता की आय और मांग में ऋणात्मक संबंध होता है इसमें साधारण अनिवार्य आवश्यकतायें जैसे मोटा अनाज, मोटा कपड़ा आदि आते है । क्योंकि उपभोक्ता आय बढ़ने पर उसे श्रेष्ठ वस्तुओं पर व्यय करना पसंद करता है । इसलिए आय-मांग रेखा बायें से दायें, ऊपर से नीचे की और गिरती हुई होती है।

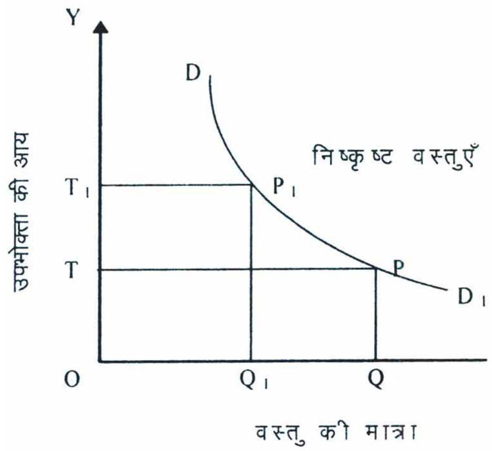

रेखा चित्र 5.3

चित्र 5.3 में DD1 मांग वक्र है । उपभोक्ता का आय स्तर OT है तो वस्तु की मांग OQ है । जब आय स्तर बढ़कर OT1 हो जाता है, तो वस्तु की मांग घटकर OQ1 हो जाती है।

(3) **आड़ी मांग या तिरछी मांग (Cross demand)** - एक वस्तु की मांग केवल उस वस्तु के मूल्य या उपभोक्ता की आय से प्रभावित नहीं होती बल्कि अन्य संबंधित वस्तु की कीमतों से भी प्रभावित होती है । इस प्रकार तिरछी मांग एक वस्तु की मांगी गई मात्राओं तथा उस वस्तु से संबंधित दूसरी वस्तु के मूल्यों में परिवर्तन के संबंध को बताती है । ये संबंध दो तरह के हो सकते है ।

(i) **प्रतिस्थापन या प्रतियोगी वस्तुयें (Subsitute or competing goods)** - ये वस्तुयें एक दूसरे के स्थान पर प्रयोग में लायी जाती हैं जैसे चाय के स्थान पर कॉफी । इसमें मूल्य और मांगी गयी मात्रा में प्रत्यक्ष संबंध होता है । यदि x वस्तु के मूल्य में वृद्धि होती है । तो y की मांग में वृद्धि होती है । इसके विपरीत x के मूल्य में कमी होती है, तो y वस्तु की मांग में कमी होती है ।

चित्र 5.4 में DD1 मांग वक्र में चाय के मूल्य में परिवर्तन से काँफी की मांग में परिवर्तन होता है । चाय के मूल्य में OP0से OP1 वृद्धि होती है तो काँफी की मांग में भी OQ0 से OQ1 वृद्धि हो जाती है । यदि चाय का मूल्य घटकर OP हो जाता है तो काँफी की मांग भी OQ हो जाती है ।

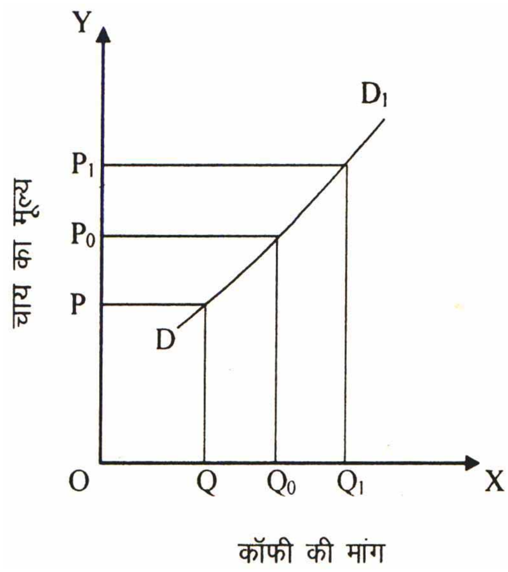

रेखा चित्र 5.4

(ii) **पूरक वस्तुयें (Complementary goods) -** ये वस्तुयें एक दूसरे की सहयोगी होती है। एक के अभाव में दूसरे का प्रयोग संभव नहीं है । जैसे पैन-स्याही, चीनी-दूध, कार-पेट्रोल आदि। पूरक वस्तुओं में मूल्य व मांगी गयी मात्रा में विपरीत संबंध होता है । एक वस्तु का मूल्य बढ़ने पर दूसरी की मांग स्वत: ही कम हो जाती है ।

रेखाचित्र 5.5 में जब कार का मूल्य OT1 से बढ़कर OT हो गया तो पेट्रोल की मांग भी OQ1 से घटकर OQ रह गई।

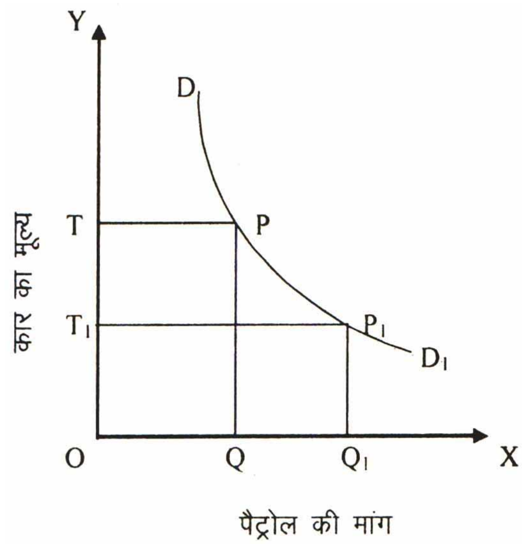

रेखा चित्र 5.5

(2) **मांग अनुसूची (Demand Schedule) -** मांग अनुसूची किसी समय विशेष में दिये हुए मूल्यों पर उस वस्तु की खरीदी जाने वाली मात्राओं को दर्शाती है ।ये दो प्रकार की होती है ।

(i) व्यक्तिगत मांग तालिका (Individual demand schedule) - व्यक्तिगत मांग तालिका वह है जो एक व्यक्ति के संबंध में इस बात की जानकारी प्रदान करती है कि वह किसी

समय विशेष में दी हुई कीमत पर उस वस्तु की कितनी-कितनी मात्रा को क्रय करने के लिए तैयार है ।

व्यक्तिगत मांग तालिका

मूल्य प्रति इकाई (रूपये में)	मांगी गयी X वस्तु की इकाइयाँ	
1	60	इससे स्पष्ट है कि जैसे -जैसे वस्तु कि कीमत बढ़ती जाती है । वैसे-वैसे उसकी मांगी जाने वाली मात्रा घटती जाती है ।
2	50	
3	40	
4	30	
5	20	
6	10	

OY अक्ष पर X वस्तु की कीमत तथा OX अक्ष पर वस्तु की मात्रा है । वस्तु की कीमत 1 रूपया होने पर मांग 60 इकाइयाँ व कीमत 6 रूपये होने पर मांग 10 इकाइयाँ हो जाती है ।

(ii) बाजार मांग तालिका (Market demand schedule) - किसी बाजार विशेष में वस्तु के बहुत से क्रेता होते है । यदि सभी व्यक्तिगत क्रेताओं की मांग तालिकाओं का योग कर दिया जावे तो यही बाजार मांग तालिका कहलाती है ।

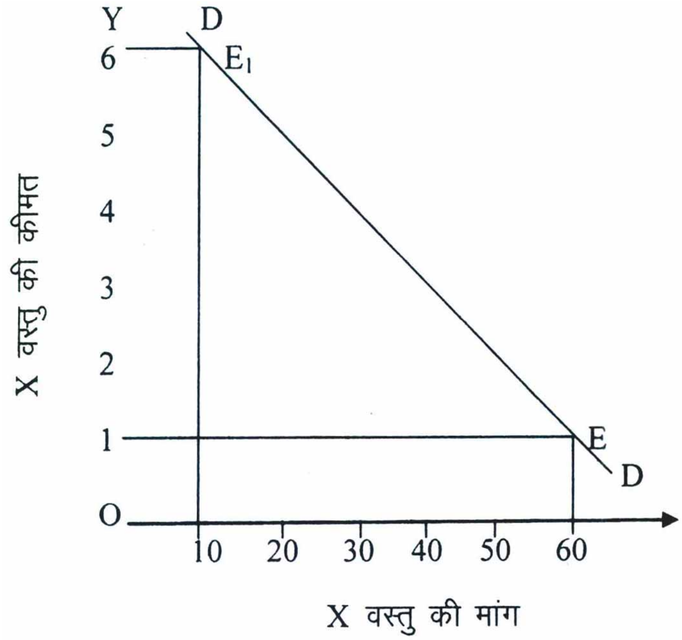

रेखाचित्र 5.6

		बाजार मांग तालिका या अनुसूची		
वस्तु का मूल्य		मांगी गई मात्राएँ		कुल मांग
	x	y	z	X+y+z
1	10	9	8	27
2	8	7	7	22
3	6	5	6	17
4	4	4	4	11
5	2	2	3	7
6	1	1	2	4

ऊपर वाली तालिका में विभिन्न उपभोक्ताओं की मांग को दिखाया गया है तथा इनके योग से बाकी मात्राएं बाजार की कुल मांग कहलाती है । नीचे वाले रेखाचित्रों में बायें वाले रेखाचित्र (अ) में व्यक्तिगत मांग वक्र दिखाये गये है तथा दायें वाले रेखाचित्र (ब) में इनके योग से बना वस्तु का बाजार मांग वक्र दिखाया गया है ।

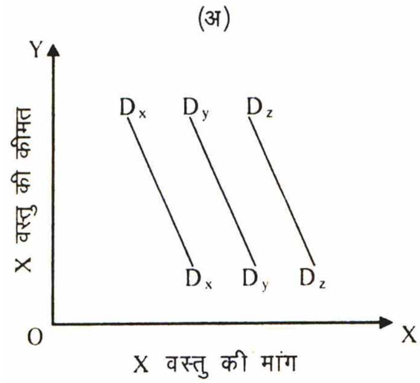

रेखाचित्र 5.7

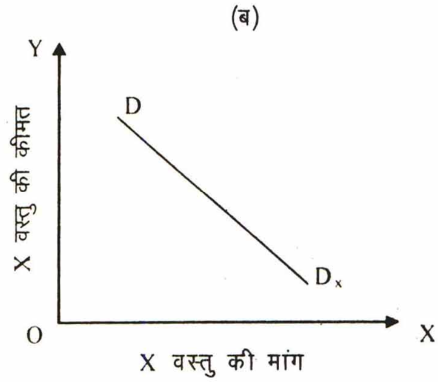

रेखाचित्र 5.8

5.3 मांग का नियम (Law of Demand)

किसी वस्तु के मूल्य तथा उसकी मांग गई मात्रा के मध्य विपरीत संबंध को मांग का नियम कहते है । अर्थात् मूल्य के गिरने से मांग बढ़ती है ओर मूल्य के बढ़ने से मांग घटती है । परन्तु मांग का नियम यह नहीं बताता है कि मूल्य और मांग के बीच क्या आनुपातिक संबंध है। यह केवल मांग में वृद्धि या कमी को बताता है।

मांग के नियम की मान्यतायें (Assumptions of the law of demand) - मांग का नियम कुछ मान्यताओं पर आधारित है और ये मान्यताएं मानने पर ही मांग का नियम लागू होता है । ये निम्न है.

(i) उपभोक्ता की आय में किसी प्रकार का परिवर्तन नहीं होना चाहिए ।

(ii) उपभोक्ता का स्वभाव, रूचि एवं फैशन स्थिर रहनी चाहिए ।

(iii) वस्तुओं की कीमत तथा आय में परिवर्तन होना चाहिए ।

(iv) वस्तु को क्रय करते समय इसकी स्थानापन्न वस्तु को ध्यान में नहीं रखा जाता है ।

मांग के नियम की व्याख्या (Explanation of the law of demand) - इसके अंतर्गत यह अध्ययन किया जाता है । कि मांग वक्र ऊपर से नीचे दायीं ओर क्यों झुकता है । अर्थात् वस्तु की कीमत और उसकी मांग में विपरीत संबंध क्यों होता है? इसके निम्न कारण है ।

(i) सीमान्त उपभोगिता ह्रास नियम (Law of diminishing marginal utility) - मांग का नियम सीमान्त उपयोगिता ह्रास नियम पर आधारित है । उपभोक्ता किसी भी वस्तु का मूल्य उसकी सीमान्त उपयोगिता से अधिक नहीं देता है । वस्तु की कम इकाइयाँ खरीदने पर वस्तु की सीमान्त उपयोगिता अधिक मिलती है तो वह अधिक अथवा ऊँचा मूल्य देने को तैयार हो जायेगा और वस्तु की अधिक इकाइयां क्रय करने पर वस्तु की सीमान्त उपयोगिता घटती जाती है अत: वह वस्तु क्रय करने पर कम मूल्य देगा ।

(ii) प्रतिस्थापना प्रभाव (Substitution effect)- मांग वक्र के ऊपर बायें से दायें गिरने का कारण प्रतिस्थापना प्रभाव भी है । जब दो या दो से ज्यादा वस्तुओं से आवश्यकता की पूर्ति की जा सकती है तो उसे प्रतिस्थापन प्रभाव कहते है जैसे भोजन पकाने हेतु मिट्टी का तेल उपयोग में लाया जाता है । लेकिन उसकी कीमत बढ़ने पर उसकी मांग कम हो जायेगी, क्योंकि दूसरी वस्तुओं जैसे कोयला. लकड़ी आदि का मिट्टी के तेल के स्थान पर उपयोग किया जावेगा । इस प्रकार प्रतिस्थापना प्रभाव के कारण कीमत बढ़ने पर मांग कम और कीमत होने पर मांग बढ़ जाती है ।

(iii) आय प्रभाव (Income effect) - वस्तु के मूल्य में कमी होने पर उपभोक्ता की वास्तविक आय बढ़ जाती है । अब वह पहले खरीदी जाने वाली वस्तु की मात्रा कम मुद्रा में खरीद सकता है या पहले से वस्तु की अधिक मात्रा खरीद सकता है । जैसे चीनी 15 रू. किलो से कम होकर 10 रू. हो जाती है, तो उपभोक्ता, 15 रू. में ½ kg चीनी खरीद सकता है तथा कभी-कभी वस्तु के मूल्य में इतनी वृद्धि हो जाती है कि उसकी मांग कम हो जाती है ।

(iv) उपभोक्ताओं की संख्या में परिवर्तन (Changes in consumer's numbers) - किसी वस्तु के मूल्य में कमी होने से पहले उपभोग न करने वाले उपभोक्ता भी उसका उपभोग करने लगते हैं तो उपभोक्ताओं की संख्या बढ़ जाती है । मूल्य में वृद्धि होने पर कुछ लोग मांग बंद कर देते है. तो उपभोक्ताओं की संख्या कम हो जाती है ।

2. मांग के नियम के अपवाद (Exceptions) - मांग के नियम के अपवाद से अर्थ यह है कि कभी-कभी मांग वक्र बायें से दायें को नीचे से ऊपर की ओर चढ़ता हुआ दो सकता है । अर्थात् वस्तु की कीमत और मांग से सीधा संबंध हो जाता है । प्रमुख अपवाद निम्न हैं ।

(i) वस्तु के भावी मूल्य में वृद्धि की संभावना - जब किसी वस्तु के भविष्य में मूल्य वृद्धि की संभावना होती है तो उसकी मांग मूल्य बढ़ने पर भी बढ़ जाती है । जैसे सोने के मूल्य बढ़ने शुरू होते है तो उसकी मांग भी बढ़ जाती है ।

(ii) अज्ञानता - क्रेता के आलस्य के कारण कई बार वस्तु की कीमत कम होने के कारण उसको घटिया समझ कर खरीदा नहीं जाता है और जैसे ही कीमत बढ जाती है तो उसे उपयोगी समझा जाता है और मांग बढ़ जाती है ।

(iii) प्रदर्शनकारी प्रभाव (Demonstration effect) - ऊँची कीमत वाली वस्तुओं को खरीद कर समाज में अपनी शानशौकत प्रदर्शित की जाती है । जैसे हीरे, जवाहरात आभूषण आदि वस्तुओं के मूल्यों में जैसे-जैसे वृद्धि होती है, वैसे-वैसे इनकी मांग बढ़ती जाती है ।

(iv) निकृष्ठ वस्तुयें (Inferior goods) - निकृष्ट अर्थात् घटिया किस्म की वस्तुयें जिनका उपयोग निर्धन वर्ग करता है । उनकी कीमत कम होने पर उनका उपयोग भी कम हो जाता है और अन्य श्रेष्ठ वस्तुओं की मांग बढ़ जाती है तथा इन निकृष्ट वस्तुओं की मांग घट जाती है ।

(3) मांग में वृद्धि तथा मांग में कमी (Increase in demand and decrease in demand) - जब किसी वस्तु के मूल्य स्थिर रहें, परन्तु अन्य तत्वों में परिवर्तन के कारण वस्तु की मांग में परिवर्तन होते हैं तो उन्हें मांग में वृद्धि तथा मांग में कमी के नाम से जाना जाता है । जब किसी वस्तु के मूल्य स्थिर रहने पर वस्तु की अधिक मांग की जाती है अथवा मूल्य बढ़ जाने पर भी पहले जितनी मांग की जाती है तो इसे मांग में वृद्धि कहते है । मांग में वृद्धि होने पर मांग वक्र बदल कर प्रारम्भिक मांग वक्र के दायी ओर चला जाता है । इसे रेखाचित्र 5.9 में देखा जा सकता है ।

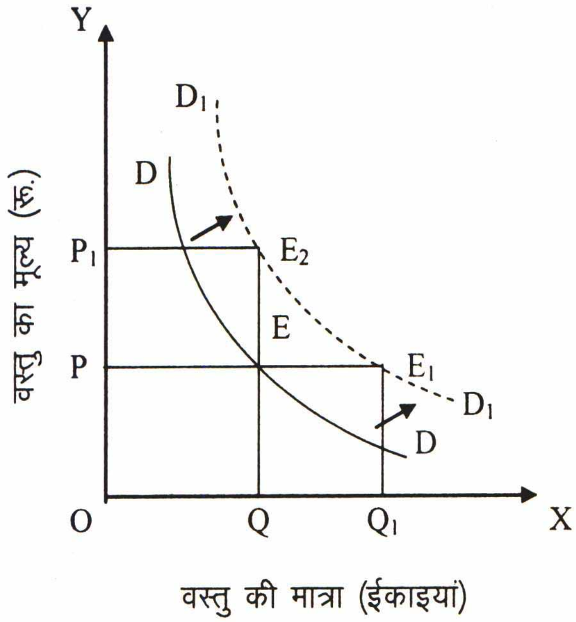

रेखाचित्र 5.9

उपभोक्ता की प्रारम्भिक मांग रेखा DD है जिस पर उपभोक्ता OP मूल्य पर वस्तु की OQ मात्रा मांगता है । अब वस्तु का मूल्य स्थिर रहता है परन्तु अन्य कारणों (उपभोक्ता की आय, स्वभाव आदि) से उपभोक्ता की मांग रेखा बदलकर D1D1 हो जाती है तथा उपभोक्ता OP मूल्य पर OQ के स्थान पर OQ1 मात्रा मांगने लगता है तो यह मांग में वृद्धि है । इसी तरह मूल्य OP से बढ़ कर OP1 हो जाने पर भी उपभोक्ता पहले जितनी OQ मात्रा की मांग करता रहता है तो यह मांग में वृद्धि कहलायेगी ।

जब किसी वस्तु के मूल्य स्थिर रहने पर अन्य कारणों में परिवर्तन के कराएँ नई मांग रेखा प्रारम्भिक मांग रेखा के बांयी ओर खिसक जाती है तथा उपभोक्ता वस्तु की कम मांग करने लगता है ।

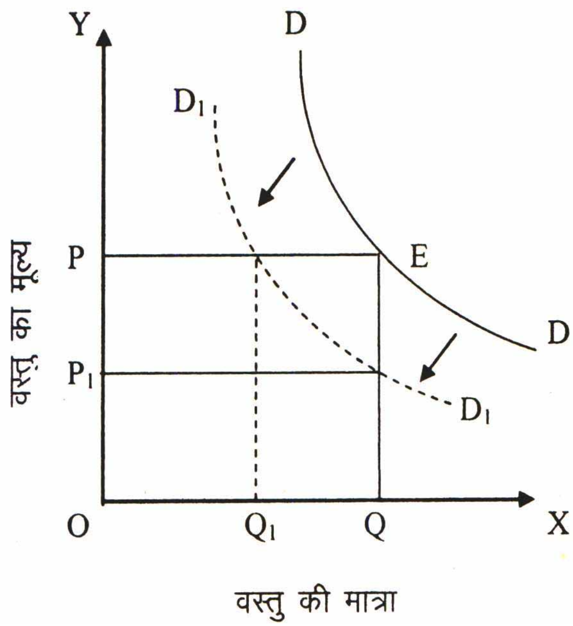

रेखा चित्र 5.10

रेखा चित्र 5.10 में उपभोक्ता का प्रारम्भिक मांग वक्र या रेखा DD है जिस पर उपभोक्ता OP मूल्य पर OQ मात्रा की मांग करता है अब अन्य कारणों में परिवर्तन परन्तु मूल्य स्थिर रहने पर उपभोक्ता का मांग वक्र D1D1 हो जाता है तो उपभोक्ता OP मूल्य पर वस्तु की OQ1 अथवा पहले से कम मांग करने लगता है तो यह मांग में कमी कहलावेगी । इसी तरह उपभोक्ता OP मूल्य से घटकर OP1 हो जाने पर पहले जितनी OQ मात्रा हो क्रय करता है तो यह भी मांग में कमी कहलावेगी ।

4. मांग में विस्तार तथा मांग में संकुचन (Extension and contraction of demand) - जब अन्य बातें स्थिर रहने पर केवल मूल्य परिवर्तन के कारण वस्तु की मांगी गई मात्रा में वृद्धि अथवा कमी होती है तो यह मांग में विस्तार अथवा संकुचन के नाम से जाना जाता है । मांग में विस्तार अथवा संकुचन के कारण उपभोक्ता की मांग रेखा परिवर्तित नहीं होती है । उपभोक्ता प्रारम्भिक मांग वक्र पर एक बिन्दु से दूसरे बिन्दु पर चला जाता है । जब वस्तु के मूल्य में कमी होती है तब उपभोक्ता द्वारा वस्तु की मांग जाने वाली मात्रा बढ़ जाती है तो यह मांग का विस्तार कहलाता है और जब मूल्य बढ़ जाने पर वस्तु की कम मात्रा मांगी जाती है तो यह मांग में संकुचन कहलाता है । इन्हें रेखाचित्र 5.11 से देखा जा सकता है ।

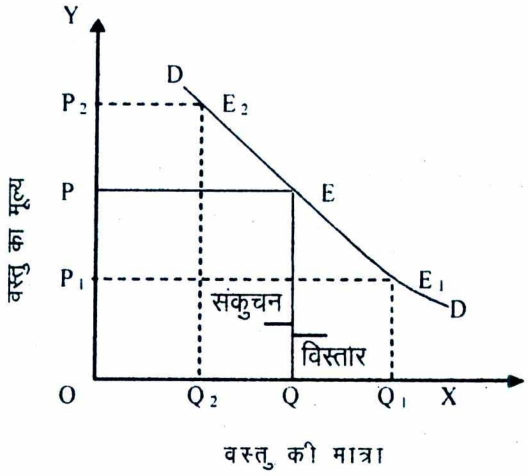

रेखा चित्र 5.11

उपरोक्त रेखा चित्र में उपभोक्ता का प्रारम्भिक संतुलन E बिन्दु पर है जहां उपभोक्ता वस्तु के OP मूल्य पर वस्तु की OQ मात्रा की मांग करता है । अब मूल्य घटकर OP1 हो जाने पर उपभोक्ता वस्तु की मांग OQ1 करने लगता है तथा उपभोक्ता का संतुलन E1 बिन्दु पर होता है अत: उपभोक्ता का E बिन्दु से E1 बिन्दु पर जाना तथा OQ से मांग का OQ1, होना मांग का विस्तार है । जबकि वस्तु का मूल्य बढ़ने पर उपभोक्ता का E बिन्दु से E1 बिन्दु पर जाना तथा उपभोक्ता द्वारा OQ से मांग का OQ2, होना मांग का संकुचन है ।

संक्षेप में कहा जा सकता है कि मांग में कमी अथवा वृद्धि मूल्यों के स्थिर रहने पर अन्य कारकों में परिवर्तन के कारण होती है जबकि मांग में विस्तार तथा संकुचन अन्य कारकों के स्थिर रहने पर केवल मूल्यों में परिवर्तन के कारण होता है ।

5.4 मांग को प्रभावित करने वाले तत्व अथवा निर्धारक घटक

(1) उपभोक्ता रूचि, आदत तथा फैशन (Taste, habit and fashion) - लोगों की रूचि, आदत व फैशन में परिवर्तन होने से उनसे संबंधित वस्तुओं की मांग भी परिवर्तित हो जाता है । उदाहरण के लिए चाय के स्थान पर कॉफी. धोती के स्थान पर पैंट का प्रयोग बढ़ने पर मांग में परिवर्तन हो जाते है ।

(2) मौद्रिक तथा वास्तविक आय में परिवर्तन (Change in the monetary and real income) - मौद्रिक आय में परिवर्तन का अर्थ, अर्जित मुद्रा की मात्रा में परिवर्तन से है और वास्तविक आय में परिवर्तन का अर्थ पूर्व आय से क्रय की जाने वाली वस्तुओं और सेवाओं की मात्रा में परिवर्तन से है । उपभोक्ता की आय में परिवर्तन से मांग तालिका व मांग वक्र में परिवर्तन होता है । आय में परिवर्तन का प्रभाव अनिवार्य वस्तुओं की मांग पर कम और आरामदायक व विलासिता की वस्तुओं पर अधिक पडता है ।

(3) चलन मुद्रा की मात्रा में परिवर्तन (Changes in the amount of money in circulation) - चलन मुद्रा की मात्रा में परिवर्तन से मुद्रा के मूल्य, वस्तुओं के मूल्य और क्रय शक्ति में परिवर्तन होता है । मूल्य वृद्धि के कारण कुछ वस्तुओं की मांग कम

हो जाती है और नयी वस्तुओं की मांग बढ़ जाती है । मुद्रा प्रसार के समय वस्तुओं की मांग बढ़ जाती है और संकुचन के समय मांग कम हो जाती है ।

(4) जनसंख्या में परिवर्तन (Changes in the population) - जनसंख्या बढ़ने से मांग बढ़ती है और जनसंख्या कम होने से मांग कम होती है । बच्चों का अनुपात अधिक होने से उनसे संबंधित वस्तुओं की मांग अधिक होगी । उदाहरणार्थ, खिलौने, बिस्कुट आदि ।

(5) सम्पत्ति तथा आय के वितरण में परिवर्तन (Changes in the distribution of wealth and income) - सामाजिक तथा आर्थिक समानता को ध्यान में रखते हुए जब सरकार अमीर पर अधिक कर लगाकर निर्धन वर्ग में वितरित करती है तो निर्धन लोग भी उन वस्तुओं को खरीद सकते है जिनको पहले नहीं खरीद सकते थे । इस प्रकार उनके आय स्तर में परिवर्तन से मांग में परिवर्तन हो जाते है ।

(6) प्रतिस्थापन तथा पूरक वस्तुओं के मूल्यों में परिवर्तन (Changes in the price of other goods) - किसी भी वस्तु के मूल्य में परिवर्तन होने पर उसकी प्रतिस्थापन अथवा पूरक वस्तु की मांग में भी परिवर्तन हो जाते है । चाय के मूल्य बढ़ जाते है तो उसकी प्रति स्थापक वस्तु कॉफी की मांग में वृद्धि होगी । स्कूटर की कीमत में कमी हो जाये तो उसकी मांग वृद्धि होने पर पूरक वस्तु पेट्रोल की मांग में वृद्धि हो जायेगी ।

(7) व्यापार की दशा में परिवर्तन (Changes in the state of trade) - व्यापारिक समृद्धि के समय में मूल्यों में वृद्धि होने पर भी कुछ वस्तुओं की मांग अधिक होती है और मंदी के समय अधिकांश वस्तुओं की मांग कम होती है ।

(8) बचत करने की वृत्ति में परिवर्तन (Changes in the propensity to save) - यदि लोगों में बचत करने की प्रवृत्ति अधिक है तो खर्च करने के लिए मुद्रा कम होगी फलस्वरूप वस्तुओं की मांग कम होगी । यदि जोग तरलता रखना पसंद करते है तो भी वस्तुओं की मांग कम होगी क्योंकि खर्च करने के लिए मुद्रा कम होगी ।

(9) ज्ञान में वृद्धि (Expansion of Knowledge) - नवीन आविष्कारों के कारण विभिन्न प्रयोगों की जानकारी मिलती है जिससे वस्तु विशेष की मांग में वृद्धि होती है । विज्ञापनों के कारण भी वस्तु की मांग बढ़ जाती है ।

(10) जलवायु तथा मौसम में परिवर्तन (Changes in climate & season) - जलवायु व मौसम में परिवर्तन के कारण भी मांग में परिवर्तन होता है । जैसे सर्दी में ऊनी कपड़ों गर्मी में सूती कपडों की मांग बढ़ जाती है ।

(11) सरकार की नीति (Government policy) - सरकारी हस्तक्षेप के कारण नीतियों में परिवर्तन से भी मांग में परिवर्तन होता है । सरकार द्वारा प्रेरित उपभोग की वस्तुओं की मांग में वृद्धि होगी जबकि हतोत्साहित वस्तुओं की मांग में कमी होगी ।

(12) अन्तर्संबंधित वस्तुओं की मांग में परिवर्तन (Changes in the demand for inter related goods) - ये तीन प्रकार की होती है ।

(i) व्युत्पन्न मांग (Derived demand) - जब किसी वस्तु की मांग को पूरा करने के लिए दूसरी वस्तु की मांग की जाती है वह व्युत्पन्न मांग कहलाती है । जैसे

रोटी की मांग के संतुष्ट करने के लिए आटे की मांग की जायेगी । एक की मांग में वृद्धि होने पर दूसरे की मांग में भी वृद्धि होगी ।

(ii) **संयुक्त मांग (Joint demand) -** जब दो या अधिक वस्तुओं की मांग किसी आवश्यकता की पूर्ति के लिए की जाये तो वह संयुक्त मांग होगी । जैसे कंकरीट बनाने के लिए रेत, सीमेंट और बजरी । अत: कंकरीट की मांग में वृद्धि होने से, इन तीनों की मांग में भी वृद्धि होगी ।

(iii) **मिश्रित मांग (Composite) -** विभिन्न उद्देश्यों के लिए वस्तु की कुल मांग को मिश्रित मांग कहते है । जैसे कोयले की मांग घरेलू ईधन, यातायात के साधनों, उद्योग धन्धों तथा विद्युत शक्ति उत्पादित करने के लिए की जाती है तो इन सभी मांगों के योग को मिश्रित मांग कहते है ।

(13) सामाजिक एवं भौतिक मूल्य (Social and materialistic values) - यदि समाज भौतिकवादी विचारधारा से प्रभावित होता है तो वस्तुओं की मांग में वृद्धि होगी और आध्यात्मिक विचारधारा से प्रभावित होता है तो मांग में कमी होगी ।

(14) वस्तु की पूर्ति (Supply of commodity) - वस्तु की मांग उस वस्तु की पूर्ति से भी प्रभावित होती है । अनेक वस्तुओं की पूर्ति को निश्चित मात्रा से अधिक नहीं बढाया जा सकता है तो इन वस्तुओं की माँग स्वत: ही उस मात्रा से अधिक नही हो सकती है ।

(15) मुद्रा एवं सारव नीति (Money and credit policy) - सरकार की मुद्रा एवं सारव नीति से भी मांग प्रभावित होती हैं । यदि सरकार उदार नीति अपनाती है तो मुद्रा की मात्रा में वृद्धि होगी, जिससे आय बढ़ेगी और वस्तुओ की मांग बढेगी । यदि सरकार कठोर नीति अपनाती है तो मुद्रा की मात्रा में कमी होने से मांग भी कम हो जायेगी ।

5.5 सारांश

मांग में कई महत्वपूर्ण तत्व सम्मिलित है जैसे इच्छा, पर्याप्त साधन, साधनों को व्यय करने की तत्परता, निश्चित कीमत एवं निश्चित समयावधि । मांग तीन प्रकार की होती है मूल्य मांग, आय मांग व आड़ी या तिरछी मांग । वस्तु की मांग उपभोक्ता की आय व संबधित वस्तुओं की कीमतों पर निर्भर करती है । मांग वक्र से पहले माँग तालिका या अनुसूची बनायी जाती है । ये दो तरह की होती हैं व्यक्तिगत मांग अनुसूची एवं बाजार मांग अनुसूची । इन पर आधारित मांग वक्र भी दो तरह के होते है । व्यक्तिगत मांग वक्र एवं बाजार मांग वक्र । किसी वस्तु के मूल्य व उसकी मांगी जाने वाली मात्रा के मध्य विपरीत संबंध को मांग का नियम कहते है । नियम की कुछ मान्यतायें होती हैं अर्थात् ये बातें समान रहती है तभी मांग का नियम लागू होता है । लेकिन कुछ परिस्थितियों में मांग के नियम के अपवाद भी होते है अर्थात् मूल्य और मांग में विपरीत संबंध न होकर प्रत्यक्ष संबंध हो जाता है । मांग में वृद्धि और कमी तथा विस्तार एव संकुचन जैसी स्थितियाँ भी आती है जो मांग को प्रभावित करने वाले घटको के कारण होती है ।

5.6 शब्दावली

- **मौद्रिक आय (Monetary income) -** जो मुद्रा प्राप्त होती है वह मौद्रिक आय कहलाती है ।
- **वास्तविक आय (Real income) -** आय के बदले मे जितनी वस्तुओं व सेवाओं की मात्रा क्रय की जा सकती है, वह वास्तविक आय कहलाती है ।
- **श्रेष्ठ वस्तुयें (Superior goods) -** अच्छी किस्म की वस्तुयें जो ऊँची कीमत पर उपलब्ध होती है तथा आय बढने पर अधिक क्रम हो जाती है ।
- **निकृष्ट वस्तुयें (Inferior goods) -** घटिया किस्म की वस्तुयें जिनकी कीमत कम होती है तथा आय घटने पर अधिक क्रय की जाती है ।
- **प्रतिस्थापन वस्तुऐं (Substitute goods) -** विशेष आवश्यकता को पूरा करने के लिए एक वस्तु की बजाय दूसरी वस्तु का उपभोग करने पर दूसरी वस्तु प्रतिस्थापन वस्तु कहलाती है ।
- **पूरक वस्तुऐं (Complementary goods) -** विशेष आवश्यकता को पूरा करने के लिए दो संबंधित वस्तुओं का साथ-साथ उपभोग आवश्यक हो तो वे एक दूसरे की पूरक वस्तुऐं होती है ।
- **अनुसूची (Schedule) -** विभिन्न कीमतों पर मांगी गयी मात्रा को एक तालिका के रूप में लिखना ।
- **सीमान्त उपयोगिता ह्रास नियम (Law of diminishing marginal utility) -** एक वस्तु की जितनी ज्यादा इकाइयों का उपभोग करते जायेंगे, उससे मिलने वाली सीमान्त उपयोगिता कम होती जायेगी ।
- **प्रदर्शनकारी प्रभाव (Demonstration effect) -** दूसरे को देखकर वस्तुओं का उपभोग करना या दूसरों को दिखाने के लिए वस्तुओं का उपभोग करना ।
- **चलन मुद्रा (Currency) -** मुद्रा की वह मात्रा जो सरकार द्वारा बाजार में निर्गमित की जाती है ।
- **अन्तर्संबंधित वस्तुयें (Interrelated goods) -** वे संबंधित वस्तुयें जिनकी कीमत व मांग एक दूसरे से प्रभावित होती है ।
- **तरलता (Liquidity) -** मुद्रा की वह मात्रा जो लोग अपने पास नकद रखना चाहते है ।

5.7 स्वपरख प्रश्न

1. मांग के नियम को समझाइये । अधिकांश मांग वक्र बायें से दायें को नीचे की ओर क्यों झुकते हैं ?

2. मांग को प्रभावित करने वाले विभिन्न तत्वों का वर्णन कीजिए ।

3. मांग के नियम को समझाइये । "गिफिन विरोधाभास" की व्याख्या कीजिए ।

4. "मांग में वृद्धि" तथा "मांग के विस्तार" और "मांग में संकुचन" तथा "मांग में कमी"को स्पष्ट कीजिए ।

5. मांग का नियम क्या है ? इसके लागू होने के क्या कारण है 7

5.8 कुछ उपयोगी पुस्तकें

1. व्यावसायिक अर्थशास्त्र : अग्रवाल, अग्रवाल एवं गुप्ता (रमेश बुक डिपो, जयपुर)
2. व्यावसायिक अर्थशास्त्र : बीपी गुप्ता
3. Business Economics : M.D.Agarwal and Som Dev(Ramesh Book Depot, Jaipur)

इकाई-6

मांग की लोच

(Elasticity of demand)

इकाई की रूपरेखा

6.0 उद्देश्य

6.1 प्रस्तावना

6.2 मांग की लोच का अर्थ

6.3 मांग की लोच के प्रकार

1. मांग की मूल्य लोच
2. मांग की आय
3. मांग की तिरछी लोच

6.4 मांग की कीमत लोच की श्रेणियां

6.5 मांग की लोच को मापने की विधियां

1 प्रतिशत विधि

2. कुल व्यय विधि

3. बिन्दु लोच विधि

4. चाप लोच विधि

6.6 मांग की लोच को प्रभावित करने वाले तत्व

6.7 मांग की लोच का महत्व एवं उपयोग

6.8 विज्ञापन एवं मांग की लोच

6.9 मांग की विज्ञापन लोच को प्रभावित करने वाले तत्व

6.10 सारांश

6.11 शब्दावली

6.12 स्वपरख प्रश्न

6.13 उपयोगी पुस्तकें

6.0 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के बाद आप इस योग्य हो जायेंगे कि :

- मांग की लोच का अर्थ बता सकें ।
- मांग की लोच के प्रकार बता सके ।
- मांग की कीमत लोच की विभिन्न श्रेणियों को स्पष्ट कर सकें ।
- मांग की लोच को मापने की विभिन्न विधियों को बता सके ।
- मांग की लोच को प्रभावित करने वाले विभिन्न तत्वों के बारे में बता सकें ।
- मांग की लोच का महत्व एवं व्यवसायिक उपयोग को स्पष्ट कर सकें ।

- विज्ञापन एवं मांग की लोच के संबंध को बता सके
- मांग की विज्ञापन लोच को प्रभावित करने वाले तत्वों को बता सकें ।

6.1 प्रस्तावना

मांग का नियम बताता है की किसी वस्तु के मूल्य में परिवर्तन होने से उसकी मांग में भी परिवर्तन होता है । किन्तु मूल्य में परिवर्तन के परिणामस्वरूप सभी वस्तुओं की मांग में एक समान दर से परिवर्तन नहीं होता है । कुछ वस्तुओं के मूल्य में नाममात्र परिवर्तन से उसकी मांग में अधिक परिवर्तन होता है जबकि कुछ वस्तुओं के मूल्य के बहुत अधिक परिवर्तन होने पर भी उनकी मांग में बहुत कम परिवर्तन होता हैं मूल्य में परिवर्तन के परिणामस्वरूप मांग में जिस दर से परिवर्तन होता है वही मांग की लोच है । मूल्य में परिवर्तन के बाद मांग की मात्रा में परिवर्तन की दर को ही मांग की लोच कहा जाता है ।

6.2 मांग की लोच (Elasticity of demand)

अर्थ एवं परिभाषा- श्रीमती ज़ॉन रॉबिंसन के अनुसार " मांग की लोच ,कीमत में थोड़े से परिवर्तन के परिणामस्वरूप खरीदी गई मात्रा के आनुपातिक परिवर्तन को कीमत के आनुपातिक परिवर्तन से भाग देने पर प्राप्त होती है ।"

$$\text{मांग की लोच (ep)} = \frac{\text{मांग में आनुपातिक परिवर्तन}}{\text{कीमत में आनुपातिक परिवर्तन}}$$

अथवा

$$ep = \frac{\Delta X / X}{\Delta P / P} \qquad \frac{\Delta X / P}{\Delta P / X}$$

Or

ΔX = X वस्तु की मांग में परिवर्तन

X = X वस्तु की प्रारंभिक मांग

ΔP = कीमत में परिवर्तन की मात्रा

P = प्रारंभिक कीमत

प्रो. बोल्डिंग के अनुसार - "वस्तु की कीमत में एक प्रतिशत परिवर्तन के फलस्वरूप उस वस्तु की मांग में जो प्रतिशत परिवर्तन होगा उसे मांग की लोच कहते हैं

$$\text{मांग की लोच} = \frac{\text{मांग में प्रतिशत परिवर्तन}}{\text{कीमत में प्रतिशत परिवर्तन}}$$

अथवा

$$ep = \frac{\%Change\ in\ demand}{\%Change\ in\ price}$$

इन परिभाषाओं से स्पष्ट होता है कि कीमत में कमी एवं वृद्धि होने से मांग में जिस दर से वृद्धि एवं कमी होती है उसे मांग की लोच कहते हैं ।

6.3 मांग की लोच के प्रकार (Types of elasticity of demand)

मांग के तीन प्रकार है मूल्य मांग, आय मांग एवं आडी या तिरछी मांग । इसी के आधार पर मांग की लोच तीन प्रकार की होती है ।

1. मांग की मूल्य लोच (Price Elasticity) : यदि किसी वस्तु के मूल्य में परिवर्तन के कारण उस वस्तु की मांग घटती या बढ़ती है तो मांग में परिवर्तन की सीमा के अनुपात को 'मांग की मूल्य लोच' कहते हैं ।

मांग की मूल्य लोच (ep) = $\frac{\text{वस्तु की मांग में आनुपातिक–परिवर्तन}}{\text{वस्तु के मूल्य में आनुपातिक परिवर्तन}}$

अथवा

$$(ep)=\frac{\Delta Q}{\Delta P}\times\frac{P}{Q}$$

यदि वस्तु के मूल्य में प्रतिशत परिवर्तन कम तथा मांग में प्रतिशत परिवर्तन अधिक होता है तो मांग अधिक लोचदार तथा तथा यदि परिवर्तन समान होता है तो मांग इकाई के बराबर लोचदार और यदि प्रतिशत परिवर्तन उससे कम होता है तो मांग कम लोचदार होगी ।

2. मांग की आय लोच (Income Elasticity) : मांग की आय लोच यह बताती है कि किसी उपभोक्ता की आय में परिवर्तन होने पर उसकी मांग पर क्या प्रभाव पडता है । यदि किसी वस्तु के लिए मांग की आय लोच कम है तो इसका अर्थ है कि उपभोक्ता की आय में वृद्धि या कमी का उसकी मांग मात्रा पर बहुत कम प्रभाव पडेगा । जैसे आय में वृद्धि या कमी का प्रभाव उपभोक्ता की खाद्य सामग्री की मांग पर कम पडता है क्योंकि यह उसके लिए खरीदना अनिवार्य है । परन्तु कुछ वस्तुओं के लिए आय लोच अधिक हो सकती है । जैसे कार, स्कूटर, या कोई भी विलासिता की वस्तुयें । अत: अन्य बातें समान रहने पर (जैसे रूचि, फैशन, आदत, मूल्य आदि) आय में परिवर्तन से मांग में क्या परिवर्तन होगा वह परिवर्तन ही मांग की आय लोच कहलायेगी।

मांग की आय लोच (ei)= $\frac{\text{वस्तु की मांग में आनुपातिक–परिवर्तन}}{\text{आय में आनुपातिक परिवर्तन}}$

$$ei=\frac{\frac{Q_2-Q_1}{Q_2+Q_1}}{\frac{Y_2-Y_1}{Y_2+Y_1}} \quad \text{or} \quad \frac{\Delta Q}{Q_2+Q_1}\times\frac{\Delta Y}{Y_2+Y_1}$$

Y_2 = नई आय

Y_1 = पुरानी आय

Q_2 = नई मांग

Q_1 = पुरानी मांग

अधिकांश वस्तुओं की मांग की आय लोच धनात्मक (Positive) होती हैं । अर्थात् आय बढने पर वस्तु की अधिक मात्रा खरीदी जायेगी । कुछ वस्तुओं की मांग की आय लोच ऋणात्मक (Negative) होती हैं । उन्हें घटिया वस्तुयें (Interferior goods) कहते हैं ।

आय लोच पांच प्रकार की होती हैं ।

(i) मांग की शून्य आय लोच (zero income elasticity of demand) - इसका अर्थ है कि उपभोक्ता की आय में वृद्धि के बाद भी वस्तु की मांग में कोई वृद्धि नहीं होती हैं ।

(ii) मांग की ऋणात्मक आय लोच (Negative income elasticity of demand) - जब उपभोक्ता की आय में वृद्धि होने पर भी वस्तु की मांग में कमी हो जाती है तो यह मांग भी ऋणात्मक आय लोच कहलाती है । ऐसा घटिया वस्तुओं के संबंध में होता है ।

(iii) मांग की इकाई आय लोच (Unitary income elasticity of demand) - आय में वृद्धि के अनुपात में ही मांग में परिवर्तन होता है तो यह मांग की इकाई आय लोच कहलाती है ।

(iv) मांग की इकाई से अधिक आय लोच (Income elasticity of demand is greater than unitary) - उपभोक्ता की आय में वृद्धि होने पर वह पहले की अपेक्षा अपनी आय का अधिक प्रतिशत भाग किसी वस्तु पर खर्च करता है । तो यह मांग की इकाई से अधिक आय लोच कहलाती है । ऐसा विलासिता संबंधी वस्तुओं मे होता है ।

(v) मांग की आय लोच इकाई से कम (Income elasticity of demand is less than unitary)- उपभोक्ता की मौद्रिक आय में वृद्धि होने से यदि वस्तु पर किये जाने वाले व्यय में कम आनुपातिक वृद्धि हो तो मांग की आय लोच इकाई से कम होगी । ऐसा अनिवार्य आवश्यकता वाली वस्तुओं में होता है ।

3. मांग की तिरछी या आड़ी लोच (Cross elasticity of demand) - किसी वस्तु की मांग उसकी कीमत तथा उपभोक्ता की आय के अतिरिक्त उससे संबंधित अन्य वस्तुओं की कीमत से भी प्रभावित होती है । ये वस्तुयें पूरक तथा स्थानापन्न हो सकती हैं । एक वस्तु के मूल्य में परिवर्तन का उससे संबंधित दूसरी वस्तु की मांग पर जो प्रभाव पडता है । उसे मांग की तिरछी लोच कहते हैं ।

$$\text{मांग की तिरछी लोच} = \frac{X \text{ वस्तु की मांग में आनुपातिक परिवर्तन}}{Y \text{ वस्तु की कीमत में आनुपातिक परिवर्तन}}$$

अथवा

$$exy = \frac{Q_{2x} - Q_{1x}}{Q_{2x} + Q_{1x}} \div \frac{P_{2y} - P_{1y}}{P_{2y} + P_{1y}}$$

P_{2y} तथा P_{1y} स्थानापन्न वस्तु Y की नई कीमत तथा पुरानी कीमत

Q_{2x} तथा Q_{1x} वस्तु की नई मांग तथा पुरानी मांग

(i) स्थानापन्न वस्तुओं की निकटता अधिक होने पर वस्तुओं की तिरछी लोच धनात्मक होती है ।

(ii) दो वस्तुयें यदि पूर्ण स्थापन्न हैं तो उनके बीच प्रतिस्थापन की दर समान रहेगी ।

(iii) यदि वस्तुयें संयुक्त मांग वाली अथवा पूरक है तो भाग की तिरछी लोच ऋणात्मक होती है जैसे पैन-स्याही, कार-पेट्रोल आदि ।

(iv) यदि वस्तुयें स्वतंत्र है तो तिरछी लोच शून्य होती है ।

6.4 मांग की कीमत लोच की श्रेणियां (Degrees of Price elasticity of demand)

वस्तुओं की मांग की लोच परिस्थिति के अनुसार कम ज्यादा होती है । मांग की कीमत लोच की पाँच श्रेणियां है ।

(1) पूर्णतया लोचदार मांग (Perfectly elastic demand) जब किसी वस्तु के मूल्य में बहुत थोडी सी वृद्धि होने से उस वस्तु की मांग में अनन्त कमी हो जाती है या मूल्य में थोडी सी कमी होने से मांग में अनन्त वृद्धि हो जाती है । तो उसे पूर्णतया लोचदार मांग कहते हैं ।

रेखा चित्र 6.1 बताता है कि OR मूल्य पर वस्तु की QQ1,QQ0,QQ2 मात्रा मांगी जा सकती है क्योंकि OR मूल्य पर मांग रेखा अनन्त है । अत: यह पूष्टि लोचदार मांग को व्यक्त करती है ।

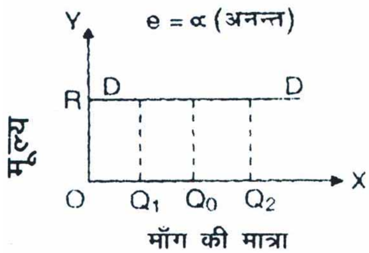

रेखाचित्र 6.1

(2) अत्यधिक लोचदार मांग (Highly elastic demand) जब किसी वस्तु के मूल्य में कम आनुपातिक परिवर्तन के फलस्वरूप उसकी मांग में अधिक आनुपातिक परिवर्तन होता है तो उस वस्तु की मांग अत्यधिक लोचदार कही जाती है ।

रेखाचित्र 6.2 में जब कीमत OR थी तो मांग OT थी, किन्तु कीमत घटकर OS हो जाती है तो मांग बढकर OH हो जाती है । कीमत में आनुपातिक परिवर्तन RS से मांग में आनुपातिक परिवर्तन TH अधिक है ।

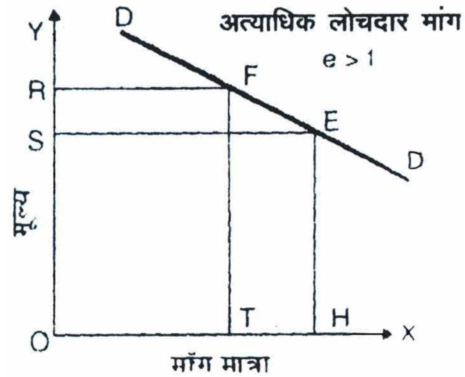

रेखाचित्र 6.2

(3) लोचदार मांग (Elastic demand) जब किसी वस्तु की मांग में मूल्य परिवर्तन के अनुपात में ही परिवर्तन होता है तो वह लोचदार मांग अथवा इकाई लोचदार मांग कहलाती है ।

रेखाचित्र 6.3 में OR मूल्य पर मांग OT है यदि मूल्य कम होकर OS हो जाता है तो मांग बढकर OH हो जाती है । इसमें मूल्य में अनुपातिक परिवर्तन RS मांग में आनुपातिक परिवर्तन TH के समान ही है ।

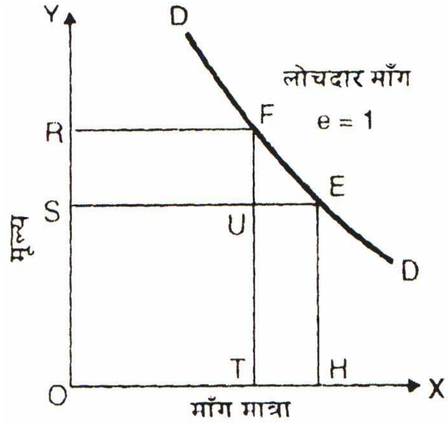

रेखाचित्र 6.3

(4) बेलोचदार मांग (Inealstic demand) - यदि किसी वस्तु के मूल्य में आनुपातिक अधिक परिवर्तन की तुलना में उसकी मांग में बहुत कम परिवर्तन होता है तो उसे बेलोचदार मांग कहते हैं ।

रेखाचित्र 6.4 में मूल्य में आनुपातिक परिवर्तन RS से मांग में आनुपातिक परिवर्तन TH कम है ।

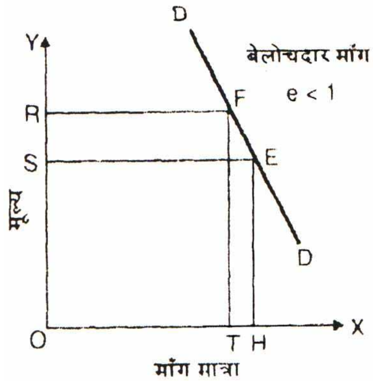

रेखाचित्र 6.4

(5) पूर्णतया बेलोचदार मांग (Perfectly inelastic demand) वस्तु के मूल्य में बहुत ज्यादा या अनन्त परिवर्तन होने पर भी वस्तु की मांग मात्रा में कोई परिवर्तन नहीं होता है तो इसे पूर्णतया बेलोचदार मांग कहते

मूल्य में अत्यधिक परिवर्तन होने पर भी मांग में आनुपातिक परिवर्तन शून्य है । पूर्णत: बेलोचदार मांग को मांग की शून्य लोच भी कहा जाता है । रेखाचित्र 6.5 में DD पूर्णतया बेलोचदार मांग है ।

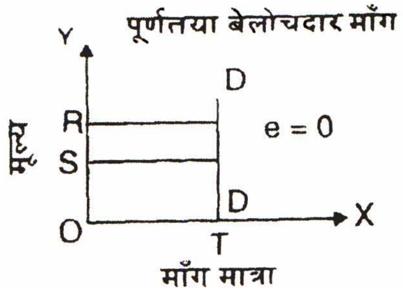

रेखाचित्र 6.5

मांग की लोच की श्रेणियों को एक साथ एक ही रेखाचित्र में इस तरह दिखाया जा सकता है ।

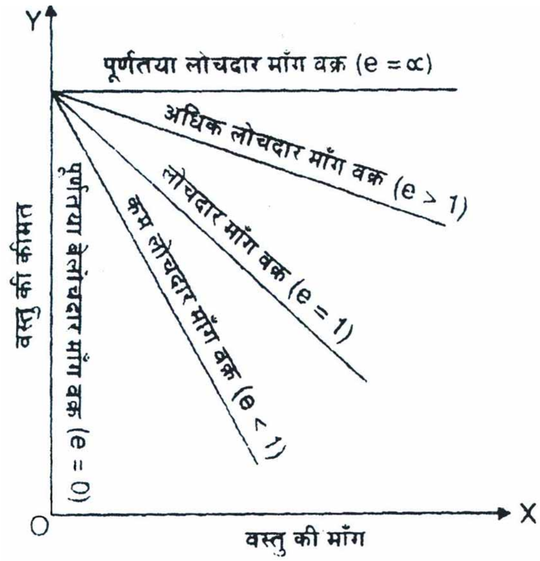

रेखाचित्र 6.6

6.5 मांग की लोच को मापने की विधियाँ (Methods of measuring elasticity of demand)

मांग भी लोच को मापने की प्रमुख तीन विधियां हैं -

1. प्रतिशत विधि (Percentage method) - मांग की लोच मापने के लिए मांग के प्रतिशत परिवर्तन में मूल्य के प्रतिशत परिवर्तन का भाग देते हैं ।

मांग की लोच $=\frac{\text{मांग में प्रतिशत परिवर्तन}}{\text{मूल्य में प्रतिशत परिवर्तन}}$

इसके अनुसार (i) यदि मांग तथा मूल्य में प्रतिशत परिवर्तन समान है तो मांग की लोच इकाई के बराबर होगी ।

(ii) यदि मांग में प्रतिशत परिवर्तन मूल्य में प्रतिशत परिवर्तन से अधिक है तो मांग की लोच इकाई से अधिक होगी।

(iii) यदि मांग के प्रतिशत परिवर्तन मूल्य में, प्रतिशत परिवर्तन से कम हो तो मांग की लोच इकाई से कम होगी ।

$$मांग\ की\ लोच = \frac{मांग\ में\ प्रतिशत\ परिवर्तन}{मूल्य\ में\ प्रतिशत\ परिवर्तन}$$

उदाहरण के रूप में -

यदि $\frac{मांग\ में\ परिवर्तन\ 20\%}{मूल्य\ में\ परिवर्तन\ 10\%} = \frac{2}{1}$ = 2 (इकाई से अधिक लोचदार [e>1])

यदि $\frac{मांग\ में\ परिवर्तन\ 10\%}{मूल्य\ में\ परिवर्तन\ 10\%} = \frac{1}{1}$ = 1 (इकाई से बराबर लोचदार [e=1])

यदि $\frac{मांग\ में\ परिवर्तन\ 10\%}{मूल्य\ में\ परिवर्तन\ 20\%} = \frac{1}{2}$ = 0.5 (इकाई से कम लोचदार [e>1])

2. कुल व्यय विधि (Total outlay method) इस विधि द्‌वारा मांग की लोच ज्ञात करने के लिए वस्तु पर मूल्य परिवर्तन से पहले और बाद में किये गये व्यय की तुलना की जाती है । इसमें यह देखा जाता है कि मांग की लोच इकाई से ज्यादा है या बराबर है या कम है ।

विभिन्न मूल्यों पर वस्तु की मांग तथा कुल व्यय

मूल्य प्रति इकाई रूपये	e = 1		e > 1		e < 1	
	मांग की मात्रा	कुल व्यय (मूल्य x मांग)	मांग की मात्रा	कुल व्यय (मूल्य x मांग)	मांग की मात्रा	कुल व्यय (मूल्य x मांग)
5	20	100	20	100	20	100
4	25	100	40	160	24	96
2	50	100	90	180	30	60

इन व्ययों के आधार पर मांग की लोच की माप इस प्रकार होगी ।

(i) मांग की लोच इकाई के बराबर (e=1) (Elasticity of demand equal to unity) - यदि मूल्य में परिवर्तन के कारण मांग की मात्रा में इस प्रकार परिवर्तन हो कि कुल व्यय प्रत्येक दशा में समान रहे तो मांग की लोच इकाई के बराबर होगी।

(ii) मांग की लोच इकाई से अधिक (e>1) (Elasticity of demand is more than unity) - यदि वस्तु के मूल्य में कमी से मांग इतनी बढ़ जाये कि कुल व्यय पहले की तुलना में अधिक होने लगे, तब मांग की लोच इकाई से अधिक होगी।

(iii) मांग की लोच इकाई से कम (e<1) (Elasticity of demand less than unity) -यदि वस्तु के मूल्य में कमी होने से मांग में इस प्रकार वृद्धि हो जिससे कुल व्यय पहले की तुलना में कम हो जाये तो मांग की लोच इकाई से कम होगी।

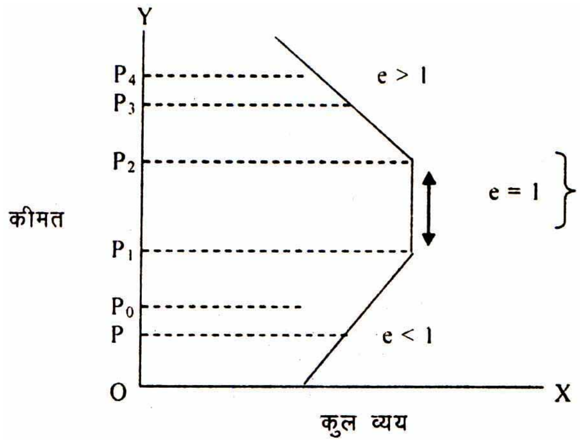

रेखाचित्र 6.7

रेखाचित्र 6.7 में मांग की लोच की तीन अवस्थायें दिखायी हैं । (i) जब कीमत OP से बढ़कर OP0 हो जाती है तो कुल व्यय बढ़ जाता है तथा कीमत OP0 से घटकर OP हो जाती है तो कुल व्यय घट जाता है अत: मांग की लोच इकाई से कम है ।

(ii) जब कीमत OP_1, से बढकर OP_2 हो जाती है या OP_2 से कम होकर OP_1 हो जाती है तो कुल व्यय समान होता है । अत: मांग की लोच इकाई के बराबर है ।

(iii) जब कीमत OP_3 से बढकर OP_4 हो जाती है तो कुल व्यय कम हो जाता है इसी तरह कीमत OP_4 से कम होकर OP_3 हो जाती है तो कुल व्यय बढ जाता है अत: मांग की लोच इकाई से अधिक है।

3. बिन्दु लोच विधि (Point Method)- जब वस्तु के मूल्य में बहुत स्व परिर्वन हो और मांग में परिवर्तन की दर भी बहुत कम हो तो मांग वक्र के एक बिंदु पर लोच ज्ञात की जाती है उसे बिंदु लोच कहते हैं । मांग रेखा दो प्रकार हो सकती है :

(i) जब मांग रेखा सीधी (Linear demand line)

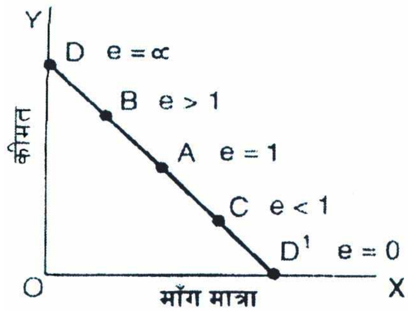

चित्र में DD_1 एक सीधी मांग रेखा है । इसका मध्य बिंदु A है । बिंदु लोच ज्ञात करने की विधि निम्न प्रकार है:

किसी बिंदु पर मांग की लोच $= \frac{\text{मांग रेखा पर किसी बिंदु से नीचे की दूरी}}{\text{उसी बिंदु से मांग रेखा की ऊपर की दूरी}}$

अत: A बिंदु पर मांग की लोच$= \frac{AD1}{AD}$ = 1

B बिंदु पर मांग की लोच $= \frac{BD1}{BD}$ = 1 से ज्यादा

C बिंदु पर मांग की लोच $=\frac{CD1}{CD}$ = 1 से कम

(ii) मांग रेखा सीधी न होने पर (Curved demand line) यदि मांग वक्र सीधी रेखा के रूप में न हो तो जिस बिंदु पर मांग की लोच ज्ञात करना चाहते है उस बिंदु से मांग वक्र पर स्पर्श रेखा खींचते हैं।

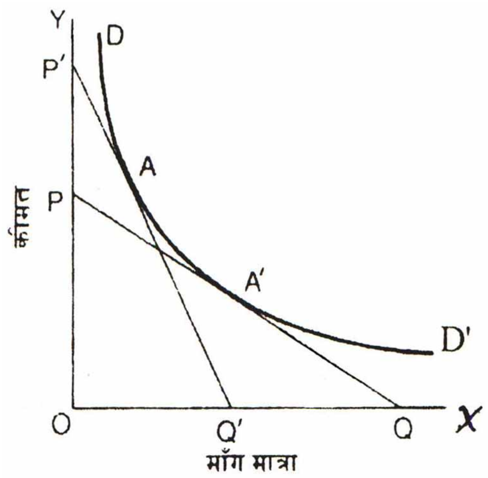

चित्र में DD' मांग वक्र हैं जिसके A तथा A' बिन्दुओं पर मांग वक्र की स्पर्श रेखायें P'Q' तथा PQ खींची है । A बिन्दु की स्पर्श रेखा OX तथा OY को Q' तथा P' बिन्दुओं पर काटती है तथा A' बिन्दु स्पर्श रेखा OX तथा OY को Q व P बिन्दुओं पर काटती है ।

A बिन्दु पर मांग की लोच= $\frac{AQ'}{AP'}$

B बिन्दु पर मांग की लोच = $\frac{A'Q}{A'P}$

अत: A बिन्दु पर A' की अपेक्षा मांग की लोच अधिक है ।

4. मांग की चाप लोच (An elasticity of demand) जब मांग रेखा के दो बिन्दुओं के बीच मांग की लोच ज्ञात की जाती है तो उसे मांग की चाप लोच कहते हैं । जब मांग रेखा के किसी एक बिन्दु पर लोच ज्ञात की जाती है तो उसे बिन्दु लोच कहते हैं ।

एक ही मांग रेखा के विभिन्न भागों की लोच अलग-अलग हो सकती है । जब हम दो बिन्दुओं के बीच चाप लोच ज्ञात करते हैं तो यह पूरे चाप से गुजरने वाली मांग रेखाओं की लोच का औसत होती है । चाप लोच जानने की विधि -

$$ep = \frac{Q-Q1}{Q+Q1} \div \frac{P-P_1}{P+P_1}$$

$$ep = \frac{\Delta Q}{Q+Q_1} \div \frac{\Delta P}{P+P_1} \text{ or } \frac{\Delta Q}{\Delta P} \times \frac{P+P_1}{Q+Q_1}$$

Q = पुरानी मांग

Q_1 = नयी मांग

P = पुराना मूल्य

P_1 = नया मूल्य

उदाहरण - यदि 10 रू. मूल्य पर 100 क्विंटल मांग है तथा 9 रू. मूल्य पर 120 क्विंटल मांग है तो मांग की लोच

$$ep = \frac{20}{1} \times \frac{10+9}{100+120}$$

$$= \frac{20}{1} \times \frac{19}{220} = 1.7$$

यहां मांग की लोच इकाई से अधिक है ।

6.6 मांग की लोच को प्रभावित करने वाले तत्व (Factors affecting elasticity of demand)-

मांग की लोच निम्न घटको से प्रभावित होती है ।

1. वस्तु की प्रकृति (Nature of the commodity) - अनिवार्य वस्तुओं की मांग कम लोचदार होती है तथा विलासिताओं की मांग अधिक लोचदार होती है । आरामदायक वस्तुओं की मांग न अधिक लोचदार न बेलोचदार । अनिवार्य वस्तुओं के बिना जीवन मुश्किल होता है । अतः इनके मूल्यों में वृद्धि होने पर भी मांग पर प्रभाव नहीं पडता है । लेकिन इसके विपरीत विलासिताओं की मांग पर मूल्य परिवर्तन का काफी अधिक प्रभाव पडता है । अत: इसकी मांग लोचदार होती है ।

2. समय तत्व (Time element) - अल्पकाल में वस्तु के मूल्य परिवर्तन का उसकी मांग पर कम प्रभाव पडता है क्योंकि तुरन्त जानकारी न होने के कारण उपभोक्ता मांग को मूल्य के अनुसार समायोजित नहीं कर पाता है । जबकि दीर्घकाल में समायोजन के लिए पर्याप्त समय मिल जाता है । इसलिए दीर्घकाल में मांग लोचदार हो जाती है ।

3. उपभोक्ता का आय स्तर (Income level of consumer) - यदि उपभोक्ता का आय स्तर बहुत नीचा है या बहुत ऊंचा है तो मांग बेलोचदार होगी तथा मध्यम आय वर्ग के उपभोक्ता की मांग अधिक लोचदार होगी ।

4. उपभोक्ता की आदत (Habit of the Consumer) - जिन वस्तुओं की उपभोक्ता की आदत पड़ जाती है । उन वस्तुओं की मांग कम लोचदार होगी । जैसे शराब के आदि व्यक्ति के लिए मूल्य बढने पर भी मांग में कमी नहीं होगी इसके विपरीत उपभोक्ता किसी वस्तु के उपभोग को प्राथमिकता नहीं देता है तो मांग अधिक लोचदार होगी ।

5. स्थापन्न वस्तुयें (Substitutes) - यदि किसी वस्तु की स्थापन्न वस्तुयें है तो उस वस्तु की मांग लोचदार होगी क्योंकि उस वस्तु के मूल्य में थोडी सी कमी हो जायेगी तो लोग इसकी स्थापन्न वस्तुओं का उपभोग कम कर इसी को अधिक मात्रा में क्रय करना प्रारम्भ कर देंगे । जिससे मांग बढेगी । जैसे चाय कॉफी में से कॉफी का मूल्य बढने पर चाय की मांग बढ़ जायेगी ।

6. वस्तु के विभिन्न उपयोग (Different uses of commodities) - जिस वस्तु के विभिन्न उपयोग होते है । उसके मूल्य में परिवर्तन से मांग में ज्यादा परिवर्तन होते हैं जिससे उसकी मांग लोचदार होगी । जिस वस्तु का एक ही उपयोग है उसके मूल्य परिवर्तन से मांग में परिवर्तन नहीं होगा अर्थात् मांग बेलोचदार होगी ।

7. वस्तु के प्रयोग को स्थगित करना (Possibilities of postponement) - जिन वस्तुओं की मांग को भविष्य के लिए स्थगित किया जा सकता है उनकी मांग लोचदार होती है क्योंकि उनकी कीमत बढने से मांग में कमी हो जाती है ।

8. संयुक्त मांग (Joint demand) - जब दो वस्तुओं का उपभोग साथ-साथ किया जाता है तो मांग की लोच संबंधित वस्तु की मांग की लोच पर निर्भर करती है ।

9. समाज में धन वितरण (Distribution of wealth in society) - धन का समान वितरण होने पर मांग अधिक लोचदार होती है तथा असमान वितरण होने पर मांग की लोच कम होगी । असमान वितरण से दो वर्ग होंगे । अमीर व गरीब धनी व्यक्तियों की मांग कम लोचदार होती है तथा गरीब व्यक्ति अनिवार्यताओं को ही खरीदते हैं तो इनकी मांग की कम लोचदार होती है ।

10. वस्तु पर व्यय की मात्रा (Amount of expenditure) - उपभोक्ता जिन वस्तुओं पर आय का बड़ा भाग व्यय करता है। उनकी मांग की लोच उतनी ही ज्यादा होने की संभावना रहती है । जिन वस्तुओं पर उपभोक्ता की आय का कम भाग व्यय करता है । उनकी मांग बेलोचदार होती है ।

11. उपभोग पर प्रतिबंध (Restriction on consumption) - जिन वस्तुओं पर प्रतिबंध होता है उन्हें इच्छित मात्रा में क्रय ना करने के कारण उनकी मांग कम लोचदार होती है ।

12. वस्तुओं के मूल्य स्तर (Price-level) - वस्तुओं का मूल्य बहुत ऊँचा या बहुत कम होने पर भी उनकी मांग की लोच कम होती है । (i) समाज की सामूहिक मांग पर बहुत ऊँची या कम कीमत वाली वस्तु की मांग कम लोचदार होती है । (ii) वर्ग विशेष की मांग की लोच ऊँची कीमतों पर अधिक मध्यम कीमतों पर इकाई और कीमत कम होने के साथ मांग कम लोचदार हो जाती है । यदि कीमत बहुत तेजी से गिरती है तो लोच पूर्णतया समाप्त हो जाती है ।

6.7 मांग की लोच का महत्व एवं उपयोग (Importance and Business uses of elastic of demand)

मांग की लोच की व्यवहारिक फर्मो के मूल्य निर्णयों तथा सरकार द्वारा मूल्य नियंत्रण में महत्वपूर्ण भूमिका है । इसका सैद्धान्तिक व व्यवहारिक दोनों ही प्रकार से महत्व है ।

1. सैद्धांतिक महत्व (Theoretical importance)

(A) अपूर्ण प्रतियोगिता एवं एकाधिकार के अन्तर्गत मूल्य निर्धारण के सिद्धान्त में महत्व।

(B) प्रति मूल्य लोच के आधार पर ही वस्तुयें स्थापन्न या पूरक के रूप में वर्गीकृत हो जाती है ।

(C) मांग की लोच का प्रयोग उत्पादन शुल्क तथा बिक्रीकर जैसे अप्रत्यक्ष करों के भार की व्याख्या करने में किया जाता है।

2. व्यवहारिक महत्व (Practical Importance)

(1) मूल्य निर्धारण में महत्व (Importance in price determination) - किसी भी वस्तु का मूल्य उसकी मांग व पूर्ति में वृद्धि या कमी से उस वस्तु के मूल्य में कितनी कमी या वृद्धि होगी यह मांग की लोच पर निर्भर करता है । यदि मांग लोचदार हुई तो पूर्ति में वृद्धि या कमी का मूल्य पर आनुपातिक प्रभाव पडेगा । इसी प्रकार एकाधिकार में बेलोचदार मांग वाली वस्तुओं के संबंध मे एकाधिकारी अधिक मूल्य वसूल करने में सफल हो जायेगा ।

(2) सरकारी नीति निर्धारण में (In determination of govt.policy) - इससे सरकार की आर्थिक व वित्तीय नीतियों को निर्धारित करने में सहायता मिलती है । वैधानिक मूल्य नियंत्रण के समय सरकार को मांग की लोच को ध्यान में रखना पडता है । कर लगाते समय भी ध्यान रखना पड़ता है कि उसका भार, समाज के किस वर्ग पर पड़ता है । बेलोचदार मांग वाली वस्तुओं पर कर से अच्छी आय मिलेगी लेकिन लोचदार मांग वाली वस्तुओ पर कर से अधिक आय नहीं मिलेगी ।

(3) अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में (In international trade) - व्यापार शर्त उन देशों के पक्ष में होगी । जिनकी निर्यात वस्तुओं की मांग बेलोचदार है ।

(4) विनिमय दर के निर्धारण में (In determination of exchange rate) - मांग की लोच सरकार को विनिमय दर के निर्धारण में सहायता पहुँचाती है । उदाहरण के लिए जब अवमूल्यन (devaluation) और पुनर्मुल्यन (revaluation) करते समय आयात व निर्यात में होने वाले परिवर्तनों को ध्यान में रखना पडता है ।

(5) उत्पत्ति के साधनों का प्रतिफल निर्धारित करने में (In determination of remuneration) - मांग की लोच उत्पत्ति के साधनों का पारिश्रमिक निर्धारित करने के निर्णय को भी प्रभावित करती है । अगर किसी उद्योग में श्रम की मांग बेलोचदार है तो श्रमिक संघ अधिक मजदूरी तय करवाने में सफल हो जायेंगे ।

(6) कीमत विभेद के लिए (For price discrimination) - दो अलग-अलग बाजारों में एक ही वस्तु के अलग-अलग मूल्य निर्धारित करते समय मांग की लोच को ध्यान में रखा जाता है जिस बाजार में मांग बेलोचदार है, वहां ऊँचे मूल्य और जिस बाजार में मांग लोचदार है, वहां कम मूल्य रखकर एकाधिकारी लाभ अधिक कर सकता है ।

(7) सार्वजनिक सेवाओं के लिए (For public utilities) - कौन से उद्योग को सार्वजनिक सेवा घोषित किया जायें यह निर्णय लेने में मांग की लोच सहायक होती है । यदि जीवन उपयोगी वस्तु जिसकी मांग बेलोचदार है, किसी एकाधिकारी के नियंत्रण में है तो ऐसी वस्तु के उत्पादन व व्यापार को सरकार को अपने हाथ में ले लेना चाहिए ।

(8) भाड़े की दर निश्चित करने में (For determination of freight rates) - यदि कोई वस्तु ऐसी है जिसके परिवहन की मांग लोचदार है तो परिवहन भाड़े की दर कम रखी जायेगी और यदि बेलोचदार है तो ऊँची दर रखी जायेगी ।

(9) सम्पन्नता के मध्य दरिद्रता के विरोधाभास की व्याख्या (Explanation of the Paradox of poverty among prosperity) - शीघ्र नष्ट होने वाली वस्तुओं की मांग

बेलोचदार होती हैं उन्हें कम कीमत पर भी बेचना पडेगा, नहीं तो वो नष्ट हो जायेगी । ऐसी वस्तुओं का उत्पादन ज्यादा होने पर भी उत्पादक को लाभ नहीं होगा ।

(10) संयुक्तपूर्ती वाली वस्तुओं के मूल्य निर्धारण में (In price determination of joint supply of commodity) - ये वे वस्तुयें हैं जो एक साथ उत्पन्न की जाती हैं । जैसे कपास एवं बिनौले, तेल एवं खल आदि । इन वस्तुओं की अलग-अलग लागत निकालना संभव नहीं होता है । मांग की लोच से यह कार्य सरल हो जाता है क्योंकि जिस वस्तु की मांग कम लोचदार होती है । उसका मूल्य अधिक रखा जाता है तथा जिसकी मांग अधिक लोचदार होती है । उसका मूल्य कम रखा जाता है ।

(11) विक्रय वृद्धि का आधार (Basis of sales promotion) - विज्ञापन व प्रचार द्वारा वस्तु की मांग को बेलोचदार बनाकर उसके मूल्यों में वृद्धि की जा सकती है ।

(12) सरकारी आय (Govt. Revenue) - यदि सरकार बेलोचदार मांग वाली वस्तुओं पर कर लगाती है तो उसे निश्चित रूप से आय प्राप्त होगी क्योंकि उपभोक्ता कीमत बढने पर भी मांग कम नहीं कर सकता है । इसके विपरीत लोचदार मांग वाली वस्तुओं से आय निश्चित नहीं होती है ।

(13) सार्वजनिक सेवाओं के मूल्य निर्धारण में. (Price determination of public utilities) - ऐसी सार्वजनिक उपयोग वाली सेवाओं का मूल्य ऊँचा रखा जता है जिनकी मांग बेलोचदार होती है तथा जिनकी मांग लोचदार होती है । उनका मूल्य कम रखा जाता है ।

6.8 विज्ञापन एवं मांग की लोच (Advertisement and elasticity)

विज्ञापन वस्तु की मांग को बढ़ाने का एक प्रभावशाली उपाय है ।

(1) अन्य बातें समान रहने पर (जैसे वस्तु का मूल्य, किस्म, मात्रा, वितरण का माध्यम आदि विज्ञापन की मात्रा व वस्तु की मांग में सीधा संबंध होता है । अर्थात् विज्ञापन बढने से वस्तु की मांग बढती है ।

(2) शुरू में विज्ञापन व्यय में वृद्धि के साथ वस्तु की विक्रय मात्रा में अधिक तेजी से वृद्धि होती है । एक सीमा के बाद विज्ञापन व्यय बढाने के साथ-साथ विक्रय मात्रा में आनुपातिक कम वृद्धि होती है । इसके बाद भी विज्ञापन व्यय बढाने से विक्रय मात्रा में कोई वृद्धि नहीं होती है ।

(3) बिना विज्ञापन के भी वस्तु का विक्रय किया जाता है । विज्ञापन तो वस्तु की मांग में वृद्धि करने में सहायक होता है ।

मांग की विज्ञापन लोच (Advertising elasticity of demand) - उद्योग द्वारा वस्तु की मांग बढाने के लिए विज्ञान किया जाता है । उसके पश्चात् मांग में जो वृद्धि होती है उसे मांग की विज्ञापन लोच कहते है ।

$$ea = \frac{\text{विक्रय में प्रतिशत परिवर्तन}}{\text{विज्ञापन व्यय में प्रतिशत परिवर्तन}}$$

6.9 मांग की विज्ञापन लोच को प्रभावित करने वाले तत्व (Factors affecting advertising elasticity)

(1) (**वस्तु की स्थिति (Situation of commodity) -** नयी वस्तु की विज्ञापन लोच अधिक होती है, पुरानी वस्तु की कम होती है ।

(2) प्रतियोगिता की स्थिति (Situation of completion) - एक विक्रेता विज्ञापन करता है और उस का प्रतियोगी भी विज्ञापन करता है तो उस विज्ञापन का मांग पर तुलनात्मक रूप से कम प्रभाव पडेगा ।

(3) विज्ञापन के अतिरिक्त अन्य तत्वों का प्रभाव (Effect of factors other than advertisement) - विज्ञापन के अतिरिक्त उपभोक्ता की आय, भौतिकवादी दृष्टिकोण, विकास की अवस्था आदि तत्वों का भी वस्तु की मांग पर प्रभाव पडता है ।

(4) विज्ञापन की मात्रा एवं स्वरूप (Quantity and form of advertisement) - विज्ञापन बार-बार करना व श्रेष्ठ विज्ञापन ग्राहकों को अपने आप ही आकर्षिक कर लेता है ।

(5) समय विलम्ब (Time lag) - कुछ विज्ञापनों के कारण मांग शीघ्र बढ़ जाती है जबकि कुछ में थोडे समय बाद बढती है ।

6.10 सारांश

मूल्य में परिवर्तन के परिणाम स्वरूप मांग में जिस दर से परिवर्तन होता है वही मांग की लोच 'है । मांग की लोच की प्रकृति वस्तु की कीमत, उपभोक्ता की आय एवं संबंधित वस्तु की कीमत में परिवर्तन के कारण अलग-अलग होती है । मांग की लोच की कई श्रेणियों हो सकती है । पूर्णतया लोचदार, अधिक लोचदार, लोचदार, कम लोचदार एवं पूर्णतया बेलोचदार । सभी प्रकार की मांग की लोच को प्रतिशत विधि, कुल व्यय विधि, बिंदु विधि, चाप लोच विधियों से मापा जाता है । मांग की लोच को बहुत से तत्व प्रभावित करते हैं । जैसे वस्तु की प्रकृति, समय उपभोक्ता का आय स्तर, उपभोक्ता की आदत, स्थानापन्न वस्तुएं, वस्तु के विभिन्न उपयोग, वस्तु के उपयोग को स्थागित करना, संयुक्त मांग, समाज में धन का वितरण, वस्तु पर व्यय की मात्रा, उपभोग पर प्रतिबंध, वस्तुओं के मूल्य स्तर आदि । मांग की लोच का विचार व्यावसायिक कार्यो में बहुत उपयोगी है । आज के युग में विज्ञापन भी मांग की लोच को प्रभावित करने लगे हैं । यह वस्तु की मांग को बढाने का एक प्रभावशाली तरीका है ।

6.11 शब्दावली

धनात्मक (Positive) - एक तत्व में परिवर्तन होने पर दूसरा तत्व भी उसी दिशा में परिवर्तित होता है ।

ऋणात्मक (Negative)- एक तत्व में परिवर्तन पर होने पर दूसरा तत्व उसकी विपरीत दिशा में परिवर्तित होता है ।

इकाई (Unitary) - समान अनुपात में परिवर्तन होते है ।

अवमूल्यन (Devaluation) - एक देश की मुद्रा का मूल्य दूसरे देश की मुद्रा के मूल्य की तुलना से कम करना ।

पुर्नमूल्यन (Revaluation) - एक देश की मुद्रा दूसरे देश की मुद्रा के मूल्य की तुलना में बढा देना ।

विनिमय दर (Exchange rate) - दो देशों के बीच जिस दर पर मुद्रा का विनिमय किया जाता है ।

6.12 स्वपरक प्रश्न

1. मांग की लोच किसे कहते हैं ? इसे कैसे मापा जाता है?

2. कीमत लोच तथा आय लोच में अन्तर स्पष्ट कीजिए तथा कीमत लोच को मापने की विधियां बताइये ।

3. उन तत्वों की व्याख्या कीजिए जिन पर मांग की लोच निर्भर करती है । एक दी हुई कीमत पर आप मांग की लोच को कैसे मापेंगे ?

4. मांग की कीमत लोच की विभिन्न श्रेणियों की व्याख्या कीजिए । अन्त में मापने की विधियां बताइये ।

5. मांग की लोच का व्यावसायिक महत्व क्या हैं ?

6. विज्ञापन का मांग की लोच पर क्या प्रभाव पडता है तथा इसको प्रभावित करने वाले तत्व कौन से हैं ।

6.13 कुछ उपयोगी पुस्तकें

1. व्यावसायिक अर्थशास्त्र : अग्रवाल, अग्रवाल एवं गुप्ता, रमेश बुक डिपो, जयपुर ।
2. व्यावसायिक अर्थशास्त्र : मिश्रा एवं पुरी, हिमालय पब्लिकेशन
3. Business Economics : Agarwal & Gupta, Ramesh Book Depot, Jaipur

इकाई-7

अल्पकाल में उत्पादन फलन : परिवर्तनशील अनुपातो का नियम

(Short Term Production Function: Law of Variable Proportions)

इकाई की रूपरेखा

7.0 उद्देश्य

7.1 प्रस्तावना

7.2 उत्पादन फलन - अर्थ. विशेषताऐं

7.3 परिवर्तनशील अनुपातों का नियम

7.3.1 परिभाषा

7.3.2 नियम की व्याख्या रह उत्पत्ति के नियम

7.4 उत्पत्ति के नियम

7.4.1 उत्पत्ति वृद्धि नियम

7.4.2 उत्पत्ति समता नियम

7.4.3 उत्पत्ति ह्रास नियम

7.0 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात आओ निम्न बिन्दुओं को विस्तार से समाज सकेंगे :-

- उत्पादन फलन का अर्थ एवम् उसकी विशेषताऐं
- उत्पादन में प्रयोग आने वाले साधनों में परिवर्तन का उत्पत्ति के अनुपातों में परिवर्तन पर प्रभाव
- उत्पत्ति के विभिन्न नियमों की जानकारी, उनके महत्व और उत्पत्ति के नियमों की प्रभावशीलता
- उत्पत्ति के नियमों में पारस्परिक सम्बन्ध

7.1 प्रस्तावना

उत्पादन अर्थशास्त्र का एक महत्वपूर्ण कार्य है । उपयोगिता का सृजन करना ही उत्पादन है । कम से कम साधन लागत के द्वारा अधिक से अधिक उत्पादन करना ही उत्पादन कर्ता का उद्देश्य होता है । अधिक उत्पादन के द्वारा लाभ की मात्रा को अधिकतम किया जा सकता है । अल्पकाल में उत्पादन के कुछ साधन स्थिर होते हैं जबकि दीर्घकाल में सभी साधन परिवर्तनशील होते हैं । उत्पत्ति के नियम अल्पकाल व दीर्घकाल में साधनों के परिवर्तन का उत्पत्ति की मात्रा पर प्रभाव को दर्शाते हैं । उत्पत्ति के नियमों के द्वारा अल्पकाल में उत्पत्ति के कुछ साधनों को

स्थिर रखकर अन्य साधनों को परिवर्तित करने पर उत्पादन की मात्रा में होने वाले आनुपातिक परिवर्तन का अध्ययन किया जाता है । इसी क्रम में कुल उत्पादन व सीमान्त उत्पादन में वृद्धीकमी का अध्ययन किया जाता है ।

7.2 उत्पादन फलन - अर्थ

उत्पादन फलन एक गणितीय विचारधारा है जो उत्पादन के विभिन्न आदानों तथा परिणामतः होने वाले उत्पादन के मध्य भौतिक सम्बन्ध बताता है । यह उत्पादन की सम्भावनाओं को व्यक्त करता है । दिए गए या उपलब्ध तकनीक तथा आदानों के विभिन्न संयोगों में से किससे अधिकतम उत्पादन सम्भव है, यह उत्पादन फलन ही बताता है । प्रो. जे.एम. जोशी के अनुसार, "उत्पादन फलन से तात्पर्य उस भौतिक संबन्ध से है, जो एक फर्म के साधनों की इकाईयों और प्रति इकाई समयानुसार प्राप्त वस्तुओं और सेवाओं की उत्पत्ति के बीच मूल्य को अलग छोडकर पाया जाता है ।"

सेम्यूलसन के अनुसार - "उत्पादन फलन एक तकनीकी शब्द है जो यह बताता है कि उत्पादन के साधनों के प्रत्येक विशेष संयोग द्वारा कितनी वस्तुएं उत्पादित की जा सकती है । यह एक दिए गए तकनीकी ज्ञान को परिभाषित करता है ।"

अर्थमितिज्ञों द्वारा किए गए विभिन्न अनुभवजन्य अध्ययनों से अनेकों उत्पादन फलन का पता चला है । जिनमें से कुछ मुख्य उत्पादन फलन निम्नलिखित हैं :

(1) रेखीय उत्पादन फलन (Linear Production Function) : रेखीय उत्पादन फलन में आदानों एवं प्रदानों के मध्य रैखिक सम्बन्ध बताया जाता है उदाहरणार्थ

$$Q = a + b_1 x_1 + b_2 x_2$$

जहाँ Q = उत्पादन, a = घनात्मक स्थिरांक, x_1+x_2 = दो आदान है, b_1, b_2 = उनके गुणांक हैं ।

(2) कॉब डगलस उत्पादन फलन (Cobb-Doughlas Production Function) : इस पद्धति की खोज सी.डबल्यू. कॉब और पी.एच. डगलस ने की थी । इन्हीं दोनों अर्थमितिज्ञों के नाम के कारण इसे कॉब-डगलस उत्पादन फलन कहते हैं ।

जैसे

$$Q= AL\alpha \ K\beta$$

जहाँ Q = उत्पादन, है ,A = घनात्मक स्थिरांक, L और k = श्रम एवं पूँजी दो आदान हैं । α और β क्रमशः श्रम एवं पूँजी की लोचशीलता है ।

उत्पादन फलन की विशेषताएं

उत्पादन फलन की प्रमुख विशेषताएं निम्नलिखित हैं :-

1. उत्पादन फलन का संबंध साधनों की भौतिक मात्रा और उत्पादन की भौतिक मात्रा से है।
2. उत्पादन फलन साधनों की कीमत तथा उत्पादन की कीमत से संबंधित नहीं होता है, यद्यपि साधनों का मूल्य एवं उत्पादन का मूल्य फर्म के उत्पादन निर्णय को प्रभावित करते हैं ।

3. उत्पादन फलन का अध्ययन एक दी हुई तकनीक में ही किया जाता है । तकनीक बदलने पर उत्पादन फलन भी बदल जाता है ।
4. इसका संबंध एक निश्चित समयावधि से होता है तथा इसमें साधनों का प्रतिस्थापन संभव है ।
5. उत्पादन फलन में अल्पावधि में कुछ साधनों को स्थिर रख अन्य साधनों का उत्पादन पर प्रभाव देखा जाता है तथा दीर्घकाल में सभी साधन परिवर्तन की स्थिति में हो जाते हैं।

7.3 परिवर्तनशील अनुपातों का नियम (Law of Variable Proportions)

मार्शल के अनुसार यह विनियम केवल कृषि (गहन कृषि) में लागू होता है, लेकिन आधुनिक दृष्टिकोण के अनुसार यह नियम उत्पादन के सभी क्षेत्रों में लागू होता है । आधुनिक अर्थशास्त्रियों के अनुसार उत्पादन के एक साधन को स्थिर रखकर अन्य साधनों में परिवर्तन करने से उत्पत्ति ह्रास नियम लागू होता है । उनके अनुसार एक साधन को स्थिर रखकर अन्य साधनों में परिवर्तन करने से उनके मध्य आनुपातिक परिवर्तन आ जाता ई । फलस्वरूप उत्पत्ति ह्रास नियम लागू होने लगता है । यह सम्भव है कि प्रारम्भ में उत्पत्ति वृद्धि नियम लागू हो । इसे आनुपातिकता का नियम, परिवर्तनशील अनुपातों का नियम, ह्रासमान प्रतिफल नियम आदि अनेक नामों से जाना जाता है ।

1. नियम की परिभाषा (Definition of Law)

श्रीमती जॉन रॉबिन्सन के अनुसार, "क्रमागत उत्पत्ति ह्रास नियम, जैसा कि सामान्यत: कहा जाता है, यह बतलाता है कि किसी एक उत्पादन साधन की मात्रा निश्चित (यथा स्थिर) रहने पर तथा अन्य साधनों की मात्राओं में क्रमागत वृद्धि करने से एक सीमा के बाद उत्पादन में घटती हुई दर से वृद्धि होगी ।"

प्रो. बेनहम के अनुसार, "उत्पादन साधनों के संयोग में एक साधन का अनुपात ज्यों-ज्यों बढ़ाया जाएगा, एक सीमा के पश्चात् त्यों-त्यों उस साधन की सीमान्त तथा औसत उपज घटती जाएगी ।"

प्रो. सेम्यूलसन के अनुसार, "एक या कुछ साधनों को स्थिर रखकर अन्य साधनों को परिवर्तित करने पर जो उत्पादन प्राप्त होता है, वह क्रमशः घटते हुए क्रम से प्राप्त होता है ।"

बोल्डिंग के अनुसार, ' 'ज्यों-ज्यों हम किसी एक साधन की मात्रा को अन्य साधनों की स्थिर मात्रा के साथ बढाते हैं, तो परिवर्तित साधन की सीमान्त उत्पादकता घटती जाती है । "

प्रो. स्टिगलर के अनुसार, ' 'यदि उत्पत्ति के अन्य साधनों की इकाइयों को स्थिर रखकर किसी एक साधन की समान इकाइयां जोड़ी जायें, तो एक सीमा के बाद सीमान्त उत्पादकता में कमी हो जायेगी । "

2. नियम की व्याख्या

उपर्युक्त परिभाषाओं के अध्ययन से स्पष्ट है कि श्रीमती रॉबिन्सन एवं बोल्डिंग की परिभाषायें अधिक वैधानिक एवं उपयुक्त हैं । श्रीमती रॉबिन्सन एक साधन को स्थिर रखकर अन्य साधनों में परिवर्तन के आधार पर नियम की व्याख्या करती हैं, जबकि बेनहम अन्य सभी साधनों को स्थिर मानकर एक साधन की मात्रा में वृद्धि के आधार पर नियम की व्याख्या करते हैं । वास्तव में इनमें कोई मौलिक अन्तर नहीं है । दोनों के ही अनुसार उत्पादन के कुछ साधनों को स्थिर रखकर कुछ में परिवर्तन करने से साधनों का आदर्श संयोग भंग हो जाता है । फलस्वरूप उत्पत्ति ह्रास नियम लागू होता है ।

आधुनिक अर्थशास्त्री इस नियम की व्याख्या में कुल उत्पादन (Total Production), सीमान्त उत्पादन (Marginal Production) तथा औसत उत्पादन (Average Production) की धारणा को विशेष महत्व देते हैं । कुछ साधनों को स्थिर रखकर किसी अन्य साधन की मात्रा में वृद्धि करने से (परिवर्तनशील साधन की निश्चित इकाइयों के प्रयोग से) जो उत्पादन प्राप्त होता है, वह कुल उत्पादन कहलाता है । परिवर्तनशील साधन की एक अतिरिक्त इकाई के प्रयोग से कुल उत्पादन में जो वृद्धि होती है, उसे सीमान्त उत्पादन कहते हैं । वस्तु के कुल उत्पादन में प्रयोग की जाने वाली परिवर्तनशील साधनों की समस्त (कुल) इकाइयों का भाग देकर औसत उत्पादन या प्रति इकाई उत्पादन प्राप्त किया जाता है । कुल उत्पादन. सीमान्त उत्पादन तथा औसत उत्पादन के रूप में इस नियम की व्याख्या को अग्रांकित तालिका 7.1 में बताया गया है ।

तालिका 7.1

(क्विंटल में)

श्रम की इकाइयाँ (Units)	कुल उत्पादन (T.P.)	औसत उत्पादन (A.P.)	सीमान्त उत्पादन (M.P.)	अवस्थाऐं (Stages)
1	15	15.0	15	
2.	35	17.5	20	प्रथम अवस्था
3.	60	20.0	25	
4.	78	19.5	18	
5.	93	18.6	15	द्वितीय अवस्था
6.	103	17.2	10	
7.	103	14.7	0	
8.	93	11.7	-10	
9.	78	8.7	-15	तृतीय अवस्था
10.	58	5.8	-20	

तालिका में उत्पादन के अन्य साधनों को स्थिर मानते हुए श्रम की इकाइयों में वृद्धि के परिणामस्वरूप उत्पादन पर पड़ने वाले प्रभावों को बताया गया है । श्रीमती रॉबिन्सन के अनुसार सीमान्त उत्पादन घटने पर 'उत्पत्ति ह्रास नियम' क्रियाशील होने लगता है । इसी आधार पर

नियम की तीन अवस्थायें बतायी गयी हैं जबकि **प्रो. बेनहम** के अनुसार सीमान्त उत्पादन तथा औसत उत्पादन दोनों के घटने की प्रक्रिया प्रारम्भ होने पर यह नियम क्रियाशील होता है ।

श्रीमती रॉबिन्सन के अनुसार, इस नियम की तीन अवस्थाएं निम्नलिखित हैं:- (1) प्रथम अवस्था - तालिका में श्रम की तीन इकाइयों के प्रयोग तक प्रथम अवस्था को बताया गया है । इसके अनुसार परिवर्तनशील साधन (श्रम) की अधिकाधिक मात्राओं के प्रयोग से बढ़ती हुई दर से उत्पादन प्राप्त होता है । श्रम की एक इकाई की सीमान्त उत्पादकता 15 है, दूसरी की 20 व तीसरी की 25 है श्रम की तीसरी इकाई में सीमान्त उत्पादन सर्वाधिक है । इसका तात्पर्य यह हुआ कि इस बिन्दु पर साधनों का अनुकूलंम संयोग स्थापित हो चुका है । इस सीमा तक कुल उत्पादन, औसत उत्पादन तथा सीमान्त उत्पादन तीनों में वृद्धि हो रही है । कुल उत्पादन बढ़ती हुई दर (क्रमश: 15,20 व 25) से बढ़ रहा है । इस अवस्था को 'बढ़ते हुए उत्पादन की अवस्था' कहते हैं ।

(2) द्वितीय अवस्था - यह अवस्था श्रम की चौथी इकाई के प्रयोग से प्रारम्भ हो रही है, जिसमें कुल उत्पादन घटती हुई दर (क्रमश: 18, 15, 10 व 0) से बढता है । इस अवस्था में औसत उत्पादन भी घटने लगता है, यह अवस्था सीमान्त उत्पादन में कमी से प्रारम्भ हो जती है, उसे 'घटते हुए उत्पादन' की अवस्था कहते हैं ।

(3) तृतीय अवस्था - यह अवस्था श्रम की आठवीं इकाई के प्रयोग से प्रारम्भ हो रही है जिसमें कुल उत्पादन घटने लगता है । सीमान्त उत्पादन ऋणात्मक हो जाता है तथा औसत उत्पादन गिरने लगता है । इसे 'घटते हुए उत्पादन' की अवस्था कहते है ।

इन तीनों अवस्थाओं को निम्न रेखाचित्र 7.1 से भी समझा जा सकता है ।

रेखाचित्र 7.1 में परिवर्तनशील उत्पादन के नियम की तीन अवस्थायें (बेनहम के अनुसार) बतायी गयी है ।

(1) प्रथम अवस्था - प्रथम अवस्था में श्रमिकों की ON मात्रा लगाने पर कुल उत्पादन प्रारम्भ में डी बिन्दु तक बढ़ती हुई दर से बढता है, इसके बाद भी कुछ उत्पादन बढ़ता तो है, लेकिन घटती हुई दर पर, क्योंकि सीमान्त उत्पादन ए बिन्दु के बाद गिरने लगता है । इस अवस्था में औसत उत्पादन बढ़ता रहता है तथा अपने उच्चतम बिन्दु पर पहुंच जाता है । इस अवस्था को 'बढ़ते हुए प्रतिफल (Increasing Returns) की अवस्था कहा जाता है ।

(2) द्वितीय अवस्था - इसमें श्रमिकों की संख्या ओर से N C बिन्दु तक बढ़ाने पर कुल उत्पादन बढ़ता है, लेकिन घटती हुई दर से बढता है । इस अवस्था में कुल उत्पादन अधिकतम हो जाता है । इस अवस्था में सीमान्त उत्पादन लगातार घटता जाता है और अन्त में शून्य हो जाता है । इसमें औसत उत्पादन लगातार गिरता रहता है, लेकिन शून्य से अधिक रहता है । इसमें सीमान्त उत्पादन वक्र'C' बिन्दु पर X-axis से मिल जाता है । इस अवस्था में कुल उत्पादन अधिकतम होता है, इसे 'घटते हुए प्रतिफल (Dimensions Returns) की अवस्था कहते हैं, जो सर्वाधिक महत्वपूर्ण हैं ।

परिवर्तनशील अनुपातों के नियम की तीन अवस्थाएँ

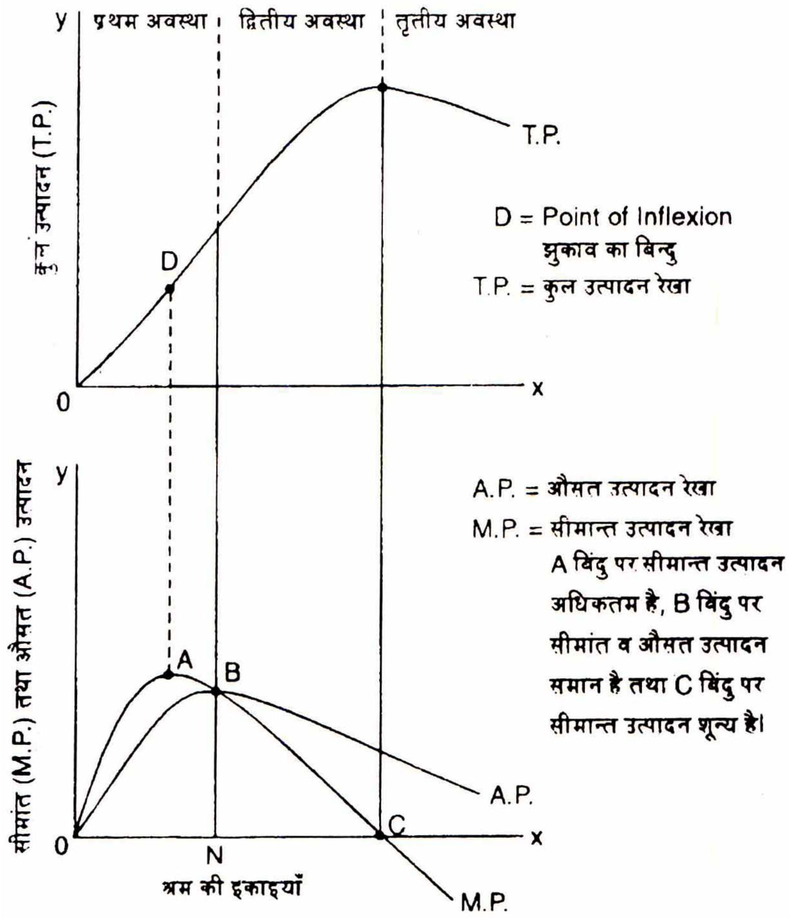

चित्र 7.1

(3) तृतीय अवस्था - इस अवस्था में OC से अधिक श्रमिकों का प्रयोग करने पर कुल उत्पादन घटने लगता है, क्योंकि इस अवस्था में सीमान्त उत्पादन ऋणात्मक हो जाता है । इसका तात्पर्य यह है कि उत्पादन साधन की इकाइयां बढ़ाने पर उत्पादन में कमी आती है । इसी कारण MP रेखा X-axis के नीचे चली जाती है । इस अवस्था में औसत उत्पादन घटता है, लेकिन शून्य नहीं होता । इसे ऋणात्मक प्रतिफल **(Negative Returns)** की अवस्था कहते हैं। कोई भी उत्पादक इस अवस्था में पहुँचने के पूर्व ही अपना उत्पादन बन्द कर देता है, क्योंकि इसमें उसे हानि उठानी पडेगी ।

उपर्युक्त तीनों अवस्थाओं के अध्ययन के आधार पर हम कह सकते हैं कि उत्पादन के अन्य साधनों को स्थिर रखकर किसी एक साधन (श्रम) की मात्रा में उत्तरोत्तर वृद्धि करने से सीमान्त उत्पादन, फिर औसत उत्पादन तथा अन्त में कुल उत्पादन में कमी आ जायेगी । इन अवस्थाओं में से द्वितीय अवस्था में उत्पादन करने पर ही उत्पादक को अधिकतम लाभ प्राप्त होगा, क्योंकि प्रथम अवस्था में उत्पादन बढ़ाकर वह अपने लाभ को बढ़ा सकता है । तृतीय अवस्था में उत्पादन करने से कुल उत्पादन घटेगा, जिससे उसे हानि होगी ।

7.4 उत्पत्ति के नियम: प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों की व्याख्या (Law of Returns: The Classical Approach)

अर्थशास्त्रियों ने उत्पत्ति के नियम की तीन अवस्थाएँ बतायी है-

1. उत्पत्ति वृद्धि नियम,

2. उत्पत्ति स्थिरता (समता) नियम तथा

3. उत्पत्ति ह्रास नियम । इनका विस्तृत वर्णन निम्न प्रकार है

1. उत्पत्ति वृद्धि नियम (Law of Increasing Returns)

यदि उत्पादन के परिवर्तनशील साधन की मात्रा में वृद्धि के अनुपात से उत्पादन की मात्रा में अधिक वृद्धि होती है तो उसे उत्पत्ति वृद्धि नियम या लागत ह्रास नियम कहा जाता है । यह नियम उत्पादन की प्रारंभिक अवस्थाओं में लागू होता है । जब उत्पादन के स्थिर साधनों की तुलना में परिवर्तनशील साधनों का अनुपात कम होता है, तब परिवर्तनशील साधनों की मात्रा (इकाइयों) में वृद्धि से स्थिर साधनों के साथ उसका अनुकूलतम संयोग स्थापित होने लगता है, इसलिए हम जितनी मात्रा में परिवर्तनशील साधनों में वृद्धि करते हैं, उत्पादन की मात्रा उससे कहीं अधिक बढती है ।

परिभाषायें (Definitions)

मार्शल के अनुसार, "श्रम तथा पूँजी में वृद्धि सामान्यतया संगठन को अधिक श्रेष्ठ बनाती है, जिसके परिणामस्वरूप श्रम तथा पूँजी में वृद्धि हो जाती है ।' प्रो. मार्शल के अनुसार उत्पत्ति वृद्धि नियम कृषि एवं अन्य निर्माण उद्योगों में लागू होता है, परन्तु आधुनिक अर्थशास्त्रियों के अनुसार उत्पत्ति वृद्धि नियम, उत्पत्ति, ह्रास नियम के समान उत्पादन के प्रत्येक क्षेत्र में लागू होता है । आधुनिक अर्थशास्त्रियों में श्रीमती जॉन रॉबिन्सन की परिभाषा महत्वपूर्ण है ।

श्रीमती ज़ॉन रॉबिन्सन के अनुसार, "जब किसी प्रयोग में किसी उत्पत्ति के साधन की अधिक मात्रा लगायी जाती है तो प्राय: संगठन में सुधार हो जाता है, जिससे उत्पत्ति के साधनों की प्राकृतिक इकाइयाँ (मनुष्य, भूमि या द्राव्यिक पूंजी) अधिक कुशल हो जाती हैं । ऐसी स्थिति में उत्पादन को बढ़ाने के लिए साधनों की भौतिक मात्रा में आनुपातिक वृद्धि करने की आवश्यकता नहीं होती है ।"

श्रीमती जॉन रॉबिन्सन ने इस नियम के संबंध में आगे चल कर कहा है कि "यह नियम उत्पादन ह्रास नियम की तरह उत्पादन के सभी साधनों के संबंध में समान रूप से लागू हो सकता है, किन्तु उत्पादन ह्रास नियम के विपरीत यह प्रत्येक स्थिति में लागू नहीं होता है । कभी साधनों में वृद्धि करने से कुशलता में सुधार होंगे तथा कभी नहीं भी होंगे"

उत्पत्ति वृद्धि नियम की व्याख्या (Explanation of Law)

उत्पत्ति वृद्धि नियम इस मान्यता पर आधारित है कि उत्पादन के परिवर्तनशील साधन की इकाइयों में वृद्धि से उत्पादन संगठन में सुधार होता है, इससे सीमान्त उत्पादन व औसत उत्पादन में वृद्धि होती है एवं कुल उत्पादन बढती हुई दर से बढ़ता है । यह तभी होता है जब उत्पादन की प्रारंभिक अवस्था में परिवर्तनशील साधनों की बहुत कम इकाइयों का प्रयोग हो रहा

हो । जैसे-जैसे साधन की मात्रा बढाते जाते हैं, उत्पादन साधनों का उचित संयोग होने लगता है । अत: उत्पादन की मात्रा भी बढने लगती है । एक सीमा पर समस्त साधनों का अनुकूलतम संयोग प्राप्त हो जाता है, वहां सीमान्त उत्पादन अधिकतम होता है । इसके बाद साधनों का अनुकूलतम संयोग भंग होने लगता है । अत: इस नियम का समापन व उत्पत्ति ह्रास नियम प्रारम्भ हो जाता है ।

नियम का स्पष्टीकरण - इस नियम का स्पष्टीकरण निम्नलिखित उदाहरण द्वारा किया जा सकता है । तालिका 7.2 से स्पष्ट है कि उत्पादन साधनों की इकाइयों में वृद्धि करने पर 'सीमान्त उत्पादन' तथा ' औसत उत्पत्ति' दोनों में क्रमश: वृद्धि हो रही है-

तालिका 7.2 - उत्पादन साधनों की इकाइयों द्वारा उत्पादन

श्रम व पूंजी इकाइयां (परिवर्तनशील साधन)	कुल उत्पत्ति (T.P.)	सीमान्त उत्पत्ति (M.P)	औसत उत्पत्ति (A.P.)
1	**8**	**8**	**8**
2	**18**	**10**	**9**
3	**32**	**14**	**10.6**
4	**49**	**17**	**12.2**
5	**69**	**20**	**13.8**

तालिका 7.2 से स्पष्ट है कि परिवर्तनशील साधन (श्रम व पूंजी) की इकाइयों में उत्तरोत्तर वृद्धि करने से सीमान्त उत्पादन तथा औसत उत्पादन दोनों बढ़ रहे हैं । सीमान्त उत्पादन, औसत उत्पादन की तुलना में अधिक तेजी से बढ़ रहा है तथा कुल उत्पादन बढती हुई दर से बढ़ रहा है । इसे रेखाचित्र 7.2 की सहायता से भी स्पष्ट किया जा सकता है।

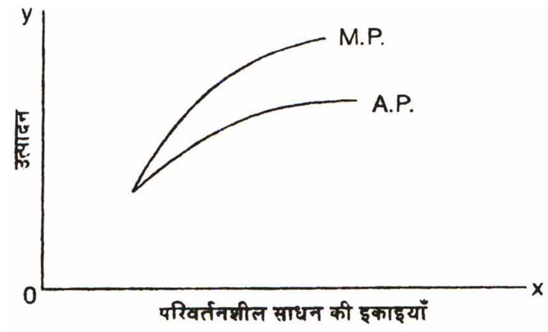

चित्र 7.2

रेखाचित्र 7.2 रेखाचित्र के अनुसार परिवर्तनशील साधनों की मात्रा में उत्तरोत्तर वृद्धि से सीमान्त उत्पादन तथा औसत उत्पादन दोनों बढ़ रहे हैं । इससे कुल उत्पादन में बढ़ती हुई दर से वृद्धि होगी ।

उत्पत्ति वृद्धि नियम तथा लागत (The Law of Increasing Returns and Cost)

उत्पत्ति वृद्धि नियम को लागत की दृष्टि से 'लागत ह्रास नियम' (Law of Diminishing Cost) कहा जाता है, क्योंकि इससे साधनों में आनुपातिक वृद्धि की तुलना में उत्पादन मात्रा में अधिक वृद्धि होती है । फलस्वरूप सीमान्त लागत **(M.C.)** तथा औसत लागत

(A.C.) दोनों कम होने लगती हैं, इससे कुल लागत में घटती हुई दर से वृद्धि होती है । इसे रेखाचित्र 7.3 में दिखाया गया है । रेखाचित्र में स्पष्ट है कि परिवर्तनशील साधन की मात्रा में वृद्धि करने पर सीमान्त लागत तथा औसत लागत दोनों कम हो रही हैं । लागतों में कमी के कारण ही इसे 'लागत ह्रास नियम' कहा जाता है ।

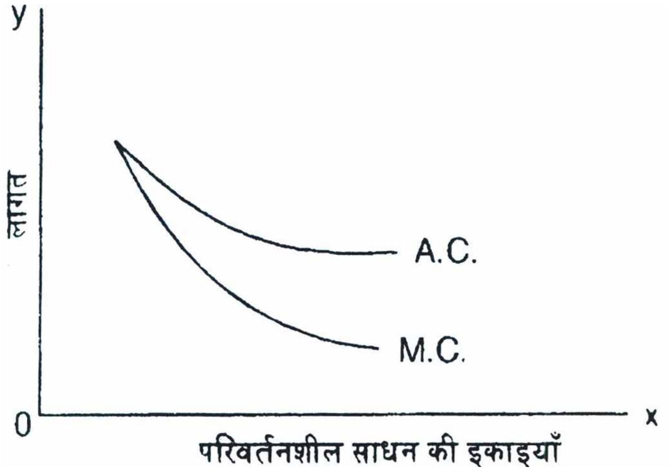

चित्र 7.3

उत्पत्ति वृद्धि नियम के लागू होने के कारण या दशाएँ

उत्पत्ति वृद्धि नियम निम्न कारणों से लागू होता है -

(1) उत्पादन साधनों की अविभाज्यता (Indivisibility of Factors of Production) - श्रीमती जॉन रॉबिन्सन के अनुसार इस नियम की क्रियाशीलता का मुख्य कारण उत्पादन के साधनों की अविभाज्यता है । इसका अर्थ है कि उत्पादन के साधनों को छोटे-छोटे भागों में विभक्त नहीं किया जा सकता है । उत्पादन की प्रारंभिक अवस्था में उत्पादन की मात्रा में ज्यों-ज्यों वृद्धि की जाती है, अविभाज्य साधनों (जैसे, मशीन, प्रबन्धक) का त्यों-त्यों अधिक उपयोग होने लगता है । फलस्वरूप साधनों की तुलना में उत्पादन में अधिक वृद्धि होती है ।

(2) बड़े पैमाने के उत्पादन की बचतें (Economics of Large Scale Production) - उत्पादन की मात्रा में वृद्धि से उद्योग को बडे पैमाने के उत्पादन की बचतें प्राप्त होने लगती हैं । श्रम-विभाजन व विशि टीकरण, मशीनों का अधिक प्रयोग, नयी तकनीक, प्रबंध संबंधी मितव्ययताओं आदि के कारण उत्पादन लागत कम होने लगती है ।

(3) साधनों का प्रतिस्थापन (Substitution of Factors) - उत्पादन को मात्रा बढ़ाने के लिए उत्पादन साधनों में इस प्रकार परिवर्तन किया जाता है कि महंगे साधनों के स्थान पर सस्ते साधन प्रतिस्थापित हो सकें । इस प्रतिस्थापन क्रिया से उत्पादन लागत घटती है व उत्पादन मात्रा बढ़ती है ।

(4) अनुकूलतम आकार (Optimum Size) - उत्पादन बढ़ाने पर फर्म अनुकूलतम आकार 1 (Optimum) की ओर अग्रसर होती है । अत: अनुकूलतम बिन्दु पर पहुंचने तक उत्पादन लागत कम होती है । अनुकूलतम उत्पादन बिन्दु के पश्चात् फर्म का विस्तार करने पर उत्पादन लागत बढ़ती है ।

(5) साधनों की पूर्ति (Supply of Factors) - यदि उत्पादन के साधन पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध हों तो उनका प्रयोग आवश्यक अनुपात में किया जा सकता है । ऐसा होने पर उत्पादन में परिवर्तन द्वारा लागत को कम करने का प्रयत्न किया जाता है तथा उत्पत्ति वृद्धि नियम लागू होता है ।

(6) कुशल प्रबन्ध (Efficient Management) - उत्पत्ति वृद्धि नियम के लागू होने का एक कारण व्यवसाय का कुशल प्रबंध भी है । इससे उत्पादन की प्रारंभिक अवस्था में ही उत्पादन साधनों के मध्य उचित समन्वय स्थापित कर लिया जाता है । फलस्वरूप उत्पादन लागत कम होने लगती है ।

(7) मानवीय प्रभाव (Human Effects) - जिन उद्योगों में प्रकृति का प्रभाव अधिक पड़ता है, वहां उत्पत्ति ह्रास नियम शीघ्र ही क्रियाशील हो जाता है, जैसे, कृषि । इसके विपरीत जिन पर मानवीय प्रभाव अधिक पडता है, वहां उत्पत्ति वृद्धि नियम अधिक प्रभावी रहता है, जैसे; निर्माणकारी उद्योग ।

(8) वैज्ञानिक आविष्कार (Inventions) - वैज्ञानिक आविष्कारों एवं नवीन तकनीक के प्रयोग द्वारा उत्पत्ति वृद्धि नियम को जारी रखा जाता है । अनेक उद्योगों में जब उत्पत्ति वृद्धि नियम समाप्त होने लगता है अर्थात् उत्पादन की मात्रा घटने लगती है तो नयी-नयी वैज्ञानिक विधियों का प्रयोग कर उत्पादन को गिरने से रोका जाता है तथा उसमें वृद्धि के प्रयास किए जाते हैं । इस प्रकार उत्पत्ति वृद्धि नियम क्रियाशील रहता है ।

उत्पत्ति वृद्धि नियम का क्षेत्र (Scope of the Law of Increasing Returns)

प्राचीन अर्थशास्त्रियों (मार्शल आदि) के अनुसार उत्पत्ति वृद्धि नियम केवल निर्माणकारी उद्योगों में ही क्रियाशील होता है यह नियम उन उद्योगों में अधिक क्रियाशील होता है, जिनमें मानवीय प्रभाव अधिक है, परन्तु आधुनिक अर्थशास्त्रियों के अनुसार यह नियम उत्पादन के प्रत्येक क्षेत्र (कृषि, उद्योग) आदि में लागू होता है । यह मानवीय प्रभाव या प्राकृतिक प्रभाव की अपेक्षा साधनों के अनुकूलतम संयोग के कारण लागू होता हैं । यह तब तक लागू रहता है जब तक कि साधनों का अनुकूलतम संयोग स्थापित न हो जाये ।

2. उत्पत्ति समता नियम या समता प्रतिफल नियम (Law of Constant Returns)

उत्पत्ति समता नियम, उत्पत्ति वृद्धि नियम की समाप्ति व उत्पत्ति ह्रास नियम के प्रारम्भ के बीच की अवस्था है । यह उत्पादन की अति अल्पकालीन अवस्था है । इस प्रकार यह उत्पत्ति वृद्धि एवं उत्पत्ति ह्रास नियम के मध्य कड़ी का कार्य करता है । इस नियम के अनुसार जिस अनुपात में उत्पादन के साधनों में वृद्धि की जाती है, उत्पादन में भी ठीक उसी अनुपात में वृद्धि होती है, जैसे; यदि उत्पादन के साधनों की मात्रा बढ़ाकर दुगुनी कर दी जाए तो उत्पादन की मात्रा भी बढ़कर दुगुनी हो जायेगी अर्थात् उत्पादन साधनों व उत्पादन मात्रा में समान अनुपात में वृद्धि होती है ।

मार्शल के अनुसार, "उत्पत्ति के जिस स्तर पर उत्पादन वृद्धि तथा उत्पादन ह्रास दोनों नियमों के प्रभाव बराबर हो जाते हैं, वही उत्पत्ति समता नियम लागू होने लगता है ।"

स्टिगलर के अनुसार "जब एक दिए हुए अनुपात में सभी उत्पादक सेवाओं को बढ़ाया जाता है तो उत्पादन उसी अनुपात में बढता है ।" इस नियम के लागू होने की व्याख्या अर्थशास्त्रियों द्वारा भिन्न-भिन्न दृष्टिकोणों से की जाती है ।

(1) पहला दृष्टिकोण - जब उत्पादन की मात्रा में वृद्धि की जाती है तब यह सम्भव है कि कुछ अंशों में मितव्ययताएँ (Economies) तथा कुछ अंशों में अमितव्ययताएं (Diseconomies) प्राप्त हों । यदि मितव्ययताएं तथा अमितव्ययताएं एक-दूसरे के बराबर होती हैं, तो उत्पत्ति समता नियम की स्थिति पायी जाती है । यदि उद्योग इस प्रकार का है जिसमें नई फर्मो का प्रवेश सम्भव है तथा सभी फर्मो का प्राविधिक ढांचा (Technical Structure) एक-सा है तो ऐसी दशा में उद्योग के उत्पादन में वृद्धि नई फर्मो के प्रवेश के कारण होगी (वर्तमान फर्मो के उत्पादन में वृद्धि द्वारा नहीं) । इस प्रकार कुल उत्पादन अनुकूलतम आकार की एक जैसी फर्मो द्वारा किया जाएगा तथा उन फर्मो की लागत (एक ही उद्योग में) लागत-समता नियम से शासित होगी ।

(2) दूसरा दृष्टिकोण - कुछ अर्थशास्त्रियों ने यह विचर व्यक्त किया है कि उत्पत्ति समता नियम बहुत ही कम समय तक लागू होता है, परन्तु कुछ अर्थशास्त्रियों ने व्यावहारिक अध्ययन (Empirical Studies) द्वारा यह सिद्ध कर दिया है कि इस नियम का क्षेत्र तथा लागू होने की अवधि काफी लम्बी हो सकती है । यदि बहुत ही छोटे पैमाने के उत्पादन की अकुशलताओं को दूर करने के बाद, किसी फर्म के उत्पादन में बहुत कम मात्राओं में वृद्धि होती रहती है तथा दूसरी ओर अमितव्ययताएं के कारण बहुत ही कम मात्रा में उत्पादन ह्रास नियम भी लागू होता है तो यह कहा जा सकता है कि ऐसी स्थिति में वास्तव में उत्पत्ति-समता नियम लागू हो रहा है । इस प्रकार की कल्पना से सैद्धान्तिक विश्लेषण सरल हो जाता है तथा यह कल्पना व्यावहारिक दृष्टि से भी सरल है।

(3) तीसरा दृष्टिकोण - इस विचारधारा के अनुसार यह नियम कृषि पर आधारित उद्योगों में लागू होता है । इस प्रकार के उद्योगों में एक ओर तो कृषि क्षेत्र में उत्पत्ति ह्रास नियम लागू होता है और दूसरी ओर उद्योगों में उत्पत्ति वृद्धि नियम लागू होता है । अतः इन दोनों नियमों का एक साथ संयोग होने से उत्पत्ति-समता नियम लागू होता है, जैसे, चीनी उद्योग, वस्त्र उद्योग आदि ।

नियम का स्पष्टीकरण (Explanation)

उत्पत्ति समता नियम यह प्रकट करता है कि उत्पादन क्रिया में परिवर्तनशील उत्पादन साधनों की मात्रा में वृद्धि की जाये तो सीमान्त उत्पत्ति ठीक उसी अनुपात में बढेगी, जिस अनुपात में उत्पादन साधनों में वृद्धि की गई है । मार्शल ने इस नियम को इस प्रकार परिभाषित किया है, "जब समस्त उत्पादन सेवाओं में एक दिये हुए अनुपात में वृद्धि कर दी जी है तो उत्पत्ति उसी अनुपात से बढ़ जाती है ।"

उदाहरणार्थ, यदि उत्पादन साधनों में 10 प्रतिशत वृद्धि की जाती है तो कुल उत्पादन भी 10 प्रतिशत से बढ़ जायेगा ।इस नियम के अनुसार उत्पादन-साधनों में वृद्धि करने पर 'सीमान्त

लागत' सदैव समान रहती है । अत: इस नियम को 'लागत समता नियम' (Law of Constant Cost) की भी संज्ञा दी गयी है ।

इस नियम को 'अनुकूलतम आकार' (Optimum Size) के संदर्भ में भी स्पष्ट किया जा सकता है । यदि कोई फर्म अनुकूलतम आकार प्राप्त करने की दिशा में प्रयत्नशील है, तो वह 'क्रमागत उत्पत्ति वृद्धि प्राप्त करेगी । यदि फर्म 'अनुकूलतम आकार' की सीमा को पार कर जाती है तो वह 'क्रमागत उत्पत्ति ह्रास' प्राप्त करेगी; परन्तु जब तक वह 'अनुकूलतम बिन्दु' पर उत्पादन कर रही है, उस समय तक 'क्रमागत उत्पत्ति समता' प्राप्त करेगी ।

रेखाचित्र द्वारा स्पष्टीकरण

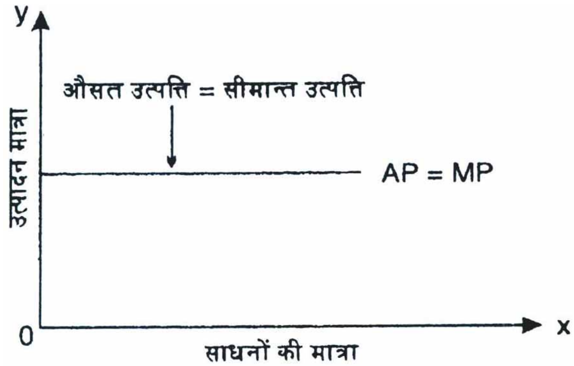

चित्र 7.4

रेखाचित्र 7.4 द्वारा स्पष्ट है कि उत्पत्ति साधनों की मात्रा में घटत-बढ़त होने पर भी सीमान्त और औसत उत्पत्ति समान रहती है ।

उत्पत्ति समता नियम तथा लागत (Law of Constant Returns and Cost)

यदि उत्पत्ति समता नियम का लागतों के संदर्भ में वर्णन करें तो यह ज्ञात होता है कि साधनों की उत्तरोत्तर इकाइयों के प्रयोग से सीमान्त उत्पत्ति और औसत उत्पत्ति में समानता होने के कारण सीमान्त लागत और औसत लागत भी समान रहती है, यह रेखाचित्र 7.5 से स्पष्ट है ।

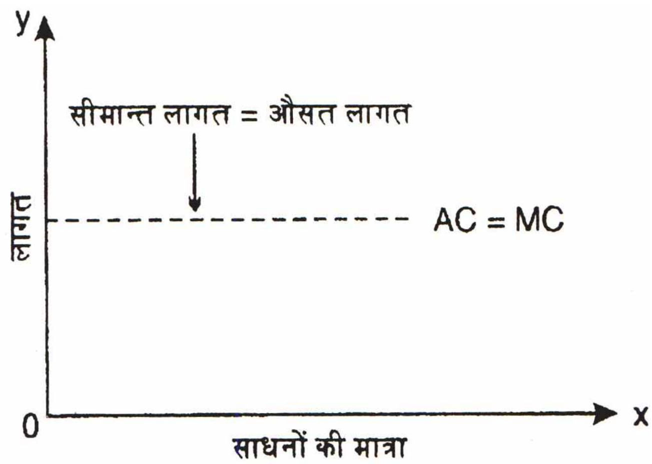

चित्र 7.5

उत्पत्ति समता नियम' उत्पादन साधनों के अनुकूलतम तथा सर्वोत्तम संयोग का द्योतक है । उत्पादन क्रिया के आरम्भ में सामान्यत: 'उत्पत्ति वृद्धि नियम' लागू होता है (जब तक विभिन्न साधनों की उत्पादन-क्षमता का पूर्ण उपयोग नहीं कर लिया गया है ।) साधनों की क्षमता के पूर्ण उपयोग के बिन्दु पर 'उत्पत्ति समता नियम' लागू होता है । यदि उस बिन्दु (सीमा) के पश्चात् भी फर्म का विस्तार किया जाये तो 'उत्पत्ति ह्रास नियम' लागू होना प्रारम्भ हो जायेगा । अत: 'उत्पत्ति समता नियम' उद्यमी के लिए इस तथ्य के सूचक का काम करता है कि यदि फर्म का अधिक विस्तार किया गया तो 'उत्पत्ति-हास नियम' लागू होना प्रारम्भ हो जायेगा । अत: 'उत्पत्ति-समता-नियम' फर्म के 'अनुकूलतम आकार' का प्रतीक है ।

3. **उत्पत्ति ह्रास नियम (Law of Diminishing Returns) -** उत्पत्ति ह्रास नियम की व्याख्या निम्न दो रूपों में की जाती है-

(A) प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों की व्याख्या (Classical Approach)

सर्वप्रथम मार्शल ने इस नियम की वैज्ञानिक व्याख्या की । मार्शल के अनुसार, "यदि कृषि कला में कोई सुधार न हो तो सामान्यत: कृषि में प्रयुक्त श्रम और पूँजी की वृद्धि से कुल उत्पादन में वृद्धि आनुपातिक रूप में कम होगी । " इस परिभाषा के अनुसार यदि भूमि के एक भाग पर कृषि के लिए श्रम व पूँजी की मात्राओं में वृद्धि की जाए, तो उनकी प्रत्येक वृद्धि की इकाई से प्राप्त सीमान्त उपज इससे पूर्व की इकाई से प्राप्त सीमान्त उपज से कम होगी, अर्थात् यदि श्रम व पूँजी की मात्रा को दुगुना कर दिया जाये तो उत्पादन में दुगुनी से कम वृद्धि होगी । इस प्रकार इस नियम के अनुसार उत्पादन क्रिया में जब उत्पादन साधनों की मात्रा में क्रमश: वृद्धि की जाती है, तो प्रत्येक अगली इकाई से घटती हुई दर पर उत्पादन प्राप्त होगा । अर्थात् सीमान्त उत्पादन कम होता जायेगा तथा कुल उत्पादन में घटती हुई दर से वृद्धि होगी । मार्शल के अनुसार यह नियम भूमि पर ही क्रियाशील होता है, क्योंकि भूमि की मात्रा स्थिर रहती है तथा अन्य साधनों की मात्रा में वृद्धि की जा सकती है ।

मार्शल एवं अन्य प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों के इस दृष्टिकोण को परम्परागत दृष्टिकोण कहा जाता है । आधुनिक अर्थशास्त्री इस नियम को नये रूप में प्रस्तुत करते हैं । उनके अनुसार यह नियम केवल कृषि में ही नहीं बल्कि उत्पादन के सभी क्षेत्रों में समान रूप से क्रियाशील होता है ।

(B) आधुनिक दृष्टिकोण : उत्पत्ति ह्रास नियम अथवा परिवर्तनशील अनुपातों का नियम (Modern Approach: Law of Diminishing Returns or Law of Variable Proportions)

मार्शल के अनुसार यह नियम केवल कृषि (गहन कृषि) में लागू होता है, लेकिन आधुनिक दृष्टिकोण के अनुसार यह नियम उत्पादन के सभी क्षेत्रों में लागू होता है । आधुनिक अर्थशास्त्रियों के अनुसार उत्पादन के एक साधन को स्थिर रखकर अन्य साधनों में परिवर्तन करने से उत्पत्ति ह्रास नियम लागू होता है । उनके अनुसार एक साधन को स्थिर रखकर अन्य साधनों में परिवर्तन करने से उनके मध्य आनुपातिक परिवर्तन आ जाता है । फलस्वरूप उत्पत्ति ह्रास नियम लागू होने लगता है । यह सम्भव है कि प्रारम्भ में उत्पत्ति वृद्धि नियम लागू हो । इसे आनुपातिकता

का नियम, परिवर्तनशील अनुपातों का नियम, ह्रासमान प्रतिफल नियम आदि अनेक नामों से जाना जाता है । इसका विस्तृत त वर्णन इसी अध्याय में पहले किया जा चुका है ।

उत्पत्ति ह्रास नियम तथा लागत (Law of Diminishing Returns and Cost)

उत्पत्ति ह्रास नियम या परिवर्तनशील अनुपातों के नियम को लागतों से भी सम्बन्धित किया जाता है । वास्तव में उत्पादन में वृद्धि का अर्थ लागत में कमी से है तथा उत्पादन में कमी का अर्थ लागत में वृद्धि से है । इसलिए 'उत्पत्ति ह्रास नियम' को 'लागत वृद्धि नियम' भी कहा जाता है । प्रारम्भिक अवस्था में अन्य साधनों को स्थिर रखकर एक साधन में वृद्धि करने से साधनों की तुलना में उत्पादन मात्रा अधिक बढ़ती है । फलस्वरूप सीमान्त लागत व औसत लागत में गिरावट आती है । इसके बाद यदि साधन की मात्रा को और बढ़ाया जाये तो सीमान्त लागत एक बिन्दु पर न्यूनतम होकर बढ़ने लगती है । इसके बाद औसत लागत भी निम्नतम होकर बढ़ने लगती है । इसका तात्पर्य यह है कि न्यूनतम बिन्दु के बाद सीमान्त लागत व औसत लागत दोनों ही बढ़ने लगती हैं । सीमान्त लागत में कमी तथा वृद्धि की दर औसत लागत की तुलना में अधिक होती है । यही कारण है कि लागत घटने पर सीमान्त लागत वक्र नीचे होता है तथा लागत बढ़ने पर सीमान्त लागत वक्र उपर होता है । दूसरे शब्दों में कह सकते हैं कि सीमान्त लागत वक्र का ढाल औसत लागत वक्र की तुलना में अधिक होता है । सीमान्त लागत वक्र औसत लागत व को उसके निम्नतम बिन्दु पर काटते हुए ऊँचा उठता है, इसे रेखाचित्र 7.6 में दिखाया गया है ।

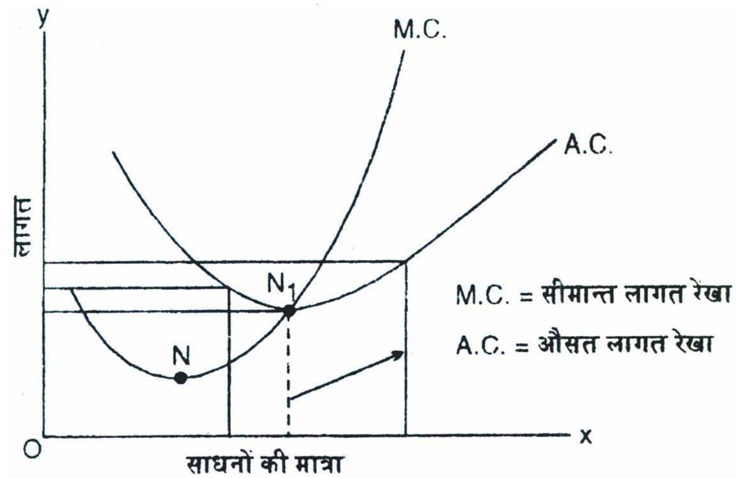

चित्र 7.6

रेखाचित्र 7.6 में MC रेखा N बिन्दु पर न्यूनतम होकर बढ़ने लगती है । AC रेखा इसके बाद N1 बिन्दु पर न्यूनतम बिन्दु पर होती है तथा उसके बाद बढ़ने लगती है । MC रेखा AC रेखा को उसके न्यूनतम बिन्दु N1 पर काटते हुए उपर उठती है । MC रेखा का ढाल AC रेखा से अधिक होता है । N1 बिन्दु के बाद साधन की मात्रा में वृद्धि करने से MC के साथ AC रेखा भी ऊपर उठने लगती है अर्थात् इसमें दोनों ही प्रकार की लागतें बढ़ने लगती है । अत: इसे 'लागत वृद्धि नियम' कहते हैं ।

उत्पत्ति ह्रास नियम की मान्यताएँ या सीमाएँ (Assumptions or Limitations of the Law of Dimensions Returns)

उत्पत्ति ह्रास नियम निम्नलिखित मान्यताओं पर आधारित है -

1. उत्पादन एक निश्चित एवं दिए हुए तकनीकी स्तर पर किया जाता है, इससे तकनीकी स्तर में कोई परिवर्तन नहीं होता है ।
2. उत्पादन में 'पैमाने की बचतें' प्राप्त नहीं होती हैं ।
3. इस नियम में वस्तु की उत्पादन मात्रा पर ध्यान दिया जाता है, वस्तु के मूल्य पर नहीं।
4. उत्पादन साधन को छोटी-छोटी इकाइयों में विभक्त किया जा सकता है ।
5. यह नियम तभी लागू होता है जब उत्पादन के अन्य साधनों को स्थिर रखकर किसी एक साधन में परिवर्तन किया जाये। यदि सभी साधनों में परिवर्तन किया जायेगा तो यह नियम लागू नहीं होगा ।
6. परिवर्तनशील साधन की सभी इकाइयां समरूप हों ।
7. इस नियम में यह मान लिया जाता है कि उत्पादन साधनों का संयोग पहले से ही सर्वोत्तम है । यदि अन्य साधनों की मात्रा को स्थिर रखकर किसी एक साधन को बढ़ाया जायेगा तो यह संयोग भंग हो जायेगा । अत: साधन बढ़ाने की तुलना में उत्पादन कम प्राप्त होगा अर्थात् यह नियम तब लागू होता है जबकि परिवर्तनशील साधन की मात्रा का अनुकूलतम प्रयोग हो चुका हो ।

उत्पत्ति ह्रास नियम के लागू होने के कारण (Causes of the Operation of the Law of Diminishing Returns)

मार्शल ने कृषि क्षेत्र में ही उत्पत्ति ह्रास नियम की क्रियाशीलता की व्याख्या की थी, लेकिन आधुनिक विचारधारा के अनुसार उत्पत्ति दास नियम के लागू होने के निम्नलिखित कारण हैं -

1. एक या एक से अधिक साधनों का स्थिर रहना (One or More Factors of Production are Fixed) - इस नियम की क्रियाशीलता का प्रमुख कारण यह है क हम उत्पादन के एक या एक से अधिक साधन को स्थिर मान लेते हैं तथा अन्य साधनों में परिवर्तन करते हैं । ऐसी स्थिति में उत्पादन साधनों का आदर्श संयोग भंग हो जाता है, तथा परिवर्तनशील साधन की मात्रा बढने के बावजूद अन्य साधनों की मात्रा स्थिर रहने के कारण उत्पादन कम बढ़ता है । यदि सभी साधनों में आनुपातिक वृद्धि की जाये तो यह नियम लागू नहीं होगा ।

2. साधनों की अविभाज्यता (Indivisibility of Factors) - उत्पादन के साधन सीमित होने के साथ-साथ अविभाज्य भी होते हैं अर्थात् एक निश्चित सीमा से अधिक उनको विभाजित नहीं किया जा सकता है । अविभाज्य साधन (मशीन) आदर्शतम बिन्दु (पूर्ण क्षमता) तक तो उत्पादन बढ़ाते जाते हैं, लेकिन इस आदर्श बिन्दु के बाद इनका अधिक प्रयोग करने पर उत्पादन में वृद्धि की दर कम हो जाती है । यदि हम नये साधन (मशीन) लगाते हैं, तो उनकी पूर्ण क्षमता का प्रयोग न होने से लागत बढ़ जाती है अर्थात् उत्पत्ति ह्रास नियम लागू हो जाता है, क्योंकि साधन (मशीन) का छोटी-छोटी मात्रा में प्रयोग नहीं किया जा सकता है ।

3. साधनों की सीमितता (Scarcity of Factors) - कुछ उत्पादन साधनों की पूर्ति सीमित होती है । अत: उत्पादन में वृद्धि करते समय तथा फर्म के संगठन में परिवर्तन करते समय साधनों की सीमितता को ध्यान में रखना होता है । कृषि व्यवसाय में भूमि सीमित होती है । अत: यह नियम लागू होता है । अन्य उद्योगों में भी यदि कोई कच्चा माल या मशीन सीमित मात्रा में उपलब्ध हो तो यह नियम लागू होगा ।

4. उत्पादन-साधनों का अपूर्ण स्थानापन्न होना(Imperfect Substitutes) - उत्पादन के सभी साधन एक-दूसरे के पूर्ण स्थानापन्न नहीं होते हैं । यदि हम उन्हें स्थानापन्न मान भी लें तो उन्हें एक सीमा तक ही एक दूसरे से प्रतिस्थापित किया जा सकता है । श्रीमती रॉबिन्सन ने कहा है कि यदि एक साधन स्थिर हो व अन्य साधनों की पूर्ति पूर्णतया लोचदार हो तो यह बिल्कुल सम्भव है कि उत्पादन का कुछ भाग स्थिर साधन की सहायता से पैदा किया जाये तथा अन्य परिवर्तनशील साधनों की सहायता से । जब स्थिर साधन का अन्य साधनों साथ अनुकूलतम प्रयोग कर लिया जाये तब स्थिर साधन के स्थान पर स्थानापन्न (Substitute) साधन का प्रयोग किया जाये । इस प्रकार स्थिर लागत पर उत्पादन में वृद्धि सम्भव है तथा यह नियम लागू होगा ।" परन्तु व्यावहारिक रूप में साधन एक-दूसरे के पूर्ण स्थानापन्न नहीं होते हैं । अत: उत्पत्ति ह्रास नियम लागू होता है ।

5. उत्पादन क्षमता से अधिक उत्पादन (Production Beyond Capacity) - अल्पकाल में यदि कोई फर्म अपनी क्षमता से अधिक उत्पादन कर रही है, तो यह नियम लागू होगा । हम यह जानते हैं कि अल्पकाल में फर्म का औसत लागत वक्र अंग्रेजी के 'U' की शक्ल का होता है । औसत लागत वक्र का निम्नतम बिन्दु न्यूनतम लागत को प्रकट करता है । यदि कोई फर्म इस बिन्दु से अधिक उत्पादन कर रही है, तो प्रति इकाई उत्पादन लागत बढ़ती है तथा उत्पत्ति ह्रास नियम लागू होने लगता है ।

उत्पत्ति ह्रास नियम का क्षेत्र (Scope of the Law of Diminishing Returns)

प्रतिष्ठा वादी अर्थशास्त्रियों के अनुसार यह नियम केवल कृषिक्षेत्र में ही लागू हो सकता है; किन्तु आधुनिक अर्थशास्त्रियों के अनुसार यह नियम सर्वव्यापी नियम है । यह नियम उत्पादन के हर क्षेत्र में लागू होता है । इनके अनुसार जब उत्पादन के किसी भी क्षेत्र में उत्पादन के एक या एक से अधिक साधन स्थित होते हैं और अन्य साधन परिवर्तनशील, तो अनुकूलतम संयोग के बाद सीमान्त उत्पत्ति तथा औसत उत्पत्ति क्रमश: घटती है । इस प्रकार यह नियम कृषि-क्षेत्र, खनन-क्षेत्र, मछली पकड़ने के उद्योग, निर्माण उद्योग तथा मकान, दुकान आदि के निर्माण-कार्य आदि सभी क्षेत्रों में लागू होता है ।

उत्पत्ति ह्रास नियम का महत्व (Significance of the Law of Diminishing Returns)

यह नियम अर्थशास्त्र के क्षेत्र में एक आधारभूत नियम है । यह अनेक नियमों का आधार रहा है । इसका महत्व निम्न विवरण से स्पष्ट है -

1. अर्थशास्त्र का आधारभूत नियम (Fundamental law of Economics) - यह नियम उत्पत्ति के हर क्षेत्र, कृषि, मछली, खनन, निर्माण उद्योग आदि सभी क्षेत्रों में लागू होता है । इसीलिए यह नियम सार्वभौमिक है । अत: इसे अर्थशास्त्र का आधारभूत नियम माना जाता है ।

2. माल्थस का जनसंख्या सिद्धान्त इसी पर आधारित है (Basis of Malthusian Theory) - माल्थस का जनसंख्या सिद्धान्त उत्पादन ह्रास नियम पर ही आधारित है । माल्थस के सिद्धान्त के अनुसार एक देश में खाद्य सामग्री का उत्पादन जनसंख्या वृद्धि से कम होता है । खाद्य-सामग्री में धीमी गति से वृद्धि का कारण उत्पादन ह्रास नियम ही है ।

3. रिकार्डों का लगान सिद्धान्त भी इसी नियम पर आधारित है (Basis of Riparian Theory) - कृषि क्षेत्र में (गहन कृषि में) भूमि के एक निर्धारित टुकड़े पर श्रम तथा पूँजी की अधिकाधिक इकाइयों का प्रयोग करने से प्रारंभिक इकाइयों की अपेक्षा बाद की इकाइयों की उत्पत्ति कम होती है । जिसका कारण उत्पत्ति ह्रास नियम का लागू होना है । इस नियम के कारण ही लगान प्राप्त होता है । विस्तृत खेती में भी श्रेष्ठ भूमि व घटिया भूमि के टुकड़ों पर समान श्रम व पूँजी की इकाइयों को प्रयोग में लाने के बावजूद भी श्रेष्ठ भूमि पर घटिया भूमि की अपेक्षा जो अधिक उत्पादन होता है, वह लगान है । अत: रिकार्डों के लगान सिद्धान्त का आधार भी यही है ।

4. वितरण के सीमांत उत्पादकता सिद्धान्त का आधार (Basis of Marginal Productivity Theory)- उत्पादन साधनों के पुरस्कार निर्धारण का एक महत्वपूर्ण सिद्धान्त सीमान्त उत्पादकता का सिद्धान्त है, जो कि उत्पादन हास नियम पर ही आधारित है । इस नियम के कारण ही परिवर्तनशील साधन की सीमान्त उत्पादकता घटती है । अत: उनका पुरस्कार घटता जाता है ।

5. प्रतिस्थापन सिद्धान्त का आधार (Basis of Substitution Theory) - प्रत्येक उत्पादक उत्पत्ति के साधनों की सीमान्त उत्पत्ति घटने के कारण ही एसे बिन्दु पर उनका संयोग बैठाता है, जहाँ सबके सीमान्त उत्पत्ति तथा मूल्य का अनुपात बराबर हो ।

6. आविष्कारों का प्रेरणा स्त्रोत(Incentives for Inventions) - इस नियम की क्रियाशीलता की प्रवृति को रोकने के लिए ही नये-नये आविष्कारों का जन्म हु आ है, क्योंकि इस नियम की क्रियाशीलता से उत्पादन घटता जाता है । घटते हुए उत्पादन को रोकने के लिये अनेक प्रयास किए जाते हैं, जिससे आविष्कारों को बढ़ावा मिलता है । इससे नयी-नयी उत्पादन विधियों को जन्म मिलता है ।

7. जनसंख्या के प्रवास हेतु उत्तरदायी(Migration of Population) - क क्षेत्र में भूमि पर जनसंख्या का दबाव बढ़ने के कारण सीमान्त उत्पत्ति घटती है, जिसके परिणामस्वरूप जनसंख्या एक क्षेत्र से हटकर दूसरे क्षेत्र में प्रवास कर जाती है । अत: उत्पत्ति ह्रास नियम की क्रियाशीलता के कारण ही जनसंख्या एक स्थान से दूसरे स्थान तथा एक देश से दूसरे देश में जाती है । इस प्रकार उत्पत्ति ह्रास नियम की क्रियाशीलता आवास-प्रवास को बढाती है ।

8. दैनिक जीवन में महत्व (In Day to Day Life) - दैनिक जीवन में भी उत्पत्ति ह्रास नियम क्रियाशील होता है । यदि एक श्रमिक एक काम को लगातार करता रहे तो वह पूर्व मात्रा से कम ही उत्पादन कर पायेगा, क्योंकि उस पर भी उत्पत्ति ह्रास नियम लागू हो जाता है । किसी कार्य को बिना रूके करते रहने से आनुपातिक लाभ नहीं मिल पाता है ।

9. जीवन-स्तर का माप (Measuring of Living Standard) - उत्पत्ति ह्रास नियम लोगों के जीवन स्तर को भी प्रभावित करता है । उत्पादन के एक साधन की मात्रा में वृद्धि करने से आनुपातिक उत्पादन मात्रा घटती जाती है । फलस्वरूप उत्पादन लागत बढ़ने लगती है । इससे वस्तुओं के मूल्य भी बढ़ जाते हैं ।इससे लोगों के जीवन स्तर पर विपरीत प्रभाव पड़ता है ।

इस प्रकार उत्पत्ति ह्रास नियम अर्थशास्त्र का महत्वपूर्ण एवं सर्वव्यापक नियम है । किसी भी प्रकार के उत्पादन में इसकी क्रियाशीलता निश्चित है । अत: यह सैद्धान्तिक एवं व्यावहारिक दोनों दृष्टियों से महत्वपूर्ण एवं उपयोगी है ।

उत्पत्ति ह्रास नियम की क्रियाशीलता को स्थगित किया जा सकता है (The Working of the Law of Diminishing Return can be Postponed)

यह सत्य है कि उत्पत्ति ह्रास नियम एक सर्वव्यापक नियम है जो उत्पादन के सभी क्षेत्रों जैसे; कृषि, उद्योग आदि में क्रियाशील होता है, लेकिन इस नियम की क्रियाशीलता को कुछ समय के लिए स्थगित किया जा सकता है । इसे पूर्णतया समाप्त नहीं किया जा सकता है । कृषि क्षेत्र में उन्नत बीज, रासायनिक खाद, कीटनाशक दवाइयां, कृषि यन्त्र व उपकरणों के प्रयोग से इन नियम की क्रियाशीलता को भविष्य के लिए स्थगित किया जा सकता है । उद्योगों में भी नये-नये आदि कारों, मशीनों के प्रयोग, नयी किस्म के कच्चे माल की प्राप्ति, नयी उत्पादन विधियों की खोज एवं उनके प्रयोग द्वारा इस नियम की क्रियाशीलता को बहुत समय तक रोके रखा जा सकता है । अधिकांश विकसित देशों ने नयी उत्पादन विधियों के प्रयोग व नये आविष्कारों तथा खोज की सहायता से उत्पत्ति ह्रास नियम की क्रियाशीलता को रोक रखा है, लेकिन इस नियम को बिल्कुल समाप्त नहीं किया जा सकता है ।

7.7 सारांश

उत्पत्ति के नियमों में पारस्परिक सम्बन्ध को दर्शाना ही अल्पकाल में उत्पादन फलन है।

उत्पादन के ये तीनों नियम एक-दूसरे से घनिष्ठ रूप से सम्बन्धित हैं । वस्तुत: वे एक ही नियम "आनुपातिक के नियम की तीन विभिन्न दशाओं को प्रकट करते हैं । उत्पादक उत्पादन साधनों के विभिन्न संयोगों से उत्पादन करने का प्रयत्न करता है तथा उन संयोगों (Combinations) में से सर्वोलक्ष संयोग में विभिन्न साधनों का जो अनुपात होता है, उसी अनुपात में वह उत्पादन साधना को संयुक्त कर उत्पादन करता है, जिससे उत्पादन लागत न्यूनतम हो सके । जब उत्पादक उत्पादन प्रारम्भ करता है तो सामान्यत: आरम्भ में उत्पादन की मात्रा बढ़ाने पर 'उत्पत्ति वृद्धि नियम' के अनुसार उत्पादन होता है, क्योंकि आरम्भ में साधनों की पूर्ण उत्पादन-क्षमता का उपयोग नहीं हो पाता । ज्यों-ज्यों उत्पादन मात्रा बढ़ायी जाती है, प्रति इकाई लागत कम होती जाती है जब तक कि "अविभाज्यताओं का पूरा लाभ उठा लिया जाता है, तब उस बिन्दु पर अत्यन्त अल्प समय के लिए 'उत्पत्ति समता नियम' लागू होता है, जो फर्म के अनुकूलतम आकार का प्रतीक है । उसके पश्चात् यदि उत्पादन की मात्रा में और वृद्धि की गयी तो 'उत्पादन ह्रास नियम' लागू होना प्रारम्भ हो जाता है । इस प्रकार सामान्यतया वृद्धि मान, समता मान तथा ह्रास मान की अवस्थाएँ प्रत्येक उत्पादन क्रिया में पायी जाती

7.8 स्वपरख प्रश्न

1. उत्पादन फलन से आप क्या समझते हैं?

2. परिवर्तनशील अनुपातों के नियम से आप क्या समझते हैं । इसे रेखा चित्र की सहायता से स्पष्ट कीजिये ।

3. उत्पत्ति वृद्धि नियम तथा उत्पत्ति ह्रास नियम की तुलनात्मक व्याख्या कीजिये ।

4. "उत्पत्ति ह्रास नियम दीर्घकाल में सभी साधनों पर क्रियाशील होता है" - कथन की विस्तार से व्याख्या कीजिये ।

7.9 उपयोगी पुस्तकें

1. व्यवसायिक अर्थशास्त्र – एन.डी.माथुरआभा मोहन
2. व्यवसायिक अर्थशास्त्र – सी.एम.चौधरी
3. व्यवसायिक अर्थशास्त्र – बी.पी.गुप्ता
4. व्यावसायिक अर्थशास्त्र – अग्रवाल,अग्रवाल एवं गुप्ता रमेश बुक डिपो,जयपुर ।
5. Business Economics : Agarwal M.D. & Som Deo Ramesh Book Depot,Jaipur.

इकाई-8

दीर्घकाल में उत्पादन फलन : पैमाने के प्रतिफल (Production Function in the Long Run-Return to Scale)

इकाई की रूपरेखा

8.0 उद्देश्य
8.1 प्रस्तावना
8.2 समोत्पत्ति वक्र का अर्थ, मान्यताऐं
8.3 समोत्पत्ति वक्रों की विशेषताऐं
8.4 तकनीकी प्रतिस्थापन की सीमान्त दर
8.5 सम लागत वक्र
8.6 उत्पादक का साम्य अथवा साधनों का न्यूनतम लागत संयोग
8.7 पैमाने के प्रतिफल के विभिन्न रूप
1. पैमाने के वर्द्धमान प्रतिफल
2. पैमाने के समता प्रतिफल
3. पैमाने के घटते हुए प्रतिफल
8.8 पैमाने के बदलते प्रतिफल
8.9 सारांश
8.10 स्वपरख प्रश्न
8.11 उपयोगी पुस्तकें

8.0 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात् आप जान सकेंगे कि :

- उत्पादन में समयावधि का क्या महत्व है ।
- दीर्घकाल में उत्पादन फलन किस प्रकार चलते हैं ।
- समोत्पत्ति वक्र क्या है । यह किन मान्यताओं पर आधारित है तथा समोत्पत्ति वक्रों की प्रमुख विशेषताऐ क्या हैं ।
- दो साधनों के विभिन्न-संयोगों के परिणामस्वरूप समोत्पत्ति वक्र किस प्रकार व्यवहाररत रहते हैं ।
- पैमाने के प्रतिफलों के प्रकार क्या-क्या हैं । पैमाने के वर्द्धमान प्रतिफल; पैमाने के समता प्रतिफल; तथा पैमाने के घटते हुए प्रतिफल । पैमाने के प्रतिफल के विभिन्न रूप क्या हैं?
- सम लागत वक्र क्या हैं?

- किन अवस्थाओं में उत्पादन में यह प्रतिफल आग होते हैं तथा उत्पादन प्रक्रिया में इन अवस्थाओं का क्या असर होता है ।

8.1 प्रस्तावना

दीर्घकाल समय की वह अवधि है जिसमें उत्पादन के सभी साधन परिवर्तनीय होते हैं । उत्पादन का कोई भी साधन स्थिर नहीं होता है । पैमाने के प्रतिफल उत्पादन साधनों में पूर्ण परिवर्तन या उत्पादन की दीर्घकालीन विचारधारा उत्पादन के सभी साधनों में समान अनुपात में परिवर्तन करने पर जो उत्पादन या प्रतिफल में परिवर्तन होता है उसे पैमाने के प्रतिफल कहते हैं। अर्थात पैमाने का प्रतिफल सभी आदानों में समान आनुपातिकता के अन्तर का फलन है । इस उत्पादन फलन की व्याख्या करने के लिये जिस विचारधारा की सहायता ली जाती है उसे समोत्पत्ति उत्पादन वक्र (Iso-Product Curve) कहते हैं ।

8.2 समोत्पत्ति या सम उत्पाद वक्र का अर्थ (ISO-Quant or ISO-Product Curve)

सम उत्पाद वक्र उत्पत्ति के किन्हीं दो साधनों के उन विभिन्न संयोगों को व्यक्त करता है जिससे उत्पाद की एक समान मात्रा प्राप्त की जा सकती है । चूकि सम उत्पाद वक्र पर स्थित विभिन्न बिन्दु या साधन संयोग की समान मात्रा को दिखाते हैं, फलस्वरूप उत्पादक उनके चुनाव के प्रति तटस्थ रहता है ।

अत: दो साधनों के विभिन्न संयोग (मान लें श्रम और पूँजी) उत्पादक को यदि समान प्रतिफल देते हैं तो इन्हें समोत्पाद वक्र कहते हैं । समोत्पत्ति या समउत्पाद वक्र दोनों अन्तर परिवर्तनीय हैं ।

सम उत्पाद तालिका (Iso-Product Schedule) एक तालिका जो उत्पादन के दो साधनों के उन विभिन्न संयोगों को दिखाता है जो उत्पादक को समान उत्पादन प्रदान करते हैं, सम उत्पाद तालिका कहलाती है । तालिका 8.1 सभी संयोगों ABCD और E को दिखाता है जिसमें श्रम एवं पूँजी की विभिन्न मात्राएं/संयोग समान उत्पादन 2000 इकाइयां, उत्पादक को प्रदान करती हैं । अत: उत्पादक इन विभिन्न संयोगों के प्रति उदासीन रहता है ।

तालिका 8.1

संयोग	श्रम (L)	पूँजी (K)	उत्पादन (Q)
A	1	15	2000 इकाईयाँ
B	2	10	2000 इकाईयाँ
C	3	6	2000 इकाईयाँ
D	4	3	2000 इकाईयाँ
E	5	1	2000 इकाईयाँ

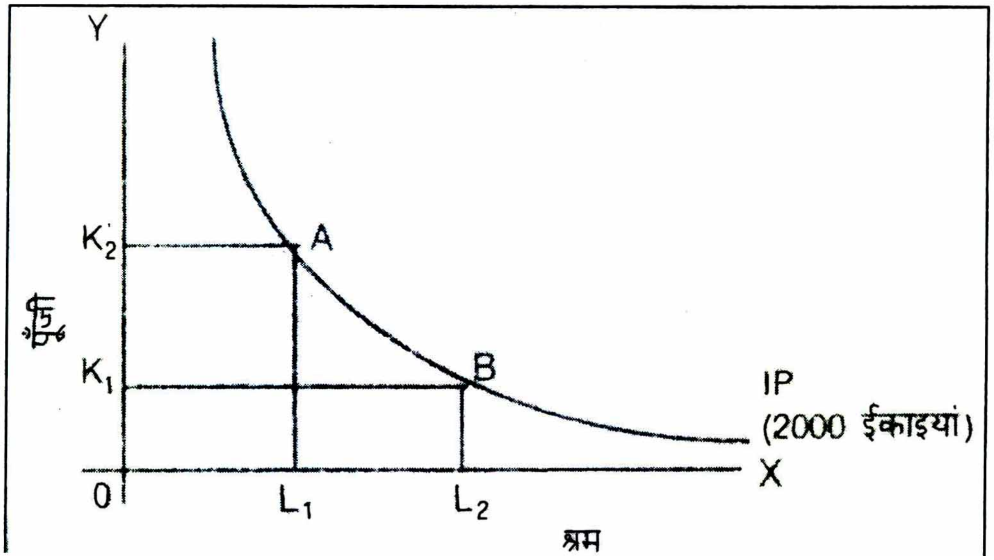

रेखाचित्र 8.1

रेखाकृति प्रस्तुति (Diagrammatic Presentation) : रेखाचित्र 8.1 सम उत्पादक वक्र दर्शाता है । श्रम एवं पूँजी जो कि उत्पादन के दो साधन हैं वे क्रमश : X आधार अक्ष एवं Y लम्बवत अक्ष पर लिए गए है । IP वक्र सम उत्पाद वक्र है जो प्रत्येक बिन्दु पर समान उत्पादन 2000 इकाईयाँ दिखाता है । (बिन्दु A या B) यद्यपि उत्पादन की इकाइयाँ समान होती है फिर भी विभिन्न बिन्दुओं पर साधन संयोग की मात्रा बदल जाती है ।

समोत्पत्ति वक्र विश्लेषण की मान्यताएँ (Assumption of Iso Product Analysis)

समोत्पत्ति वक्र विश्लेषण की प्रमुख मान्यताएँ निम्न हैं-

(1) यह मान लिया जाता है कि एक समय विशेष पर उत्पादन के दो ही साधन हैं ।

(2) उत्पादन की तकनीकी दशाएँ यथावत् हैं ।

(3) उत्पादन के लिए प्रयुक्त साधन पूर्णतया विभाज्य हैं । इस विशेषता के कारण ही समतल समोत्पत्ति रेखाएं खींची जा सकती हैं ।

(4) उत्पादन की तकनीकी दशाओं में साधनों का अनुकूलतम (कुशलतम) संयोग किया गया है।

समोत्पत्ति वक्रों एवं तटस्थता वक्रों में अन्तर (Difference between Iso-product Curves and Indifference Curves)

इनमें निम्नलिखित अन्तर है-

(1) तटस्थता वक्रों की संख्यात्मक माप सम्भव नहीं है अर्थात् हम यह तो कह सकते हैं कि ऊँचा तटस्थता वक्र नीचे तटस्थता वक्र से अधिक सन्तुष्टि स्तर को बताता है; किन्तु यह सन्तुष्टि कितनी अधिक है, इसे नहीं बताता है । लेकिन समोत्पत्ति वक्र यह बता सकते हैं कि नीचे वक्र की तुलना में ऊँचा वक्र कितना अधिक उत्पादन प्रदान करेगा । अर्थात् उत्पादन की संख्यात्मक माप की जा सकती है, जबकि सन्तुष्टि की नहीं ।

(2) तटस्थता वक्र में एक निश्चित समय में उपभोक्ता की आय (व्यय) स्थिर रहती है । लेकिन समोत्पत्ति वक्रों में उत्पादक अपने व्यय को एक सीमा तक परिवर्तित कर सकता है ।

8.3 समोत्पत्ति वक्रों की विशेषताएँ (Properties of Iso-Product Curves)

समोत्पत्ति वक्रों की प्रमुख विशेषताऐ निम्नलिखित हैं :-

(1) ऊँचा समोत्पत्ति वक्र उत्पादन के ऊँचे स्तर को बताता है (A higher Iso-quants shows higher level of production) - एक समोत्पत्ति वक्र के विभिन्न बिन्दु उत्पादन की समान मात्रा को बताते है, किन्तु ऊँचा समोत्पत्ति वक्र उत्पादन के ऊँचे स्तर को तथा नीचा वक्र उत्पादन के नीचे स्तर को बताता है । एक उत्पादन अपने सीमित साधनों से उच्चतम समोत्पत्ति वक्र पर पहुँचने का प्रयास करता है ।

(2) समोत्पत्ति वक्र मूल बिन्दु के प्रति उन्नतोदर होते हैं (Iso-quants are convex to the origin)- तटस्थता वक्रों की भाँति ही समोत्पत्ति वक्र भी मूल बिन्दु के प्रति उन्नतोदर होते हैं अर्थात् समोत्पत्ति वक्रों में भी एक साधन के स्थान पर दूसरे साधन में प्रतिस्थापन की सीमान्त दर घटती हुई होती है । इसे तकनीकी प्रतिस्थापन की सीमान्त दर भी कहते है ।

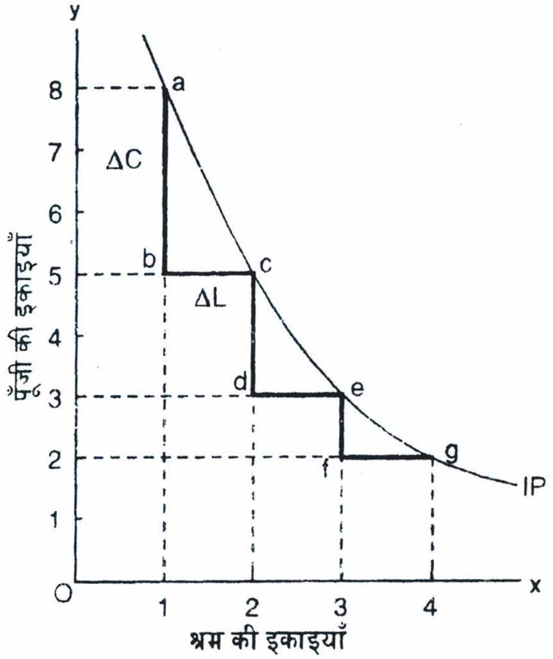

चित्र 8.2

रेखाचित्र में IP वक्र बिन्दु a से नीचे की ओर चलता है । साधन L(श्रम) की एक इकाई 'bc' को साधन 'C'(पूँजी) की 'ab' इकाइयों के स्थान पर प्रतिस्थापित करता है । यदि श्रम की एक ओर इकाई (de) बढ़ायी जाती है तो उसके लिए पूँजी की (cd) मात्रा का त्याग करना पड़ेगा । रेखाचित्र से स्पष्ट है कि 'ab' की तुलना में 'cd' कम है तथा 'cd' की तुलना में ef कम है

अर्थात् प्रतिस्थापित होने वाली इकाई की मात्रा क्रमश: घटती जाती है । इसे ही ' 'तकनीकी प्रतिस्थापन की घटती हुई सीमान्त दर' ' कहते हैं ।

(3) समोत्पत्ति वक्र सदैव नीचे की ओर दाहिने झुकते होते हैं (Iso-quants slopes downward to the right) - तटस्थता वक्रों के समान समोत्पत्ति वक्र भी दाहिनी ओर नीचे को झुकते हुए होते हैं । जो यह बताते हैं कि एक साधन की मात्रा बढ़ाने पर दूसरे साधन की मात्रा घटाकर ही समान उत्पादन प्राप्त किया जा सकता है । लेफ्टविच के अनुसार, "जब तक साधन तकनीकी स्थानापन्न है, तब तक एक साधन की कम मात्रा प्रयुक्त करने पर क्षतिपूर्ति के लिए दूसरे साधन की अधिक मात्रा प्रयुक्त करनी पड़ेगी । यदि कुल उत्पादन समान रहता है । "

(4) दो समोत्पत्ति वक्र एक दूसरे को नहीं काटते हैं (Iso-product curves never intersect each other) - दो समोत्पत्ति वक्र न तो एक दूसरे को छू सकते हैं और न ही एक दूसरे को काट सकते हैं । समोत्पत्ति वक्र OX अक्ष अथवा OY अक्ष को भी नहीं छू सकते हैं । इनके आपस में छूने या काटने से हमारी आधारभूत मान्यता ही गलत हो जाती है कि ऊँचा वक्र अधिक सन्तुष्टि व नीचा वक्र कम सन्तुष्टि को बताता है ।

(5) समोत्पत्ति वक्र परिधि रेखाओं को अंकित करने में सहायक होते हैं (Iso-quants help in determination of Ridge line) - परिधि रेखाओं को ' 'रिज रेखाएं' ' भी कहा जाता है । ये रेखाएं उत्पादन क्षेत्र की परिधि का निर्धारण करती हैं । समोत्पत्ति वक्र व्यावसायिक फर्म के लिए उत्पादन के उचित क्षेत्र की परिधि का निर्धारण करते हैं । ये फर्म को यह बतलाते हैं कि उसके लिए किन सीमाओं के बीच उत्पादन करना लाभप्रद रहेगा । समोत्पत्ति वक्र गोलाकार हो सकते हैं अर्थात् ये किसी बिन्दु पर प्रत्येक अक्ष से पीछे हटने लगते हैं । ये इस बात का सूचक है कि यदि उत्पादक आवश्यकता से अधिक श्रम या पूँजी अथवा दोनों का प्रयोग करेगा तो अन्त में कुल उत्पादन घटने लगेगा अत: यह स्थिति उसके लिए लाभप्रद नहीं होगी । इसलिए एक फर्म को समोत्पत्ति वक्र के केवल उसी भाग में उत्पादन करना चाहिए, जो मूल बिन्दु के प्रति उन्नतोदर हो और 'परिधि रेखा (Ridge line) के अन्दर हो । यही उत्पादन का यथासम्भव मितव्ययी क्षेत्र है । यदि वह इन सीमाओं से बाहर साधन लगाकर उत्पादन करता है तो यह "आर्थिक मूर्खता" होगी ।

8.4 तकनीकी प्रतिस्थापन की सीमान्त दर (Marginal Rate of Technical Substitution)

समोत्पत्ति वक्र विश्लेषण में तकनीकी प्रतिस्थापन की सीमान्त दर के विचार का विशेष महत्व है । समोत्पत्ति वक्र दो सभी बिन्दु उत्पादन की समान मात्रा के सूचक हैं । दो साधनों X (श्रम) तथा Y (पूंजी) के संयोग में यदि एक साधन (X) की मात्रा बढ़ायी जाती है, तो स्वाभाविक रूप से दूसरे साधन 'Y' की मात्रा घटायी जायेगी । इस स्थिति में पहले जितना उत्पादन होगा अर्थात् उत्पादन का स्तर पूर्ववत बना रहेगा । एक साधन के स्थान पर दूसरे साधनों को प्रतिस्थापित करने की दर ही तकनीकी प्रतिस्थापन की सीमान्त दर कहलाती है ।

उत्पादन प्रक्रिया में एक साधन को दूसरे साधन के स्थान पर इस प्रकार प्रतिस्थापित किया जाता है, जिससे उत्पादन पूर्ववत् बना रहे । तकनीकी प्रतिस्थापन की सीमान्त दर के द्वारा ही साधन के प्रतिस्थापन की योग्यता को मापा जाता है । संक्षेप में "**एक साधन X की साधन Y के लिए तकनीकी प्रतिस्थापन की सीमान्त दर 'Y' की वह मात्रा है जो X की एक अतिरिक्त इकाई बढ़ाने की प्रतिक्रिया में घटायी जाती है ताकि उत्पादन का स्तर पहले के समान ही बना रहे**।"

तकनीकी प्रतिस्थापन की सीमान्त दर को निम्नलिखित तालिका से भी स्पष्ट किया जा सकता है -

तकनीकी प्रतिस्थापन की सीमान्त दर

संयोग	साधन(X)	साधन(Y)	साधन की X साधन Y के लिए तकनीकी प्रतिस्थापन की दर
A	1	8	-
B	2	5	3:1
C	3	3	2:1
D	4	2	1:1

तालिका में सभी संयोगों (A,B,C, तथा D) में उत्पादन 50 इकाईयाँ (समान) मान लिया गया है । A संयोग में वह साधन 1x + 8y के संयोग से जितना उत्पादन प्राप्त करता है, उतना ही संयोग 'B' में 2x + 5y के संयोग से प्राप्त करेगा । इसी प्रकार संयोग C व D से भी उसे उतना ही उत्पादन प्राप्त होगा । यहाँ संयोग B की स्थिति में वह X साधन की एक इकाई बढ़ाकर Y साधन की 3 इकाइयाँ छोड़ता है अर्थात् X साधन की 1 इकाई Y साधन की 3 इकाइयों को प्रतिस्थापित करती है । C संयोग में X की 1 इकाई के बदले Y की 2 इकाइयाँ व 'D' संयोग में X की 1 इकाई के बदले Y की 1 इकाई का त्याग करेगा । इसे ही तकनीकी प्रतिस्थापन की सीमान्त दर कहते हैं । इसे सूत्र के रूप में इस प्रकार लिखा जा सकता है -

$$MRTS_{xy} = \frac{\Delta y}{\Delta x}$$

यहाँ MRTS साधन x की साधन y के लिए तकनीकी प्रतिस्थापन की सीमान्त दर को, Δy साधन y में परिवर्तन तथा Δx साधन x की मात्रा में परिवर्तन को दर्शाता है ।

संक्षेप में, साधन X की साधन Y के लिए तकनीकी प्रतिस्थापन की सीमान्त दर Y में परिवर्तन की वह मात्रा है जो कि X की एक इकाई में परिवर्तन की क्षतिपूर्ति के लिए आवश्यक है जबकि उत्पादन स्थिर रहे । -सामान्य रूप से तकनीकी प्रतिस्थापन की सीमान्त दर घटती जाती है अर्थात् X साधन की मात्रा बढ़ाने के लिए उत्पादक Y साधन की उत्तरोत्तर कम मात्रा छोड़ेगा तभी उत्पादन समान रह सकता है ।

तकनीकी प्रतिस्थापन की सीमान्त दर का माप - तकनीकी प्रतिस्थापन की सीमान्त दर को समोत्पत्ति वक्र के ढाल से मापा जाता है । समोत्पत्ति वक्र के किसी बिन्दु पर ढाल इस बिन्दु पर खींची गई स्पर्श रेखा के ढाल से ज्ञात किया जाता है । इसे रेखाचित्र 8.3 द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है ।

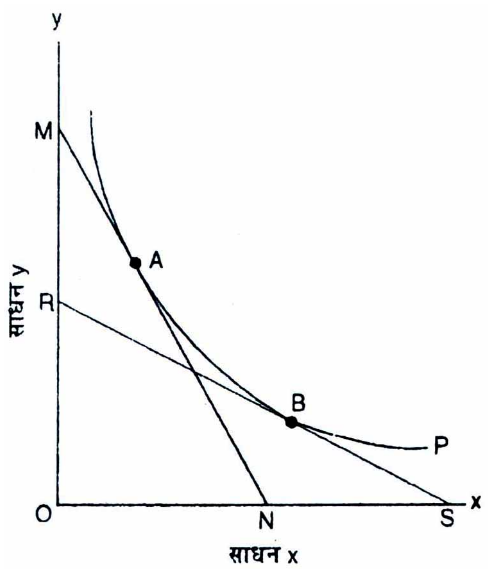

रेखाचित्र 8.3

रेखाचित्र में समोत्पत्ति वक्र P के A व B बिन्दुओं पर ढाल को ज्ञात किया गया है । A बिन्दु पर स्पर्श रेखा MN तथा B बिन्दु पर स्पर्श रेखा RS खींची गई है । स्पर्श रेखा MN का ढाल OM/ON के बराबर है, अत: A बिन्दु पर तकनीकी प्रतिस्थापन की सीमान्त दर OM/ON के बराबर है । इसी तरह बिन्दु B पर स्पर्श रेखा RS का ढाल OR/OS है अत: बिन्दु B पर तकनीकी प्रतिस्थापन की दर OR/OS होगी ।

तकनीकी प्रतिस्थापन की घटती हुई सीमान्त दर - तकनीकी प्रतिस्थापन की सीमान्त दर घटती हुई होती है । दो साधनों x तथा y के संयोग में यदि एक साधन x की मात्रा बढ़ायी जाती है जो दूसरे साधन y की मात्रा घटानी पड़ेगी तभी उत्पादन पूर्ववत रहेगा । ऐसी स्थिति में साधन x की प्रत्येक अतिरिक्त इकाई को साधन y की घटती हुई मात्रा से प्रतिस्थापित किया जाता है अर्थात् x की प्रत्येक अगली इकाई के लिए y साधन की उत्तरोत्तर कम इकाइयां छोड़ी जायेंगी । इसे ही तकनीकी प्रतिस्थापन की घटती हुई सीमान्त दर कहा जाता है । सामान्य रूप से यह सिद्धान्त सभी स्थितियों में लागू होता है, किन्तु निम्न स्थितियों (अपवाद) में यह लागू नहीं होता है-

1. दो साधनों के एक दूसरे के पूर्ण स्थानापन्न होने पर प्रतिस्थापन की दर स्थिर रहेगी, घटेगी नहीं ।
2. दो साधनों के एक-दूसरे के पूरक होने पर भी यह सिद्धान्त लागू नहीं हो पायेगा, क्योंकि एक साधन की मात्रा बढ़ाने पर दूसरे साधन की मात्रा भी बढ़ानी होगी ।

8.5 सम-लागत वक्र (Iso-Cost Curve)

सम-लागत वक्र वह वक्र है जो साधनों के मूल्यों तथा उत्पादक द्वारा साधनों के क्रय पर व्यय की जाने वाली राशि को व्यक्त करता है । दूसरे शब्दों में **सम लागत रेखा वह रेखा है जो दो साधनों के उन विभिन्न संयोगों को प्रकट करती है जो एक उत्पादक दी हुई व्यय राशि तथा**

दोनों साधनों के दिये हुए मूल्यों पर क्रय कर सकता है । इसे व्यय रेखा (Outlay line), आदा मूल्य रेखा (Input price line) तथा साधन लागत रेखा (factor cost line) के नाम रो भी जाना जाता है । सम लागत वक्रो को रेखाचित्र से भी समझाया जा सकता है । उदाहरण के लिए एक उत्पादक के पास X तथा Y दो साधन हैं तथा इनकी कीमत दी हुई है । उत्पादक के पास व्यय करने के लिए 200 रू. हैं । इन रूपयों से वह साधन X की OA1 मात्रा अथवा साधन Y की OAमात्रा खरीद सकता है अथवा वह इनके अन्य किसी संयोग को भी खरीद सकता है; किन्तु वह AA1 रेखा से बाहर नहीं जा सकता है । यह उसके कुल व्यय की अधिकतम सीमा है । इसी प्रकार यदि उसका कुल व्यय रू. 300 है तो वह BB1 रेखा के संयोग वाले साधनों को लगा सकता है । कुल व्यय 500 रू. होने पर वह CC1, रेखा के संयोग में आने वाले साधनों को लगा सकता है । इन स्थितियों में साधनों की कीमत को दिया हुआ मान लिया गया है ।

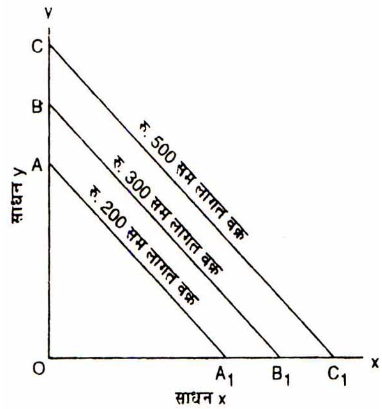

चित्र 8.4

8.6 उत्पादक का साम्य (Equilibrium of the Producer) अथवा साधनों का न्यूनतम लागत संयोग (Least cost combination of factors)

एक फर्म साधनों के संयोग की दृष्टि से उस समय साम्य की स्थिति में होती है जब उसे अधिकतम लाभ प्राप्त हो रहा हो । यह तभी सम्भव है, जब वह साधनों का कुशलतम प्रयोग करे अथवा साधनों के न्यूनतम लागत संयोग का चुनाव करे । साधनों के न्यूनतम लागत संयोग को प्राप्त करने के लिए फर्म को - (i) साधनों की भौतिक उत्पादकताओं तथा (ii) साधनों की कीमतों को ध्यान में रखना पड़ता है । साधनों की भौतिक उत्पादकताओं को समोत्पत्ति-वक्रों से तथा साधनों की कीमत को सम-लागत रेखाओं से देखा जा सकता है । इसके आधार पर उत्पादक न्यूनतम लागत संयोग अथवा उत्पादक साम्य को प्राप्त कर सकता है । इसे रेखाचित्र 8.5 द्वारा दर्शाया जा सकता है।

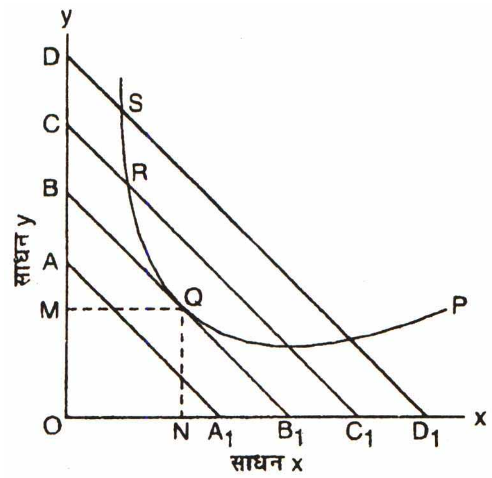

चित्र 8.5

एक उत्पादक उस बिन्दु पर साम्य की स्थिति में होता है, जहां उसकी सम लागत रेखा (BB_1) उसके उच्चतम समोत्पत्ति वक्र को स्पर्श करती है । चित्र में समोत्पत्ति वक्र P तथा सम लागत वक्र BB_1, के Q बिन्दु पर साम्य की स्थिति को दर्शाया गया है । 'P' वक्र के किसी भी बिन्दु Q, R तथा S समान उत्पादन मात्रा को दर्शाते हैं; किन्तु उत्पादक समान उत्पादन के लिए न्यूनतम लागत वाले संयोग को चुनेगा । चित्र में BB1, सम लागत वक्र न्यूनतम लागत वक्र है जो Q बिन्दु पर P समोत्पत्ति वक्र को स्पर्श कर रहा है । यदि वह R या S बिन्दु को चुनता है तो उतने ही उत्पादन के लिए उसकी लागत CC_1 या DD_1 होगी जो BB_1 सम-लागत वक्र से ऊंची है । अत: वह BB_1, सम-लागत वक्र (न्यूनतम लागत संयोग) का ही चुनाव कर साम्य की स्थिति में होगा । यह संयोग वांछित उत्पादन के लिए न्यूनतम लागत की स्थिति को बताता है । साम्य बिन्दु पर स्थानापन्न की दर तथा साधनों के मूल्यों का अनुपात बराबर होता है । सूत्र के रूप में -

$$\frac{MPx}{MPy} = \frac{Px}{Py} \quad \text{अथवा} \quad \frac{MPx}{Px} = \frac{MPy}{Py}$$

उत्पादक के लिए यही आदर्श साम्य स्थिति होती है ।

8.7 पैमाने के प्रतिफल (Returns to Scale)

पैमाने के प्रतिफल का अर्थ यह है कि उत्पादन के सभी साधनों की मात्रा में आनुपातिक परिवर्तन करने से उनके प्रतिफल में क्या परिवर्तन होते हैं" अर्थात् उत्पादन के सभी साधनों में समान अनुपात (Equal Proportion) में परिवर्तन करने से उत्पादन में जो परिवर्तन होते हैं, उन्हें पैमाने के प्रतिफल की संज्ञा दी जाती है । यहां यह ध्यान देने योग्य बात है कि उत्पादन के सभी साधनों में परिवर्तन केवल दीर्घकाल में ही हो सकता है । इसलिए पैमाने के प्रतिफल का सम्बन्ध दीर्घकालीन उत्पादन फलन से होता है । संक्षेप में यह कह सकते हैं कि पैमाने के प्रतिफल का तात्पर्य उत्पादन साधनों के अनुपात में परिवर्तन किए बिना उत्पादन साधनों में वृद्धि के फलस्वरूप उत्पादन मात्रा पर पड़ने वाले प्रभाव से है । यदि उत्पादन साधनों में वृद्धि (25 प्रतिशत) से उत्पादन मात्रा भी (25 प्रतिशत) बढ़ जाती है तो 'पैमाने के स्थिर प्रतिफल' प्राप्त

होगा । यदि साधनों में वृद्धि (25 प्रतिशत) की तुलना में उत्पादन में (50 प्रतिशत) वृद्धि होती है तो 'पैमाने के बढते हुए प्रतिफल' प्राप्त होंगे । इसके विपरीत साधनों में वृद्धि (25 प्रतिशत) की तुलना में उत्पादन मात्रा में (10 प्रतिशत) कम वृद्धि होती है, तो 'पैमाने के घटते हुए प्रतिफल' प्राप्त होंगे ।

पैमाने के प्रतिफल के अध्ययन में निम्न बातों को ध्यान में रखना आवश्यक है-

1. पैमाने के प्रतिफल का सम्बन्ध दीर्घकाल से है, अल्पकाल से नहीं ।
2. उत्पादन के विभिन्न साधनों के अनुपात में परिवर्तन किये बिना साधनों की मात्रा बढ़ाकर उत्पादन बढ़ाया जाता है अर्थात् उत्पादन के साधनों में एक ही अनुपात में परिवर्तन किया जाता है ।
3. उत्पादन की तकनीक स्थिर रहती है ।
4. उत्पादन की गणना मात्रा से की जाती है, मूल्य से नहीं ।
5. यह पूर्ण प्रतियोगिता की मान्यता पर आधारित है ।
6. इसमें उत्पादन साधनों की कीमतों को स्थिर मान लिया जाता है ।

साधारण रूप से कहा जा सकता है कि यदि सभी साधनों की मात्रा में एक ही अनुपात में वृद्धि की जाये, तो उत्पादन में उसी अनुपात में वृद्धि होगी । जैसे यदि सभी साधनों की मात्रा दुगुनी कर दी जाये, तो उत्पादन की मात्रा दुगुनी हो जायेगी; परन्तु व्यवहार में ऐसा नहीं होता । एक फर्म यदि सभी साधनों की मात्रा में वृद्धि करती है तो शुरू में उत्पादन की मात्रा में आनुपातिक वृद्धि अधिक दर पर होती है; परन्तु धीरे-धीरे वृद्धि दर में कमी होने लगती है । जब उत्पादन के सभी साधनों में वृद्धि करने के फलस्वरूप उत्पादन में अधिक आनुपातिक वृद्धि होती है तो इसे पैमाने का वर्द्धमान प्रतिफल (Increasing Returns to Scale) कहते हैं । यदि सभी साधनों की आनुपातिक मात्रा में वृद्धि की तुलना में उत्पादन में कम वृद्धि होती है, तो इसे पैमाने का ह्रासमान प्रतिफल (Decreasing Returns to Scale) कहते हैं । इन दोनों अवस्थाओं के बीच में काफी समय तक एक ऐसी अवस्था पायी जाती है जिसमें सभी साधनों की मात्रा में जिस अनुपात में वृद्धि की जाती है; ठीक उसी अनुपात में कुल उत्पादन में भी वृद्धि होती है । इस अवस्था को पैमाने का समता प्रतिफल (Constant Returns to Scale) कहते हैं।

समोत्पादक वक्रों की सहायता से पैमाने के प्रतिफल पर विचार. किया जा सकता है । यद्यपि उत्पादन के अनेक साधन हैं, लेकिन सुविधा के लिए उत्पादन के दो साधन श्रम व पूँजी को ही लेते हैं । हम यह मानकर भी चलते हैं कि साधनों के क्रेताओं के मध्य पूर्ण प्रतियोगिता विद्यमान है । यदि एक फर्म दो साधनों का प्रयोग करती है तथा दोनों साधनों की मात्रा बदलती है तो दीर्घकाल में वह उत्पादन में किस प्रकार परिवर्तन लायेगी? माँग में परिवर्तन के कारण दीर्घकाल में उत्पादन में परिवर्तन करना पड़ेगा । इस परिवर्तन को जानने के लिए साधनों की कीमतों पर विचार करना होगा, क्योंकि साधनों की मात्रा उनके सापेक्ष मूल्यों तथा प्राविधिक दशाओं पर निर्भर है । यदि समोत्पत्ति वक्र चित्र रेखाचित्र 8.6 के अनुसार है तो वर्तमान समय में-

$$\frac{\text{X साधन की कीमत}}{\text{Y साधन की कीमत}} = \frac{OB}{OA} = \frac{OB1}{OA1} = \frac{OB2}{OA2}$$

फर्म कम से कम लागत पर उत्पादन करना चाहती है । यदि फर्म 100 इकाइयाँ पैदा करना चाहती है तो वह P बिन्दु पर साम्य अवस्था में होगी ।

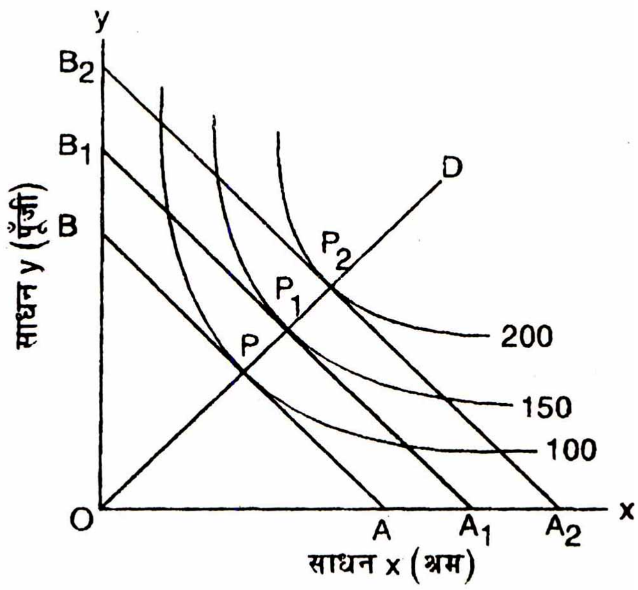

रेखाचित्र 8.6

इस बिन्दु पर BA-(Iso-cost-line) वक्र की स्पर्श-रेखा है । इस बिन्दु पर 100 इकाइयां पैदा करने की लागत न्यूनतम होगी । इसी प्रकार 150 तथा 200 इकाइयां पैदा करने के लिए P1, तथा P2 बिन्दु पर साम्य अवस्था होगी । यह याद रखना चाहिए कि P, P1, तथा P2 आदि बिन्दु Y साधन के संदर्भ में X साधन का सीमान्त महत्व प्रकट करते हैं । यदि साम्य के इन सभी बिन्दुओं P, P1, तथा P2 को मिला दिया जाये तो इस प्रकार जो वक्र OD बनता है, उसे 'पैमाना रेखा' (Scale Line) कहते हैं । पैमाना रेखा यह बतलाती है कि यदि दो साधन X तथा Y परिवर्तनशील है तथा उनकी तुलनात्मक कीमतें बाजार में निश्चित हैं तो न्यूनतम लागत पर उत्पादन की विभिन्न मात्राएं पैदा की जायेंगी । फर्म उत्पादन पैमाना OD रेखा पर निश्चित करेगी । इस पैमाना रेखा को 'विस्तार मार्ग' (Expansion Path) भी कहते हैं । यह रेखा उत्पादन के विभिन्न स्तरों पर साधनों के विभिन्न संयोगों को प्रदर्शित करती है । पैमाना रेखा का ढलान दो बातों पर निर्भर है -(i) सभी साधनों की कीमतें तथा (ii) समोत्पत्ति वक्रों का स्वरूप । पैमाना रेखा द्वारा यह ज्ञात किया जा सकता है कि यदि साधनों की मात्रा में परिवर्तन किया जाए तो उत्पादन में बढ़ती हुई दर से, घटती हुई दर से, अथवा समान दर से परिवर्तन होगा ।

8.7 पैमाने के प्रतिफल के विभिन्न रूप (Different Types of Returns to Scale)

पैमाने के प्रतिफल की तीन अवस्थायें होती हैं -

(1) पैमाने के वर्द्धमान प्रतिफल (Increasing Returns to Scale)

(2) पैमाने के समता प्रतिफल (Constant Returns to Scale)

(3) पैमाने के घटते हुए प्रतिफल (Decreasing Returns to Scale)

1. पैमाने के वर्द्धमान प्रतिफल (Increasing Returns to Scale)

पैमाने के वर्द्धमान प्रतिफल का आशय उस स्थिति से है, जिसमें उत्पादन साधनों की मात्रा में की गई वृद्धि (माना 25 प्रतिशत) के फलस्वरूप उत्पादन मात्रा में अधिक (माना 50 प्रतिशत) वृद्धि होती है । इस प्रकार साधनों में वृद्धि की तुलना में उत्पादन मात्रा में अधिक वृद्धि होती है । इसे ही पैमाने का वर्द्धमान प्रतिफल कहते हैं।

नियम के लागू होने के कारण (Causes of Application of Law) -

(1) अविभाज्यताएँ (Indivisibility) - छोटे पैमाने पर उत्पादन की दशा में कुछ उत्पादन साधनों के छोटे भागों में विभक्त न हो सकने के कारण उत्पादन (प्रति इकाई) कम होता है । उदाहरण के लिए यदि उत्पादन बहुत छोटे पैमाने पर किया जाता है तो कुछ पूंजी सम्पत्तियाँ उचित प्रयोग में नहीं आ सकतीं । सड़क-निर्माण के लिए प्रयोग में लाये जाने वाले विभिन्न साधनों के संबंध में यह सत्य है । कुछ पूंजीगत सम्पत्तियों से छोटी इकाइयों पैदा की जा सकती है, लेकिन ऐसी अवस्था में भी उत्पादन (प्रति इकाई) कम होगा । पूँजीगत सम्पत्तियों के समान श्रम भी पूर्ण रूप से विभाज्य नहीं है । किसी भी उद्योग में श्रमिक से उसकी अधिकतम उत्पादकता प्राप्त करना कठिन होता है ।

(2) विशिष्टीकरण (Specialization) - बढ़ते हुए पैमाने के प्रतिफल का दूसरा महत्वपूर्ण कारण विशेष दक्षता है । किसी भी छोटे पैमाने के उद्योग में लगे हुए व्यक्तियों को अनेक प्रकार के कार्य करने पड़ते हैं । जब उत्पादन के पैमाने को बढ़ाया जाता है तो उनको वे कार्य करने को दिये जा सकते हैं, जिनमें वे अधिक दक्ष हैं । इनसे दक्षता में वृद्धि होगी और अधिक उत्पादन प्राप्त होगा ।

(3) आकार की दक्षता (Dimensional Efficiency) - प्रो. बोमल ने पैमाने के वर्द्धमान प्रतिफल का कारण बड़े आकार के परिणामस्वरूप होने वाली कुशलता को बताया है । आकार की कुशलता को उत्पत्ति का पैमाना बढ़ाकर प्राप्त किया जा सकता है । उदाहरणार्थ, यदि एक गटर पाइप का घेरा (diameter) दुगुना कर दिया जाये तो इससे पहले की अपेक्षा दुगुने से भी अधिक मैला पदार्थ निष्कासित किया जा सकता है । इसी प्रकार अन्य मशीनों, उपकरणों आदि का आकार बढ़ाकर आकार की कुशलता प्राप्त की जा सकती है । इसीलिए यह कहा जा सकता है कि पूंजीगत सम्पत्तियों में एक सीमा तक जिस अनुपात में विनियोजन में वृद्धि की जाती है, उससे अधिक अनुपात में उत्पादन-कुशलता बढ़ती है ।

(4) आन्तरिक एवं बाह्य बचतें (Internal and External Economics) - उत्पत्ति का पैमाना बढ़ाने पर अनेक आन्तरिक एवं बाह्य मितव्ययताएँ प्राप्त होती हैं । आन्तरिक मितव्ययताएँ या बचतों में तकनीकी बचतें, विपणन बचतें, वित्तीय बचतें, प्रबन्ध की बचतें, जोखिम उठाने की बचतें आदि आती हैं; जबकि बाह्य मितव्ययताओं या बचतों में केन्द्रीयकरण के लाभ सम्मिलित होते हैं । इन बचतों के कारण प्रति इकाई उत्पादन-लागत घट जाती है ।

इस प्रकार यदि किसी उद्योग में प्रारम्भ में उत्पादन के कुछ साधनों का समुचित उपयोग नहीं किया जा रहा है, तो उत्पादन वृद्धि के प्रारंभिक प्रयास में नये लगाये गये साधनों से

आपेक्षिक रूप से अधिक उत्पादन प्राप्त होता है । पैमाने के बढ़ते प्रतिफल को निम्नलिखित तालिका तथा रेखाचित्र से समझा जा सकता है ।

तालिका 8.1 पैमाने के बढ़ते प्रतिफल

श्रम + पूँजी की इकाइयाँ	कुल उत्पत्ति (इकाइयों में)	कुल लागत रु. (TC)	औसत लागत रु. (AC)	सीमांत लागत रु. (MC)
1 + 1	5	20	4.00	4.00
2 + 2	12	40	3.33	2.90
4 + 4	24	60	2.50	1.67

तालिका में पैमाने के बढ़ते प्रतिफल को दर्शाया गया है, इसमें श्रम व पूंजी की इकाइयाँ बढ़ाने से कुल उत्पादन बढता है ।

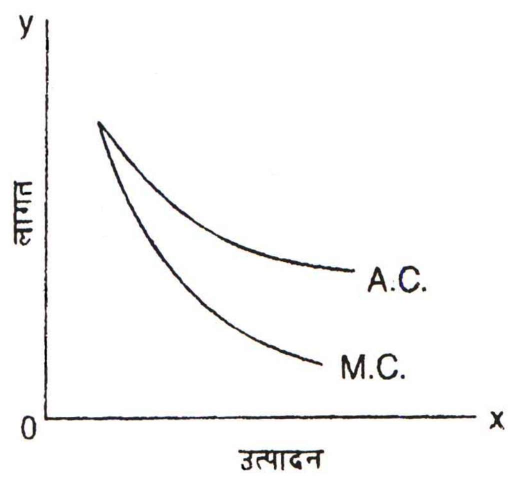

रेखाचित्र 8.7

तालिका में कुल लागत को भी बढ़ता हुआ बताया गया है लेकिन उत्पादन में वृद्धि के अनुपात में लागत में कम वृद्धि हो रही है । फलस्वरूप औसत लागत व सीमान्त लागत दोनों कम हो रही है; लेकिन सीमान्त लागत औसत लागत की तुलना में अधिक तेजी से घट रही है । अत: सीमान्त लागत रेखा औसत लागत रेखा के नीचे होगी जैसाकि रेखाचित्र 8.7 में दिखाया गया है ।

रेखाचित्र 8.8 में समोत्पादक वक्रों की सहायता से पैमाने के बढ़ते प्रतिफल को दिखाया गया है । चित्र में X-axis पर श्रम की इकाइयों तथा Y-axis पर पूँजी की इकाइयों को दिखाया गया है । IP1,IP2,IP3 व IP4क्रमश: समोत्पाद रेखाएं हैं, जिनके उत्पादन का क्रम क्रमश: 20,30,40 व 50 है ।

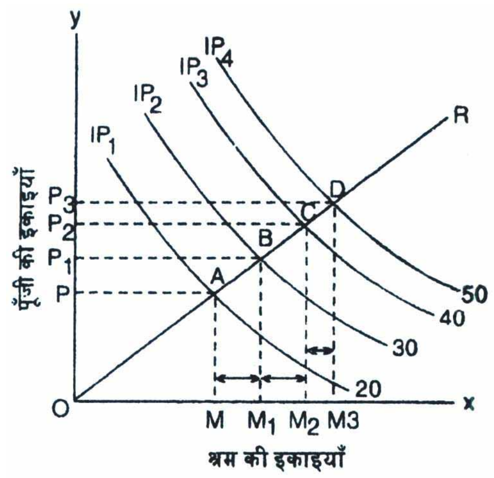

रेखाचित्र 8.8

OR रेखा पैमाने की रेखा है, जिसे विभिन्न समोत्पादक रेखाएं छोटे-छोटे भागों A'B, BC, CD मे बांटती हैं । उत्पादन की मात्रा की वृद्धि दर समान है अर्थात् प्रत्येक बिन्दु पर उत्पादन वृद्धि दर 10 इकाइयों के बराबर है, जबकि श्रम एवं पूंजी की बढ़ती हुई इकाइयों का अनुपात क्रमश: घटते हुए क्रम से है अर्थात् CD<BC<AB । इसका तात्पर्य यह है कि उत्पादन की 10 अतिरिक्त इकाइयाँ प्राप्त करने के लिए श्रम व पूँजी की उत्तरोत्तर कम मात्रा की आवश्यकता होगी अर्थात् श्रम व पूँजी की बढ़ायी गयी मात्रा की तुलना में उत्पादन मात्रा में अधिक वृद्धि हो रही है । इसे ही पैमाने के बढ़ते हुए प्रतिफल की अवस्था कहते है ।

2. पैमाने के समता प्रतिफल (Constant Returns to Scale)

पैमाने के समता प्रतिफल का तात्पर्य उस स्थिति से है, जिसमें उत्पादन साधनो में वृद्धि के अनुपात में ही उत्पादन मात्रा में भी वृद्धि होती है, जैसे; यदि उत्पादन साधनों में 20 प्रतिशत वृद्धि की जाये तो उत्पादन की मात्रा भी 20 प्रतिशत ही बढ़ जायेगी । इस प्रकार यदि साधनों की मात्रा दुगुनी या तिगुनी कर दी जाये तो उत्पादन भी दुगुना या तिगुना हो जायेगा । इस दशा को पैमाने का समता प्रतिफल कहते हैं ।

इस स्थिति में समोत्पादक चित्र में सभी पैमाने की रेखाएँ मूल बिन्दु से प्रारम्भ होने वाली सरल रेखायें होंगी । रेखाचित्र 8.9 में विभिन्न पैमाने की रेखाओं पर पैमाने का प्रतिफल संमान रहता है ।

यदि समोत्पत्ति मानचित्र पर उत्पादन के दोनों साधनों की मात्रा में आनुपातिक परिवर्तन किया जाये तो उत्पादन में भी आनुपातिक परिवर्तन हो जायेगा । इसीलिए समोत्पत्ति मानचित्र पर पैमाने की प्रत्येक रेखा पर उत्पादन समान होगा । रेखाचित्र 8.9 में पैमाने की प्रत्येक रेखा पर उत्पादन स्थिर रहता है ।

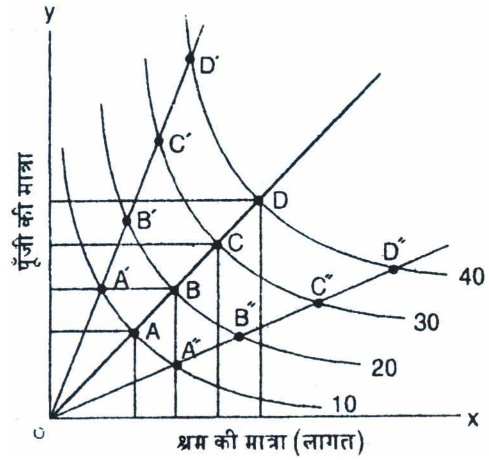

चित्र 8.9

प्रतिफल की स्थिरता इस बात से स्पष्ट होती है कि O,A,B,C,D तथा A", B", C", D", पर विभिन्न समोत्पत्ति वक्रों के बीच की दूरी सदैव समान रहती है । उदाहरणार्थ उपर्युक्त OA=AB=BC=CD;OA'=A'B'=B'C'=C'D',OA"= A"B"=B"C"=C"D" इत्यादि । यह कहा जा सकता है कि वैकल्पिक रूप से दिये हुए साधनों के मूल्यों पर मूल्यों का ढ़लाव व्यय के प्रतिफल के साथ स्थिर रहते हैं । अगर उत्पादन साधनों के मूल्य स्थिर रहते हैं और अगर उत्पादन साधन की मात्रा दुगुनी कर दी जाये तो कुल व्यय भी दुगुना हो जायेगा । इस विशेष प्रकार के मानचित्र में व्यय के प्रतिफल तथा पैमाने के प्रतिफल शब्द एक दूसरे के स्थान पर प्रयोग में लाये जा सकते हैं ।

पैमाने के समता प्रतिफल में वस्तु की औसत लागत व सीमान्त लागत यथा स्थिर रहती है तथा कुल लागत समान दर से बढ़ती जाती है । इसको निम्न तालिका में दिखाया गया है ।

तालिका 8.2

श्रम + पूँजी की इकाइयाँ	कुल उत्पत्ति (इकाइयों में)	कुल लागत रु. (TC)	औसत लागत रु. (AC)	सीमांत लागत रु. (MC)
1 + 1	1	8	8	8
2 + 2	2	16	8	8
4 + 4	4	32	8	8

तालिका में दिखाया गया है कि साधनों की मात्रा दुगुनी करने पर उत्पादन मात्रा भी दुगुनी हो गयी है तथा कुल लागत भी दुगुनी हो गयी है । इस स्थिति में औसत लागत व सीमान्त लागत स्थिर है । पैमाने के स्थिर या समता प्रतिफल को रेखाचित्र 8.10 से भी देखा जा सकता है, जिसमें कुल लागत को निश्चित दर से बढ़ता हुआ दिखाया गया है जबकि औसत व सीमान्त लागत रेखा एक सीधी रेखा के रूप में दिखायी गई है ।

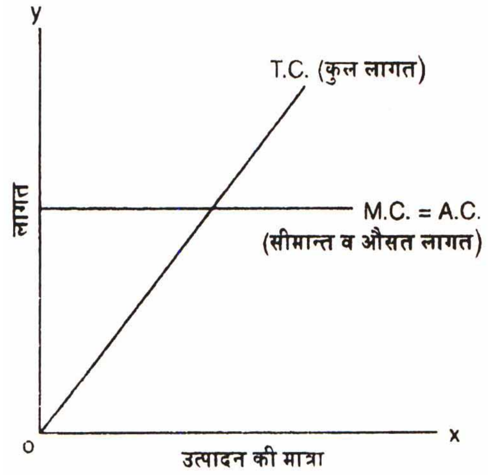

रेखाचित्र 8.10

रेखाचित्र में स्पष्ट है कि उत्पादन में वृद्धि के साथ-साथ कुल लागत समान दर से बढ़ रही है । फलस्वरूप सीमान्त लागत तथा औसत लागत दोनों समान हैं ।

3. पैमाने के घटते हुए प्रतिफल (Decreasing Returns to Scale)

पैमाने के घटते हुए प्रतिफल का तात्पर्य उस स्थिति से है, जिसमें साधनों में वृद्धि के अनुपात से उत्पादन मात्रा में कम वृद्धि होती है, जैसे; यदि साधनों में 20 प्रतिशत वृद्धि की जाये तो उत्पादन मात्रा 10 प्रतिशत ही बढ़े । यदि कोई फर्म अपने अनुकूलतम आकार से आगे उत्पादन बढ़ाने के लिए उत्पत्ति के साधनों की अतिरिक्त इकाइयां लगाती हैं तो उन अतिरिक्त इकाइयों के अनुपात से उत्पादन मात्रा में कम वृद्धि होती हैं । इसी स्थिति को पैमाने का घटता प्रतिफल कहते हैं । इसका कारण यह है कि अनुकूलतम संयोग के बाद उत्पादन बढ़ाने से अनेक जटिलताएं व समस्यायें पैदा हो जाती हैं, जिससे औसत लागत व सीमान्त लागत बढ़ने लगती है तथा कुल लागत बढ़ती हुई दर से बढ़ने लगती है । पैमाने के घटते प्रतिफल को रेखाचित्र 8.11 में दिखाया गया है । रेखाचित्र से स्पष्ट है कि OX-axis पर श्रम की मात्रा OY-axis पूंजी की मात्रा बतायी गयी है । IP1,IP2,IP3,IP4 समोत्पादक वक्र है जो उत्पादन के विभिन्न स्तरों को प्रकट करते हैं। ON रेखा पैमाने की रेखा है, जो समोत्पादक वक्रों द्वारा A,B,C व D भागों में विभक्त हैं प्रत्येक भाग की बढ़ती हुई दूरी यह बताती है कि उत्पादन की अतिरिक्त 10 इकाइयां उत्पादित करने के लिए साधनों की उत्तरोत्तर अधिक मात्रा की आवश्यकता होगी । जो AB<BC<CD से स्पष्ट है । दूसरे शब्दों में कह सकते हैं कि 10 इकाइयों के प्रत्येक अतिरिक्त उत्पादन के लिए लागत बढ़ती जायेगी । जैसा कि निम्न तालिका में दिखाया गया है ।

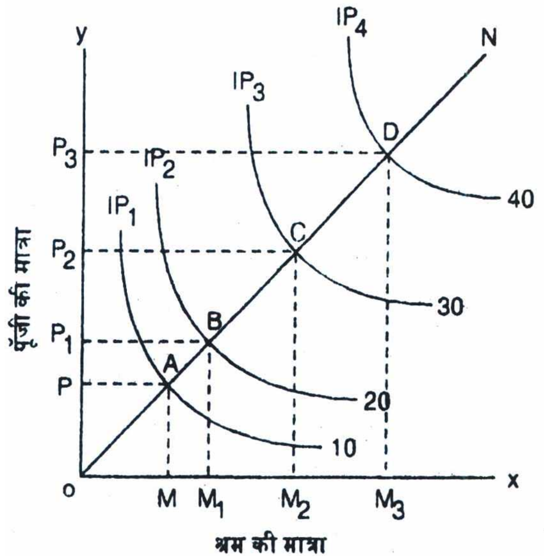

चित्र 8.11

तालिका 8.3

पैमाने का घटता प्रतिफल

श्रम + पूँजी की इकाइयाँ	कुल उत्पत्ति (इकाइयों में)	कुल लागत रु. (TC)	औसत लागत रु. (AC)	सीमांत लागत रु. (MC)
1 + 1	1	6	6	6
2 + 2	2	14	7	8
4 + 4	3	36	9	11

तालिका से स्पष्ट है कि उत्पादन बढ़ाने पर औसत लागत व सीमान्त लागत बढती है । फलस्वरूप कुल लागत भी बढ़ती हुई दर से बढ़ रही है क्योंकि जिस अनुपात में साधन बढ़ रहे हैं, उत्पादन उससे कम अनुपात में बढ रहा है ।

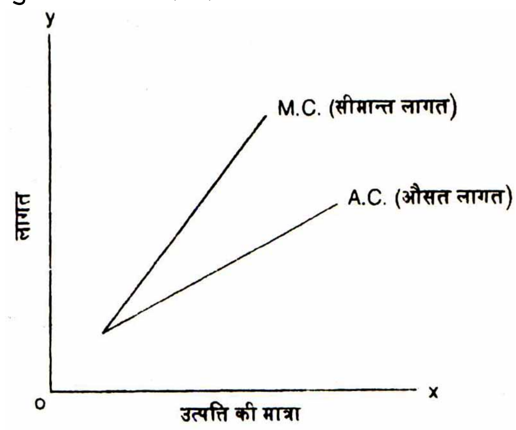

रेखाचित्र 8.12

इस प्रवृत्ति को रेखाचित्र 8.12 में देखा जा सकता है । चित्र से स्पष्ट है कि उत्पादन की मात्रा में वृद्धि के साथ-साथ लागत भी बढ़ती जा रही है । फलस्वरूप सीमान्त लागत व औसत

लागत वक्र ऊपर उठ रहे हैं । यह स्थिति उस समय उत्पन्न होती है, जब एक फर्म अपने अनुकूलतम आकार (साधनों के अनुकूलतम संयोग) के बाद भी उत्पादन बढ़ाने के लिए साधनों को बढ़ाती जाती है ।

8.8 पैमाने के बदलते प्रतिफल (Varying Returns to Scale)

वास्तव में अलग-अलग उत्पादन फलन विभिन्न प्रकार के पैमाने के प्रतिफल को प्रकट नहीं करते हैं । प्राय: एक ही उत्पादन फलन में पैमानों के तीनों प्रतिफल प्राप्त हो सकते हैं जब कोई फर्म अपने उत्पादन का पैमाना बढ़ाती है तो प्रारम्भ में पैमाने के वर्द्धमान प्रतिफल लागू होते हैं, क्योंकि अविभाज्य साधनों का अधिकाधिक प्रयोग होने लगता है । इसके बाद फर्म के साधनों के अनुकूलतम संयोग की स्थिति में तथा जब तक पैमाने के ह्रास मान प्रतिफल प्रारम्भ नहीं होते हैं, अल्प समय के लिए पैमाने के स्थिर प्रतिफल प्राप्त होते हैं तथा उत्पादन की मात्रा और बढ़ाने पर पैमाने के ह्रास मान प्रतिफल लागू होने लगते हैं यह स्थिति साधनों के अनुकूलतम संयोग के बाद उत्पन्न होती है । इसका कारण उत्पादन के आकार में वृद्धि के कारण अनेक जटिलताओं व समस्याओं का पैदा होना है, जिसके कारण प्रति इकाई लागत बढ़ने लगती है । पैमाने के बदलते प्रतिफलों को रेखाचित्र 8.13 में देखा जा सकता है ।

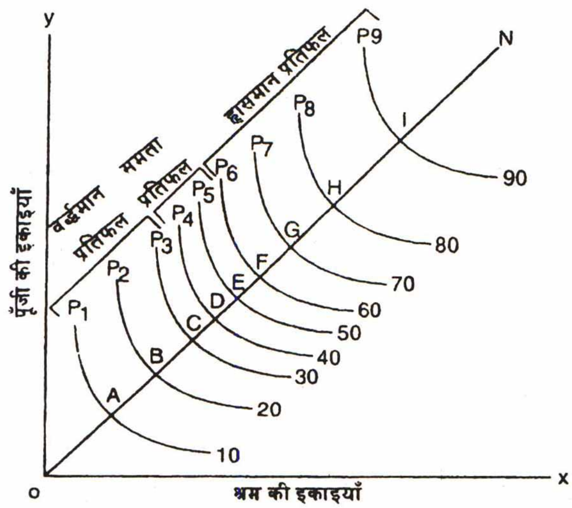

रेखाचित्र 8.13

रेखाचित्र 8.13 में OX-axis पर श्रम की इकाइयाँ व OY-axis पर पूंजी की इकाइयां दिखायी गयी हैं । ON पैमाने की रेखा है, जो A, B, C, D, E, F, G, H, तथा I बिन्दुओं पर विभिन्न समोत्पादक वक्रों द्वारा विभक्त की गई है । P1 से P4 वक्र तक पैमाने के वर्धमान प्रतिफल बताये गये हैं । AB>BC>CD. P4 से P6 वक्र पैमाने के समता प्रतिफल को बताते हैं । इसमें DE=EF है । P6 से P9 तक के समोत्पादक वक्र पैमाने के मान प्रतिफल को बताते हैं । इस स्थिति में FG<GH<HI इससे स्पष्ट है कि प्रारम्भ में वर्द्धमान प्रतिफल, मध्य में स्थिर प्रतिफल तथा अन्त में ह्रासमान प्रतिफल प्राप्त होता है । प्रारंभिक स्थिति (वर्द्धमान प्रतिफल) में वक्रों की दूरी कम होती जा रही है । मध्य में (समता प्रतिफल) में वक्रों की दूरी समान है तथा अन्त में (ह्रासमान प्रतिफल) वक्रों की दूरी बढती जाती है ।

8.9 सारांश

इस इकाई के अध्ययन से हमें स्पष्ट रूप से दीर्घकाल में उत्पादन फलन के बारे में ज्ञात हो गया है । हम उत्पादन फलन में समय तत्व के महत्व को समझ गये हैं तथा उत्पादन के विभिन्न साधनों के अनुपातों व पैमानों को समझ गये हैं । सम उत्पाद वक्र की विशेषताऐ मान्यताएं इत्यादि का अध्ययन इस इकाई को अन्तर्गत किया गया है । यहाँ तकनीकी प्रतिस्थापन की दर एवं सीमान्त दर का महत्व भी समझने योग्य है । सम लागत वक्र प्रकार तथा उत्पादक का साम्य और पैमाने के प्रतिफल भी इस इकाई के माध्यम से समझे जा सकते हैं । यही पैमाने के बदलते हुए प्रतिफल का अध्ययन भी किया गया है ।

8.10 स्वपरख प्रश्न

- समोत्पत्ति वक्र क्या है विस्तार से समझाइये ।
- समोत्पत्ति वक्रों की सहायता से पैमाने के प्रतिफल की विचारधारा का वर्णन कीजिये ।
- दीर्घकालीन उत्पादन फलन क्या है । दीर्घकालीन उत्पादन के विभिन्न नियमों का वर्णन करिये ।
- प्रतिफल के नियम एवम् पैमाने के प्रतिफल के मध्य अन्तर स्पष्ट कीजिये । पैमाने का ह्रासमान प्रतिफल कब और कैसे लाग होता है ।

8.11 कुछ उपयोगी पुस्तकें

1. व्यावसायिक अर्थशास्त्र – एन.डी. माथुर,आभा मोहन
2. व्यावसायिक अर्थशास्त्र – बी. पी. गुप्ता
3. व्यावसायिक अर्थशास्त्र – सी. एम. चौधरी
4. व्यावसायिक अर्थशास्त्र – अग्रवाल, अग्रवाल एवं गुप्ता

इकाई - 9

उत्पादक का सन्तुलन - साधनों का न्यूनतम लागत संयोग
(Producer's Equilibrium: Least Coast Combination)

इकाई की रूपरेखा

9.0 उद्देश्य
9.1 प्रस्तावना
9.2 समोत्पाद वक्र की परिभाषा
9.3 समोत्पाद वक्रों की विशेषताएँ
9.4 साधनों का न्यूनतम लागत संयोग
9.5 सम-लागत-वक्र अथवा साधन कीमत वक्र
9.6 साधनों का अनुकूलतम संयोग
9.7 सारांश
9.8 स्वपरख प्रश्न

9.0 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात आप जान सकेंगे कि:

- सम उत्पाद वक्र क्या होते हैं ।
- कब एक उत्पादन कर्ता दो साधनों के प्रयोग के बीच अनधिमान अथवा तटस्थ रहता है ।
- समोत्पाद वक्र किन मान्यताओं पर आधारित होते हैं ।
- समोत्पाद वक्रों की प्रमुख विशेषताऐ क्या हैं ।
- उत्पादन कर्ता का संतुलन क्या केवल एक समोत्पाद वक्र पर निर्भर करता है ।
- साधनों का न्यूनतम लागत संयोग कब और कैसे बैठता है ।
- उत्पादक के संतुलन हेतु साधनों का अनुकूलतम संयोग क्या है ।
- सम लागत वक्र तथा साधन कीमत वक्र क्या है तथा उत्पादक के सन्तुलन में इनकी क्या भूमिका है।
- उत्पादक के संतुलन में साधनों का अनुकूलतम संयोग कैसे बैठता है ।

9.1 प्रस्तावना

उत्पादक का मुख्य उद्देश्य उत्पादन के सीमित साधनों के प्रयोग के द्वारा कम से कम लागत में अधिक से अधिक उत्पादन प्राप्त करना होता है । उत्पादन के अन्तर्गत समोत्पाद वक्र विश्लेषण (Iso-product Analysis) की सहायता से इस बात का पता लगाया जाता है कि कब और कैसे कोई उत्पादक अपने सीमित साधनों के प्रयोग से अधिकतम उत्पादन प्राप्त कर सकता है और इस उत्पादन के द्वारा संतुलन की स्थिति में रह सकता है । प्रमुख अर्थशास्त्री हिक्स तथा बोल्डिंग ने उत्पादक के संतुलन पर अपने विचार प्रकट करते हुए कहा है कि प्रत्येक उत्पादक इस

बात का प्रयास करता है कि विभिन्न साधनों के संयोगों को इस प्रकार नियोजित करें कि न्यूनतम लागत पर अधिकतम उत्पादन हो सके ।

9.2 समोत्पाद वक्र की परिभाषा (Definition of Iso-Product Curve)

एक समोत्पाद वक्र रेखा उत्पत्ति के उन विभिन्न संयोगों को प्रदर्शित करती है, जिनसे समान मात्रा में उत्पादन प्राप्त होता है । जिस प्रकार से उदासीनता वक्र का प्रत्येक बिन्दु उपभोक्ता को समान सन्तोष प्रदान करता है, चाहे उपभोक्ता उदासीन वक्र के किसी बिन्दु पर रहे। ठीक उसी प्रकार से समोत्पाद वक्र के विषय मे कहा जा सकता है कि उत्पादक चाहे किसी बिन्दु पर रहे समोत्पाद वक्र से समान उत्पादन प्राप्त होता है । इस प्रकार समोत्पाद वक्र साधनों के उन सभी संभावित संयोगों को बताता है जो समान उत्पादन प्राप्त करते हैं । समोत्पाद वक्र को उत्पादन अधिमान वक्र (Production Indifference Curve) तथा स्थिर उत्पादन वक्र (Constant Production Curve) भी कहा जाता है । प्रो. कोहन (Cohen) ने लिखा है कि, "एक सम उत्पादन वक्र वह वक्र होता है जिस पर उत्पादन की अधिकतम प्राप्ति दर स्थिर होती है ।”

उदाहरण द्वारा स्पष्टीकरण - समोत्पाद वक्र के कथन को एक काल्पनिक उदाहरण की सहायता से समझाया जा सकता है । इसके लिए निम्न तालिका की सहायता ली जा सकती है -

संयोग	श्रम की इकाई	पूंजी की इकाई	गेहूँ का उत्पादन (क्विंटल मे)	प्रतिस्थापन की दर
A	1	30	80	-
B	2	20	80	1 : 10
C	3	15	80	1 : 5
D	4	12	80	1 : 3
E	5	10	80	1 : 2

उपर्युक्त तालिका से स्पष्ट है कि एक इकाई श्रम व 30 इकाई पूंजी के नियोजन से 80 क्विंटल गेहूँ का उत्पादन होता है । इतने ही उत्पादन के लिए दो इकाई श्रम व 20 इकाई पूंजी को लगाने की आवश्यकता होगी । पांच इकाई श्रम तथा 10 इकाई पूंजी लगाने पर भी उत्पादन की इतनी ही मात्रा प्राप्त होती है । प्रतिस्थापन की दर (Rate of Substitution) घटती हुई दर्शायी गई है । उत्पादक द्वारा श्रम की इकाइयों में वृद्धि करने के साथ-साथ पूंजी की इकाइयों में कमी की जा रही है अर्थात् उत्पादन के पूर्व स्तर को बनाये रखने हेतु श्रम की मात्रा में वृद्धि की जाती है तो पूंजी की मात्रा में उतनी कमी कर दी जाती है जिससे अतिरिक्त उत्पादन समान रहे । ज्यों-ज्यों उत्पादक x श्रम की इकाइयों को y पूंजी की इकाइयों के स्थान पर प्रतिस्थापित करता जाता है, त्यों-त्यों प्रतिस्थापन की सीमान्त दर घटती जाती है ।

उपर्युक्त तालिका को रेखाचित्र में परिवर्तित किया जा सकता हैं । तालिका में दिये गये A,B,C,D तथा E संयोग को एक रेखा द्‌वारा दर्शाने पर जो रेखा चित्र प्राप्त होगा उसे समोत्पाद वक्र (Iso-Product Curve) कहते हैं । इस स्थिति को अग्र चित्र द्‌वारा दर्शाया गया है -

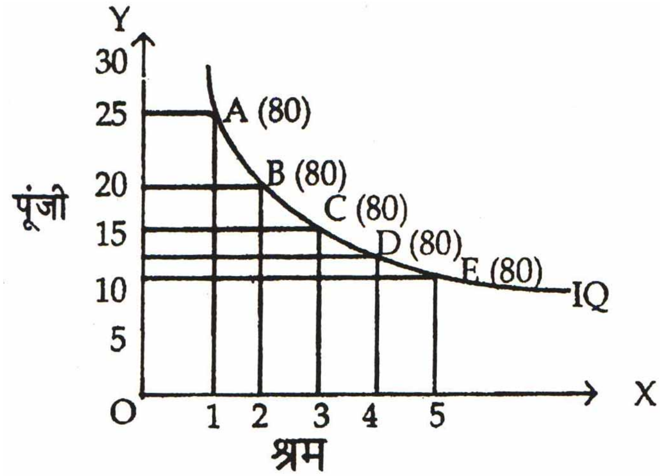

चित्र 9.1

इस चित्र में OY अक्ष पर पूंजी तथा OX-अक्ष पर श्रम की मात्रा प्रदर्शित की गई हैं । जब उत्पादक पूंजी की 30 तथा श्रम की 1 इकाई (3O+1) के संयोग से उत्पादन करता है तो है संयोग पर 80 क्विंटल गेहूं का उत्पादन होता है । इसी प्रकार B संयोग पर (20+2), C संयोग पर (15+3), D संयोग पर (12+4) तथा E संयोग पर (10+5) एक-सी उत्पादन की मात्रा (80 क्विण्टल) प्राप्त करता है । A से B तक के संयोग से एक ऐसा उत्पादन प्राप्त होता है । इन विभिन्न संयोग बिन्दुओं को मिलने से एक वक्र प्राप्त होता है जिसे समोत्पादक वक्र (Iso-quant or Iso-product curve) कहते हैं । इस वक्र पर किसी भी संयोग को चुना जावे समान ही उत्पादन को दर्शाता है । इस प्रकार समोत्पाद वक्र उत्पादन के दो साधनों के विभिन्न संयोग प्रदर्शित करता है तथा यह संयोग एक निश्चित मात्रा में उत्पादन प्रदान करते हैं ।

समोत्पादक वक्र की मान्यताएं (Iso-quant or Iso product curve)- समोत्पाद वक्र निम्न मान्यताओं पर आधारित है

(1) उत्पादन के दो ही साधनों के सन्दर्भ में व्याख्या की जती है तथा अन्य साधन समोत्पाद मानचित्र (Iso-product curve Map) पर प्रदर्शित नहीं किये जा सकते हैं ।

(4) उत्पादन की तकनीक के स्थिर रहते हुए प्रयुक्त किये जाने वाले उत्पादन के साधनों का प्रयोग उनकी पूरी कुशलता से किया जाता है ।

9.3 समोत्पाद वक्रों की विशेषताएँ (Characteristics of Iso-Product Curves)

(1) समोत्पाद वक्र बायें से दायें नीचे की ओर झुकी रहती है - समोत्पाद वक्र का झुकाव ऋणात्मक होता है क्योंकि इस वक्र का सम्बन्ध प्रतिस्थापन की दर पर निर्भर करता है । समान उत्पादन के स्तर को प्राप्त करने के लिये यह आवश्यक हो जाता है कि एक साधन में उत्तरोत्तर

कमी की जाती है, जबकि दूसरे साधनों में वृद्धि की जाती हैं । फलतः: समोत्पाद रेखा का आकार मांग की रेखा से मिलता है । यदि एक साधन को स्थिर रख कर दूसरे साधन की इकाइयों में उत्तरोत्तर वृद्धि की जाती हैं और यह क्रिया समान उत्पादन की क्रिया से भिन्न होगी इसकी व्याख्या निम्न चित्र से की जा सकती है -

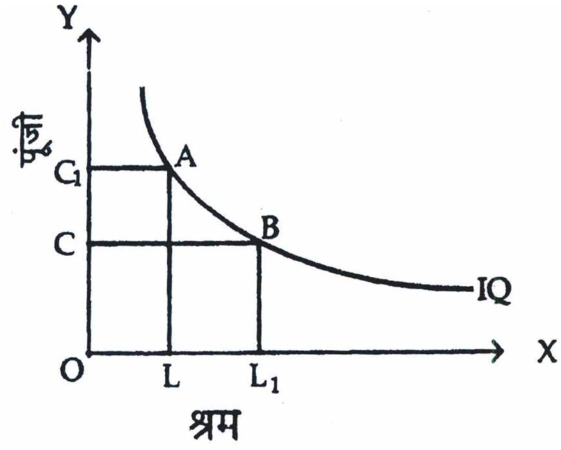

चित्र 9.2

इस चित्र में X-अक्ष पर श्रम तथा Y-अक्ष पर पूंजी की मात्रा दर्शायी गई है । चित्र में IQ समोत्पाद वक्र है । जब उत्पादक के द्वारा C10 मात्रा में पूंजी तथा OL मात्रा में श्रम लगाया जाता है तो उत्पादन का संयोग A बिन्दु पर है । अब इसी संयोग के बराबर उत्पादन प्राप्त करने के लिये उत्पादक पूंजी की मात्रा में कमी तथा श्रम की मात्रा में वृद्धि कर देता हैं अर्थात् OC मात्रा में पूंजी तथा OL1 मात्रा में श्रम लगाने पर B संयोग को प्राप्त किया जाता है जो A संयोग के बराबर है । इस प्रकार चित्र में C1C के बराबर पूंजी में कमी की गई है जबकि LL1 के बराबर श्रम में वृद्धि हुई है । इस प्रकार IQ वक्र का A संयोग खिसककर B संयोग पर आया है और IQ वक्र दायें से बायें की और झुकती हुई आगे बढ़ती जाती है ।

(2) समोत्पाद वक्र लम्बवत् (Vertical) नहीं होता - इस वक्र की दूसरी विशेषता यह है कि यह X- अक्ष के लम्बवत् नहीं होगा । यदि इसके आकार को ऐसा मान लिया जाय तो वह समोत्पाद वक्र के अनुकूल आचरण नहीं करेगी, क्योंकि ऐसी दशा में एक साधन के स्थिर रखते हुए दूसरे साधन को उत्तरोत्तर बढ़ाया जा रहा है । अतः समोत्पाद वक्र पर स्थित प्रत्येक अगला संयोग पहले संयोग से अधिक उत्पादन देने वाला होगा, जबकि हम जानते हैं कि एक समोत्पाद वक्र का प्रत्येक बिंदु समान उत्पादन देता है । अत: समोत्पाद वक्र एक खड़ी रेखा के रूप में नहीं हो सकता है इसकी व्याख्या अग्र चित्र की सहायता से की जा सकती है -

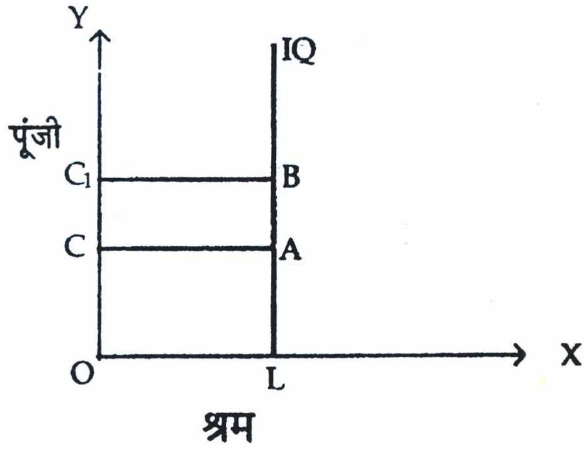

चित्र 9.3

इस चित्र में IQ एक खड़ा समोत्पाद वक्र है जो X-अक्ष पर लम्बवत् है । OL मात्रा में श्रम तथा OC मात्रा मे पूंजी लगाने से इस वक्र पर A संयोग को प्राप्त किया जाता है, जो एक निश्चित उत्पादन स्तर को बताता है । इसी वक्र पर एक B संयोग दिखाया गया है । इस संयोग पर OL मात्रा में श्रम तथा OC1 मात्रा में पूंजी लगायी गई है । स्पष्ट है कि B संयोग पर पूंजी की मात्रा को बढ़ा दिया गया है । अत: B संयोग पर A संयोग की अपेक्षा उत्पादन अधिक प्राप्त होगा जबकि समोत्पाद वक्र का प्रत्येक संयोग समान उत्पादन देगा, लेकिन चित्र में B संयोग A संयोग से अधिक उत्पादन दे रहा है जो समोत्पाद वक्र की विशेषता के विपरीत है । अत: समोत्पाद वक्र की आकृति ऐसी नहीं होगी ।

(3) समोत्पाद वक्र का क्षैतिजीय (Horizontal) न होना - समोत्पाद वक्र X-अक्ष के समानान्तर आकृति क्षैतिजीय होती है तो यह समोत्पाद वक्र के व्यवहार के अनुकूल नहीं होगा क्योंकि इस प्रकार का वक्र यह बताता है कि साधन की एक मात्रा को स्थिरता गया है जबकि दूसरे साधन की मात्रा में उत्तरोत्तर वृद्धि की गई है । इस प्रकार वक्र का प्रत्येक अगला संयोग अधिक उत्पादन देगा अत: समोत्पाद वक्र का आकार ऐसा नहीं हो सकता है । इस विशेषता की व्याख्या निम्न चित्र से की जा सकती है -

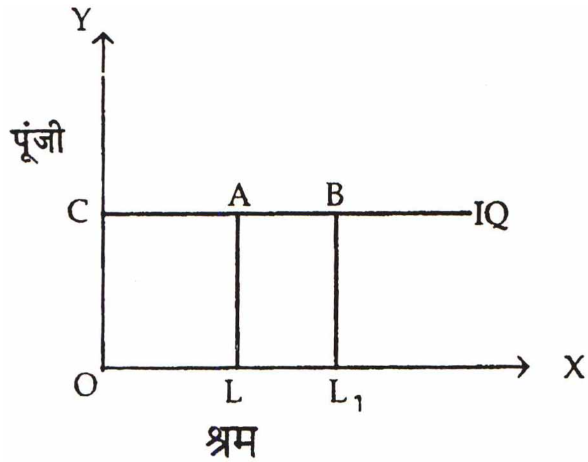

चित्र 9.4

इसमें IQ समोत्पाद वक्र है जिस पर A संयोग बताता है कि पूंजी की OC मात्रा के लगाने से एक निश्चित मात्रा में उत्पादन प्राप्त होता है जबकि B संयोग पर पूर्ववत् पूंजी की मात्रा तथा OL1 श्रम के लगाने से उत्पादन बढती हुई मात्रा में प्राप्त होता है, क्योंकि B संयोग पर श्रम की LL1 अधिक मात्रा में लगायी गई हैं । अत: एक ही समोत्पाद वक्र पर A तथा B संयोग अलग-अलग उत्पादन की दर को बता रहे हैं जो एक समोत्पाद वक्र की शर्त के अनूकूल नहीं है ।

(4) समोत्पाद वक्र धनात्मक आकृति में नहीं होता - समोत्पाद वक्र की आकृति धनात्मक नही होती हैं यदि इस प्रकार की आकृति की कल्पना की जाती है तो यह समोत्पाद वक्र के आचरण के प्रतिकूल होगी । इस प्रकार की आकृति यह स्पष्ट करती है कि दोनों उत्पादन के साधनों की मात्राओं में उत्तरोत्तर वृद्धि हो रही है । अत: ज्यों-ज्यों साधनों की मात्राओं को बढाया जायेगा, त्यों-त्यों प्रत्येक अलग संयोग पूर्व संयोग की तुलना में अधिक उत्पादन देगा जो गलत है। अत: समोत्पाद वक्र का आकार धनात्मक नहीं होगा । इसकी व्याख्या निम्न चित्र की सहायता से की जा सकती है -

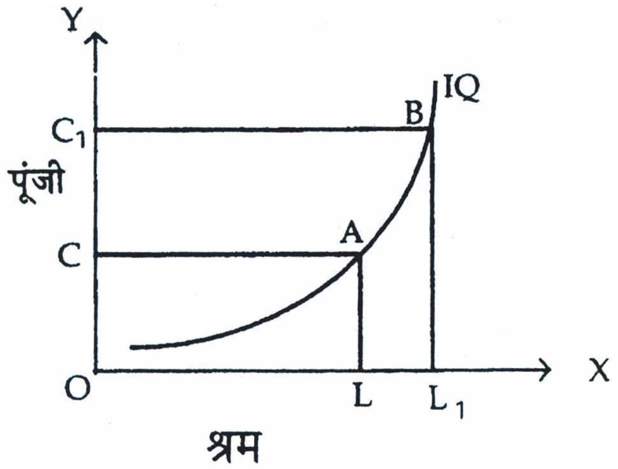

चित्र 9.5

चित्र में समोत्पाद वक्र की धनात्मक आकृति दर्शायी गई हैं । वक्र के A संयोग पर उत्पादक के द्वारा OL मात्रा में श्रम तथा OC मात्रा में पूंजी लगा कर एक निश्चित मात्रा में उत्पादन प्राप्त कर लिया जाता है । उसी वक्र के B संयोग पर OL1 मात्रा में श्रम तथा OC1 मात्रा में पूंजी लगाकर जो उत्पादन किया जा रहा है वह पूर्ववत् संयोग से प्राप्त उत्पादन से अधिक है क्योंकि B संयोग पर श्रम पूंजी दोनों ही की मात्रा में वृद्धि की जाती है । अत: इस वक्र की आकृति धनात्मक नहीं होती हैं ।

(5) समोत्पाद वक्र अनेक हो सकते हैं - समोत्पादक वक्र एक से अधिक होते हैं तथा प्रत्येक वक्र अलग-अलग उत्पादन के स्तर को दर्शाते हैं । इस विशेषता की व्याख्या अग्र चित्र से स्पष्ट है-

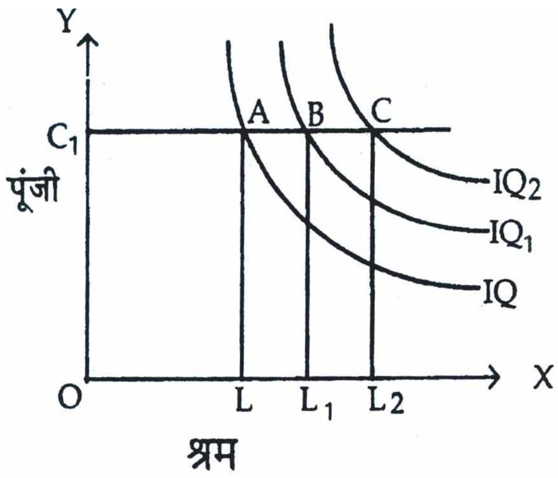

चित्र 9.6

चित्र में IQ IQ1 तथा IQ2 समोत्पाद वक्रों को दर्शाते हैं । IQ के संयोग पर OC मात्रा में पूंजी तथा OL मात्रा में श्रम को लगाया जा रहा है, इस प्रकार A संयोग से प्राप्त होने वाले उत्पादन की अपेक्षी B तथा C संयोग से प्राप्त होने वाला उत्पादन अधिक है, क्योंकि B तथा C संयोग पर पूंजी की मात्रा पूर्ववत् रहती है, परन्तु श्रम की मात्रा को उत्तरोत्तर बढ़ाया जा रहा है । परिणाम स्वरूप IQ की अपेक्षा IQ1 तथा IQ1, की अपेक्षा IQ2, अधिकाधिक उत्पादन के स्तर को बतायेगी । संक्षेप में, हम यह कह सकते हैं कि मूल बिन्दु से जो सामोत्पाद वक्र जितनी अधिक दूरी पर होगी वह उत्पादन के उतने ही ऊंचे स्तर को बतायेगी ।

(6) समोत्पाद वक्र अपने मूल बिन्दु की ओर उन्नतोदर होते हैं - इस विशेषता का प्रमुख कारण यह है कि जब एक साधन की मात्रा में कमी की जाती है, तो दूसरे साधन की मात्रा को बढ़ा दिया जाता है । प्रारम्भ में प्रतिस्थापन की यह दर न्यून होती है, परन्तु ज्यों-ज्यों समय बीतता जाता है त्यों-त्यों इस दर में वृद्धि होती जाती है परिणामस्वरूप सामोत्पाद वक्र रेखायें मूल बिन्दु की ओर उन्नतोदर हो जाती हैं ।

(7) समोत्पाद वक्र कभी भी एक-दूसरे को नहीं काटते हैं - समोत्पाद वक्र रेखायें एक-दूसरे को नहीं काटेगी । यदि ऐसी स्थिति आ जाती है, तो यह समोत्पाद वक्र की शर्त के अनुकूल नहीं हैं । इस व्याख्या को आगे दिये चित्र की सहायता से स्पष्ट किया जा सकता है -

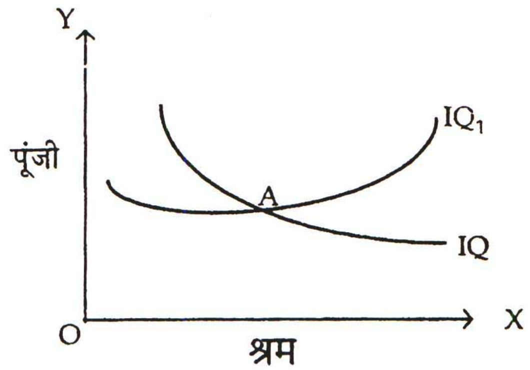

चित्र 9.7

चित्र में IQ तथा IQ1 दो समोत्पाद वक्र रखायें है जो एक दूसरे को A बिंदु पर काटती है । इस बिन्दु पर उत्पादन की एक निश्चित मात्रा प्राप्त होती है । A बिंदु से दायीं और IQ IQ_1 से कम उत्पादन के स्तर को प्रदर्शित करता है जबकि A बिंदु के बायीं और IQ बदल कर IQ_1 हो जाती है और IQ_1 बदल कर IQ हो जाता हैं जो उत्पादन के विभिन्न स्तरों को प्रदर्शित करती हैं अत: एक ही समोत्पाद वक्र रेखा अलग-अलग उत्पादन के स्तर को नहीं बता सकती है । इसलिए समोत्पाद वक्र एक दूसरे को नहीं काटते हैं ।

9.4 साधनों का अनुकूलतम (न्यूनतम लागत) संयोग [Optimum (Or Least Cost) Factor Combination]

समोत्पाद वक्र पर श्रम व पूंजी के संयोग को दिखाया जाता है, इन संयोगों के कारण उत्पादक को समान उत्पादन प्राप्त होता है । एक उत्पादक के सामने हमेशा यह समस्या रहती है कि वह विभिन्न संयोगों में से किस संयोग का चुनाव करे कि उसे अपनी सीमाओं में रहते हुए अधिकतम उत्पादन प्राप्त हो सके । इस समस्या के समाधान हेतु उत्पादक को निम्न दो उपकरणों की सहायता लेनी पड़ती हैं -

1. समोत्पाद मानचित्र (Iso-Product Map)
2. सम-लागत वक्र (Iso-Cost Curve)

समोत्पाद मानचित्र का अध्ययन ऊपर कर चुके हैं, अत: अब हम सम-लागत वक्र का विवेचन करेंगे । उपर्युक्त दोनों बातों की जानकारी ज्ञात करने के बाद हम उत्पादक के साम्य को ज्ञात कर सकते हैं ।

9.5 सम-लागत वक्र अथवा साधन कीमत वक्र (Iso-Cost curve or Factor Price Curve)

सम-लागत का विचार उदासीनता वक्र में कीमत रेखा के समान ही हैं । अत: लागत वक्र दो साधनों के उन विभिन्न संयोगों को व्यक्त करती है, जिन्हें एक उत्पादक, साधनों की दी हुई कीमतों तथा दिये हुए लागत व्यय पर क्रय करता है । सम-लागत वक्र को अनेक नामों से पुकारा जाता है जैसे - 'साधारण कीमत रेखा, 'व्यय रेखा', 'व्यय परिधि रेखा' तथा फर्म की 'बजट नियंत्रण 'रेखा' आदि । सम-लागत रेखा को निम्न चित्र से स्पष्ट किया जा सकता है -

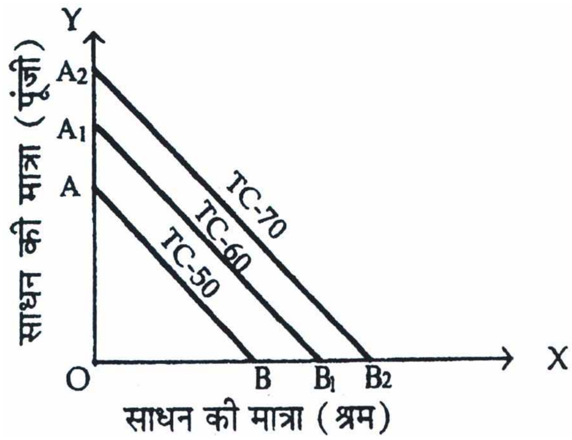

चित्र 9.8

इस चित्र में माना कि फर्म का प्रारम्भिक लागत 50 रूपये है जिस पर लागत व्यय रेखा AB है । अब लागत व्यय बढ कर 60 रूपया है तो ऐसी स्थिति में एक फर्म इस लागत पर पहले की अपेक्षा दोनों साधनों (पूंजी एवं श्रम) की अधिक मात्रा का क्रय करेगी । ऐसी स्थिति में नयी सम-लागत रेखा (Iso-cost curve) A1B1 हो जाती है । यदि उत्पादक अपनी फर्म में केवल श्रम को लगाता है तो 5 रूपया प्रति साधन की दर से यह इस साधन की 12 इकाइयों का क्रय कर सकता है जिसे चित्र में B1 बिंदु से दिखाया गया है जो पहले से अधिक है । यदि उत्पादक अपनी फर्म में पूंजी को लगाना चाहता है तो वह 10 रूपया प्रति साधन की दर से इसकी 6 इकाइयों का क्रय कर सकता है जिसे चित्र में A_1 से दिखाया गया है । इस प्रकार नई सम-लागत रेखा में A_1B_1 प्राप्त होगी । उत्पादक चाहे तो इस नई सम-लागत रेखा से श्रम की OB1 तथा पूंजी की OA_1 मात्रा क्रय कर सकता है । इस चित्र में AB, A_1B_1तथा है, A_2B_2 की सम -लागत रेखा साधनों को क्रय करने की उच्च स्थिति को प्रदर्शित करती हैं सम-लागत रेखाओं का ढाल समान है क्योंकि साधनों की कीमतें समान रहती हैं ।

उक्त व्याख्या में हमने दोनों साधनों की कीमतों को समान मान लिया था लेकिन कभी ऐसी भी स्थिति आती है कि एक साधन की लागत में परिवर्तन आ जाने से सम-लागत रेखा का रूप बदल जाता हैं । ऐसी दशा में सम-लागत रेखाएं एक-दूसरे के समानान्तर नहीं रहती हैं । इसे चित्र 9.9 में स्पष्ट किया गया हैं ।

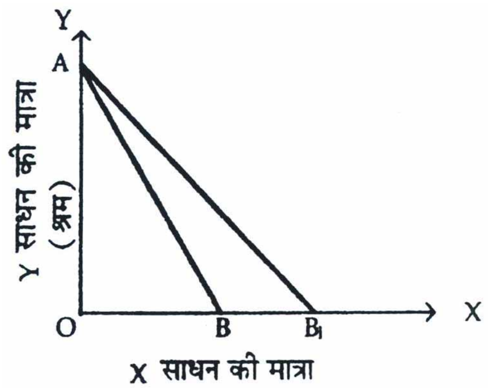

चित्र 9.9

उदाहरणार्थ एक फर्म 50 रूपये व्यय करना चाहती है । X-साधन की कीमत 5 रूपया तथा Y-साधन की कीमत 10 रूपये है । ऐसी स्थिति में सम-लागत रेखा AB हैं अब माना X-साधन की कीमत 5 रूपये से घटकर 2 रूपये हो जाती है तो फर्म दिये हुए लागत व्यय अर्थात 50 रूपये से X-साधन की अधिक इकाइयां खरीद सकेगा । ऐसी दशा में सम-लागत रेखा AB से बदलकर AB1 हो जाती है । जहां पहले AB सम-लागत रेखा X-साधन की OB मात्रा क्रय करती थी अब लागत घटने पर वह X-साधन की OB1 मात्रा क्रय करेगी जबकि Y-साधन कीमत पूर्ववत रहती है । यदि X-साधन की कीमत में लगातार कमी आती रहे, तो AB सम-लागत रेखा का A बिंदु तो स्थिर रहेगा परन्तु B बिंदु लगातार खिसकता रहेगा । ज्यों ज्यों x-साधन की कीमत में कमी होगी त्यों-त्यों AB रेखा तिरछी होती जायेगी । इसके विपरीत यदि X-साधन की कीमत स्थिर रहे और Y-साधन की कीमत लगातार गिरती जाती है, तो ऐसी स्थिति में B बिन्दु स्थिर होगा और A बिंदु आगे की ओर खिसकता रहेगा ।

9.6 साधनों का अनुकूलतम संयोग (Optimum Combination of Factors)

एक फर्म या उत्पादक की दृष्टि से अनुकूलतम संयोग उस बिन्दु पर होगा जहां पर फर्म को अधिकतम लाभ प्राप्त होगा । यह लाभ अधिकतम उस स्थिति में हो सकता है जबकि वह साधनों का चुनाव कुशलता से करे अथवा साधनों के न्यूनतम लागत के संयोग का चुनाव करें । इस उद्देश्य की प्राप्ति हेतु साधनों की भौतिक उत्पादकता तथा साधनों की कीमत को ध्यान में रखना होगा । साधनों की भौतिक उत्पादकता को समोत्पाद मानचित्र (Iso-Product Map) तथा साधनों की कीमत सम-लागत रेखा (Iso-cost Line) द्वारा ज्ञात की जा सकती हैं । प्रत्येक उत्पादक की साम्यावस्था ज्ञात करने हेतु समोत्पाद मानचित्र तथा समान कीमत रेखा दोनों की जानकारी आवश्यक होती है । इन दोनों बातों की जानकारी के पश्चात हम एक ही रेखाचित्र की सहायता से उत्पादक की साम्यावस्था का अध्ययन कर सकते हैं ।

साधनों के अनुकूलतम या आदर्श संयोग की व्याख्या हम निम्न दो तरीकों से कर सकते हैं -

(1) दी हुई उत्पादन मात्रा पर न्यूनतम लागत प्राप्त करना - माना कि एक फर्म 100 इकाइयों का उत्पादन करना चाहती है तथा अधिकतम लाभ प्राप्त करने हेतु न्यूनतम लागत पर उत्पादन होना चाहिए । इस प्रकार फर्म या उत्पादक दी हुई उत्पादन की मात्रा न्यूनतम लागत पर प्राप्त करके ही अधिकतम लाभ के उद्देश्य की पूर्ति कर सकता हैं । इस स्थिति की व्याख्या निम्न चित्र से की जा सकती है -

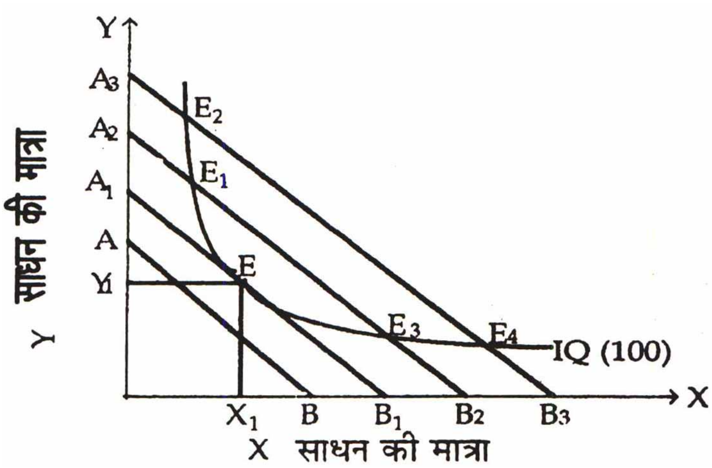

चित्र 9.10

उपर्युक्त चित्र में उत्पादन की मात्रा IQ द्वारा प्रदर्शित की गई है । यह किसी भी साधन संयोग जैसे E2 E1 E, E3 तथा E4 आदि द्वारा उत्पादित की जा सकती है । लेकिन उत्पादक के अधिकतम लाभ के उद्देश्य की प्राप्ति हेतु हमें एक ऐसे संयोग को चुनना है जिस पर अन्य संयोगों की अपेक्षा लागत न्यूनतम कर सके । चित्र में स्पष्ट है कि IQ वक्र पर शेष संयोगों की अपेक्षा E संयोग ही एक ऐसा संयोग है जिस पर शेष संयोगों की अपेक्षा लागत न्यूनतम आती है । यदि उत्पादक इस वक्र (IQ) पर अन्य संयोगों जैसे E2,E1,E3 तथा E4 का चुनाव करता है, तो उसे उस संयोग पर अधिक धनराशि व्यय करनी पड़ेगी, क्योंकि ये सभी A3 B3 तथा A2 B2 उच्च सम लागत रेखा पर स्थित है । इन संयोगों पर भी उतना ही उत्पादन प्राप्त होता है जितना E बिन्दु पर लेकिन इन पर लागत ऊँची आती है । अत: एक विवेकशील उत्पादक E बिंदु के अतिरिक्त किसी अन्य संयोग का चुनाव करना पसंद नहीं करेगा । अत: E बिन्दु ही उत्पादक का साम्य बिंदु होगा जिस पर उत्पादक पूंजी की OY1 तथा श्रम की OX1 मात्रा का प्रयोग करके 100 इकाइयों के उत्पादन को प्राप्त करेगा । यही साधनों का न्यूनतम या आदर्श संयोग होगा ।

(2) दिये हुए लागत व्यय पर अधिकतम उत्पादन प्राप्त करना - इस स्थिति में उत्पादन लागत व्यय दी हुई होती है तथा उत्पादक का उद्देश्य उत्पादन लागत न्यूनतम कर अधिकतम उत्पादन करना होता हैं इस स्थिति की व्याख्या निम्न चित्र की सहायता की जा सकती है -

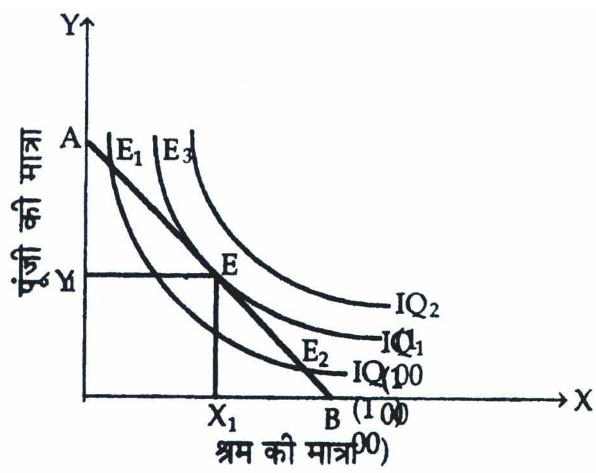

चित्र 9.11

इस चित्र में IQ,IQ1 तथा IQ2 विभिन्न समोत्पाद वक्र हैं जो उत्पादन की विभिन्न मात्राओं को प्रदर्शित करते हैं । फर्म की दी हुई सम्लागत रेखा AB जो IQ1 वक्र को E बिन्दु पर स्पर्श करती है । E बिंदु पर उत्पादक का साम्य होता है और इस बिन्दु पर वह पूंजी की OY_1 मात्रा तथा श्रम की OX_1 मात्रा लगातार उत्पादन प्राप्त करता है । इस बिन्दु पर प्राप्त उत्पादन E_1 तथा E_2 बिंदु से प्राप्त उत्पादन से अधिक है क्योंकि ये दोनों ही बिंदु निम्न समोत्पाद वक्र (IQ) पर स्थित है । अत: एक विवेकपूर्ण उत्पादक इन दोनों संयोगों का चुनाव नहीं करना चाहेगा । यदि उत्पादक E_3, बिन्दु पर उत्पादन करना चाहता है तो उसे दोनों साधनों की अधिक मात्रा लगानी पड़ेगी जबकि उत्पादन की मात्रा पूर्ववत ही रहेगी क्योंकि यह बिन्दु भी उसी समोत्पाद वक्र (IQ_1) पर स्थित है । अत: कम साधनों से अधिक उत्पादन करना उत्पादक के हित में होगा और वह E बिंदु पर ही रहेगा । यदि उत्पादक IQ_2, पर किसी संयोग को प्राप्त करने की कल्पना करे तो वह साकार नहीं हो सकती है क्योंकि उसके पास साधनों का अभाव है ।

इस प्रकार उपर्युक्त व्याख्या से स्पष्ट है कि उत्पादक या फर्म के सन्तुलन के लिए यह आवश्यक है कि समोत्पाद मानचित्रों के किसी एक समोत्पाद रेखा पर सम-लागत रेखा को स्पर्श करना चाहिए । स्पर्शता का अर्थ है न्यूनतम लागत पर उत्पादन ।

9.7 सारांश

इस इकाई में समोत्पाद वक्रों की समस्त विशेषताओं का वर्णन है । समोत्पाद वक्रों की सभी दशाओं का वर्णन है । साधनों के संयोगों का समोत्पाद वक्र पर क्या प्रभाव होता है तथा कब एक उत्पादक अधिकतम उत्पादन कर अधिकतम लाभ की स्थिति में होता है । समोत्पाद वक्रों के विभिन्न प्रकार किस बात के द्योतक हैं तथा उत्पादक के संतुलन हेतु साधनों का अनुकूलतम संयोग कहां सर्वश्रेष्ठ बैठता है । विभिन्न ग्राफों या रेखा चित्रों के माध्यम से सभी स्थितियाँ स्व: स्पष्ट हैं ।

9.8 स्वपरख प्रश्न

1. साधनों का न्यूनतम लागत संयोग किसे कहते हैं तथा यह कैसे प्राप्त किया जा सकता है।
2. उत्पादक के संतुलन से आप क्या समझते हैं । उत्पादक के संतुलन की विभिन्न स्थितियों का विस्तार से वर्णन करिये।
3. किस प्रकार उत्पादक का संतुलन विभिन्न परिस्थितियों में दर्शाया जा सकता है ।
4. समोत्पाद वक्रों की विशेषताओं का विस्तार से वर्णन करिये ।

9.9 कुछ उपयोगी पुस्तकें

1. व्यवसायिक अर्थशास्त्र	– एन.डी.माथुर. आभा मोहन
2. व्यवसायिक अर्थशास्त्र	– सी.एम.चौधरी
3. व्यवसायिक अर्थशास्त्र	– बी. पी. गुप्ता
4. Comprehensive economics	– S.A.Siddiqui
5. Business Economics	– Agrawal M.D. & Som Deo, Ramesh Book Depot, Jaipur

इकाई - 10

लागत एवं आगम विश्लेषण
(Cost and Revenue Analysis)

इकाई की रूपरेखा

10.0 उद्देश्य
10.1 प्रस्तावना
10.2 लागत की अवधारणाऐं
10.3 लागत फलन
10.4 फर्म के अल्पकालीन लागत वक्र
10.5 फर्म के दीर्घकालीन लागत वक्र
10.6 आगम विश्लेषण
10.7 औसत आगम एवं सीमांत आगम वक्रों में संबंध
10.7.1 पूर्ण प्रतियोगिता में सीमांत आगम एवं औसत आगम वक्र
10.7.2 अपूर्ण प्रतियोगिता में सीमांत आगम एवं औसत आगम वक्र
10.7.3 औसत आगम एवं सीमांत आगम वक्र में संबंध की विशेषताएँ
10.8 सारांश
10.9 शब्दावली
10.10 स्वपरख प्रश्न
10.11 उपयोगी पुस्तके

10.0 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के बाद आप इस योग्य हो सकेंगे कि :

- लागत का अर्थ व इसकी अवधारणाओं का वर्णन कर सकें ।
- फर्म के अल्पकालीन, व दीर्घकालीन लागत वक्रों का अर्थ व इनके मध्य संबंध को स्पष्ट कर सकें ।
- फर्म के अल्पकालीन व दीर्घकालीन लागत वक्र बना सकें ।
- आगम का अर्थ व इसके विभिन्न भागों का वर्णन कर सकें ।
- पूर्ण प्रतियोगिता व अपूर्ण प्रतियोगिता में आगम वक्रों को स्पष्ट करने के साथ-साथ औसत व सीमांत आगम में संबंध का वर्णन कर सकें ।

10.1 प्रस्तावना

आधुनिक युग में लागत-विश्लेषण आर्थिक विश्लेषण का एक महत्वपूर्ण एवं अविभाज्य अंग माना जाता है।

लागत विश्लेषण द्वारा उत्पादकों एवं प्रबंधकों को अपने विभिन्न निर्णयों में मार्गदर्शन मिलता है । लागत विश्लेषण के अभाव में उत्पादक या 1बेक्रेता न तो अपनी वस्तु का लाभप्रद मूल ही निर्धारित कर सकता है और न लाभ का पता लगा सकता है । यही नहीं, उद्योग में लागतों के विश्लेषण के बिना आन्तरिक नियन्त्रण लागू करना ही सम्भव नहीं होता । सरकारी नियन्त्रणों का पालन भी कठिन होता है । यही कारण है कि प्रबंध प्रत्येक प्रकार के निर्णयों में लागतों को ध्यान में रखते हुए उसमें संभावित लाभ की तुलना करते हैं । यदि संभावित आगम संभावित लागत से अधिक है तो निर्णय विवेकपूर्ण माना जाता है अन्यथा नहीं । आज उत्पादक नयी मशीनें या नये यन्त्र लगाने तथा विज्ञापन व्यय में उसकी संभावित लागतों की तुलना उनसे संभावित आगम या लाभ से करता है । लागत का विश्लेषण प्रतिस्पर्द्धी की लागतों से करना भी आवश्यक होता है यदि दोनों के मध्य कट्टर प्रतिस्पर्द्धा की प्रवृति हो । एक ही उत्पादक द्वारा अनेक वस्तुओं के संयुक्त उत्पादन की अवस्था में प्रत्येक वस्तु की लागत निर्धारित करने की आवश्यकता उन वस्तुओं के मूल्य निर्धारण के लिए जरूरी है ।

10.2 लागत की अवधारणाऐं (Concepts of Costs)

अर्थशास्त्र में फर्म की लागतों में निम्नलिखित अवधारणाओं का अध्ययन किया जाता है:

I. उत्पादन लागतें (Production Costs) - उत्पादन की प्रक्रिया में अनेक स्थिर और परिवर्तनशील साधन लगाने पड़ते हैं । उत्पादन के इन साधनों पर किए गए व्यय को ही उत्पादन की लागतें कहते हैं ।

फर्म द्वारा किसी वस्तु के उत्पादन के साधनों पर किया गया कुल व्यय मौद्रिक लागत कहलाता है । इसके अन्तर्गत निम्नलिखित व्यय शामिल होते हैं (i) कच्चे माल की लागत, (ii) मजदूरी, (iii) मशीनों और उपकरणों पर व्यय, (iv) बिजली व ईंधन पर व्यय, (v) मशीनों, मकानों और ऐसी अन्य पूंजीगत वस्तुओं की घिसावट, (vi) पूंजी पर ब्याज, (vii) उद्यमियों का सामान्य लाभ, (viii) कर, (ix) बीमा प्रीमियम, (x) विज्ञापन, (xi) पैकिंग, और (xii)परिवहन आदि पर व्यय ।

कुल मौद्रिक लागतें दो प्रकार की होती है स्पष्ट लागते और अस्पष्ट लागते । जिनका विश्लेषण निम्नलिखित है :

I. स्पष्ट लागतें (Explicit Costs) - स्पष्ट लागतें वे वास्तविक व्यय हैं जो एक फर्म बाहरी व्यक्तियों से वस्तुएं एवं सेवाएं खरीदने के लिए भुगतान करती है । प्रो. स्लोमैन के शब्दों में "साधनों के बाहरी पूर्तिकर्ताओ को किए जाने वाले भुगतानों को स्पष्ट लागतें कहते हैं । इनमें मजदूरी और वेतन, कच्चा माल, बिजली, ईधन, विज्ञापन, परिवहन, कर, ब्याज, किराया आदि पर किये जाने वाले व्यय शामिल होते हैं । इनको लेखांकन लागतें, वास्तविक लागतें या निरपेक्ष लागतें भी कहते हैं ।

II. अस्पष्ट लागतें(Implicit Costs) - अस्पष्ट लागतें उद्यमी द्वारा अपने संसाधनों और सेवाओं का अनुमानित मूल्य है अर्थात एक उद्यमी द्वारा स्वयं लगाए गए और स्वयं-स्वामित्व संसाधनों द्वारा अपने सबसे बढ़िया वैकल्पिक प्रयोग में जो कमा सकते हैं, वे उसकी अस्पष्ट लागतें हैं । इस प्रकार अस्पष्ट लागत का सम्बंध किसी विकल्प के त्याग से उदाहरणार्थ एक

उद्यमी अपनी पूंजी, अपनी बिल्डिंग और अपनी सेवाएं आदि अपनी फर्म में लगाता है तो उनके अनुमानित मूल्य अस्पष्ट लागतें होंगी । अर्थात यदि वह इन्हे अपनी फर्म में न लगाकर किसी अन्य वैकल्पिक प्रयोग से जो वेतन, व्याज, किराया आदि प्राप्त कर सकता था, वही उसकी फर्म की अस्पष्ट लगाते हैं । ये लागतें किसी बाहरी पक्ष को मुद्रा के प्रत्यक्ष भुगतान से संबंधित नहीं होती हैं । इनका सम्बन्ध साधनों द्वारा उनके श्रेष्ठ वैकल्पिक प्रयोग से अर्जित की जा सकने वाली कीमत या आय से है ।

अस्पष्ट लागतें निम्न होती हैं:

I. स्वंय उद्यमी द्वारा किए गए श्रम की मजदूरी;
II. उद्यमी द्वारा अपनी पूंजी व्यवसाय में लगाकर अलग से ब्याज न लेना;
III. उद्यमी द्वारा अपनी जमीन का किराया नहीं लेना;
IV. उद्यमी का सामान्य लाभ;
V. मूल्य ह्रास

अत: स्पष्ट लागतें लाभ और हानि के खाते की गणना में महत्वपूर्ण होती है, जबकि आर्थिक निर्णय के लिए फर्म स्पष्ट लागतों के साथ-साथ अस्पष्ट लागतों पर भी विचार करती है।

2. प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष लागतें (Direct or Indirect Costs) - प्रत्यक्ष लागतें वे लागतें होती हैं जिनको किसी पृथक अंतिम उत्पाद, विभाग या प्रक्रिया के साथ आसानी से संबद्ध किया जा सके । अर्थात जिन लागतों की प्रत्यक्षतया पहचान की जा सके, प्रत्यक्ष लागतें कहलाती है । दूसरी ओर, अप्रत्यक्ष लागतों को फर्म के प्रचालन की किसी इकाई के साथ सम्बद्ध नहीं किया जा सकता । दूसरे शब्दों में, अप्रत्यक्ष लागतें वे हैं जो किसी विशेष प्लांट, विभाग या प्रक्रिया से सम्बद्ध नहीं होती तथा जिन्हे किसी वस्तु विशेष पर भी प्रत्यक्ष रूप से सम्बद्ध नहीं किया जा सकता है । उदाहरणार्थ, किसी बहु-उत्पाद फर्म का प्रबंधन या विद्युत लागत, अप्रत्यक्ष या सामान्य लागत है क्योंकि इसका उत्पादों के बीच विभाजन नहीं किया जा सकता, जबकि कच्चे माल की लागत को उत्पाद के आधार पर पृथक-पृथक किया जा सकता है । अत: यह प्रत्यक्ष लागत है ।

3. अल्पकालीन और दीर्घकालीन लागतें (Short- Run and Long-Run Costs) - अल्पकालीन अवधि वह अवधि होती है जिसमें उत्पादन के कम-से-कम एक साधन की पूर्ति स्थिर हो । इस अवधि में फर्म अपनी मशीनों, उपकरणों और उत्पादन के पैमानों को परिवर्तित नहीं कर सकती । बढ़ती हुई मांग को पूरा करने के लिए फर्म अपने उत्पादन को अधिक श्रम और कच्चा माल लगाकर या वर्तमान श्रम शक्ति से अधिक समय काम करवा कर ही बढ़ा सकती है । अर्थात अल्पकालीन लागतें वे लागतें होती हैं जो उत्पादन के साथ परिवर्तित होती हैं जबकि कम से कम एक उत्पादन साधन स्थिर रहता है ।

दूसरी ओर, दीर्घकालीन लागतें वे लागतें हैं जो उत्पादन के साथ परिवर्तित होती हैं जबकि प्लांट और उपकरण सहित उत्पादन के सभी साधन परिवर्तनशील हों । दीर्घकाल में उत्पादन के साधन स्थिर नहीं होते हैं, इसलिए स्थिर लागतें भी नहीं होती हैं । फर्म अपने प्लांट का आकार या पैमाना आवश्यकतानुसार बदल सकती है और कम अथवा अधिक साधन लगा

सकती है । अत: दीर्घकालीन में सभी साधन परिवर्तनशील होते हैं । अर्थात सभी लागतें परिवर्तनशील होती हैं । व्यावसायिक निर्णयन में दोनों प्रकार की लागतें महत्वपूर्ण हैं । चूंकि अल्पकाल में फर्म को एक दिए हुए प्लांट के आकार के अन्तर्गत ही अनुकूलतम उत्पादन करना होता हैं, इसलिए उसके लिए अल्पकालीन लागत की जानकारी आवश्यक होती हैं । जबकि दीर्घकालीन लागत की जानकारी व्यवसायी को अपने उद्देश्य के लिए अनुकूलतम पैमाने या फर्म के अनुकूलतम आकार के आयोजन में लाभप्रद होती है । अत: नए उद्यम की स्थापना के साथ-साथ वर्तमान उद्यम का विस्तार, दोनों में दीर्घकालीन लागत महत्वपूर्ण होती है ।

4. लेखांकन और आर्थिक लागतें (Accounting and Economic Costs) - किसी फर्म द्वारा एक वस्तु के उत्पादन में किए गए कुल मौद्रिक व्यय को मौद्रिक लागतें कहते हैं । इसमें श्रम की मजदूरी और वेतन, कच्चे माल की लागत, मशीनों और उपकरणों का खर्च, मशीनों के मूल्य ह्रास और घिसने और न चलने का व्यय, बिल्डिंग तथा अन्य पूंजी-पदार्थ और बिल्डिंग का किराया, उधार ली हुई पूंजी का ब्याज, बिजली, ईंधन, यातायात और विज्ञापन तथा बीमे का खर्च और सभी प्रकार के कर शामिल हैं । ये लेखांकन लागतें है जो एक उद्यमी उत्पादन के विभिन्न साधनों को भुगतान करने के लिए ध्यान में रखता है । ये मौद्रिक लागतें स्पष्ट लागतें कहलाती हैं जो एक लेखाकार फर्म की लेखा पुस्तकों में दर्ज करता है । लेकिन दूसरी ओर, उद्योग के अपने स्त्रोतों और सेवाओं का आरोपित मूल्य अस्पष्ट लागत है । जैसे - प्रबन्धकर्त्ता - मालिक का वेतन, यदि बिल्डिंग उद्योगपति की अपनी हो, तो उसका अनुमानित किराया, और उद्योगपति की अपनी लगाई हुई पूंजी का ब्याज, अस्पष्ट लागत में आते हैं । अत: आर्थिक लागतों में लेखांकन लागतें तथा अस्पष्ट लागतें शामिल होती हैं । लेखांकन लागतें करारोपण संबंधी आवश्यकताओं के प्रबंधन, तथा फर्म के लाभ या हानि की गणना में उपयोगी होती है । दूसरी ओर, आर्थिक लागतें भविष्य से संबंधित होने के कारण प्रबंधकीय निर्णयन में काफी उपयोगी होती है ।

5. वास्तविक लागत और अवसर लागत (Actual Cost and Opportunity Costs) - वास्तविक लागत, फर्म का वास्तविक वित्तीय व्यय होता है अर्थात वास्तविक लागत किसी वस्तु या सेवा को प्राप्त करने या उत्पादित करने के लिए किया गया वास्तविक व्यय है । कच्चे माल की लागतें, मजदूरी और ब्याज का भुगतान, यात्रा और यातायात, मशीनों की लागतें आदि इस लागत के अन्तर्गत आते हैं । ये लागतें प्राय: फर्म की लेखा पुस्तकों में दर्ज होती हैं । दूसरी ओर, अवसर लागत वह लागत होती है जो एक वस्तु की बजाय दूसरी को उत्पादित करने में अवसर के त्याग में आती है । उत्पादन साधन सीमित होने के कारण एक साथ सब वस्तुओं का उत्पादन करने के लिए उनका उपयोग नहीं किया जा सकता है । अत: यदि एक वस्तु के उत्पादन में उन्हे प्रयोग करना है, तो अन्य प्रयोगों से उनको हटाना होगा । इस प्रकार एक की लागत दूसरी की लागत का वैकल्पिक त्याग है जैसे गेहूं उगाने के लिए भूमि के प्रयोग की लागत उस वैकल्पिक फसल का मूल्य है जो उस पर लगाई जा सकती थी । श्रम की बास्तविक लागत वह है जो उसे किसी अन्य रोजगार में मिल सकती थी, इत्यादि ।

6. निजी और सामाजिक लागतें (Private and Social Costs) - निजी लागतें एक फर्म द्वारा एक वस्तु या सेवा के उत्पादन पर किया गया क्रय है । इनमें स्पष्ट और अस्पष्ट दोनों प्रकार की लागतें शामिल होती है । जबकि कुछ ऐसी भी अन्य लागतें हैं जो फर्म के उत्पादन कार्य के कारण उत्पन्न होती है लेकिन सामान्यत: ये न तो व्यावसायिक निर्णयों के अन्तर्गत आती है और न ही ऐसी लागतें फर्मो द्वारा स्पष्टतया चुकाई जाती है । ऐसी लागतें समाज द्वारा चुकाई जाती हैं, अर्थात एक फर्म की उत्पादन क्रियाऐं, दूसरों के लिए आर्थिक लाभ अथवा हानि ला सकती है । उदाहरणार्थ, स्टील, रबड़ और रसायन जैसी वस्तुओं का उत्पादन पर्यावरण को प्रदूषित करता है जिससे सामाजिक लागतें उत्पन्न होती है । ये लागतें फर्म के दृष्टिकोण से बाह्य लागतें और समाज के दृष्टिकोण से सामाजिक लागतें कहलाती है । उदाहरणार्थ, वायु, जल और ध्वनि प्रदूषण, यातायात की भीड़-भाड़, जहरीली गैसों और पटाखे की फर्मो में आकस्मिक दुर्घटना आदि । यद्यपि प्रबंधकीय निर्णयों में सामाजिक लागतों का महत्व नहीं है, फिर भी फर्म का सामाजिक उत्तरदायित्व होता है । दूसरी ओर, शिक्षा, सफाई, पार्क आदि की सेवाओं का निर्माण सामाजिक लाभ लाता है । यदि हम उत्पादन की निजी लागतों और पर्यावरण प्रदूषण जैसी दूसरों पर हानियों को जोड़ दें तो हमें सामाजिक लागतें प्राप्त होंगी ।

10.3 लागत फलन (Cost Function)

लागत फलां उत्पादन की कुल लागतौर उसे निर्धारित करने वाले विभिन्न तत्वों के बीच फलनात्मक संबंध को व्यक्तकरता है। सामान्यतः वे तत्व जो एक फर्म के उत्पादन की कुल लागत (TC) को निरहारित करते हैं, वे हैं.: उत्पादन (Q), प्रौद्यौगिकी का स्तर (T), साधनों की कीमतों (P) और स्थिर साधन (F)। अतः लागत फलन निम्न प्रकार है :

$$TC=f(Q,T,PF)$$

लागत फलन के विश्लेषण के लिए कुछ मान्यताएं ली जाती है। जैसे (i) फर्म केवाल एक अकेली समरूप वस्तु का कुछ उत्पादन के साधनों की सहायता से उत्पादन करती है। (ii) अल्पकाल में फर्म के कुछ साधन स्थिर हैं। इसलिए वे दिए हुए मान लिए जाते है। (iii) वस्तु के उत्पादन के लिए जो प्रौद्यौगिकी प्रयोग की जाती है, उसका ज्ञान होता है और वह स्थिर मान ली जाती है। (iv) यह मान लिया जाता है कि फर्म परिवर्तनशील साधनों को इस प्रकार समायोजित करती है कि वस्तु का दिया हुआ उत्पादन न्यूनतम लागत पर प्राप्त होता है। इस प्रकार कुल लागत फलां निम्न प्रकार व्यक्त किया जाता है,

$$TC=f(Q)$$

10.4 फर्म के अल्पकालीन लागत वक्र (Short Run Cost Curves of the Firm)

अल्पकाल यह समय होता है जिसमें फर्म अपनी मशीनों, उपकरण और उत्पादन के पैमाने को आवश्यकतानुरूप परिवर्तित नहीं का सकती।बढ़ती हुई मांग को पूरा करने के लिए, फर्म अपने उत्पादन को अधिक श्रम और कच्चा माल लगाकर या वर्तमान श्रम शक्ति से अधिक समय काम करवाकर ही बढ़ा सकती है। अवधि में उत्पादन के कुछ लागतें परिवर्तनशील होती है।

कुल लागतें (Total Costs)

एक वस्तु की निश्चित मात्रा को उत्पादित करने में एक फर्म द्वारा किए गये सभी व्ययों के योग को कुल लागत कहते है। कुल लागतें कुल स्थिर लागतों तथा कुल परिवर्तनशील लागतों का योग होता है। ये निम्नलिखित है :-

(क) **कुल स्थिर लागतें :-** ये उत्पादन की वे लागतें है जो उत्पादन के साथ परिवर्तित नहीं होती। वास्तव में फर्म को ये लागतें उठानी पड़ती है। यदि फर्म थोड़े समय के लिए उत्पादन बंद भी कर देती है। तब भी इन लागतों में परिवर्तन नहीं होता है। इनमें भूमि का किराया, उधार ली गई मुद्रा पर ब्याज, इंश्योरेंस, संपत्ति कर, मूल्य ह्रास, स्थायी स्टाफ की मजबूरी और वेतन आदि भुगतान शामिल होते है। इन्हे उपरिव्यय लागतें भी कहते है।

(ख) **कुल परिवर्तनशील लागतें :-** ये वे लागतें हैं जो उत्पादन में परिवर्तन के साथ सीधे तौर से परिवर्तित होती है। वे उत्पादन के बढ़ने के साथ बढ़ती हैं और उत्पादन के कम होने के साथ कम होती हैं तथा उत्पादन के शून्य होने पर ये लागतें भी शून्य हो जाती है। इनमें कच्चे माल, बिजली, पानी, कर, अस्थायी श्रम, विज्ञापन आदि के खर्चे शामिल होते हैं। इन्हें प्रत्यक्ष लागतें या प्रमुख लागतें भी कहते हैं। प्रो. बेन के अनुसार "परिवर्तनशील लागत वह लागता है जिसकी राशि, उत्पादन की मात्रा में परिवर्तन होने पर परिवर्तित होती है।

कुल लागतों का तालिका तथा रेखाचित्र द्वारा निरूपण (Representation of Total Costs by Schedule and diagram)

कुल लागत, स्थिर लागता व परिवर्तनशील लागतों का तालिका 10.1 व रेखाचित्र 10.1 से दर्शाया जा सकता है।

तालिका 10.1 : कुल लागतें (Total Costs)

कुल उत्पादन इकाइयां	कुल स्थिर लागत	कुल परिवर्तनशील लागत	कुल लागत
(TO)	(TFC)	(TVC)	(TC)
(i)	(2)	(3)	(2+3)
0	50	0	50
1	50	10	60
2	50	16	66
3	50	21	71
4	50	28	78
5	50	40	90
6	50	54	104
7	50	75	125

तालिका 10.1 से स्पष्ट है की कुल स्थिर लागतें सदैव समान 5 रू। है, भले ही उत्पादन की मात्रा शून्य हों, अथवा 7 इकाइयां हों। इसके विपरीत कुल परिवर्तनशील लागतें उत्पादन में वृद्धि के साथ बढ़ती जाती हैं। उत्पादन शून्य होने पर परिवर्तनशील लागत भी शून्य हैं। 1 इकाई

का उत्पादन होने पर परिवर्तनशील लागतें 10 रू. व 7 इकाइयों का उत्पादन होने पर 75 रू. है। इससे स्पष्ट है कि परिवर्तनशील लागतों का उत्पादन की मात्रा से प्रत्यक्ष सम्बंध है। कुल लागत शून्य उत्पादन होने पर स्थिर लागत 5 रू. बराबर है तथा उत्पादन में वृद्धि के साथ बढ़ती जा रही है।

रेखाचित्र 10.1 में स्थिर व परिवर्तनशील लागतों व कुल लागतों व कुल लागतों को प्रदर्शित किया जाता है। चित्र के अनुसार TC रेखा कुल लागता रेखा है। TFC रेखा कुल स्थिर लागत रेखा है। रेखाचित्र के अनुसार उत्पादन की मात्रा शून्य होने पर स्थिर लागत OP है, लेकिन इस स्थिति में परिवर्तनशील लागत AB हो जाती है। इसी प्रकार उत्पादन की मात्रा बढ़कर OM, होने पर कुल स्थिर लागत OP अथवा CM_1 रहती है जो पूर्ववत ही है ; लेकिन परिवर्तनशील लागत बढ़कर CD हो जाती है । इससे स्पष्ट होता है कि उत्पादन में वृद्धि होने पर कुल स्थिर लागत पूर्ववत रहती है; लेकिन परिवर्तनशील लागत बढ़ जाती है । रेखाचित्र में TC व TFC रेखा के मध्य का क्षेत्र कुल परिवर्तनशील लागतों को व्यक्त करता है, जो उत्पादन की वृद्धि के साथ बढ़ता जा रहा है । रेखाचित्र के अनुसार OM उत्पादन मात्रा की स्थिति मे AM स्थिर लागत +AB परिवर्तनशील लागत=MB कुल लागत को व्यक्त करती है । इसी प्रकार उत्पादन मात्रा OM1 होने पर M1D कुल लागत= स्थिर लागत + परिवर्तनशील लागत है ।

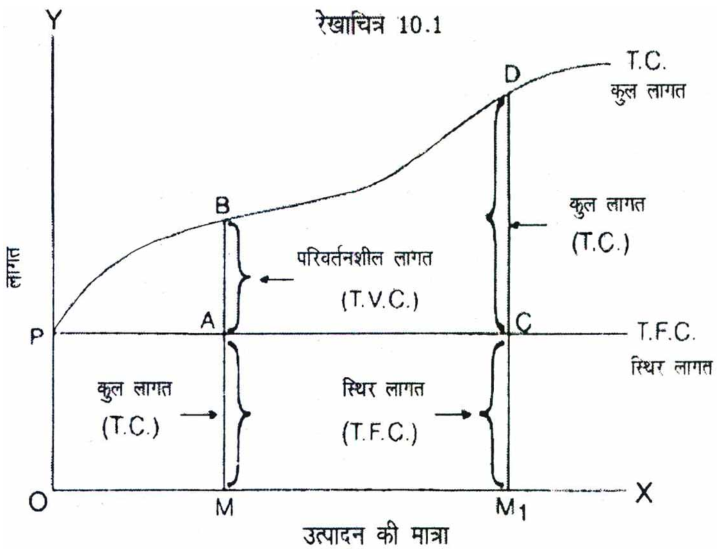

स्थिर एवं परिवर्तनशील लागतों मे अन्तर सम्बन्धी महत्वपूर्ण बातें

1. अल्पकाल में उत्पादन के लिए स्थिर एवं परिवर्तनशील दोनों लागतों का होना आवश्यक है ।
2. स्थिर एव परिवर्तनशील लागतों का अन्तर केवल अल्पकाल से सम्बन्धित है । दीर्घकाल में सभी लागतें परिवर्तनशील लागतें हो जाती हैं ।
3. स्थिर एवं परिवर्तनशील लागतों में केवल श्रेणी का अन्तर है । उदाहरण के लिए एक श्रमिक को वेतन दिया जाता है । यदि उत्पादन बन्द होने पर उसे नौकरी से हटा दिया जाये तो वह परिवर्तनशील लागत होगी तथा नौकरी से नहीं हटाने की दशा में यह स्थिर लागत होगी ।

अल्पकालीन औसत या इकाई लागतें (Short Run Average or Unit Costs)

फर्म के अल्पकालीन विश्लेषण में, औसत लागतें बहुत महत्वपूर्ण हैं । उत्पादन की जो इकाइयां फर्म उत्पादित करती है वे उसे समान लागत की मात्रा पर प्राप्त नहीं होती, परन्तु उन्हें समान कीमत पर बेचना पडता है । इसलिए फर्म को प्रति इकाई लागत या औसत लागत का जानना बहुत जरूरी है । प्रो. स्लोमैन के अनुसार, "औसत 'कुल' लागत उत्पादन की प्रति इकाई कुल लागत (स्थिर तथा परिवर्तनशील लागत) का योग है । इस प्रकार, फर्म की अल्पकालीन औसत लागतों में औसत स्थिर लागतें तथा औसत परिवर्तनशील लागतें शामिल होती है ।
इनका संबंध तालिका 10.2 में दर्शाया गया है ।

तालिका 10.2 : अल्पकालीन औसत लागतें

कुल उत्पादन	कुल स्थिर लागत	औसत स्थिर लागत	कुल परिवर्तनशील	औसत परिवर्तनशील	कुल लागत	औसत लागत	सीमांत लागत
(TO)	(TFC)	(AFC)	(TVC)	(AVC)	(TC)	(AC)	(MC)
(1)	(2)	(3)	(4)	(5) (4*1)	(6) (2+4)	(7) (3+5)	(8)
0	50	0	0	0	50	0	0
1	50	50	10	10	60	60	10
2	50	25	16	8	66	33	6
3	50	16.7	21	7	71	23.7	5
4	50	12.5	28	7	78	19.5	7
5	50	10	40	8	90	18	12
6	50	8.3	54	9	104	17.3	14
7	50	7.1	75	10.7	125	17.8	21

औसत लागतें तीन प्रकार की होती है - 1. औसत स्थिर लागत (AFC) 2. औसत परिवर्तनशील लागत (AVC) तथा 3. औसत कुल लागत (ATC) । इन्हें अलग-अलग ज्ञात करने के लिए इनके अलग-अलग कुल योग में उत्पादित वस्तु की मात्रा का भाग दिया जाता है । इनका विवरण निम्नलिखित है

1. औसत स्थिर लागत (Average Fixed Cost) :- कुल स्थिर लागत में उत्पादन की कुल मात्रा का भाग देने से औसत स्थिर लागत (AFC) प्राप्त हो जाती है । औसत स्थिर लागतें उत्पादन की मात्रा में वृद्धि के साथ-साथ कम होती जाती हैं, क्योंकि कुल स्थिर लागत स्थिर रहती है । जब उत्पादन में वृद्धि की जाती है तो यह स्थिर लागत अधिकाधिक इकाईयों में विभक्त होने के कारण कम होती चली जाती है । उत्पादन में वृद्धि की प्रारम्भिक अवस्था में औसत स्थिर

लागत तेजी से घटती है, किन्तु बाद में यह धीमी गति से घटती जाती है, लेकिन औसत स्थिर लागत कभी शून्य या ऋणात्मक नहीं होती है । इसे निम्न सूत्र द्वारा ज्ञात किया जा सकता है ।

$$\text{Average Fixed Cost} = \frac{Total\ Fixed\ Cost}{Total\ Output} \quad \text{or AFC=} \frac{TFC}{TO}$$

रेखाचित्र 10.2 में औसत स्थिर लागत रेखा को बताया गया है । तालिका 10.2 के कॉलम 3 में औसत स्थिर लागत को दिखाया गया है, जो उत्पादन में वृद्धि के साथ कम होती जा रही है । रेखाचित्र 102 में रेखा एक गिरती हुई रेखा है यह प्रारम्भ में अधिक तेजी से गिरती है; लेकिन बाद में धीमी गति से गिरने लगती है । यह ox-axis रेखा को छूती नहीं है अर्थात शून्य नही होती है ।

2. औसत परिवर्तनशील लागत ('Average Variable Cost) - कुल परिवर्तनशील लागत में उत्पादन की कुल मात्रा का भाग देकर औसत परिवर्तनशील लागत ज्ञात की जा सकती है । प्रारम्भ में उत्पादन की मात्रा में वृद्धि के साथ औसत परिवर्तनशील लागत कम होती जाती है; लेकिन यह कमी उस सीमा तक ही जारी रहती है, जब तक कि फर्म के उत्पादन साधनों को अनुकूलतम संयोग स्थापित नहीं हो जाता है । दूसरे शब्दों में, बड़े पैमाने के उत्पादन के लाभों की प्राप्ति के कारण औसत परिवर्तनशील लागत घटती जाती है । जब फर्म अपनी पूर्ण क्षमता पर काम कर रही होती है तो औसत परिवर्तनशील लागत न्यूनतम होती है । यदि फर्म अपनी क्षमता से भी अधिक उत्पादन करने लगती है, तो औसत परिवर्तनशील लागत बढ़ने लगती है । औसत परिवर्तनशील लागत रेखा का आकार 'अंग्रेजी' के 'U' शब्द के समान होता है ।

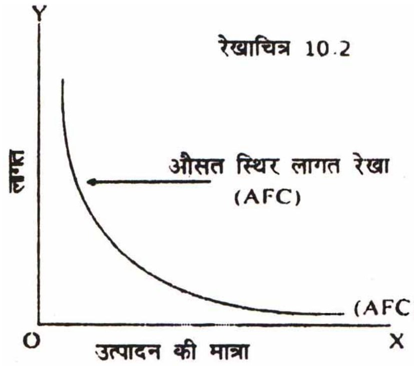

$$\text{Average Variable Cost} = \frac{Total\ Variable\ Cost}{Total\ Output} \quad \text{or AVC=} \frac{TVC}{TO}$$

रेखाचित्र 10.3 में औसत परिवर्तनशील लागत रेखा को दर्शाया गया है । रेखाचित्र के अनुसार औसत परिवर्तनशील लागत रेखा 'U' आकार की है । प्रारम्भ में उत्पादन वृद्धि के साथ-साथ ये C से A बिन्दु तक गिरती है ।

A बिन्दु पर औसत परिवर्तनशील लागत न्यूनतम हो जाती है । A से B बिन्दु तक अर्थात A बिन्दु के बाद उत्पादन की मात्रा बढ़ाने पर औसत परिवर्तनशील लागत बढ़ने लगती है । इसका कारण उत्पत्ति के घटते प्रतिफल की अवस्था का प्रारम्भ होना है । A बिन्दु अनुकूलतम उत्पादन का बिन्दु कहलाता है, क्योंकि इस बिन्दु पर औसत परिवर्तनशील लागत न्यूनतम होती है ।

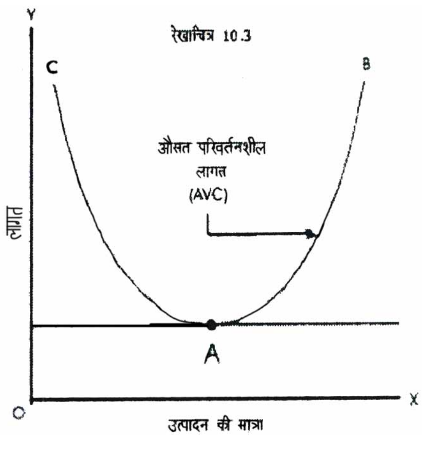

3. औसत कुल लागत (Average Total Cost) :- यदि कुल लागत में उत्पादित वस्तुओं की कुल मात्रा का भाग दिया जाये तो औसत कुल लागत प्राप्त होगी । इसके अलावा औसत स्थिर लागत तथा औसत परिवर्तनशील लागत को जोडकर भी औसत कुल लागत ज्ञात की जा सकती है ।

$$\text{Average Total Cost} = \frac{Total\ Cost}{Total\ Output}$$

Or

Average Total Cost= Average Fixed Cost+ Average Variable Cost

औसत कुल लागत की मात्रा औसत स्थिर लागत एवं औसत परिवर्तनशील लागत की मात्रा पर निर्भर करती है । सामान्यत: प्रारंभिक अवस्था में उत्पादन में वृद्धि के साथ औसत स्थिर लागत एवं औसत परिवर्तनशील लागत दोनों में कमी आती है । इस कारण औसत कुल लागत में कमी होने लगती है, लेकिन एक सीमा के बाद (जब उत्पादन अनुकूलतम आकर में पहुंच जाता है) उत्पादन वृद्धि के कारण औसत परिवर्तनशील लागतों में वृद्धि होने लगती है जबकि औसत स्थिर लागतें बहुत धीमी गति से कम होने लगती है । परिणामस्वरूप औसत कुल लागत बढ़ने लगती है । इसे रेखाचित्र 10.4 में दर्शाया गया है ।

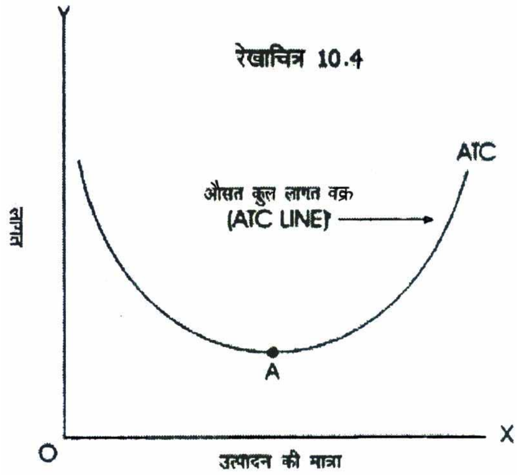

रेखाचित्र के अनुसार ATC रेखा का आकार भी अंग्रेजी के शब्द 'U' के समान ही है । प्रारम्भ में उत्पादन वृद्धि के साथ ATC रेखा गिरती जाती है । बिन्दु A पर औसत कुल लागत न्यूनतम होती है । इसके बाद उत्पादन में वृद्धि के साथ औसत कुल लागत रेखा ATC ऊपर की ओर बढ़ने लगती है ।

सीमान्त लागत (Marginal Cost)

किसी वस्तु की एक अतिरिक्त इकाई के उत्पादन से कुल लागत में होने वाली वृद्धि को सीमान्त लागत कहते हैं । सीमान्त इकाई का तात्पर्य अन्तिम इकाई से है । अत: अन्तिम इकाई के उत्पादन पर होने वाला व्यय सीमान्त लागत कहलाता है । दूसरे शब्दों में, एक अतिरिक्त इकाई का उत्पादन करने से जो अतिरिक्त लागत आती है, उसे सीमान्त लागत कहते हैं । उदाहरण के लिये यदि कोई उत्पादक 10 वस्तुओं का उत्पादन करता है, तो अन्तिम इकाई दसवीं इकाई के उत्पादन पर जो व्यय होता है, उसे सीमान्त लागत कहेंगे । इसे कुल लागत में वृद्धि के रूप में समझने के लिए तालिका 10.2 के कॉलम 6 व 8 को देखा जा सकता है । तालिका के कॉलम 6 मे कुल लागत व कॉलम 8 में सीमान्त लागत को दिखाया गया है । तालिका से स्पष्ट है कि कुल लागत में अतिरिक्त वृद्धि ही सीमान्त लागत है ।

सीमान्त लागत भी उत्पादन की प्रारम्भिक अवस्था में घटती जाती है, लेकिन एक सीमा के बाद यह बढ़ने लगती है ।इस कारण सीमान्त लागत रेखा भी अंग्रेजी के अक्षर 'U' आकार की होती है । इसके 'U' आकार के होने के कारण यह है कि सीमान्त लागत रेखा कुल लागत या कुल परिवर्तनशील लागत में परिवर्तन को बताती है । अल्पकाल में स्थिर लागतों में कोई परिवर्तन नहीं होता है, जिसके कारण परिवर्तनशील लागत में परिवर्तन के अनुसार ही कुल लागत में परिवर्तन होता है । दूसरे शब्दों में, परिवर्तनशील लागतों में होने वाले परिवर्तन की मात्रा ही सीमान्त लागत होती है अर्थात एक अतिरिक्त इकाई के उत्पादन में कुल परिवर्तनशील लागत में होने वाली अतिरिक्त वृद्धि ही सीमान्त लागत कहलाती है । सीमान्त लागत रेखा को रेखाचित्र 10.5 द्वारा प्रदर्शित किया गया है । अल्पकाल में उत्पादन की मात्रा में वृद्धि के साथ-साथ कुल (TC) लागत तथा कुल परिवर्तनशील लागत (TVC) घटती हुई दर से बढ़ती है । फलस्वरूप सीमान्त लागत (MC) पूर्व इकाई की तुलना में कम होती है अत: MC रेखा भी नीचे गिरती हुई होगी । बिन्दु A के बाद MC रेखा के गिरने की प्रवृति समाप्त हो जाती है । इस सीमा के बाद कुल लागत (TC) तथा कुल परिवर्तनशील लागतें बढाती हुई दर से बढने लगती हैं । इसलिए इस सीमा के बाद सीमान्त लागत (MC) रेखा भी उपर की ओर बढ़ने लगती है । इस कारण सीमान्त लागत रेखा 'U' आकार की होती है ।

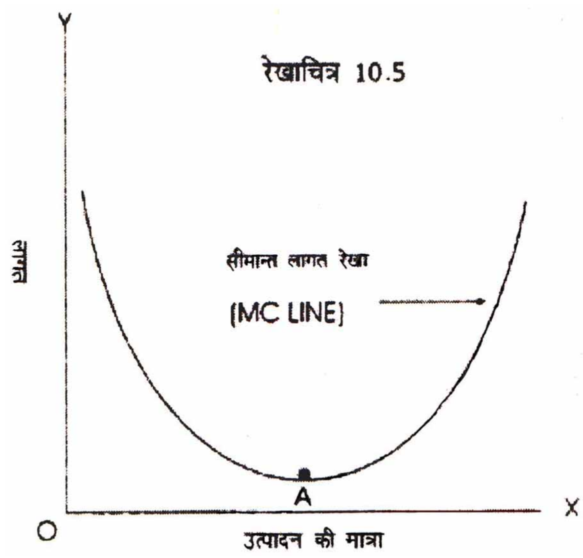

सीमान्त लागत वक्र की विशेषताऐ -

1. अल्पकालीन सीमान्त लागत वक्र (MC) का स्थिर लागत वक्र से कोई. सम्बन्ध नहीं होता है क्योंकि MC परिवर्तनशील लागत को व्यक्त करती है ।
2. उत्पादन की प्रारम्भिक अवस्था में MC रेखा एवं ACरेखा दोनों नीचे को गिरती हैं । एक बिन्दु के बाद जब ACरेखा उपर उठती है, लेकिन MC रेखा AC की तुलना में अधिक तेजी से उपर उठती
3. MC रेखा AVC रेखा की अपेक्षा उत्पादन के कम स्तर पर न्यूनतम बिन्दु तक पहुंच जाती है ।
4. MC रेखा AVC रेखा तथा AC रेखा को उनके निम्नतम बिन्दु से काटते हुए उपर उठती है ।

सीमान्त लागत और औसत लागत मे सम्बन्ध (Relationship between MC and AC)

सीमान्त लागत और औसत लागत एक-दूसरे से घनिष्ठ रूप से सम्बन्धित हैं । इनके सम्बन्ध को रेखाचित्र 10.6 द्‌वारा प्रदर्शित किया गया है । यह सम्बन्ध निम्न प्रकार है।

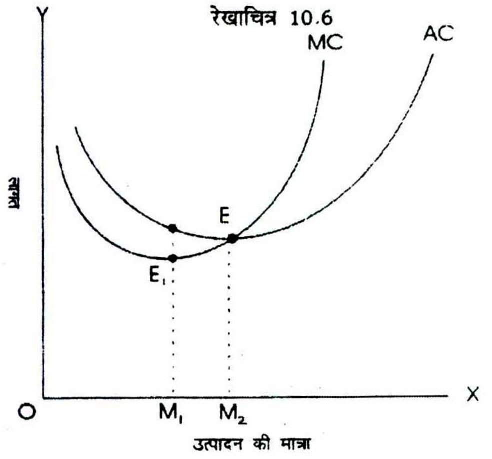

रेखाचित्र 10.6

1. प्रारम्भ में औसत लागत तथा सीमान्त लागत दोनों गिरती हैं, परन्तु सीमान्त लागत औसत लागत की
2. अपेक्षा तेज गति से गिरती है ।
3. उत्पादन के जिस बिन्दु पर सीमान्त लागत और औसत लागत बराबर होती हैं, उस बिन्दु पर औसत लागत न्यूनतम होती है । अर्थात MC रेखा AC रेखा को उसके निम्नतम बिन्दु पर काटती है । रेखाचित्र 10.6 में यह बिन्दु E है, यहां पर उत्पादन की मात्रा OM1 के बराबर है ।
4. सीमान्त लागत एवं औसत लागत समान होने पर E बिन्दु के बाद दोनों बढ़ती हैं; परन्तु सीमान्त लागत औसत लागत की अपेक्षा तेज गति से बढ़ती है ।
5. सीमान्त लागत रेखा का न्यूनतम बिन्दु E1 कम उत्पादन मात्रा पर ही आ जाता है जबकि औसत लागत रेखा का न्यूनतम बिन्दु E उत्पादन की अधिक मात्रा पर आता है । रेखाचित्र के अनुसार OM मात्रा पर सीमान्त लागत न्यूनतम हो जाती है जबकि OM1 उत्पादन होने पर औसत लागत न्यूनतम होती है ।

अल्पकालीन औसत लागतों एवं सीमान्त लागत वक्रों मे सम्बन्ध

औसत लागत (AC), औसत स्थिर लागत (AFC), औसत परिवर्तनशील लागत (AVC) तथा सीमान्त लागत (MC) के पारस्परिक सम्बन्धों का अध्ययन रेखाचित्र 10.7 से किया जा सकता है । रेखाचित्र के सम्बंध में यह ध्यान देने योग्य है कि कोई भी प्रति इकाई लागत रेखा Y-axis को स्पर्श नहीं करती है, क्योंकि उत्पादन शून्य होने की अवस्था में प्रति इकाई लागत का प्रश्न ही उत्पन्न नही होता । OX-axis पर उत्पादन की मात्रा तथा OY-axis पर प्रति इकाई लागत को दर्शाया गया है । AFC औसत स्थिर लागत रेखा है, जो उत्पादन वृद्धि के साथ-साथ नीचे गिरती जाती है । AVC औसत परिवर्तनशील लागत रेखा है । यह रेखा प्रारम्भ में गिरकर बाद में उठना प्रारम्भ करती है । AC औसत लागत रेखा है जो प्रारम्भ में गिरती है, तत्पश्चात उपर उठना प्रारम्भ होती है । इस रेखा का निम्नतम बिन्दु (M) AVC के निम्नतम बिन्दु (N) की दांयी

रेखाचित्र 10.7
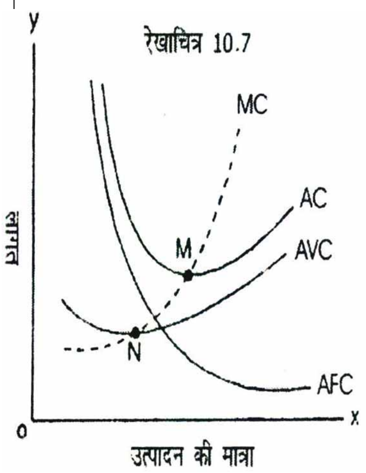

ओर है । निम्नतम बिन्दु के पश्चात AVC उठना प्रारम्भ होती है, परन्तु AFC गिरती है । इसके पश्चात AVC लगातार बढ़ती है तथा AVC के गिरने की गति धीमी होती जाती है । फलस्वरूप AC उपर की ओर बढ़ना प्रारंभ हो जाती है । MC सीमान्त लागत रेखा है । प्रारम्भ में सीमान्त लागत घटती है । उसके बाद उमसे वृद्धि होना आरम्भ होता है । यही कारण है कि MC रेखा प्रारम्भ में नीचे गिरती है, उसके पश्चात वह उपर की ओर बढ़ती है । यह रेखा MC तथा AVC रेखाओं को उनके निम्नतम बिन्दुओं M तथा N पर काटती है । इन निम्नतम बिन्दुओं के बाद MC रेखा AVC तथा AC की तुलना में अधिक तेजी से उपर की ओर बढ़ती है।

10.5 फर्म के दीर्घकालीन लागत वक्र

दीर्घकाल वह समयावधि है, जिसमें उत्पादक अपने उत्पादन के पैमाने में आवश्यकतानुसार परिवर्तन ला सकता है ।

इसके कारण दीर्घकाल में सभी लागतें परिवर्तनशील लागतें हो जाती हैं तथा कोई भी लागत स्थिर लागत नहीं रहती है । अत: दीर्घकाल में स्थिर लागत व परिवर्तनशील लागतों का अन्तर समाप्त हो जाता है एवं कुल औसत लागत तथा सीमान्त लागत ही रह जाती है ।

दीर्घकालीन औसत लागत वक्र एवं उत्पादन

रेखाचित्र 10.8

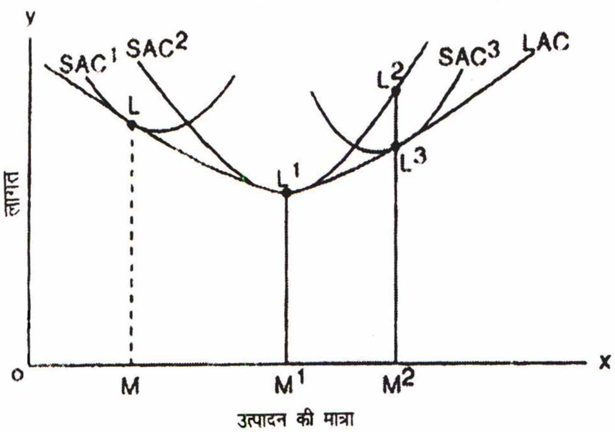

अल्पकाल मे एक उत्पादक अपने परिवर्तनशील साधनों की मात्रा में ही परिवर्तन कर उत्पादन की मात्रा में परिवर्तन कर सकता है, लेकिन दीर्घकाल में इतना पर्याप्त समय मिल जाता है कि एक उत्पादक अपने सभी साधनों में आवश्यकतानुसार परिवर्तन कर सकता है । दीर्घकाल में उत्पादन की मात्रा में जितनी बार परिवर्तन किया जाएगा, उतनी ही बार फर्म के लिए नये अल्पकालीन औसत लागत वक्र प्राप्त होंगें । ये विभिन्न अल्पकालीन लागत वक्र बताते हैं कि उत्पादन के पैमाने में परिवर्तन से लागत पर क्या प्रभाव पड़ता है? इन विभिन्न अल्पकालीन औसत लागत वक्रों को मिलाकर एक दीर्घकालीन औसत लागत वक्र ज्ञात किया जा सकता है । दीर्घकाल में फर्म उत्पादन पैमाने में परिवर्तन कर सकती है । अत: वह भिन्न-भिन्न उत्पादन मात्रा के लिए विभिन्न अल्पकालीन लागत वक्रों का चुनाव कर सकती है । इसे रेखाचित्र 10.8 से व्यक्त किया जा सकता है -

रेखाचित्र में फर्म के अल्पकालीन लागत SAC1,SAC2, वक्र तथा SAC3, है । LM उत्पादन लागत पर फर्म OM मात्रा का उत्पादन करती है । यदि उत्पादन की मात्रा बढ़ाकर कर

OM1 कर दी जाए तो अल्पकाल में वस्तु की औसत लागत L1M1 होगी क्योंकि फर्म SAC2, के बिन्दु L1 पर उत्पादन करेगी । स्पष्ट है कि इस स्थिति में औसत लागत न्यूनतम होगी । लेकिन दीर्घकाल में फर्म SAC3, पर उत्पादन करेगी, क्योंकि इस अवधि में प्लांट की क्षमता में परितर्वन किया जा सकता हे । अत: उत्पादन पैमाना बढ़ाने पर नये औसत लागत वक्र SAC3 पर कार्य करेगी । इस स्थिति में OM2, मात्रा के उत्पादन के लिए औसत लागत L3M2 आयेगी। स्पष्ट है कि दीर्घकाल में फर्म के आकार में परिवर्तन होने के कारण OM2 उत्पादन के लिए औसत लागत L2M2 से घटकर L3M2 रह जायेगी । यदि इन विभिन्न अल्पकालीन औसत लागत वक्रों को मिलाते हुए एक रेखा बनाई जाये तो यह दीर्घकालीन औसत लागत रेखा होगी । यह रेखा LAC बताती है कि उत्पादन के पैमाने में परिवर्तन के परिणामस्वरूप औसत लागत में क्या परिवर्तन आता है?

दीर्घकालीन औसत लागत वक्र की विशेषताऐं -

1. दीर्घकालीन औसत लागत वक्र अंग्रेजी के शब्द 'U' आकार का होता है । समय में वृद्धि के साथ इसका आकार चपटा होता चला जाता है ।
2. दीर्घकालीन औसत लागत वक्र विभिन्न अल्पकालीन औसत लागत वक्रों से मिलकर बनता है ।
3. दीर्घकालीन औसत लागत वक्र सदैव अल्पकालीन औसत लागत वक्रों से नीचे रहता है अर्थात दीर्घकालीन औसत लागतें सदैव कम होती है ।
4. दीर्घकालीन औसत लागत वक्र सभी अल्पकालीन औसत लागत वक्रों को उनके न्यूनतम बिन्दु पर स्पर्श नहीं करता है ।
5. दीर्घकालीन औसत लागत वक्र अल्पकालीन औसत लागत वक्र को केवल स्पर्श करता है, काटता नहीं है अर्थात यह किसी भी स्थिति में से SAC से उपर नहीं होता है ।
6. LAC रेखा फर्म के लिए विभिन्न उत्पादन मात्राओं पर औसत लागत सम्भावनाओं को व्यक्त करती
7. LAC रेखा फर्म का न्यूनतम बिन्दु दीर्घकालीन न्यूनतम औसत लागत व अनुकूलतम उत्पादन स्तर को बताता है ।

दीर्घकालीन औसत लागत LAC के आकार की संरचना उत्पत्ति के नियमों पर निर्भर करती है -

(A) उत्पत्ति ह्रास नियम (Law of Diminishing Returns) - जब किसी उत्पादन फर्म को बड़े पैमाने की बचत कुछ समय के लिए ही प्राप्त होती हैं तो उत्पादन की कम मात्रा पर ही उसकी दीर्घकालीन औसत लागत न्यूनतम हो जाती है । इस प्रकार उत्पादन के थोडे स्तर के बाद ही उत्पति ह्रास नियम अर्थात् लागत वृद्धि लागू होने लगता है । रेखाचित्र 10.9 में उत्पत्ति ह्रास नियम द्वारा LAC को दर्शाया गया है।

रेखाचित्र 10.9

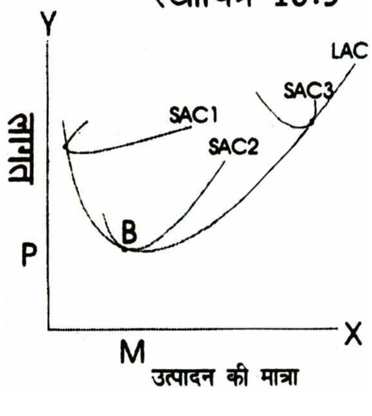

रेखाचित्र 10.9 में LAC दीर्घकालीन औसत लागत रेखा है जो प्रारम्भ में गिरती है तथा शीघ्र ही न्यूनतम बिन्दु पर पहुंच कर ऊपर उठने लगती है । उत्पादन की OM मात्रा पर LAC रेखा न्यूनतम बिन्दु B पर उत्पादन की मात्रा पहुंच जाती है, इसलिये फर्म OM मात्रा का उत्पादन करती है । इस बिन्दु के बाद ही LAC रेखा का अधिकांश भाग ऊपर उठता हुआ दिखाया गया है । स्पष्ट है कि फर्म की बचतें थोड़े से उत्पादन के बाद ही समाप्त हो जाती हैं ।

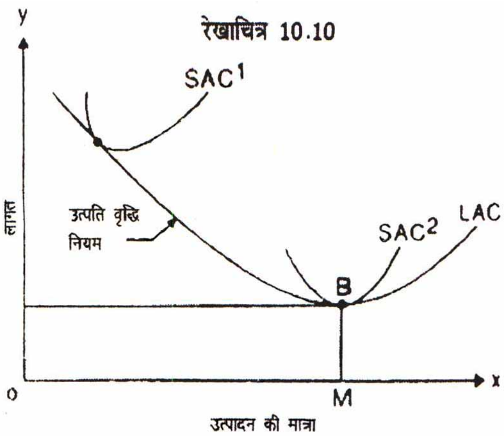

(B) उत्पत्ति वृद्धि नियम (Law of Increasing Returns) - जब फर्म को बड़े पैमाने के उत्पादन की बचतें लम्बे समय तक अर्थात् उत्पादन के ऊँचे स्तर तक मिलती रहती हैं, तो ऐसी स्थिति में उत्पादन वृद्धि नियम लम्बे समय तक लागू रहता है तथा उत्पत्ति ह्रास नियम बहुत देर बाद प्रारम्भ होता है । फर्म अपने न्यूनतम लागत पर धीरे-धीरे अर्थात् अधिक उत्पादन स्तर पर पहुँचती है । इस नियम की क्रियाशीलता में LAC रेखा उत्पाद की अधिक मात्रा तक गिरती जाती है और उत्पादन के उच्च स्तर पर न्यूनतम होकर फिर बढने लगती है । रेखाचित्र 10.10 में इसे बताया गया है - रेखाचित्र में स्पष्ट है कि LAC रेखा उत्पादन के OM स्तर पर न्यूनतम है जो अधिक मात्रा पर है । इस प्रकार फर्म का अनुकूलतम आकार बहुत बडा है । B बिन्दु के बाद LAC रेखा ऊपर की ओर बढ़ने लगती है ।

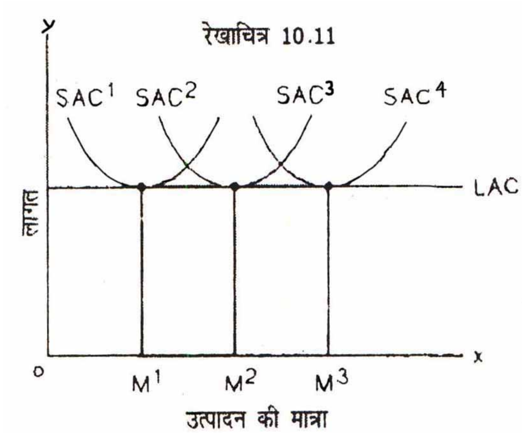

(C) उत्पत्ति समता नियम (Law of Constant Return)- जब फर्म उत्पति समता नियम के अन्तर्गत उत्पादन कर रही होती है तो LAC रेखा एक पड़ी हुई रेखा की तरह होती है। प्राय: यह स्थिति बहुत कम समय के लिए आती है । अनेक बार फर्म को इस स्थिति का आभास भी नहीं हो पाता है । इस स्थिति में उत्पादन में कमी अथवा वृद्धि करने पर भी लागत यथावत रहती है, इस स्थिति में फर्म को उत्पादन का अनुकूलतम बिन्दु प्राप्त नहीं होता है । इसे रेखाचित्र 10.11 मे बताया गया है ।

रेखाचित्र 10.11 SAC1, SAC2, तथा SAC3 में अल्पकालीन औसत लागत वक्र हैं । उत्पादन की मात्रा में परिवर्तन होने पर इन लागतों वक्रों पर क्रमशः OM1,OM2, तथा OM3 मात्रा का उत्पादन किया जायेगा । तीनों अल्पकालीन औसत लागत वक्रों की स्पर्श रेखा खींचने पर 'दीर्घकालीन औसत लागत रेखा' (LAC) प्राप्त होती है । यह एक सीधी रेखा है जो यह व्यक्त करती है कि उत्पादन की मात्रा में परिवर्तन से औसत लागत मे कोई परिवर्तन नहीं होता,

लेकिन सामान्यत: ऐसा नहीं होता है । उत्पादन में वृद्धि के साथ औसत लागत मे परिवर्तन आता है । अत: सामान्यतः LAC रेखा सीधी नहीं होकर 'U' आकार की होती है ।

दीर्घकालीन सीमान्त लागत रेखा (Long Run Marginal Cost)

दीर्घकाल में एक अतिरिक्त इकाई के उत्पादन से कुल लागत में जो वृद्धि होती है, उसे दीर्घकालीन सीमान्त लागत कहते है । वास्तव में अल्पकालीन सीमान्त लागत (SMC) तथा दीर्घकालीन सीमान्त लागत(LMC) में कोई विशेष अन्तर नहीं होता है । इसका आकार भी अंग्रेजी के 'U' अक्षर के समान होता है । LMC तथा LAC का संबंध ठीक वैसा ही होता है, जैसा SMC तथा SAC के मध्य होता है । रेखाचित्र 10.12 में इनके संबंध को बताया गया है ।

रेखाचित्र 10.12

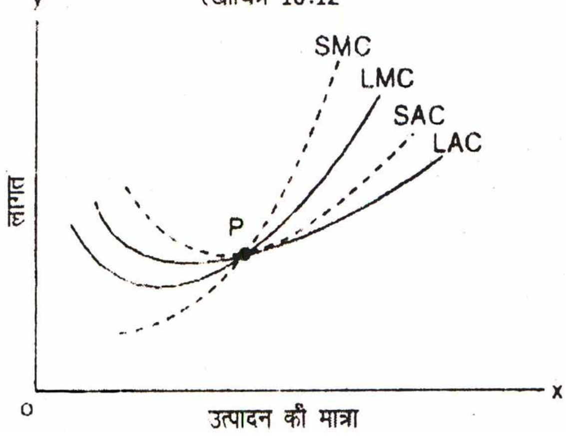

रेखाचित्र से स्पष्ट है कि जब LAC गिरती है तो LMC उससे तेज गति से गिरती है तथा LAC बढने पर LMC उसके न्यूनतम बिन्दु को काटते हुए तेजी से बढती है । यह बिन्दु P है । चित्र में SAC तथा SMC अल्पकालीन औसत लागत व सीमान्त लागत रेखाएं है । P बिन्दु पर सभी रेखाएं बराबर है । अत: MC तथा AC रेखा में अल्पकाल व दीर्घकाल में एक समान संबंध होता है ।

10.6 आगम विश्लेषण (Revenue Analysis)

प्रत्येक उत्पादक या फर्म का उद्देश्य अधिकतम लाभ अर्जित करना होता है । उसका लाभ तभी अधिकतम हो सकता है, जब वह कम से कम लागत पर वस्तु को उत्पादित कर अधिक मूल्य पर विक्रय करे । लाभ की मात्रा, वस्तु की उत्पादन लागत एवं उसके मूल्य के अन्तर के बराबर होती है । यदि लागत दी हुई है, तो लाभ वस्तु के विक्रय मूल्य पर निर्भर करेगा । बिक्री की मात्रा जितनी अधिक होगी, कुल लाभ की मात्रा सामान्यत: उतनी ही अधिक होगी । सामान्यत: बिक्री मूल्य को आगम भी कहते हैं । अर्थशास्त्र में आगम को तीन भागों विभक्त किया जा सकता है

(1) कुल आगम (Total Revenue)

(2) औसत आगम (Average Revenue)

(3) सीमान्त आगम (Marginal Revenue)

(1) कुल आगम (Total Revenue) :-

एक फर्म द्वारा वस्तुओं की एक निश्चित मात्रा विक्रय करने से जो आय प्राप्त होती है, उसे कुल आगम कहते हैं । उदाहरण के लिए उत्पादक द्वारा 5 वस्तुएँ 10 रु. प्रति वस्तु के

हिसाब से विक्रय की जाती है, तो उसे कुल आगम 5x10=50 रु. होगा । कुल आगम की गणना निम्न प्रकार की जा सकती है -

कुल आगम = वस्तु की मात्रा X प्रति इकाई कीमत or TR =Q X P

जहाँ TR= कुल आगम (Q), वस्तु की बेची गई मात्रा तथा P= वस्तु की प्रति इकाई कीमत ।

उत्पादन की (Output) (1)	कीमत प्रति इकाई (Price per Unit) (2)	कुल आगम (T.R) (3)	औसत आगम (A.R.) (4)	सीमान्त (M.R) (5)
1	20	20	20	20
2	19	38	19	18
3	18	54	18	16
4	17	68	17	14
5	16	80	16	12
6	15	90	15	10

(2) औसत आगम (Average Revenue)

फर्म द्वारा प्राप्त कुल आगम में वस्तु की इकाइयों की संख्या का भाग देकर औसत आगम ज्ञात किया जा सकता है । औसत आगम= $\frac{\text{कुल आगम}}{\text{कुल विक्रय मात्रा}}$ Or AR= $\frac{TR}{Q}$

तालिका 10.3 में कालम 4 में औसत आगम को प्रदर्शित किया गया है । औसत आगम विभिन्न विक्रय स्तरों पर वस्तु की कीमत को बताता है । वास्तव में औसत आगम ही प्रति इकाई मूल्य होता है ।

औसत आगम एक फर्म के लिए वस्तु की माँग को व्यक्त करता है । माँग रेखा वस्तु के मूल्य व उन पर वस्तु की माँगी जाने वाली मात्रा को व्यक्त करती है । एक क्रेता जिस मूल्य पर वस्तु खरीदने के लिए तैयार है वही फर्म का औसत आगम या वस्तु की कीमत होगी । इसलिए यह उत्पादक के लिए वस्तु की माँग रेखा होती है । यह रेखा विभिन्न मूल्यों पर वस्तु की बेची जाने वाली मात्रा को व्यक्त करती है ।

(3) सीमान्त आगम (Marginal Revenue)

उत्पादक द्वारा वस्तु की एक अतिरिक्त इकाई विक्रय करने से कुल आगम में होने वाली वृद्धि को सीमान्त आगम कहते हैं । इसकी गणना निम्न प्रकार की जा सकती है :-

$$MR = TR_n - TR_{n-1}$$

तालिका 10.3 के कालम 5 में सीमान्त आगम को दर्शाया गया है । तालिका के अनुसार वस्तु की 2 इकाइयाँ विक्रय करने से कुल आगम 38 रू. है तथा 3 इकाइयाँ बेचे से कुल आगम बढ़कर 54 रु. हो जाता है । इस प्रकार एक अतिरिक्त इकाई (तीसरी इकाई) विक्रय करने से कुल आगम में 54-38 = 16 रु. की वृद्धि होती है, यही सीमान्त आगम है ।

10.7 औसत आगम एवं सीमान्त आगम वक्रों में सम्बन्ध (Relationship between Average and Marginal Revenue)

औसत आगम एवं सीमान्त आगम वक्रों के सस्कंध को पूर्ण प्रतियोगिता व अपूर्ण प्रतियोगिता मे अलग-अलग देखा जाता है

10.7.1 पूर्ण प्रतियोगिता में सीमान्त आगम एवं औसत आगम वक्र

पूर्ण प्रतियोगिता की दशा में बाजार में फर्मो की संख्या बहुत अधिक होती है, जिसके कारण कोई भी एक फर्म अपनी स्वतन्त्र कीमत या उत्पादन नीति नही अपना सकती, बल्कि उसे बाजार में प्रचलित मूल्य पर ही वस्तु का विक्रय करना पडता है । दूसरे शब्दों में, पूर्ण प्रतियोगिता में फर्म की स्थिति 'कीमत निर्धारण (Price Maker) करने बाली नहीं होती । अत: ऐसी स्थिति में पूर्ण प्रतियोगिता में फर्म केवल प्रचलित मूल्य पर ही अपनी वस्तु की जितनी मात्रा चाहे विक्रय कर सकती है अर्थात् उसका मांग वक्र पूर्णतया लोचदार होता है । यही कारण है कि पूर्ण प्रतियोगिता में फर्म की औसत लागत ब सीमांत लागत बराबर होती है तथा औसत आगम वक्र तथा सीमान्त आगम वक्र एक सीधी पड़ी हुई रेखा के रूप में होता है जैसाकि तालिका 10.4 में दिखाया गया है ।

तालिका 10.4

कीमत प्रति इकाई (Price Per Unit)	उत्पादन की मात्रा (OutPut)	कुल आय (T.R)	औसत आय (A.R.)	सीमांत आय (M.R.)
(1)	(2)	(3)	(4)	(5)
10	1	10	10	10
10	2	20	10	10
10	3	30	10	10
10	4	40	10	10
10	5	50	10	10
10	6	60	10	10

तालिका 10.4 के स्तम्भ 4 व 5 में दी गयी औसत एवं सीमान्त आगम की राशि एक दूसरे के बराबर हैं । पूर्ण प्रतियोगिता में कोई भी क्रेता तथा विक्रेता वस्तु के मूल्य को प्रभावित नहीं कर सकता है । वस्तु का मूल्य अथवा औसत आगम ही वस्तु का सीमान्त आगम होता है । इसे रेखाचित्र 10.13 से स्पष्ट किया जा सकता है । चित्र में सीमान्त रेखा जो OX रेखा के समानान्तर है, फर्म का औसत आगम भी इसके समान है । औसत आगम और सीमान्त आगम दोनों को एक पड़ी हुई रेखा के रूप में दिखाया गया है । सीमान्त आगम दोनों को एक पड़ी हुई रेखा के रूप में दिखाया गया है । इससे स्पष्ट होता है कि AR तथा MR रेखाएँ एक ही बिन्दु से प्रारम्भ होती है और X-axis के समानान्तर होती हैं ।

रेखाचित्र 10.13

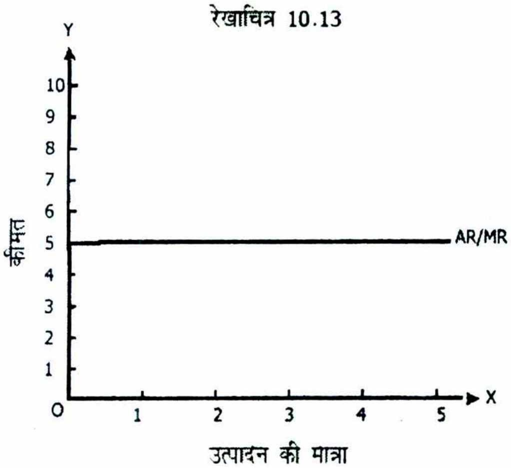

10.7.2 अपूर्ण प्रतियोगिता मे सीमान्त एवं औसत आगम वक्र (Marginal and Average Revenue Curves in Imperfect Competition)

पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत औसत आगम और सीमांत आगम आपस में बराबर रहते है, लेकिन अपूर्ण प्रतियोगिता में रेखाएं नीचे की ओर घटती हुई होती हैं तथा सीमान्त आगम वक्र औसत आगम वक्र से नीचे की ओर होता है । क्योंकि उत्पादक कीमत में कमी करके ही अधिकाधिक मात्रा में वस्तुओ को विक्रय कर सकता है । इस स्थिति को तालिका 10.3 के स्तम्भ 4 व 5 में दिखाया गया है । तालिका से स्पष्ट होता है कि सीमान्त आय औसत आय की तुलना मे अधिक तेजी से कम होती है । रेखाचित्र 10.14 में AR तथा MR रेखाओं को प्रदर्शित किया है । चित्र में AR तथा MR रेखाएं एक साथ P बिन्दु से प्रारम्भ होती हैं, दोनों ही रेखाएं बायें से दायें ओर को गिरती जाती है, परन्तु AR रेखा की तुलना में MR रेखा तेजी से गिरती है । मूल बिन्दु P से जब ये दोनों रेखाये गिरती है, तो इन रेखाओं की बीच की दूरी भी धीरे-धीरे बढती चली जाती है ।

रेखाचित्र संख्या 10.14

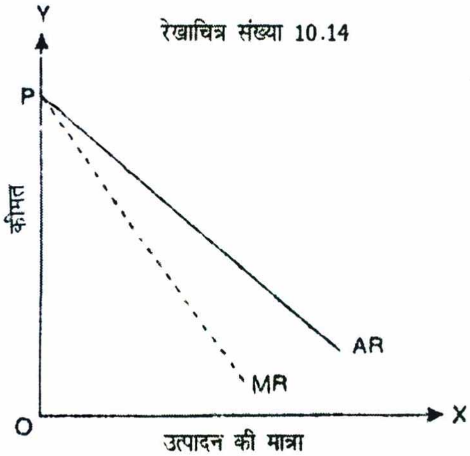

10.7.3 औसत आगम वक्र और सीमान्त आगम बक्र में संबंध की विशेषताएं (Characteristics of Relations between Average Revenue and Marginal Revenue Curves)

औसत आगम वक्र तथा सीमान्त आगम वक्र के मध्य संबंध निम्नलिखित है:-

1. अपूर्ण प्रतियोगिता में औसत आगम वक्र तथा सीमान्त आगम वक्र दोनों ही प्रारम्भिक बिन्दु P से बायें से दायें नीचे की ओर गिरते हैं, परन्तु इन दोनों रेखाओं की गिरने की दर अलग-अलग है । तालिका संख्या 10.3 के स्तम्भ 4 व 5 को देखें तो पता चलता है कि प्रारम्भ में AR तथा MR की राशि एक समान है लेकिन ज्यों-ज्यों बिक्री की मात्रा बकती जाती है, त्यों-त्यों AR की तुलना में MR अधिक तेजी से गिरती है, जैसे AR में क्रमश: एक-एक रूखO की कमी होती है जबकि MR में 2 रूख की कमी हो जाती है । इसे चित्र 10.15 से स्पष्ट किया जा सकता है । चित्र में AR तथा MR औसत आगम व सीमान्त आगम की रेखाएं हैं । AR रेखा के बिन्दु C से Y-axis पर CA लम्ब खींचा गया है । CA लम्ब को MR रेखा B बिन्दु पर दो बराबर भागों में बांटती है यह चित्र AB=BC में है । इस तथ्य से यह स्पष्ट होता है कि सीमान्त आय में, औसत आय की तुलना से दोगुनी राशि के बराबर कमी होती है ।

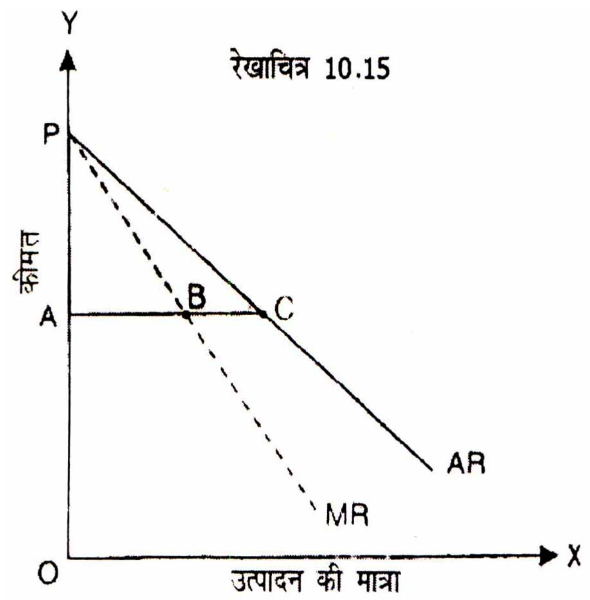

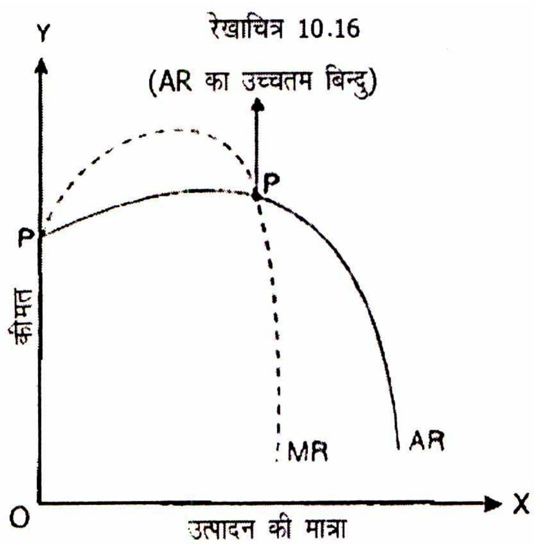

2. औसत आगम (AR) तथा सीमान्त आगम (MR) वक्रो की आकृति से भी भिन्न हो सकती है यह निम्नलिखित है-

(A) जब औसत आगम वक्र ऊपर की ओर उठता है, तब सीमान्त आगम वक्र भी ऊपर को उठता है, परन्तु AR की तुलना में MR वक्र अधिक तेजी

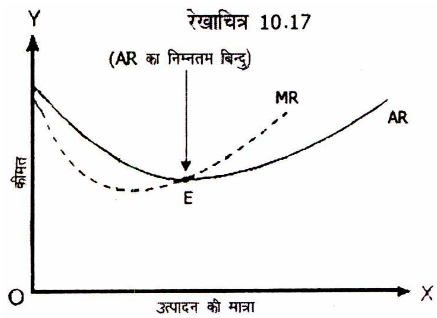

से ऊपर की और उठता है, जैसा कि रेखा चित्र 10.16 में दिखाया गया है । बिन्दु P पर सीमान्त आगम वक्र औसत आगम वक्र को काटता है, तो बिन्दु P औसत आय वक्र का सबसे ऊँचा बिन्दु होता है । बिन्दु P के बाद रेखा बड़ी तेजी से नीचे की ओर गिरती जाती है । इसके गिरने की दर AR रेखा गिरने की दर से अधिक है । बिन्दु P से पूर्व MR रेखा के ऊपर रहती है, परन्तु P बिन्दु के बाद MR रेखा AR रेखा के नीचे आ जाती है ।

(B) औसत आगम वक्र तथा सीमान्त आगम वक्र की आकृति रेखा चित्र 10.16 की आकृति के विपरीत भी हो सकती है । जब औसत आगम वक्र बाये से दायें नीचे की ओर गिरती है तब सीमान्त आगम वक्र भी बायें से दायें नीचे की और गिरती जाती है परन्तु AR की तुलना में MR की गिरने की दर अधिक होती है । इसे रेखाचित्र 10.17 से स्पष्ट किया जा सकता है । प्रारम्भ में दोनों रेखाएं गिरनी प्रारम्भ होती है और E बिन्दु तक दोनों रेखाएं गिरती जाती है । जब औसत आगम वक्र ऊपर की और उठना प्रारम्भ होता है तब सीमान्त आगम वक्र रेखा को सबसे निम्नतम बिन्दु E पर काटता हुआ तेजी से ऊपर की ओर बढ़ जाता है । चित्र को देखने से स्पष्ट हो जाता है कि जब औसत आगम वक्र ऊपर की और उठता है तब सीमान्त आगम वक्र अपेक्षाकृत अधिक तेजी से ऊपर की ओर उठता है । जब औसत आगम वक्र नीचे को गिरता है, तब सीमान्त आय वक्र अपेक्षाकृत अधिक तेजी से नीचे की ओर गिरता है ।

10.8 सारांश

वर्तमान व्यावसायिक परिवेश में लागत व आगम का अध्ययन बहुत आवश्यक है । लागत व आगम विश्लेषण द्वारा उत्पादकों व प्रबन्धकों को व्यावसायिक निर्णयन मे मदद मिलती है । इनके द्वारा अनुकूलतम उत्पादन मात्रा का निर्धारण कर व्यवसाय के अधिकतम लाभ के उद्देश्य को प्राप्त किया जाना संभव है । इसके साथ-साथ व्यवसाय में पूंजी निवेश की मात्रा के निर्धारण में भी यह आवश्यक है ।

10.9 शब्दावली

पूर्ण प्रतियोगिता: बाजार की वह दशा जिसमें वस्तु के अनेक क्रेता व विक्रेता होते हैं तथा एक समान मूल्य पर समरूप वस्तु का क्रय-विक्रय किया जाता है ।

अपूर्ण प्रतियोगिता: बाजार की वह दशा जिसमें वस्तु के विक्रेताओं की संख्या अधिक होती है तथा जो विभेदीकृत वस्तु का विक्रय करते है ।

आन्तरिक नियंत्रण: व्यवसाय के स्वयं के साधनों पर स्थापित किया जाने वाला नियंत्रण ।

प्रौद्योगिकी: उत्पादन तथा विज्ञान में होने वाली नवीन गतिविधियां जिनसे व्यवसाय की कार्यपद्धति प्रभावित होती है।

अनुकूलतम उत्पादन: उपलब्ध साधनों द्वारा उत्पादन की श्रेष्ठतम मात्रा जिस पर लागत न्यूनतम होती है ।

10.10 स्वपरख प्रश्न

1. लागत का अर्थ बताते हुए उसकी विभिन्न अवधारणाओं का वर्णन कीजिये ।
2. फर्म की अल्पकालीन लागतों का तालिका तथा वक्रों द्वारा वर्णन कीजिये ।

3. फर्म की दीर्घकालीन लागतों का विस्तार से विवेचन कीजिये ।
4. आगम का अर्थ बताते हुए इसके विभिन्न भाग बताइये ।
5. पूर्ण प्रतियोगिता मे सीमांत व औसत आगम वक्रों के मध्य संबंध बताइये ।
6. अपूर्ण प्रतियोगिता मे सीमंत व औसत आगम समूहों का विश्लेषण कीजिये ।

10.11 उपयोगी पुस्तके

1. अर्थशास्त्र के सिद्धांत	:	के.पी. जैन
2. व्यावसायिक अर्थशास्त्र	:	अग्रवाल एव अग्रवाल, रमेश बुक डिपो, जयपुर
3. अर्थशास्त्र के सिद्धांत	:	एम एल. सेठ
4. Business Economics	:	Agarwal M.D. and Som Deo, Ramesh Book Depot, Jaipur

इकाई-11

पूर्ण प्रतियोगिता में मूल्य एवं उत्पादन निर्धारण
(Price and output Determination under perfect competition)

इकाई की रूपरेखा

11.0 उद्देश्य

11.1 प्रस्तावना

11.2 पूर्ण प्रतियोगिता का अर्थ एवं परिभाषा

11.3 पूर्ण प्रतियोगिता की विशेषताऐ

11.4 फर्म एवं उद्योग का अर्थ

11.5 पूर्ण प्रतियोगिता में फर्म का साम्य

1. कुल आगम तथा कुल लागत विधि
2. सीमान्त आगम एवं सीमान्त लागत विधि

11.6 अल्प काल में फर्म का साम्य

11.7 दीर्घ काल में फर्म का साम्य

11.8 पूर्ण प्रतियोगिता में उद्योग का साम्य

1. अल्पकाल में उद्योग का साम्य
2. दीर्घकाल में उद्योग का साम्य

11.9 सारांश

11.10 शब्दावली

11.11 स्वपरख प्रश्न

11.12 उपयोगी पुस्तकें

11.0 उद्देश्य

इकाई के अध्ययन के बाद आप निम्न को समझ सकेंगे :

- अर्थव्यवस्था की वास्तविक कार्य प्रणाली को समझने के लिए पूर्ण प्रतियोगिता का अध्ययन एक आधार का काम कैसे करता है?
- वास्तविक जीवन में प्रतियोगिता पूर्ण प्रतियोगिता से कम प्रतियोगिता क्यों होती है?
- एक स्वतन्त्र अर्थव्यवस्था में पूर्ण प्रतियोगिता का अध्ययन वास्तविक बाजारों के आधार का काम करता है या नहीं ।
- क्या अपूर्ण प्रतियोगिता की स्थिति को दूर करने में भी पूर्ण प्रतियोगिता का अध्ययन सहयोग प्रदान करता है ।

11.1 प्रस्तावना

किसी भी वस्तु के उत्पादन का स्तर उसके बाजार की संरचना पर निर्भर करता है अर्थात् बाजार संरचना द्वारा ही बिक्री का स्तर, आगम, लाभ तथा मूल्य निर्धारित होते है । किसी वस्तु के बाजार में कितने विक्रेता हैं तथा उसके उत्पाद में क्या या कितनी समरूपता है इसी पर फर्म का मांग वक्र तथा उद्योग का मांग वक्र निर्भर करता है । ये बाजार संरचना के विभिन्न पहलू हैं, जो बाजार की विशेषताऐं कही जा सकती है या ऐसे सामान्यीकरण हैं जो फर्म के व्यवहार तथा क्रियान्वयन को प्रभावित करते हैं । इसके अन्तर्गत उद्योग में प्रवेश की आसानी, फर्म की उत्पादित वस्तु को खरीदने वालों की प्रकृति एवं आकार तथा विज्ञापन द्वारा मांग को प्रभावित करने की फर्म की शक्ति, आदि आते हैं । किसी भी वस्तु का मूल्य तथा उत्पादन स्तर बाजार की संरचना पर निर्भर करते हैं । संक्षेप में बाजार संरचना बाजार में उपस्थित प्रतियोगिता पर निर्भर करता है ।

11.2 पूर्ण प्रतियोगिता का अर्थ एवं परिभाषा (Meaning and Definition of Perfect Competition)

पूर्ण प्रतियोगिता बाजार की वह स्थिति होती है, जिसमें वस्तु के बहुत से क्रेता व विक्रेता उपलब्ध होते हैं । उनमें वस्तु को क्रय एवं विक्रय करने के लिए परस्पर प्रतियोगिता होती है । अकेला क्रेता या विक्रेता वस्तु के मूल्य को प्रभावित करने की स्थिति में नहीं होता है । बाजार में समरूप वस्तु तथा सम-मूल्य प्रचलित होता है । पूर्ण प्रतियोगिता की कुछ परिभाषायें निम्नलिखित हैं -

प्रो. मार्शल के अनुसार,**"बाजार जितना अधिक पूर्ण होगा, उतनी ही उसके अनेक भागों में किसी एक वस्तु के लिए एक समय पर एक ही कीमत भुगतान करने की प्रवृतिज्ञ पायी जायेगी ।"**

श्रीमती जोन रोबिन्सन, के अनुसार "**पूर्ण प्रतियोगिता की स्थिति तब पाई जाती है जबकि प्रत्येक उत्पादक की उत्पत्ति की माँग पूर्णतया लोचदार होती है । इसके अन्तर्गत प्रथम विक्रेताओं की संख्या अधिक होती है, जिससे किसी भी एक विक्रेता की उत्पत्ति वस्तु की कुल उत्पत्ति का एक बहुत तुच्छ भाग होती है और द्वितीय सभी क्रेता विभिन्न प्रतियोगी विक्रेताओं के बीच चुनाव करने के सम्बन्ध में समान दृष्टि रखते हैं, जिससे बाजार पूर्ण हो जाता है ।"**

11.3 पूर्ण प्रतियोगिता की विशेषताएं (Characteristics of Perfect Competition)

(1) **वस्तु के क्रेताओं एवं विक्रेताओं की अधिक संख्या (Large Numbers of Buyers and Sellers) -** पूर्ण प्रतियोगिता में क्रेताओं तथा विक्रेताओं की संख्या बहुत अधिक होती है । उनके द्वारा किया गया उत्पादन कुल उत्पादन का बहुत थोड़ा भाग होता है, इसलिये वे उत्पादन में कमी या वृद्धि करके वस्तु के मूल्य को प्रभावित नहीं कर सकते ।

(2) **क्रेता तथा विक्रेता स्वतन्त्र रूप से कार्य करते हैं (Buyers and Sellers Work Independent)** - क्रेताओं तथा विक्रेताओं में कोई पारस्परिक समझौता या गुप्त सन्धि नहीं होती है । परिणामस्वरूप वे व्यक्तिगत रूप से कार्य करते हुए बाजार मूल्य को प्रभावित करने की स्थिति में नहीं होते हैं ।

(3) **वस्तु का समरूप होना (Homogenous Product) -** वस्तु की प्रत्येक इकाई रूप रंग, आकार-प्रकार, पैकिंग, गुण आदि सभी दृष्टियों से समान होती है । वस्तु की इकाइयों के एकरूप होने से वस्तु विभेद (Product differentiation) नहीं पाया जाता तथा क्रेता वस्तु की सभी इकाइयों को समान महत्व देता है ।

(4) **बाजार का पूर्ण ज्ञान (Perfect Knowledge of Market) -** पूर्ण प्रतियोगिता में क्रेताओं एवं विक्रेताओं को बाजार का पूर्ण ज्ञान होता है, इसलिए कोई भी क्रेता अथवा विक्रेता वस्तु का मूल्य अधिक अथवा कम नहीं ले दे सकता है ।

(5) **फर्मो का स्वतन्त्र प्रवेश एवं बहिर्गमन (Free entry and exit of firms)** - पूर्ण प्रतियोगिता की स्थिति में दीर्घकाल में नये उत्पादकों या फर्मो को उद्योग में प्रवेश करने या उससे हटने (बहिर्गमन) की पूर्ण स्वतन्त्रता होती हैं । अर्थात् यदि पूर्ण प्रतियोगिता में फर्म सामान्य से अधिक लाभ कमाती है, तो उससे आकर्षित होकर नयी फर्मे उद्योग में प्रवेश करेगी, जिससे पूर्ति बढ़ेगी, मूल्यों में कमी आयेगी और अधिक सामान्य लाभ समाप्त हो जायेंगे । इसी प्रकार यदि कोई फर्म हानि पर कार्य कर रही है, तो वह उद्योग को छोड़ देगी । फलस्वरूप वस्तु की पूर्ति में कमी आयेगी तथा मूल्य बढेंगे और हानि के स्थान पर सामान्य लाभ प्राप्त होने लगेगा । दीर्घकाल में कोई भी फर्म केवल सामान्य लाभ (Normal Profit) ही कमा सकती है ।

(6) **उत्पादन साधनों में पूर्ण गतिशीलता (Perfect mobility in the factors of Production) -** पूर्ण प्रतियोगिता में उत्पादन के साधनों में पूर्ण गतिशीलता पायी जाती है अर्थात् उत्पादन का कोई भी साधन वहीं कार्य करेगा, जहां उसे सर्वाधिक पारिश्रमिक प्राप्त होगा । साधनों की पूर्ण गतिशीलता के कारण ही उद्योग में उनका पारिश्रमिक उनकी सीमान्त उत्पादकता के बराबर निर्धारित होता है ।

(7) **औसत आय एवं सीमान्त आय दोनों ही बराबर होती हैं (Average Revenue and Marginal Revenue are always equal)** - पूर्ण प्रतियोगिता की स्थिति में कोई भी विक्रेता दिये हुए मूल्य पर वस्तु की कितनी भी मात्रा बेच सकता है अर्थात् उसका मांग वक्र पूर्णतया लोचदार होता है । बाजार में वस्तु का मूल्य सभी जगह एक समान होता है, इसलिए औसत आय एवं सीमान्त आय हमेशा समान होती है और ये कीमत के बराबर होती है ।

(8) **एक मूल्य की उपस्थिति (Existence of Single Price) -** पूर्ण प्रतियोगिता में उद्योग द्वारा निर्धारित मूल्य बाजार में प्रचलित रहता है । सभी फर्मे इस मूल्य पर वस्तु को बेचने के लिए तत्पर रहती हैं ।

11.4 फ़र्म एवं उद्योग का अर्थ (Meaning of Firm and Industry)

फर्म एक या अधिक उत्पादन इकाइयों को कहते है, जो कि एक ही स्वामित्व (Same Ownership) के अन्तर्गत हों । **प्रो. सेम्यूलसन** के अनुसार, ' पूर्ण प्रतियोगिता में फर्म उसे कहते है, जो जितनी मात्रा में चाहे, प्रचलित बाजार मूल्य पर उत्पादन बेच सकती है, परन्तु उस बाजार मूल्य में वृद्धि या कमी करने की क्षमता उसमें नहीं होती है । " उद्योग बहुत-सी ऐसी फर्मो के समूह को कहा जाता है, जो किसी एक वस्तु का उत्पादन कर रही हों इस प्रकार एक ही प्रकार की वस्तु उत्पादित करने वाली विभिन्न फर्मो के समूह को उद्योग कहते हैं । **सेम्यूलसन** के अनुसार, "पूर्ण प्रतियोगिता में बहुत-सी प्रतियोगी फर्मो के समूह को उद्योग कहते हैं ।

"पूर्ण प्रतियोगिता में एक फर्म का मांग वक्र OX अक्ष के समानान्तर क्षितिजीय होता है। यह मांग वक्र ही फर्म का औसत आगम तक (Average Revenue Curve) तथा फर्म का सीमान्त आगम वक्र (Marginal Revenue Curve) भी होता है । औसत आगम वक्र व सीमान्त आगम वक्र के समान होने का कारण यह है कि एक निश्चित मूल्य पर फर्म अपनी समस्त वस्तुएं बेच सकती है । इसे अपनी अतिरिक्त इकाइयां बेचने के लिए मूल्य घटाने की आवश्यकता नहीं पड़ती है । वस्तु का मूल्य उद्योग की मांग व पूर्ति की शक्तियों द्वारा निर्धारित होता है । इसी मूल्य को एक फर्म द्वारा स्वीकार किया जाता है । इस प्रकार फर्म का मूल्य तथा सीमान्त व औसत आगम वक्र उद्योग के साम्य द्वारा निश्चित होते है ।

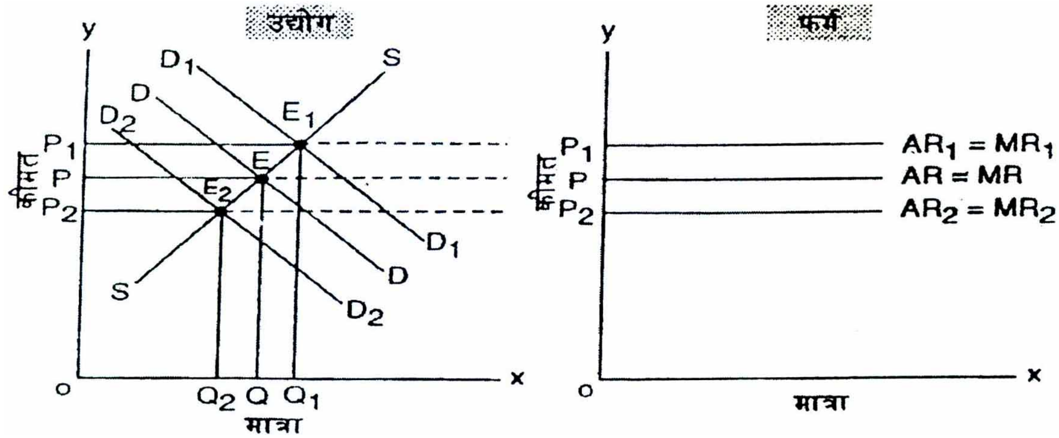

रेखाचित्र 11.1 में उद्योग द्वारा मूल्य निर्धारण व एक फर्म द्वारा मूल्य ग्रहण करने की स्थिति को दिखाया गया है । चित्र में SS समस्त उद्योग का पूर्ति वक्र है तथा DD उद्योग का मांग वक्र है । जो E बिन्दु पर साम्य में होते हैं, जहां OP कीमत व OQ उत्पादन मात्रा निर्धारित होती है । एक फर्म OP मूल्य को दिया हुआ मानकर स्वीकार करती है । अत फर्म की कीमत भी OP तथा उसका सीमान्त आगम व औसत आगम वक्र भी OP मूल्य स्तर पर OX अक्ष के समानान्तर AR= MR वक्र होगा । यदि वस्तु की मांग बढकर D_1D_1 हो जाती है तो नया साम्य E_1 बिन्दु पर होगा, जहां OP1 कीमत निर्धारित होगी । अब फर्म को भी नयी कीमत OP1 को स्वीकार करना होगा तथा उसका MR1=AR1वक्र नया सीमान्त आगम व औसत आगम वक्र होगा । इसी प्रकार मांग घटने पर नया साम्य D, बिन्दु पर होगा जहां कीमत

OP2 होगी । फलस्वरूप फर्म को भी OP2 कीमत स्वीकार करनी होगी । इससे स्पष्ट है कि कीमत का निर्धारण कुल मांग व कुल पूर्ति की शक्तियों द्वारा होता है ।

11.5 पूर्ण प्रतियोगिता में फर्म का साम्य

(Equilibrium of the Firm under Perfect Competition)

कोई भी फ़र्म सदैव अपने लाभ को अधिकतम करने का प्रयास करती है । फ़र्म को अधिकतम लाभ तब प्राप्त होता है जब वह साम्य की अवस्था में होती है । सामान्य रूप से फर्म के साम्य की स्थिति को दो प्रकार से व्यक्त किया जाता है

1. **कुल आगम तथा कुल लागत विधि (Total Revenue and Total Cost Method)** - इस विधि में एक फर्म द्वारा उत्पादित वस्तु के कुल लागत व उसके विक्रय से प्राप्त कुल आगम द्वारा साम्य की स्थिति को बताया गया है । कुल आगम व कुल लागत का अन्तर फर्म का लाभ होता है । जिस स्थिति में कुल आगम (Total Revenue) व कुल लागत (Total Cost) का अन्तर सर्वाधिक होता है, वही फर्म के सर्वाधिक लाभ की स्थिति होती है । इसे ही साम्यावस्था कहते हैं । इसे रेखाचित्र 11.2 में दर्शाया गया है ।

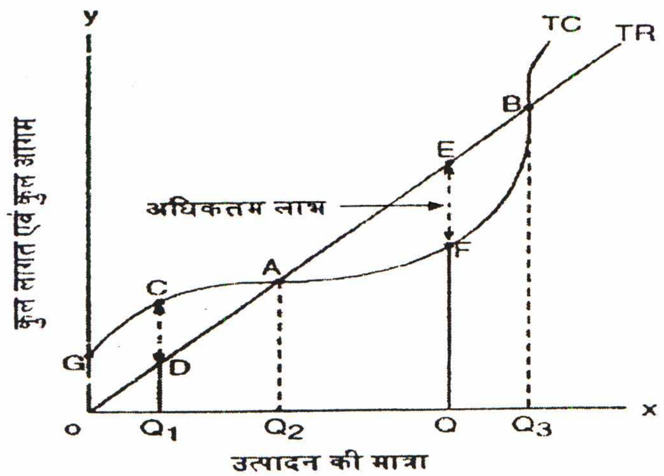

रेखाचित्र में TR रेखा कुल आगाम तथा TC रेखा कुल लागत को बताती है । TR रेखा समान दर से उपर उठ रही है, जबकि TC रेखा G. बिन्दु से प्रारम्भ होकर उपर उठती है । शून्य उत्पादन की स्थिति में भी फर्म की लागत OG होती है जो स्थिर लागत को बताती है, जैसे-जैसे उत्पादन बढ़ता जाता है, कुल लागत रेखा भी बढ़ती जाती है । प्रारम्भ में A बिन्दु तक कुल लागत कुल आगम रेखा से ऊपर है जो हानि की स्थिति को बताती है । CD अधिकतम हानि की स्थिति है, जहाँ OQ1 उत्पादन हो रहा है । जैसे-जैसे उत्पादन बढ़ता है, कुल लागत (TC) कुल आगम (TR) रेखा के नजदीक आती जाती है । A बिन्दु पर OQ2 उत्पादन स्तर पर कुल लागत व कुल आगम समान है । यह सम विच्छेद बिन्दु है, इस पर फर्म को न हानि होती है और न लाभ ही । इसके बाद उत्पादन बढ़ने पर कुल आगम रेखा कुल लागत रेखा से ऊपर चली जाती है । इस प्रकार Q2 से Q3 उत्पादन के बीच फर्म को लाभ मिलता है, लेकिन फर्म

अधिकतम लाभ चाहती है जो उत्पादन के OQ स्तर पर EF के बराबर है (TR-TC) । यही फर्म का साम्य बिन्दु है ।

2. **सीमान्त आगम व सीमान्त लागत विधि (Marginal Revenue and Marginal Cost Method)** - सामान्यतया उत्पादन की जिस मात्रा पर सीमान्त आगम तथा सीमान्त लागत बराबर होते हैं, उत्पादन की यह मात्रा अधिकतम लाभ प्रदान करती है । फर्म का प्रति इकाई लाभ औसत आगम (AR) तथा औसत लागत (AC) के अन्तर से जाना जा सकता है ।

इस विधि में फर्म के साम्य के लिए निम्नलिखित दो शर्तें पूरी होनी चाहिए -

1. फर्म उस बिन्दु पर साम्य की स्थिति में होगी, जहां फर्म की सीमान्त आगम तथा सीमान्त लागत दोनों एक दूसरे के बराबर हों, अर्थात् MR=MC के हो, तथा साम्य बिन्दु पर फर्म का सीमान्त लागत वक्र सीमान्त आगम वक्र को नीचे की ओर से काटना चाहिए, अर्थात् MC, MR वक्र को नीचे की ओर से काटता हुआ ऊपर की ओर उठना चाहिए ।

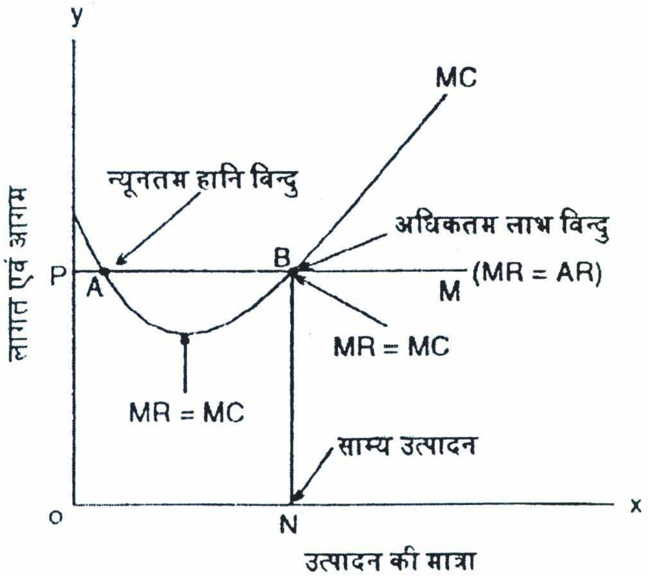

रेखाचित्र 11.3

रेखाचित्र 11.3 के अनुसार जब वस्तु की बाजार कीमत OP है, तो PM उस फर्म का AR वक्र तथा MR वक्र दोनों ही हैं (AR=MR) । MC उस फर्म का सीमान्त लागत वक्र है जो PM को A तथा B बिन्दुओं पर काटता है । अब प्रश्न उठता है कि क्या फर्म इन दोनों बिन्दुओं पर अधिकतम लाभ कमा रही है? फर्म इन दोनों बिन्दुओं पर अधिकतम लाभ नहीं कमा रही होती है । केवल इनमें से एक बिन्दु B पर MC वक्र MR वक्र को नीचे से आकर काटता है, वहां लाभ अधिकतम है । A बिन्दु तक जो MC (सीमान्त लागत) MR (सीमान्त आय) से ऊपर है, जिससे फर्म को केवल हानि ही होती है । A बिन्दु के बाद फर्म को और अधिक हानि नहीं होगी । अब A बिन्दु से आगे दायीं ओर उसकी सीमान्त लागत उसकी सीमान्त आय से कम है और फर्म आशान्वित है कि उत्पादन मात्रा को और बढ़ाने पर वह न केवल कम उत्पादन मात्रा पर

हुई हानि को पूरा कर सकती है, बल्कि लाभ कमा सकती है । अब यह भी देखना है कि उत्पादन मात्रा को किस सीमा तक बढाया जाये कि उसका लाभ अधिकतम हो जाये । फर्म की यह स्थिति उत्पादन मात्रा ON पर होगी, जिस पर MC वक्र और MR वक्र को B बिन्दु पर नीचे से काटता है । यह फर्म के लिए अधिकतम लाभ की स्थिति होगी ।

11.6 अल्पकाल में फर्म का साम्य (Equilibrium of The Firm in the Short Period)

अल्पकाल वह समयावधि है, जिसमें फर्म अपने वर्तमान साधनों द्वारा उत्पादन की मात्रा में परिवर्तन कर सकती है; परन्तु स्थिर उत्पादन साधनों की मात्रा में परिवर्तन नहीं कर सकती है । प्रत्येक फर्म उद्योग के कुल उत्पादन की तुलना में इतना कम उत्पादन करती है कि वह मूल्य को प्रभावित नहीं कर सकती । फर्मे केवल मूल्य ग्रहणकर्ता होती हैं, निर्धारक नहीं । अत: उद्योग द्वारा निर्धारित मूल्य पर फर्म को अल्पकाल में साम्य की स्थिति में असामान्य लाभ हो सकता है, हानि हो सकती है तथा केवल सामान्य लाभ ही मिल सकता है । इन तीनों प्रकार की स्थितियों को रेखाचित्र की सहायता से स्पष्ट किया जा सकता है -

(i) **असामान्य लाभ की स्थिति (Abnormal Profit)** - कोई फर्म अल्पकाल में असामान्य लाभ उस समय प्राप्त करती है जबकि सन्तुलन बिन्दु पर फर्म की औसत आय फर्म की औसत लागत से अधिक हो । अल्पकाल में फर्म उस उत्पादन मात्रा पर साम्य में होती है जिस पर कीमत या सीमान्त आय, सीमान्त लागत के बराबर होती है । इस स्थिति को रेखाचित्र 11.4 से स्पष्ट किया जा सकता है ।

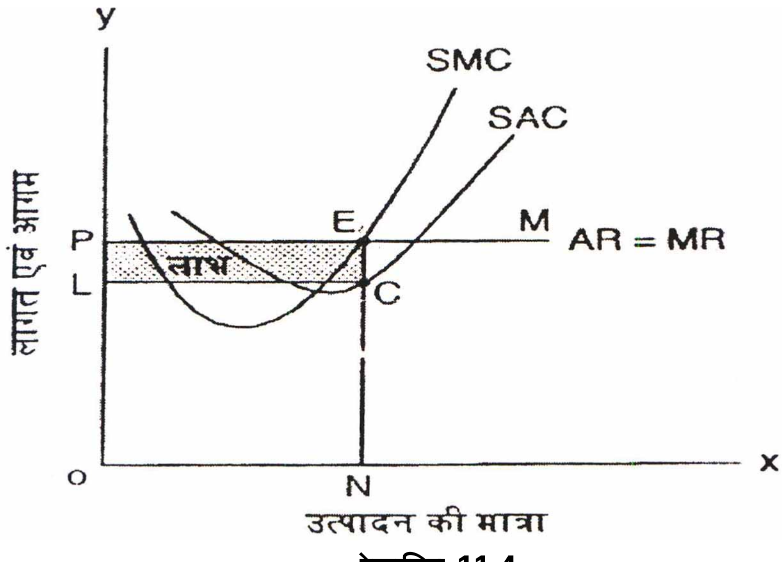

रेखाचित्र 11.4

रेखाचित्र में PM फर्म का औसत तथा सीमान्त आय वक्र है । फर्म का अल्पकालीन सीमान्त लागत वक्र SMC है जो फर्म के सीमान्त आय वक्र (MR) को E बिन्दु पर काटता है, यही फर्म का साम्य बिन्दु है । जिस पर फर्म ON मात्रा का उत्पादन करेगी । जिसकी औसत लागत OL या NC है जबकि औसत आय OP या NE है । अत: फर्म को CE या LP के

बराबर प्रति इकाई लाभ मिल रहा है तथा फर्म LCEP के बराबर कुल लाभ कमा रही है । रेखाचित्र का छायादार भाग असामान्य लाभ को दर्शाता है ।

(II) **सामान्य लाभ की स्थिति (Normal Profit)** - अल्पकाल में फर्म को सामान्य लाभ मिल सकता है, अर्थात् अल्पकाल में फर्म न लाभ, न हानि की स्थिति में भी हो सकती है । जब साम्य बिन्दु पर फर्म की औसत आय तथा फर्म की औसत लागत दोनों बराबर होते हैं, तो उस समय फर्म सामान्य लाभ की स्थिति में होती है । रेखाचित्र 11.5 में इस स्थिति को स्पष्ट किया गया है ।

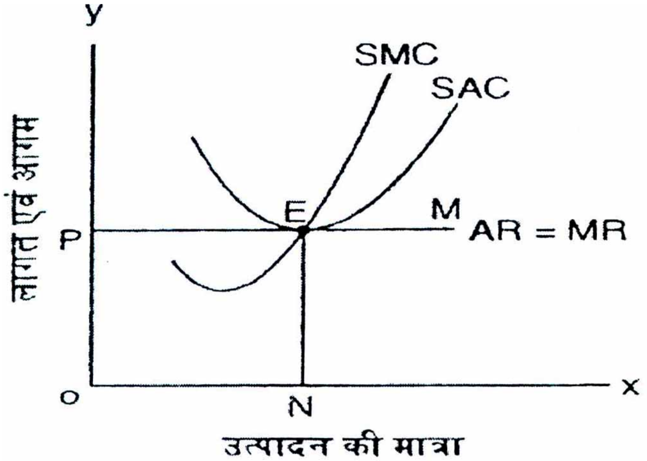

रेखाचित्र 11.5

रेखाचित्र में PM फर्म का औसत एवं सीमान्त आय वक्र है । फर्म का अल्पकालीन औसत लागत वक्र SAC तथा अल्पकालीन सीमान्त लागत वक्र SMC है । फर्म का सीमान्त लागत वक्र (SMC) फर्म के सीमान्त आय वक्र (MR) को E बिन्दु पर काटता है, अत E सन्तुलन बिन्दु है । इस साम्य बिन्दु पर फर्म ON मात्रा का उत्पादन एवं विक्रय करेगी । इसकी औसत लागत NE या OP है, अत: फर्म को कोई लाभ या हानि नहीं हो रही है । फर्म केवल सामान्य लाभ कमा रही है ।

(iii) **हानि की स्थिति (Loss Situation) -** पूर्ण प्रतियोगिता में अल्पकाल में फर्म को हानि भी हो सकती है; किन्तु फर्म अल्पकाल में अधिकतम हानि स्थिर लागतों के बराबर उठा सकती है, क्योंकि अल्पकाल में उत्पादन बन्द करने पर भी फर्म को स्थिर लागतों का भुगतान तो करना ही पड़ेगा । यदि साम्य बिन्दु पर फर्म की औसत लागत औसत आय से अधिक है तो फर्म को हानि होती है । अल्पकाल में हानि की स्थिति को रेखाचित्र 11.6 में स्पष्ट किया गया है ।

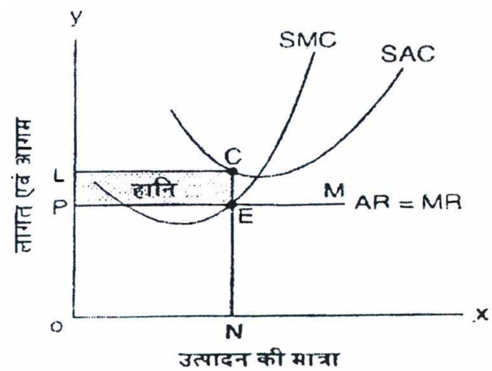

रेखाचित्र 11.6

रेखाचित्र में PM फर्म का औसत एवं सीमान्त लागत वक्र है । SAC फर्म का अल्पकालीन औसत लागत वक्र है तथा SMC फर्म का अल्पकालीन सीमान्त लागत वक्र है । फर्म का SMC वक्र फर्म के MR वक्र को E बिन्दु पर काटता है, अत: E फर्म का साम्य बिन्दु है । इस सन्तुलन बिन्दु पर फर्म ON मात्रा में वस्तु का उत्पादन एवं विक्रय करेगी । इस उत्पादन की औसत लागत NC या OL है, जबकि औसत आय NE या OP है । अत: फर्म को EC अथवा PL के बराबर औसत हानि हो रही है, अर्थात LCEP के बराबर कुल हानि हो रही है।

क्या फर्म हानि उठाकर भी उत्पादन जारी रख सकती है? (Can a firm continue to produce even at a loss?) - उपर्युक्त विवरण से यह स्पष्ट है कि फर्म साम्य अवस्था में उस समय होगी, जबकि फर्म की सीमान्त लागत उसकी सीमान्त आय के बराबर हो; परन्तु अल्पकाल में सीमान्त आगम तथा सीमान्त लागत के बराबर होने पर फर्म को हानि हो सकती है । यदि फर्म को हानि हो रही है, तो उसे यह निर्णय लेना पड़ेगा कि उत्पादन जारी रखा जाये या बन्द कर दिया जाये । हम यह जानते हैं कि फर्म की कुल लागत में स्थिर लागतें (Fixes costs) तथा परिवर्तनशील लागतें (Variable costs) सम्मिलित होती हैं । सामान्यतया वस्तु का मूल्य फर्म की कुल औसत उत्पादन लागत के बराबर होना चाहिए; परन्तु अल्पकाल में उत्पादक कुल औसत उत्पादन लागत से कम कीमत प्राप्त होने पर भी उत्पादन जारी रखेगा, क्योंकि उत्पादक यह जानता है कि उत्पादन बन्द कर देने पर भी उसे स्थिर लागत का भार तो वहन करना ही पड़ेगा । अत: अल्पकाल में यदि उत्पादक को केवल परिवर्तनशील लागत के बराबर भी कीमत प्राप्त हो जाती है तो वह उत्पादन जारी रखेगा । यदि उसे परिवर्तनशील लागत से कम कीमत मिलती है तो वह उत्पादन बन्द कर देगा ।

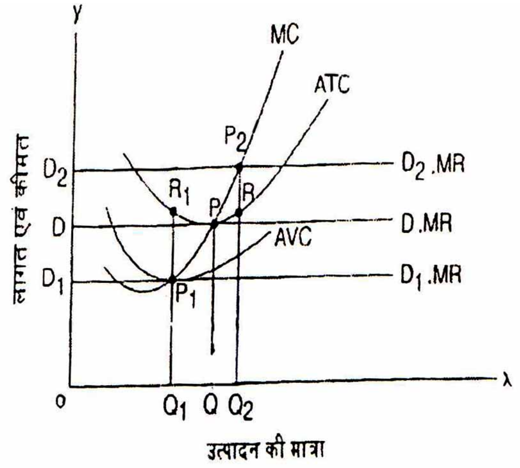

रेखाचित्र 11.7

रेखाचित्र 11.7 में दर्शाया गया है । चित्र में OX अक्ष पर उत्पादन तथा OY अक्ष पर कीमत को दर्शाया गया है । ATC, AVC तथा MC क्रमश: 'कुल औसत लागत', 'औसत परिवर्तन लागत'; तथा सीमान्त लागत वक्र' है । D1D1, D2D2, तथा DD मांग रेखाएं है जो मांग की विभिन्न अवस्थाओं को प्रकट करती है । P1 बिन्दु पर MC तथा AVC एक दूसरे को काटती है । उत्पादक को उत्पादन जारी रखने के लिए यह आवश्यक है कि उसे कम से कम Q1P1 प्रति इकाई कीमत प्राप्त हो । यदि कीमत इससे कम है तो वह उत्पादन बन्द कर देगा, क्योंकि उसे परिवर्तनशील लागत के बराबर भी कीमत प्राप्त नहीं हो रही है, यह न्यूनतम मूल्य है जिस पर फर्म हानि उठाकर भी उत्पादन करती है, क्योंकि फर्म को कम से कम अपनी AVC प्राप्त हो रही है, यह न्यूनतम हानि की स्थिति है । यदि मांग बढ़कर DD हो जाती है तो कीमत OP हो जायेगी । इस कीमत पर सीमान्त आय तथा 'सीमान्त लागत' P बिन्दु पर बराबर है । इस कीमत पर उत्पादक OQ मात्रा का उत्पादन करेगा । यदि मांग बढ़कर D2D2 हो जाती है तो ऐसी अवस्था में MC,MR को P2 बिन्दु पर काटेगी । इस स्थिति में उत्पादन की मात्रा OQ2 हो जायेगी । ऐसी अवस्था में उत्पादक को P2R के बराबर अधिक लाभ प्राप्त होगा ।

11.7 दीर्घकाल में फर्म का साम्य (Equilibrium of the Firm in the Long Period)

सामान्य रूप से यदि अल्पकाल में फ़र्म को औसत परिवर्तनशील लागत (AVC) के बराबर कीमत प्राप्त हो जाती है तो वह उत्पादन बन्द नहीं करती है । दीर्घकाल में स्थिर तथा परिवर्तनशील लागतों का भेद समाप्त हो जाता है । अत: फर्म को कुल औसत लागत के बराबर कीमत प्राप्त होनी चाहिए, तभी वह उत्पादन जारी रख सकती है । यहां कुल औसत लागत में सामान्य लाभ (Normal Profit) को सम्मिलित माना जाता है । सामान्य लाभ, लाभ के उस स्तर को कहते है जिस पर उद्योग में नई फर्मा के प्रवेश अथवा पुरानी फर्मो में उद्योग छोड़ने की प्रद लि समाप्त हो जाती है तथा सभी फर्म साम्य अवस्था में होती है ।

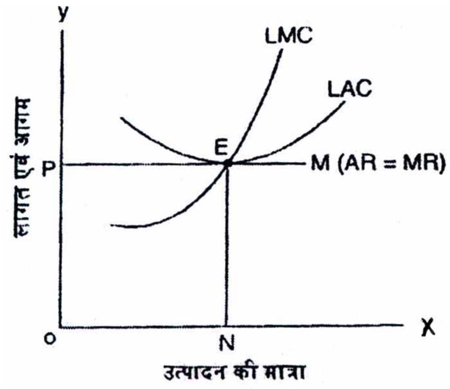

रेखाचित्र 11.8

रेखाचित्र 11.8 में PM फर्म का दीर्घकालीन औसत आगम तथा सीमान्त आगम वक्र है । LMC फर्म का दीर्घकालीन सीमान्त लागत वक्र है तथा LAC दीर्घकालीन औसत लागत वक्र है । LMC तथा LMR 'E' बिन्दु पर एक-दूसरे को काटते है । अत: E बिन्दु फर्म का साम्य बिन्दु है । इस साम्य बिन्दु पर फर्म ON मात्रा का उत्पादन करेगी । इस बिन्दु पर फर्म को केवल सामान्य लाभ ही मिलता है, क्योंकि इस बिन्दु पर फर्म की P=LMC=LMR=LAC=LAR । इस प्रकार दीर्घकाल में फर्म की औसत लागत (AC) तथा औसत आगम (AR) भी समान होती है । तभी वह सामान्य लाभ की स्थिति में होगी ।

11.8 पूर्ण प्रतियोगिता में उद्योग का साम्य (Industry Equilibrium in Perfect Competition)

1. **अल्पकाल में उद्योग की साम्यावस्था (Short-run Industry Equilibrium) -** फर्मो के समूह को उद्योग कहते है । एक उद्योग अल्पकाल में साम्य की स्थिति में उस समय होता है जब अल्पकाल में उसका उत्पादन स्थिर हो जाता है तथा उसमें परिवर्तन की कोई शक्ति क्रियाशील नहीं रह जाती है । संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि अल्पकाल में उद्योग में लगी सभी फर्म साम्य की स्थिति में होती हैं, तब उद्योग भी अल्पकालीन साम्य स्थिति में होता है ।

उद्योग का. मूल्य निर्धारण, मांग तथा पूर्ति के सामान्य नियमों पर आधारित है ।

(1) **उद्योग का अल्पकाल में मांग-बक्र (Short-run Demand Curve of the Industry) -** किसी वस्तु की मांग (सम्पूर्ण उद्योग के लिए) उपभोक्ताओं की व्यक्तिगत मांग का योग होती है । मांग वक्र यह प्रदर्शित करता है कि विभिन्न मूल्यों पर उपभोक्ता किसी वस्तु की कितनी मात्रा खरीदना चाहेंगे । अत: सभी उपभोक्ताओं की मांगो का योग उद्योग की 'मांग' को प्रकट करेगा ।

(2) **उद्योग का अल्पकाल में पूर्ति वक्र (Short-run Supply Curve of the Industry) -** उद्योग का पूर्ति-वक्र सभी फर्मो के पूर्ति-वक्र का योग है । अत: अल्पकालीन पूर्ति -वक्र यह प्रदर्शित करता है कि विभिन्न कीमतों पर एक उद्योग की समस्त फर्म कुल कितनी मात्रा बेचने को प्रस्तुत करती है ।

(3) **उद्योग की साम्यावस्था (Industry Equilibrium) -** उद्योग के मांग तथा पूर्ति वक्र जिस बिन्दु पर एक दूसरे को काटेंगे, उसी बिन्दु पर अल्पकालीन मूल्य निर्धारित होगा । इसका स्पष्टीकरण रेखाचित्र 11.9 में किया गया है -

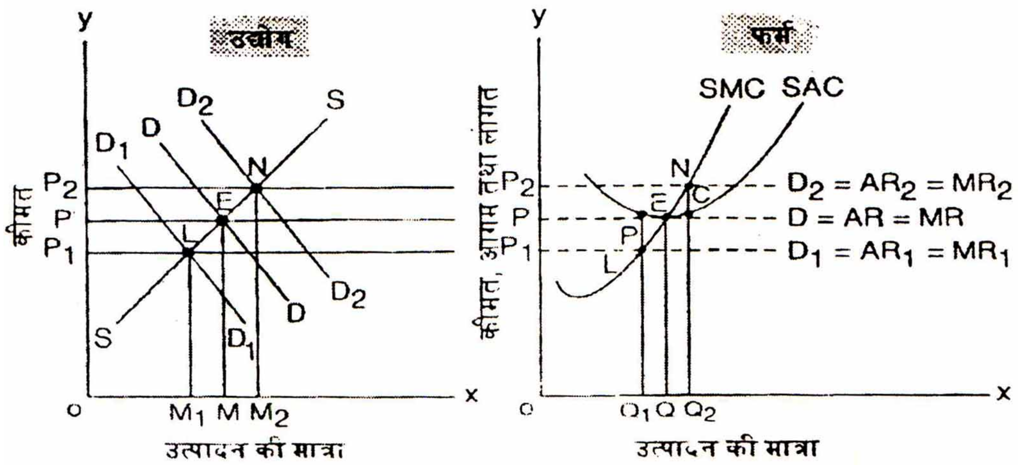

रेखाचित्र के अनुसार जब उद्योग में D2D2 मांग-वक्र होता है, तो उद्योग की कुल मांग तथा कुल पूर्ति का साम्य बिन्दु N बिन्दु पर होता है । अत: उद्योग के कीमत OP2 तथा उत्पादन OM2 होता है । इस कीमत पर उद्योग को अल्पकाल में अतिरिक्त लाभ मिलता है, क्योंकि इस कीमत पर फर्मो की औसत लागत, औसत आगम से कम है (अर्थात् AR2>AC) । अत: फर्म को प्रति इकाई NC अधिक लाभ मिलता है । जब उद्योग की मांग अल्पकाल में गिरकर DD हो जाती है तो उद्योग का साम्य E बिन्दु पर तथा OM उत्पादन मात्रा पर होगा तथा कीमत गिर कर OP रह जायेगी । इससे उद्योग में सामान्य लाभ ही प्राप्त होगा, क्योंकि इस कीमत पर AR=AC के । यदि उद्योग की मांग घटकर D1D1 ही रह जाती है तो उद्योग में मांग व पूर्ति साम्य L बिन्दु पर होगा, जहां उद्योग की उत्पादन मात्रा OM1 होगी तथा मूल्य OP1 होगा । उद्योग के इस साम्य में उद्योग की हानि होगी, क्योंकि फर्म में AR1<AC से । अत: L बिन्दु पर फर्म को LP प्रति इकाई हानि होगी, तो उद्योग भी हानि में रहेगा ।

2. **दीर्घकाल में उद्योग की साम्यावस्था (Industry's Equilibrium in the Long Period) -** पूर्ण प्रतियोगिता में दीर्घकाल में उद्योग साम्य की अवस्था में उस समय होगा जबकि फर्मो की संख्या में परिवर्तन की प्रवर्ति नहीं हो । ऐसी अवस्था में फर्मो द्वारा अर्जित लाभ सामान्य होता है । उद्योग के दीर्घकालीन संतुलन के लिए, उसकी सभी फर्मो का दीर्घकालीन सन्तुलन की स्थिति में होना आवश्यक है । लेफ्टविच के अनुसार,"एक फर्म लाभ अर्जित करते हुए भी दीर्घकालीन साम्यावस्था में हो सकती है, परन्तु इस अवस्था में उद्योग संतुलन की स्थिति में नहीं होगा । उद्योग के सन्तुलन की स्थिति में होने के लिए यह आवश्यक है कि सभी फर्मे व्यक्तिगत रूप से साम्यावस्था में हों तथा उन्हें न लाभ हो रहा हो और न हानि, अर्थात् सभी फर्मो के लिए कीमत औसत लागत के बराबर हो ।"

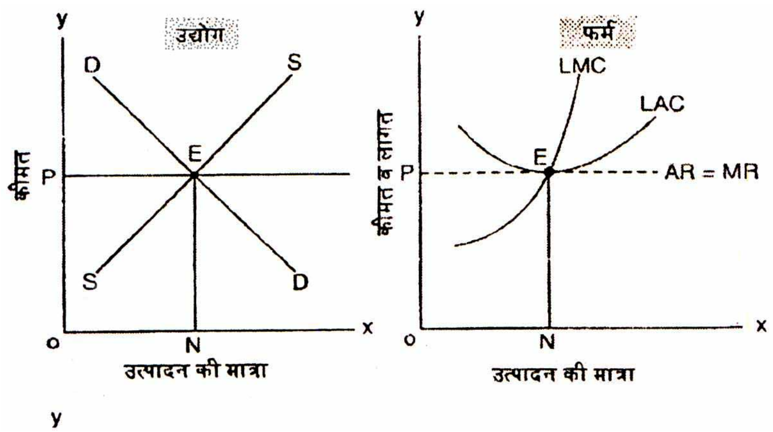

रेखाचित्र 11.10

दीर्घकाल में उद्योग की साम्य स्थिति को रेखाचित्र 11.10 में दर्शाया गया है । रेखाचित्र में उद्योग का दीर्घकालीन कुल मांग वक्र DD है तथा कुल पूर्ति वक्र SS है । DD तथा SS वक्र एक दूसरे को E बिन्दु पर काटते है । अत: उद्योग का दीर्घकालीन साम्य बिन्दु E है । इस साम्य की स्थिति में कीमत OP निर्धारित होती है, जो फर्म के लिए पहले से निश्चित होती है । फर्म इस कीमत के अनुसार उत्पादन का समायोजन करेगी । फर्म का भी सन्तुलन बिन्दु E पर होगा, जहां फर्म की LMC तथा MR बराबर है । इस बिन्दु पर फर्म का LAC तथा AR भी LMC तथा MR के बराबर है । अत: फर्म भी ON मात्रा का उत्पादन करेगी तथा सामान्य लाभ प्राप्त करेगी ।

11.9 सारांश

सभी तथ्यों के विश्लेषण से यह स्पष्ट होता है की पूर्ण प्रतियोगिता की अवधारणा मिथ्या है क्योंकि व्यावहारिक जीवन में यह नहीं पाई जाती, फिर भी इसे मिथ्या नहीं कह सकते क्योंकि इसकी सहायता से हम एक आर्थिक संस्थान की कार्य प्रणाली को आसानी से समझ सकते है । यह बाजार संरचना का सरलीकरण प्रस्तुत करता है । यह सामाजिक तथा आर्थिक कल्याण के लिए विभिन्न मापदण्ड निर्धारित करने में सहायता प्रदान करता है । मुक्त व्यापार वाले अर्थतंत्र को समझने में पूर्ण प्रतियोगिता सहायता प्रदान करता है । पूर्ण प्रतियोगिता के ज्ञान के अभाव में हम अन्य बाजार संरचनाओं को नहीं समझ सकते है । पूर्ण प्रतियोगिता में जो शर्तें हैं वे अन्य बाजार संरचनाओं में भी मान्यता रखती है ।

11.10 शब्दावली

- फ़र्म (Firm) वह उत्पादन इकाई जो प्रचलित बाजार मूल्य पर उत्पादन की कितनी भी मात्रा का विक्रय कर सकती है।
- उद्योग (Industry) फर्मो का समूह जो समरूप वस्तुऐं उत्पादित करता है ।
- सामान्य लाभ (Normal Profit) सामान्य लाभ वह रकम है जो फर्म को क्रियाशील रखने एवं उत्पादक को उत्पादन के लिए प्रेरणा प्रदान करने के लिए आवश्यक है ।

- सीमान्त लागत (Marginal cost) कुल उत्पादन में एक इकाई परिवर्तन करने से कुल लागत में जों परिवर्तन होता है ।
- सीमान्त आगम (Marginal Revenue) किसी वस्तु की सीमान्त इकाई की बिक्री से जो आगम प्राप्त होता है उसे सीमान्त आगम कहते हैं ।
- उद्योग का साम्य (Equilibrium of Industry) उद्योग के सन्तुलन की स्थिति में होने के लिए यह आवश्यक है कि सभी फर्मे व्यक्तिगत रूप से साम्यावस्था में हो तथा उन्हें न लाभ हो रहा तो या न हानि अर्थात् सभी फर्म' लिए कीमत औसत लागत के बराबर हो ।
- समरूप उत्पाद (Homogenous product) उद्योग में लगी सभी फार्मों द्वारा समरूप वस्तु का उत्पादन तथा विक्रय अर्थात् वस्तु विभेद नहीं ।
- निरस्ति बिन्दु (Shutdown Point) वह बिन्दु जहां मूल्य परिवर्तनशील लागत को पूरा करने में असमर्थ रहे ।

11.11 स्वपरख प्रश्न

1. पूर्ण प्रतियोगिता से आप क्या समझते हैं? इसकी विशेषताएँ विस्तार से बताइये ।
2. पूर्ण प्रतियोगिता में एक फर्म दीर्घकाल में केवल सामान्य लाभ प्राप्त कर सकती है जबकि अल्पकाल में ऐसा नहीं हो सकता । व्याख्या कीजिए ।
3. "पूर्ण प्रतियोगिता की दशा के अन्तर्गत एक फर्म की समस्या केवल उत्पादन की मात्रा निश्चित करना है ।" स्पष्ट कीजिए ।
4. पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत अल्पकाल एव दीर्घकाल में मूल्य कैसे निर्धारित किया जाता है? समझाइये ।
5. पूर्ण प्रतियोगिता में अल्पकाल में फर्म का उत्पादन निरस्ति बिन्दु स्पष्ट कीजिए ।
6. उद्योग के सन्तुलन को परिभाषित कीजिए । पूर्ण प्रतियोगिता की स्थिति में उद्योग के अल्पकाल व दीर्घकाल में सन्तुलन का वर्णन कीजिए ।

11.12 उपयोगी पुस्तकें

1. चौधरी सी. एम., व्यावसायिक अर्थशास्त्र, शिवम् बुक हाउस (प्रा.) लिमिटेड, जयपुर ।
2. माथुर, एन. डी., व्यावसायिक अर्थशास्त्र, शिवम् बुक हाउस (प्रा.) लिमिटेड, जयपुर
3. अग्रवाल एवं अग्रवाल, व्यावसायिक अर्थशास्त्र, रमेश बुक डिपो, जयपुर ।
4. गुप्ता, बी. पी व्यावसायिक अर्थशास्त्र, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, जयपुर ।
5. Agarwal M.D. and Som Deo: Business Economics, Ramesh Book Depot, Jaipur.

इकाई-12

एकाधिकार एवं विभेदात्मक एकाधिकार के अन्तर्गत मूल्य एवं उत्पादन निर्धारण

(Price and output determination under monopoly and discriminating monopoly)

इकाई की रूपरेखा

12.0 उद्देश्य

12.1 प्रस्तावना

12.2 एकाधिकार का अर्थ एवं परिभाषा

12.3 एकाधिकार की विशेषताऐं

12.4 एकाधिकार में मूल्य एवं उत्पादन निर्धारण

1. कुल आगम तथा कुल लागत विधि
2. सीमान्त आगम एवं सीमान्त लागत विधि

12.5 अल्पकाल में मूल्य एवं उत्पादन निर्धारण

12.6 दीर्घकाल में मूल्य एवं उत्पादन निर्धारण

12.7 विभेदात्मक एकाधिकार अथवा मूल्य विभेद

12.8 सारांश

12.9 शब्दावली

12.10 स्वपरख प्रश्न

12.11 उपयोगी पुस्तकें

12.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन करने के बाद आप इस योग्य हो सकेंगे कि

- एकाधिकार बाजार का अर्थ एवं उसकी विशेषताओं का वर्णन कर सकें ।
- एकाधिकार बाजार संरचनाओं में मूल्य एवं उत्पादन का निर्धारण कैसे किया जाये, का विस्तृत ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।
- उत्पत्ति के नियमों का एकाधिकारी के मूल्य एवं उत्पादन निर्धारण पर प्रभाव को जान सकेंगे ।
- विभेदात्मक एकाधिकार में मूल्य एवं उत्पादन निर्धारण का विश्लेषण कर सकेंगे ।

12.1 प्रस्तावना

आम बोलचाल की भाषा में प्रतियोगिता शब्द का प्रयोग फ़र्मों के बीच पायी जाने वाली प्रतिद्वंद्ता(Rivalry) के लिए किया जाता है परन्तु अर्थशास्त्र में 'प्रतियोगिता' शब्द का अर्थ

बाजार के प्रतियोगी ढांचे के लिए प्रयुक्त होता है । बाजार के प्रतियोगी ढांचे से अभिप्राय: फर्म द्वारा बाजार कीमत को प्रभावित करने की शक्ति से है । एक फर्म की बाजार कीमत को प्रभावित करने की शक्ति जितनी कम होगी बाजार उतना ही अधिक प्रतियोगी होगा, जब फर्मो की बाजार कीमत को प्रभावित करने की शक्ति शून्य होती है तो बाजार का ढांचा पूर्ण प्रतियोगी होता है ।

जबकि इसके विपरीत बाजार का वह ढांचा, 'एकाधिकार' जिसमें केवल एक ही फर्म होती है । स्वयं कीमत निर्धारित करती है । पूर्ति पर पूर्ण नियन्त्रण होता है । जिसे बिक्री का एक मात्र अधिकार होता है । उसके न तो कोई प्रतिद्वन्द्वी होता है और न ही प्रत्यक्ष प्रतियोगी होते हैं यही कारण है कि एक ही वस्तु की विभिन्न क्रेताओं से अलग-अलग कीमतें वसूल करता है लेकिन व्यावहारिक जीवन में पूर्ण प्रतियोगिता की तरह पूर्ण एकाधिकार भी देखने को नहीं मिलता । सार्वजनिक सेवाओं की पूर्ति यथा बिजली, पीने का पानी, टेलीफोन, रेल परिवहन आदि में एकाधिकार के निकट की स्थिति पाई जाती है ।

12.2 एकाधिकार का अर्थ एवं परिभाषा (Meaning and Definition of Monopoly)

एकाधिकार बाजार की वह स्थिति होती है, जिसमें वस्तु का एक ही उत्पादक होता है तथा वस्तु की समस्त पूर्ति पर उसका पूर्ण नियन्त्रण होता है । एकाधिकार में एक ही फर्म उत्पादन कार्य करती है तथा वही उद्योग होता है । जिसकी कोई निकट स्थानापन्न वस्तु नहीं होती ।

चेम्बर लिन के अनुसार, "एक एकाधिकारी उसे समझना चाहिए जो कि किसी वस्तु पर नियन्त्रण रखता है । अधिकांशतः यह प्रत्यक्ष रूप से पूर्ति द्वारा कार्य नहीं करता. बल्कि कीमत द्वारा करता है ।"

प्रो. वाटसन के अनुसार, "एकाधिकारी एक वस्तु का अकेला उत्पादक होता है, जिसकी कोई निकट स्थानापन्न वस्तु नहीं होती है ।

12.3 एकाधिकार की विशेषताएं (Characteristics of Monopoly)

(1) **एक उत्पादक अथवा विक्रेता (Single producer seller) -** एकाधिकार में वस्तु का उत्पादन एवं विक्रय करने वाली एक ही फर्म होती है, इसका वस्तु की पूर्ति पर पूर्ण नियन्त्रण होता है ।

(2) **स्थानापन्न वस्तुओं का अभाव (lack of close substitutes) -** एकाधिकारी ऐसी वस्तु का उत्पादन एवं विक्रय करता है, जिसकी निकट स्थानापन्न वस्तु बाजार में उपलब्ध नहीं होती है ।

(3) **नई फर्मो के प्रवेश पर प्रभावपूर्ण रोक (Effective check on the entry of new firms) -** एकाधिकार में अल्पकाल एवं दीर्घकाल दोनों में ही नई फर्मों के उद्योग में प्रवेश पर प्रभावपूर्ण रोक लगी होती है ।

(4) **फर्म एवं उद्योग ..रु ही (Firm and Industry is one and the same) -** एकाधिकार में केवल एक फर्म ही वस्तु का उत्पादन करती है । पूरे उद्योग में केवल एक ही फर्म होने से फर्म एवं उद्योग एक दूसरे के पर्यायवाची है जाते हैं ।

(5) **बेलोचदार मांग (Inelastic Demand) -** एकाधिकारी वस्तु की मांग बेलोचदार होती है, इसलिए वह मूल्य बढ़ाकर अपने लाभ को अधिकतम करने का प्रयास करता है ।

(6) **वस्तु की पूर्ति पर पूर्ण नियन्त्रण (Complete control over the supply of commodity) -** एकाधिकारी अपनी वस्तु की पूर्ति पर पूर्ण नियन्त्रण होता है । अन्य शब्दों में एकाधिकारी बाजार में वस्तु की पूर्ति को कम या अधिक कर सकता है, क्योंकि वह अकेला उत्पादक होता है ।

(7) **दीर्घकाल में असामान्य लाभ (Abnormal profit in the long run) -** सामान्य रूप से एकाधिकारी अल्पकाल एवं दीर्घकाल दोनों में ही सामान्य से अधिक लाभ प्राप्त करता है; परन्तु अल्पकाल में वह कभी-कभी "न लाभ-न हानि" या हानि की स्थिति में भी उत्पादन कर सकता है, लेकिन दीर्घकाल में वह सदैव असामान्य लाभ प्राप्त करेगा ।

(8) **अधिक क्रेता (More Buyers) -** एकाधिकारी अकेला उत्पादक एवं विक्रेता होता है, जबकि उस वस्तु को खरीदने वाले क्रेताओं की संख्या अधिक होती है ।

12.4 एकाधिकार के अन्तर्गत मूल्य व उत्पादन निर्धारण (Determination of Price and Output under Monopoly)

एकाधिकार में मूल्य एवं उत्पादन निर्धारण को जानने से पूर्व निम्न बातो की जानकारी आवश्यक है -

(1) एकाधिकारी का उद्देश्य अधिकतम लाभ कमाना होता है ।

(2) एकाधिकारी वस्तु को बेची जाने वाली मात्रा अथवा वस्तु के मूल्य में किसी एक का निर्धारण कर सकता है, वह दोनों को एक साथ निर्धारित नहीं कर सकता । सामान्य रूप से वह वस्तु का मूल्य निर्धारित करना ही पसन्द करता है ।

(3) एकाधिकारी वस्तु की मांग बेलोचदार होती है, अर्थात् एकाधिकारी को अधिक इकाइयाँ बेचने हेतु मूल्य कम करना होता है ।

एकाधिकार में मूल्य एवं उत्पादन निर्धारण की दो विधियां है -

1. **कुल आगम तथा कुल लागत विधि (Total Revenue and Total Cost Method) -** एकाधिकारी को सामान्य लाभ के अतिरिक्त जो लाभ प्राप्त होता है, उसे प्रो. मार्शल ने 'एकाधिकार लाभ' (Monopoly gain) कहा है । एकाधिकारी का उद्देश्य अधिकतम लाभ प्राप्त करना होता है । अत: वह वस्तु का मूल्य इस प्रकार निर्धारित करता है, जिससे उसे अधिकतम लाभ प्राप्त हो सके ।

अत: मांग तथा पूर्ति की परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए, उत्पादक उत्पादन की मात्रा बड़ा-घटा कर इस बात का पता लगायेगा कि कितनी मात्रा में उत्पादन करने से उसका 'एकाधिकारिक लाभ अधिकतम होगा । उत्पादन की जिस मात्रा तथा कीमत पर 'एकाधिकारिक

लाभ अधिकतम होगा, एकाधिकारी द्वारा उतनी ही मात्रा का उत्पादन किया जायेगा तथा उतनी ही कीमत निश्चित की जायेगी ।

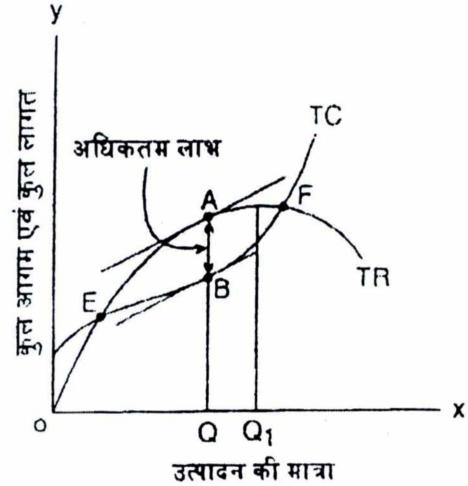

रेखाचित्र 12.1 में OX अक्ष पर उत्पादन मात्रा तथा OY अक्ष पर कुल आगम तथा कुल लागत को प्रदर्शित किया गया है । TC वक्र कुल लागत वक्र है, तथा TR कुल आगम वक्र है । यदि एकाधिकारी OQ मात्रा का उत्पादन करता है तो उसकी कुल आय अधिकतम होती है, इससे अधिक उत्पादन करने पर TR वक्र नीचे गिरता है । लेकिन OQ1 मात्रा पर एकाधिकारिक लाभ अधिकतम नहीं है । अत: वह उत्पादन की मात्रा कम करेगा । चित्र से स्पष्ट है कि OQ मात्रा का उत्पादन करने पर TR तथा TC का अन्तर अधिकतम है (TR व TC की स्पर्श रेखाएं (Tangents) जिस बिन्दु पर समानान्तर (Parallel) है, उस बिन्दु पर उत्पादन करने से TR व TC का अन्तर अधिकतम होगा । रेखाचित्र में OQ मात्रा उत्पादित करने पर फर्म की कुल आय AQ कुल लागत BQ होगी तथा फर्म को कुल लाभ AB के बराबर प्राप्त होगा । यह सर्वाधिक लाभ की स्थिति है । E तथा F सम विच्छेद बिन्दु है, जहां फर्म को न लाभ, न हानि प्राप्त हो रही है ।

2. **सीमान्त आगम एवं सीमान्त लागत विधि (Marginal Revenue and Marginal Cost Method)- श्रीमती जोन रॉबिन्सन** के अनुसार एकाधिकारी का उद्देश्य अपने लाभ को अधिकतम करना होता है । इस उद्देश्य की पूर्ति उस समय होती है, जबकि एकाधिकारी की सीमान्त आय (MR) सीमान्त लागत (MC) के बराबर हो । अत: एकाधिकारी साम्य की स्थिति के लिए यह चेष्टा करता है कि उत्पादन प्रक्रिया में उसकी सीमान्त आय, सीमान्त लागत के बराबर हो । उत्पादन की जिस मात्रा पर सीमान्त आय, सीमान्त लागत के बराबर होती है, एकाधिकारी वही मात्रा व कीमत निर्धारित करता है, इसी बिन्दु पर एकाधिकारी साम्य की स्थिति में होता है ।

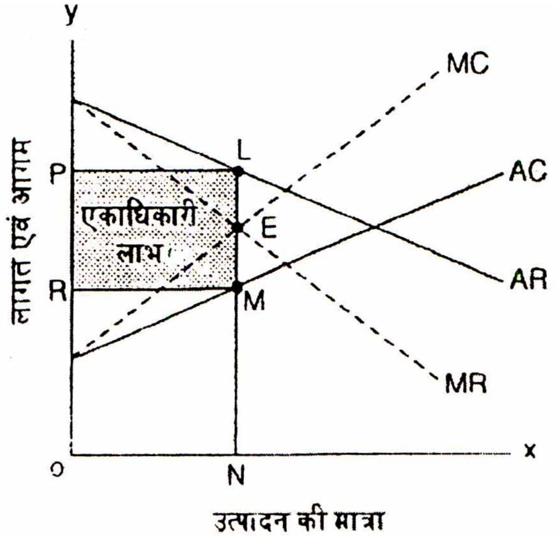

रेखाचित्र 12.2 के अनुसार AR व MR फर्म के औसत आगम एवं सीमान्त आगम वक्र है, जबकि AC तथा MC क्रमश: औसत लागत तथा सीमान्त लागत वक्र है । E बिन्दु साम्य बिन्दु है, क्योंकि इस बिन्दु पर MR=MC है । इस बिन्दु से OX आधार रेखा पर सीधा लम्ब डाला जाये, तो एकाधिकारी की उत्पादन एवं विक्रय मात्रा स्पष्ट होती है, जो कि ON है । एकाधिकारी की कीमत LN या OP होगी । एकाधिकारी का प्रति इकाई लाभ LM होगा जो कि AR तथा AC के बीच अन्तर को बतलाता है । फर्म को इस साम्य बिन्दु पर PRML के बराबर कुल लाभ प्राप्त होता है, क्योंकि एकाधिकारी का कुल लाभ =(औसत आगम - औसत लागत) x उत्पादन मात्रा के बराबर होता है।

12.5 अल्पकाल में मूल्य एवं उत्पादन निर्धारण (Price and Output Determination in the Short Run)

अल्पकाल में एकाधिकारी के पास बहुत कम समय होता है । वह अपने स्थायी साधनों में परिवर्तन कर उत्पादन बढ़ाने की स्थिति में नहीं होता है । वह उत्पादन के वर्तमान साधनों द्वारा ही पूर्ति में वृद्धि कर उत्पादन को बढ़ा सकता है । ऐसी अवस्था में बाजार में मूल्य निर्धारण कर मांग पक्ष का ही प्रभाव रहता है ।

एकाधिकारी की अल्पकाल में तीन स्थितियां हो सकती हैं-

(i) **सामान्य से अधिक लाभ (Super-Normal Profit) -** अल्पकाल में इसका साम्य उस बिन्दु पर होगा, जहां MC=MR हों । अल्पकाल में सामान्य से अधिक लाभ की स्थिति को रेखाचित्र 12.3 में दर्शाया गया है ।

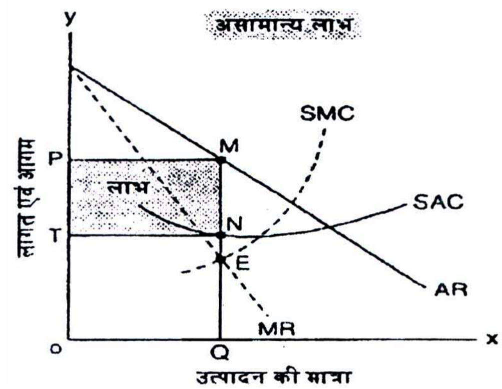

रेखाचित्र 12.3

रेखाचित्र में OX अक्ष पर लागत एवं आगम को तथा OYअक्ष पर उत्पादन मात्रा को दर्शाया गया है । AR फर्म का औसत आय वक्र अथवा मांग वक्र है । MR तथा MC 'E' बिन्दु पर एक-दूसरे को काटते है । इस स्थिति में फर्म OQ मात्रा का उत्पादन करेगी । उसे प्रति इकाई OP कीमत प्राप्त होगी । OT या NQ प्रति इकाई लागत है । अत: फर्म को PT या MN प्रति इकाई लाभ प्राप्त होगा तथा OQ उत्पादन करने पर कुल PTNM के बराबर लाभ प्राप्त होगा ।

(ii) **सामान्य लाभ (Normal Profit) -** अल्पकाल में एकाधिकारी को केवल सामान्य लाभ भी प्राप्त हो सकता है ।

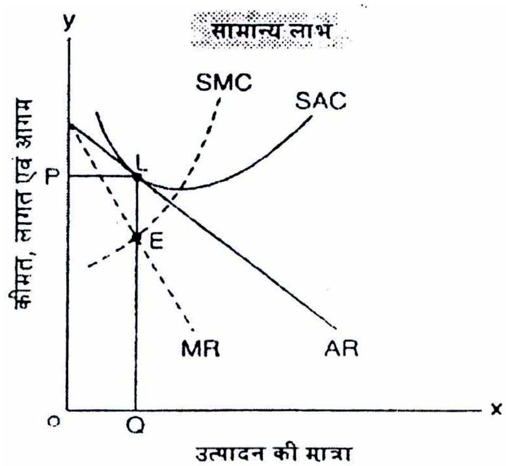

रेखाचित्र 12.4

रेखाचित्र 12.4 में एकाधिकारी को अल्पकाल में सामान्य लाभ ही प्राप्त हो रहा है । E साम्य बिन्दु है, जहां MC ने MR वक्र को नीचे से काटा है, अर्थात MC=MR है । इस सन्तुलन बिन्दु पर OQ मात्रा का उत्पादन एवं विक्रय किया जाता है । OQ उत्पादन मात्रा की औसत लागत QL या OP है तथा एकाधिकारी का औसत आगम (AR) QLया OP है, अत: एकाधिकारी को न लाभ प्राप्त हो रहा है और न हानि ।

(iii) **हानि की स्थिति (Loss) -** यह आवश्यक नहीं है कि एकाधिकारी सदैव लाभ ही प्राप्त करे । अल्पकाल में यह हानि की स्थिति में भी कार्य कर सकता है । यदि फर्म की उत्पादन लागत अधिक है और मांग कम होने से मूल्य कम हो जाता है, तो वह कीमत द्वारा

औसत लागत भी वसूल नहीं कर पायेगा और हानि उठाते हुए उत्पादन जारी रखेगा । लेकिन वह औसत स्थिर लागत से अधिक हानि नहीं उठायेगा । अर्थात् यदि वस्तु का मूल्य औसत परिवर्तनशील लागत से भी कम हो जाता है, तो वह अल्पकाल में भी उत्पादन बन्द कर देगा । अत: उसे कम से कम परिवर्तनशील लागत के बराबर कीमत अवश्य मिलनी चाहिए । इस स्थिति को रेखाचित्र 12.5 में दर्शाया गया है ।

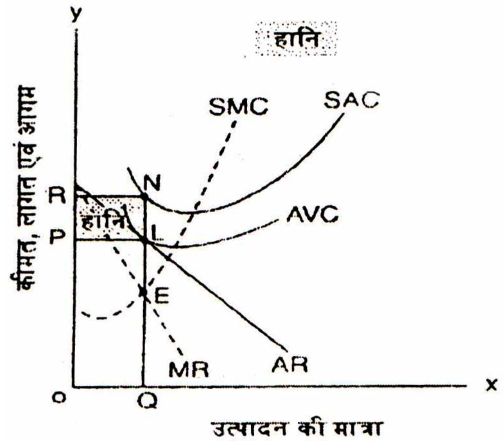

रेखाचित्र 12.5

रेखाचित्र में एकाधिकारी की अल्पकालीन सीमान्त लागत (SMC) एवं सीमान्त आय (MR) दोनों E बिन्दु पर बराबर हैं, अर्थात् E बिन्दु पर SMC= MR इस साम्य बिन्दु पर उत्पादन एवं विक्रय की मात्रा OQ है तथा उसकी औसत लागत QN या OR है । इस साम्य पर एकाधिकारी का औसत आगम QL या OP है, जो औसत लागत से नीचा है । अत: एकाधिकारी को हानि प्राप्त हो रही है, किन्तु यहां एकाधिकारी औसत परिवर्तनशील लागतों के बराबर मूल्य प्राप्त कर रहा है । अत: उसे स्थायी लागत के बराबर ही हानि हो रही है । यदि कीमत QL या OP से कम हो जाये, तो फर्म को अस्थायी तौर पर उत्पादन बन्द करना पडेगा, क्योंकि मूल्य के OP से कम होने पर फर्म को परिवर्तनशील लागतों के बराबर भी भुगतान प्राप्त नहीं होगा ।

12.6 दीर्घकाल में मूल्य एवं उत्पादन निर्धारण (Price and Output Determination in the Long Run)

दीर्घकाल में एकाधिकारी के पास इतना समय होता है की वह अपने स्थिर साधनों में परिवर्तन कर अर्थात् फर्म के आकार में परिवर्तन कर, उत्पादन की मात्रा को मांग के अनुरूप समायोजित कर सकता है । अर्थात दीर्घकाल में भी एकाधिकारी अतिरिक्त लाभ अर्जित करता है, क्योंकि उसे नई फार्मों के प्रवेश का भय नहीं रहता है ।

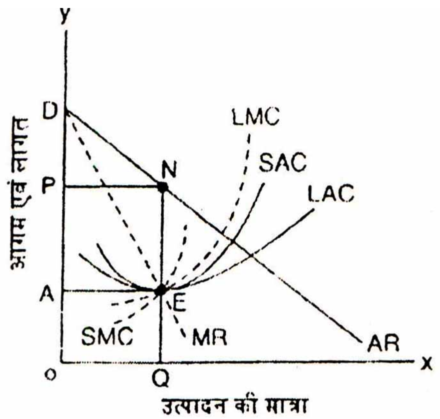

रेखाचित्र 12.6

रेखाचित्र 12.6 में OQ मात्रा उत्पादन करने पर दीर्घकालीन सीमान्त लागत तथा सीमान्त आय E बिन्दु पर बराबर होती है । यह दीर्घकालीन औसत लागत (LAC) का निम्नतम बिन्दु है । इस बिन्दु पर OQ मात्रा का उत्पादन करने पर MR =SMC=LMC=SAC=LAC । फर्म इस बिन्दु पर अल्पकालीन व दीर्घकालीन दोनों अवस्थाओं में संतुलन की स्थिति में है । कीमत OP, लागत OA 'तथा लाभ AP बराबर है । कुल अतिरिक्त लाभ=AP X PN अर्थात् AENP के बराबर होगा ।

क्या एकाधिकार मूल्य सदैव स्पर्धात्मक मूल्य से ऊंचा होता है? - सामान्य रूप से एकाधिकारी मूल्य प्रतियोगी मूल्य से ऊंचे होते है, परन्तु यह आवश्यक नहीं है कि यह सदैव ऊंचा ही हो । निम्न परिस्थितियां एकाधिकारी को अधिक मूल्य बढ़ाने से रोकती हैं - (1) स्थानापन्न वस्तुओं का भय, (2) सरकारी नियमन तथा नियंत्रण, (3) उपभोक्ताओं का प्रबल विरोध, (4) प्रतियोगिता का भय, (5) बड़े पैमाने पर उत्पादन करके लागत घटाकर तथा बिक्री बढ़ाकर लाभ अधिक करने की इच्छा और (6) जन कल्याण की भावना ।

सामान्य रूप से मांग एवं लागत की दशाएं समान होने पर एकाधिकारी पूर्ण प्रतियोगी फर्म की अपेक्षा उत्पादन मात्रा कम रखकर तथा मूल्य ऊंचा रखकर अपने लाभ को अधिकतम करता है ।

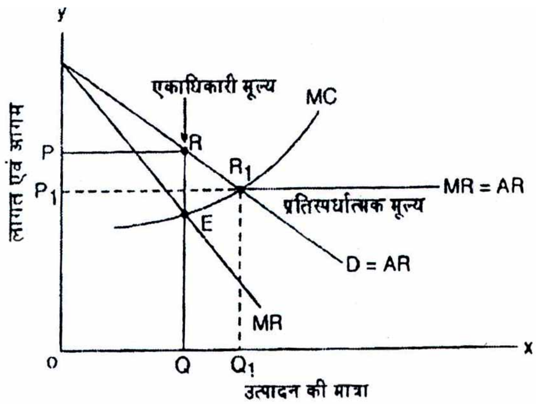

रेखाचित्र 12.7

रेखाचित्र 12.7 के अनुसार पूर्ण प्रतियोगिता में साम्य के लिए MC=MR तथा AC=AR होना आवश्यक है, अर्थात् दीर्घकाल में फर्म केवल सामान्य लाभ कमा सकती है । R1 बिन्दु पर MC=MR समान है, अत: OQ, मात्रा का उत्पादन किया जायेगा तथा कीमत OP1, होगी । यहां यह ध्यान रखना चाहिए कि पूर्ण प्रतियोगिता में AR तथा MR रेखा एक ही होती है, जबकि एकाधिकार में दोनों भिन्न होती है । एकाधिकार में MC रेखा MR को E बिन्दु पर काटेगी । इस साम्य स्थिति में OQ उत्पादन तथा OP कीमत निश्चित होगी । चित्र से स्पष्ट है कि एकाधिकारी कीमत OP पूर्ण प्रतियोगिता की कीमत OP1, से अधिक है, जबकि एकाधिकारी मात्रा OQ, पूर्ण प्रतियोगिता की उत्पादन मात्रा OQ1, से कम है । स्पष्ट है कि सामान्यतया एकाधिकारी कीमत ऊंची व उत्पादन मात्रा कम होती है।

12.7 विभेदात्मक एकाधिकार अथवा मूल्य विभेद (Discriminating Monopoly or Price Discrimination)

विभेदात्मक एकाधिकार बाजार की वह स्थिति है, जिसमें एक एकाधिकारी अपनी एक समान वस्तु की भिन्न-भिन्न कीमत वसूल करता है, इसे मूल्य विभेद भी कहते है । विभेदात्मक एकाधिकार में एक एकाधिकारी एक ही प्रकार की वस्तु को विभिन्न उपभोक्ताओं को भिन्न-भिन्न मूल्यों पर बेचता है । इस मूल्य विभेद का उद्देश्य अधिकतम लाभ प्राप्त करना होता है, जैसे विद्युत मण्डल अपने विभिन्न उपभोक्ताओं (घरेलू कृषि व उद्योग आदि) को भिन्न भिन्न दर पर विद्युत देता है ।

श्रीमती जोन रोबिन्सन (Mrs. Joan Robinson) के शब्दों में, "**एक ही नियंत्रण के अन्तर्गत उत्पन्न एक ही वस्तु को विभिन्न क्रेताओं या उपभोक्ताओं को भिन्न-भिन्न कीमतों पर बेचने की क्रिया को मूल्य विभेद कहा जाता है ।**"

मूल्य विभेद के रूप (Types of Price Discrimination)

(1) **व्यक्तिगत विभेद** -जब भिन्न-भिन्न व्यक्तियों से भिन्न-भिन्न कीमतें वसूल की जाती है, तो इसे व्यक्तिगत मूल्य विभेद कहते है ।

(2) **स्थान विभेद** - जब विभिन्न स्थानों पर अलग-अलग कीमतें ली जाती है, तो उसे स्थान मूल्य विभेद कहते है, जैसे विदेशी बाजार में राशि पातन (Dumping) के उद्देश्य से कम मूल्य पर वस्तु बेची जाए तथा देश के अन्दर वस्तु का मूल्य ऊंचा रखा जाए ।

(3) **व्यवसाय विभेद -** जब किसी वस्तु के प्रयोग के आधार पर भिन्न-भिन्न कीमत ली जाती है, तो उसे व्यवसाय मूल्य विभेद कहते है ।

(4) **आयु लिंग या पद के आधार पर विभेद -** कभी-कभी एकाधिकारी उपभोक्ता की आयु लिंग, पद आदि के आधार पर भिन्न-भिन्न मूल्य वसूल करता है, जैसे रेलवे बच्चों से आधा टिकट लेती है ।

(5) **समयानुसार मूल्य विभेद -** एकाधिकारी समयावधि के अनुसार भी वस्तु के मूल्यों में विभेद करता है, जैसे डाक-तार विभाग ट्रंक-कॉलों के लिए समय के अनुसार भिन्न-भिन्न दरें वसूल करता है ।

(6) **उपभोक्ता वर्ग के अनुसार विभेद -** उपभोक्ता वर्ग के अनुसार भी मूल्य विभेद किया जाता है, जैसे सिनेमा में विभिन्न श्रेणी के टिकटों की भिन्न-भिन्न कीमत ली जाती है ।

(7) **वस्तु की प्रकृति के आधार पर विभेद** - वस्तु की प्रकृति व आकार के अनुसार भी मूल्य विभेद किया जाता है, जैसे रेलवे विभाग ज्वलनशील व अधिक स्थान घेरने वाली वस्तुओं (रूई, तेल आदि) का किराया अधिक लेता है ।

(8) **छूट एवं मूल्य विभेद -** एकाधिकारी एक ही वस्तु के लिए विभिन्न क्रेताओं को भिन्न-भिन्न छूट देकर मूल्य विभेद करता है, जैसे एक निश्चित मात्रा से अधिक माल खरीदने पर विशेष छूट ।

विभेदात्मक एकाधिकार में मूल्य एवं उत्पादन निर्धारण (Price and Output Determination Under Discriminating Monopoly) - विभेदात्मक एकाधिकार में कीमत निर्धारण को दो विधियों द्वारा स्पष्ट किया जाता है - (A) जब एक बाजार में उसका एकाधिकार हो तथा दूसरे बाजार में उसे प्रतियोगिता का सामना करना पड़ रहा हो तथा (B) जब प्रत्येक बाजार में उसका एकाधिकार हो । दोनों स्थितियों में मूल्य निर्धारण निम्न प्रकार होगा ।

(A) **संरक्षित देशी बाजार तथा प्रतियोगी विदेशी बाजार (Protected Domestic Market and Competitive Foreign Market) -** जब एकाधिकारी दो ऐसे बाजारों में अपनी वस्तु बेचता है, जिनमें से एक स्वदेशी बाजार में उसका एकाधिकार हो तथा दूसरे विदेशी बाजार में उसे प्रतियोगिता का सामना करना पड़ रहा हो, तो ऐसी स्थिति में सामान्यतया एकाधिकारी देश के अन्दर वस्तु का अधिक मूल्य तथा विदेश में कम मूल्य रखकर एकाधिकारिक लाभ को अधिकतम करता है ।

उदाहरणार्थ बाजार 'A' संरक्षित देशी बाजार तथा बाजार 'B' प्रतियोगी विदेशी बाजार है । विदेशी बाजार 'B' में पूर्ण प्रतियोगिता के कारण एकाधिकारी की कीमत सीमान्त आय के बराबर होगी (P=MR=MC) । किन्तु **श्रीमती जोन रॉबिन्सन** के अनुसार एक एकाधिकारी अपने लाभ को अधिकतम करने हेतु कुल उत्पादन की सीमान्त लागत को प्रत्येक बाजार की सीमान्त आय के बराबर करेगा । एकाधिकारी बिक्री में इस प्रकार से समायोजन करेगा, जिससे देशी बाजार 'A' की सीमान्त आय विदेशी बाजार 'B' की कीमत के बराबर हो, क्योंकि ऐसा समायोजन करने से ही दोनों बाजारों की सीमान्त आय समान होगी, जिससे कुल उत्पादन की सीमान्त लागत विदेशी बाजार के मूल्य के बराबर हो सकेगी । इसका स्पष्टीकरण रेखाचित्र 12.8 में किया गया है ।

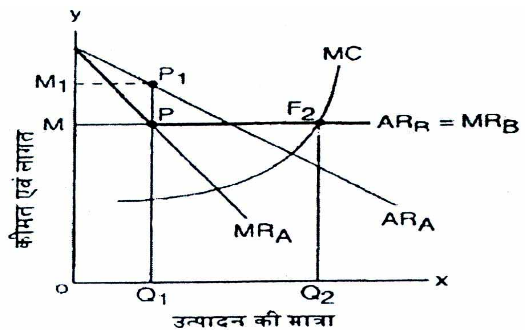

रेखाचित्र 12.8

इस रेखाचित्र में OX अक्ष पर उत्पादन मात्रा तथा OY अक्ष पर कीमत एवं लागत को दर्शाया गया है । कुल उत्पादन OQ2 है । MRA तथा MRB क्रमश: देशी तथा विदेशी बाजार से सम्बन्धित सीमान्त आय वक्र हैं । ARB एक पड़ी रेखा है, क्योंकि पूर्ण प्रतियोगिता के कारण विदेशी बाजार में एकाधिकारी के लिए व्यक्तिगत मांग वक्र पड़ी रेखा के रूप में होती है । ARA तथा MRA दोनों का ऋणात्मक ढाल हैं, क्योंकि देशी बाजार में एकाधिकार की स्थिति है । OQ_1 मात्रा देशी बाजार तथा O_1Q_2 मात्रा विदेशी बाजार में बेची जा रही है । जिनकी कीमतें क्रमश: P_1Q_1 (देशी बाजार) तथा F_2Q_2 (विदेशी बाजार) हैं चित्र से स्पष्ट है कि विदेशी बाजार में कीमत तथा सीमान्त आय दोनों बराबर हैं । (F_2Q_2 कीमत तथा सीमान्त आय है) । देशी बाजार में OQ_1 उत्पादन मात्रा ऐसी है कि जिस पर सीमान्त आय, विदेशी बाजार की कीमत के बराबर है । विदेशी बाजार में Q_1O_2 मात्रा बेची जावेगी, क्योंकि कुल उत्पादन मात्रा OQ_2 होने से OQ_1 मात्रा देशी बाजार में बेचने से केवल Q_1Q_2 शेष रह जाती है ।

यदि विदेशी बाजार में कीमत कम हो जाये, तो एकाधिकारी कुल उत्पादन कम कर देगा । इससे सीमान्त लागत कम होगी । (Q_2 बिन्दु बायीं तरफ खिसक जायेगा) । देशी बाजार में बिक्री की मात्रा बढ़ा दी जाएगी । (Q_1 दाहिनी तरफ खिसक जायेगा) । इस प्रकार विदेशी बाजार में बेची जाने वाली मात्रा कम हो जाएगी । यदि विदेशी बाजार में कीमत इतनी अधिक गिर जाए कि MRA तथा MC जहां एक दूसरे को काटते हैं, उससे भी कम कीमत प्राप्त होने लगे तो एकाधिकारी विदेशी बाजार में बिक्री बन्द कर देगा ।

(B) **जब सभी बाजारों में एकाधिकार हो (When monopoly in all the Markets) -** जब सभी बाजारों मे एकाधिकार की स्थिति हो, तो निम्न विधि द्वारा कीमत निर्धारित होगी -

(1) उत्पादन की कुल मात्रा का निर्धारण वहां होगा, जहां सभी बाजारों की सम्मिलित कुल सीमान्त आय (MR) उसकी कुल सीमान्त लागत (MC) के बराबर हो जाये जैसे रेखाचित्र 12.9 (C) में R बिन्दु पर बताया गया है । एकाधिकारी विभिन्न बाजारों में वस्तु की कुल OQ मात्रा बेचेगा ।

(2) कुल उत्पादन मात्रा निर्धारित करने के बाद एकाधिकारी दोनों बाजारों में से प्रत्येक में बिक्री की मात्रा इस प्रकार समायोजित करेगा, जिससे प्रत्येक बाजार में कुल बिक्री की मात्रा के अनुरूप सीमान्त आय कुल उत्पादन की सीमान्त लागत के बराबर हो जाय, अर्थात् MRA=MRB=MC जैसा कि चित्र A तथा B में क्रमश: बिन्दु R1 तथा R2 में बतलाया गया है ।

सभी बाजारों में एकाधिकार की स्थिति में कीमत निर्धारण को रेखाचित्र 12.9 द्वारा स्पष्ट किया गया है -

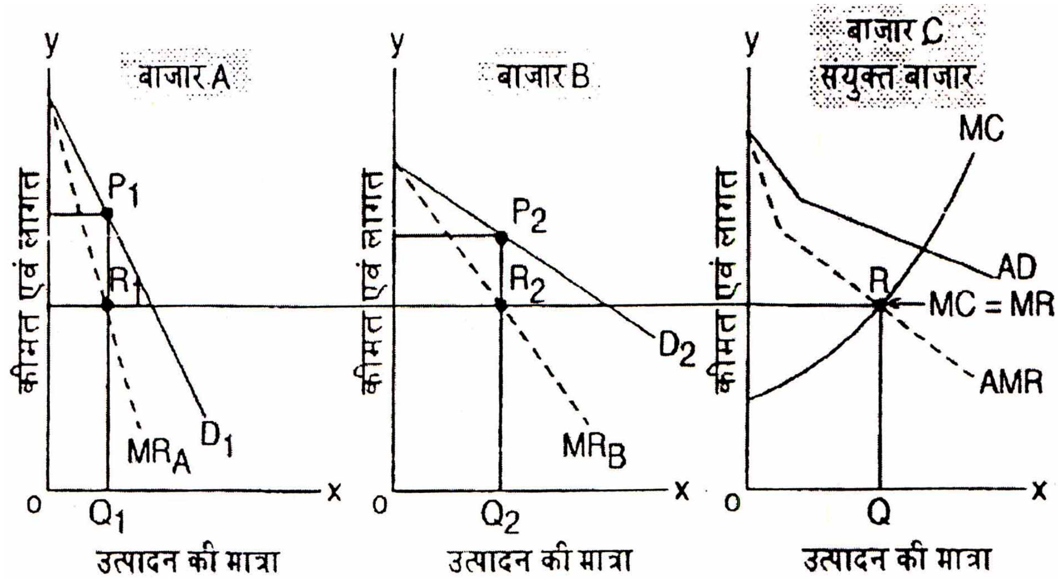

रेखाचित्र 12.9

रेखाचित्र A तथा B एक एकाधिकारिक फर्म की दो बाजारों (A तथा B) में औसत और सीमान्त आगम वक्रों को दर्शाते है । इन बाजारों में अलग-अलग कीमतों पर मांग की लोच भिन्न-भिन्न है । रेखाचित्र C दोनों बाजारों का योग है । बाजार A ऊंची आय प्रकट करता है, अत: मांग तथा सीमान्त आगम रेखाएं (क्रमश: D1 तथा MRA) ऊंचे से आरम्भ होती है । रेखाचित्र B में भी D2 तथा MRB क्रमश: मांग तथा सीमान्त आगम को प्रकट करती है । चित्र C में A तथा B बाजारों का योग दिखलाया गया है, इस चित्र में AMR=MRA+MRB रेखा को प्रकट करता है । चित्र C में सीमान्त लागत भी दिखलाई गई है । बिन्दु R से आधार रेखा के समानान्तर रेखा खींची गई है, जो बिन्दु R1 तथा R2 पर MRA तथा MRB (सीमान्त लागत) के बराबर है । R1 तथा R2 बिन्दुओं से लम्ब डाले गये है । इस प्रकार दोनों बाजारों की कीमतों को ज्ञात किया जाता है ।

रेखाचित्र C से स्पष्ट है कि उत्पादन की मात्रा OQ होगी । इस उत्पादन पर फर्म सन्तुलन की स्थिति में होगी क्योंकि इस उत्पादन पर फर्म की कुल सीमान्त लागत तथा कुल सीमान्त आगम समान हैं उत्पादन की वह मात्रा दोनों बाजारों में इस प्रकार विभाजित की जाती है । कि प्रत्येक बाजार का सीमान्त आगम चित्र C के सीमान्त आगम (QR) के बराबर हो । बाजार A में OQ1 मात्रा बेची जायेगी । इस मात्रा पर बाजार A में सीमान्त आगम Q1R1 के बराबर है, इस बाजार में कीमत Q1P1 होगी । इसी प्रकार बाजार B में OQ2 मात्रा Q2P2 कीमत पर बेची जायेगी । यहां पर भी सीमान्त आय (बाजार B में) R2O2 के बराबर है ।

यह पहले स्पष्ट किया जा चुका है कि विभेदात्मक एकाधिकार में लाभ अधिकतम करने के लिए दो शर्तो की पूर्ति आवश्यक है -

(i) सभी बाजारों में उसकी सीमान्त आय समान होनी चाहिए तथा (ii) उसकी सीमान्त आय सीमान्त लागत के बराबर होनी चाहिए । दूसरे शब्दों में, प्रथम बाजार की सीमान्त आय = दूसरे बाजार की सीमान्त आय = कुल सीमान्त लागत होनी चाहिए ।

12.8 सारांश

प्रत्येक एकाधिकारी का उद्देश्य अधिक से अधिक लाभ कमाना होता है यद्‌यपि एकाधिकार की स्थिति मे भा साम्य बिन्दु पर सीमान्त लागत तथा सीमान्त आय बराबर होती है । फिर भी एकाधिकार की स्थिति पूर्ण प्रतियोगिता की स्थिति से भिन्न होती है इसका कारण यह है कि एकाधिकारी अपनी एकाधिकारिक शक्ति का प्रयाग करके अपने लाभ को अधिकतम करने का प्रयत्न करता । वह अपनी वस्तु की कीमत को उत्पादन लागत रन काफी ऊंचा रखकर अधिक से अधिक लाभ कमाना चाहता है एकाधिकारी का कोई प्रतियोगी नहीं होता, वह समाज कल्याण की भावना से भी प्रेरित नहीं होता । वह पूर्ति को मांग के साथ इस प्रकार व्यवस्थित करता है कि वह अपनी वस्तु की अधिक से अधिक मात्रा अधिक से अधिक मूल्य पर बेच सके तथा अधिकतम लाभ कमा सके और इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए एक ही प्रकार की वस्तु को विभिन्न उपभोक्ताओं को भिन्न-भिन्न मूल्य पर बेचता है ।

सामान्य रूप से एकाधिकारी मूल्य प्रतियोगी मूल्य से ऊंचे होते है परन्तु यह आवश्यक नहीं है कि मूल्य सदैव ऊंचा ही हो । निम्न परिस्थितियां एकाधिकारी को अधिक मूल्य बढाने से रोकती है । (1) स्थानापन्न वस्तुओं का भय, (2) सरकारी नियमन तथा नियंत्रण, (3) उपभोक्ताओं का प्रबल विरोध, (4) प्रतियोगिता का भय, (5) बड़े पैमाने पर उत्पादन करके लागत घटाना, (6) जन कल्याण की भावना आदि ।

12.9 शब्दावली

- **एकाधिकारी (Monopolist)** एकाधिकारी का तात्पर्य उस विक्रेता से है जिसकी वस्तु का मांग वक्र गिरता हु आ होता है।
- **कुल आगम (Total Revenue)** एक फर्म अपने उत्पादन की निश्चित मात्रा बेचकर जो धन राशि प्राप्त करती है उसे कुल आगम कहते है ।
- **कुल लागत (Total Cost)** किसी वस्तु के उत्पादन में लगने वाली समस्त लागतों का योग कुल लागत है ।
- **अल्पकाल (Short period)** वह समय जिसमें उत्पादन में परिवर्तन करने के लिए केवल परिवर्तनशील साधन में परिवर्तन किया जा सकता है ।
- **दीर्घकाल (Long period)** वह समय जिसमें उत्पादन के सभी साधनों (स्थायी एवं परिवर्तनशील) में परिवर्तन किया जा सकता है ।
- **उत्पत्ति के नियम (Law of returns)** अल्पकाल में उत्पादन के कुछ साधनों को स्थिर रखकर अन्य साधनों की मात्रा में परिवर्तन करने से उत्पादन की मात्रा में जो परिवर्तन होते है ।

विभेदात्मक एकाधिकार (Discriminating monopoly) एक ही नियंत्रण के अन्तर्गत उत्पादित एक ही वस्तु को विभिन्न क्रेताओं को विभिन्न मूल्यों पर बेचने की क्रिया ।

12.10 स्वपरख प्रश्न

1. एकाधिकार को परिभाषित कीजिए । एक एकाधिकारी, मूल्य का निर्धारण कैसे करता है? समझाइये ।
2. एकाधिकारी के अल्पकालीन एवं दीर्घकालीन साम्य को रेखाचित्रों की सहायता से स्पष्ट कीजिए ।
3. क्या एकाधिकारी वस्तु का मूल्य तथा वस्तु की बेची जाने वाली मात्रा दोनों का एक साथ निर्धारण कर सकता है? समझाइये ।
4. मूल्य निश्चित करते समय एकाधिकारी कौन-कौन सी बातों को ध्यान में रखता है?
5. विभेदात्मक एकाधिकार क्या है । विभेदात्मक एकाधिकारी का विभिन्न बाजारों में साम्य मूल्य का निर्धारण रेखाचित्रों की सहायता से स्पष्ट कीजिए ।

12.11 उपयोगी पुस्तक

1. चौधरी, सी. एम., व्यावसायिक अर्थशास्त्र, शिवम् बुक हाउस (प्रा.) लिमिटेड, जयपुर
2. माथुर, एन. डी. व्यावसायिक अर्थशास्त्र, शिवम् बुक हाउस (प्रा.) लिमिटेड, जयपुर
3. अग्रवाल एवं अग्रवाल, व्यावसायिक अर्थशास्त्र, रमेश बुक डिपो, जयपुर ।
4. गुप्ता, बी. पी व्यावसायिक अर्थशास्त्र, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, जयपुर ।
5. Agarwal M.D. and Som Deo: Business Economics, Ramesh Book Depot, Jaipur

इकाई-13

एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता के अंतर्गत कीमत एवं उत्पादन निर्धारण

(Price and Output Determination under monopolistic Competition)

इकाई की रूपरेखा

13.0 उद्देश्य

13.1 प्रस्तावना

13.2 एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता का अर्थ

13.3 एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता की विशेषताएं

13.4 आगम वक्रों की प्रकृति

13.5 अल्पकाल में एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता के अन्तर्गत फर्म का साम्य (कर्म का अल्पकालीन साम्य) अथवा अल्पकाल में उत्पादन एवं मूल्य का निर्धारण ।

13.6 फर्म का दीर्घकालीन साम्य अथवा दीर्घकाल में उत्पादन एवं मूल्य का निर्धारण ।

13.7.1 प्रवेश खुला होने पर फर्म का साम्य

13.7.2 प्रवेश अवरूद्ध होने पर फर्म का साम्य

13.7 समूह संतुलन

13.8 पूर्ण प्रतियोगिता एवं एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता में अन्तर

13.9 एकाधिकार एवं एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता में अन्तर

13.10 सारांश

13.11 शब्दावली

13.12 स्वपरख प्रश्न

13.13 कुछ उपयोगी पुस्तकें

13.0 उद्देश्य (Objectives)

यह इकाई आपको अर्थशास्त्र के एक अत्यंत महत्वपूर्ण प्रश्न एकाधिरात्मक प्रतियोगिता की स्थिति की विस्तृत जानकारी देगी । इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात् आप यह जान पायेंगे कि-

- एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता की प्रमुख विशेषताएं कौन-कौन सी हैं?
- एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता के अंतर्गत मांग व लागत वक्रों की प्रकृति कैसी होती हैं ?
- अल्पकाल में फर्म की साम्य दशाओं की व्याख्या कर पायेंगे अर्थात आप यह जान सकेंगे कि प्रतियोगिता की स्थिति के अंतर्गत कीमत निर्धारण किस प्रकार होता हैं?

- दीर्घकाल में फर्म की साम्य दशाओं की व्याख्या कर पायेंगे अर्थात् आप यह भी जान पायेंगे कि दीर्घकाल के अंतर्गत एक एकाधिकारी प्रतियोगी फर्म किरन प्रकार कीमत का निर्धारण करती हैं?
- समूह साम्य की अवधारणा के संबंधों में भली-भांति जानकारी प्राप्त कर पायेंगे ।
- यह जान सकेंगे कि एकाधिकारी प्रतियोगिता की दशा किन-किन बिंदुओं के आधार पर पूर्ण प्रतियोगिता तथा एकाधिकार की दशा से भिन्न हैं?

13.1 प्रस्तावना

अपनी पिछली इकाईयों में पूर्ण प्रतियोगिता तथा एकाधिकार की दशा वाले बाज़ारों के विषय में अध्ययन किया हैं । पूर्ण प्रतियोगिता के अंतर्गत एक फर्म या एक उत्पादक का स्थान अत्यन्त गौण होता हैं । ऐसे बाजार में वस्तु की कीमत का निर्धारण उसकी कुल मांग व कुल पूर्ति के साम्य के आधार पर किया जाता है । एक पूर्ण प्रतियोगी फर्म अपने ग्राहकों से वही कीमत वसूल कर सकती हैं जो उद्योग द्वारा निर्धारित की गई हैं । फर्म की अपनी कोई मूल्य नीति नहीं होती । पूर्ण प्रतियोगिता के सर्वथा विपरीत दशा एकाधिकार की है । इस दशा में बाजार में किसी वस्तु का केवल एक ही विक्रेता या उत्पादक मौजूद रहता है और वही वस्तु की कीमत का निर्धारण करता है । चूंकि एकाधिकार की दशा में नई फार्मों के प्रवेश पर प्रभावपूर्ण रूकावटें होती हैं, अत: दीर्घकाल में भी एकाधिकारी फर्म असामान्य लाभ ही प्राप्त करती हैं ।

परंतु व्यवहार में देखा जाये तो बाजार में न तो पूर्ण प्रतियोगिता की स्थिति पाई जाती है और न ही पूर्ण एकाधिकार की स्थिति । वास्तविक जीवन में तो इन दोनों दशाओं के बीच की स्थिति देखने को मिलती हैं । एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता बाजार की एक मिश्रित दशा है जिसमें एकाधिकार व पूर्ण प्रतियोगिता दोनों के कुछ गुण देखने को मिलते है । आप इस इकाई में पढ़ेंगे कि प्रत्येक फर्म किसी अर्थ में अंशतः एकाधिकारी है तथा अंशतः प्रतियोगिता की स्थिति में होती है । ऐसे बाजार को एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता का नाम दिया जा सकता है ।

13.2 एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता का अर्थ (Meaning of Monopolistic Competition)

एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता बाजार संरचना की अपवादात्मक स्थितियां हैं । पूर्ण प्रतियोगिता की स्थिति तो काल्पनिक हैं, वास्तविक जीवन में हम इसे नहीं पाते हैं लेकिन अपूर्ण प्रतियोगिता या एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता की स्थिति वास्तविक जीवन मे पाई जाती है और उपर्युक्त दोनों स्थितियों के मध्य की स्थिति हैं ।

सन् 1993 मे हारवर्ड विश्वविद्यालय के **ई. एम. चेम्बर लिन** ने एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता के सिद्धान्त का प्रतिपादन किया । एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता से आशय उस बाजार स्थिति से है जहां विदेशी वस्तुओं के अनेक क्रेता होते हैं । स्टोनियर और हेग के अनुसार -अपूर्ण प्रतिस्पर्धा की दशा में अधिकांश उत्पादकों की वस्तुएं उनके प्रतिद्वंदियों की क्रियाएं उनके लाभ को कैसे प्रभावित करेंगी । आर्थिक सिद्धांत में इस तरह की स्थिति का विश्लेषण एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता अथवा समूह संतुलन के अंतर्गत किया जाता है । इनमें से एक सी वस्तुएं बनाने वाली फार्मों में प्रतियोगिता पूर्ण न होकर तीव्र होती है । अर्थात एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता से

आशय उस बाजार संरचना से है जहां अधिक संख्या में विक्रेता निकट स्थानापन्न वस्तुओं करते हैं परंतु वे पूर्ण स्थानापन्न वस्तुएं नहीं होती हैं ।

लेफ्टविच के अनुसार 'एकाधिकारात्मक प्रतिस्पर्धा के बाजार में एक विशेष किस्म की वस्तु के अनेक विक्रेता होते हैं और एक विक्रेता की वस्तु किसी न किसी रूप में दूसरे विक्रेता की वस्तु से भिन्न होती हैं । जब विक्रेताओं की संख्या इतनी अधिक होती है कि एक विक्रेता के कार्यो का दूसरे विक्रेता पर कोई स्पष्ट प्रभाव नहीं पडे तो वह एकाधिकारात्मक प्रतिस्पर्धा का रूप बन जाता हैं ।'

लिभाफ्सकी के अनुसार'एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता आज उन मामलों से संबंधित है जिसके अंतर्गत बड़ी संख्या में विजातीय या अल्प विभेदी उत्पादों का विक्रयण करते हैं तथा स्वतंत्र प्रवेश अस्तित्व में होता हैं ।' इस प्रकार अपूर्ण प्रतियोगिता, एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता की अवधारणा से अधिक विस्तृत एवं व्यापक है । अपूर्ण प्रतियोगिता के मुख्य प्रकार- एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता और अल्पाधिकार हैं । वास्तव में एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता अपूर्ण प्रतियोगिता का ही एक हिस्सा है क्योंकि ई. एच. चेम्बर लिन ने एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता सिद्धान्त में भी इसी तथ्य का समर्थन किया हैं ।

13.3 एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता की विशेषताएँ (Characteristics of Monopolistic Competition)

एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता की निम्नलिखित मुख्य विशेषताएं हैं :

1. **विक्रेताओं की अधिक संख्या** एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता मे उत्पाद से संबधित विक्रेताओं की संख्या अधिक होती है लेकिन कोई भी विक्रेता कुल उत्पादन का इतना अधिक हिस्सा उत्पादित नहीं करता कि बाजार में नियंत्रण कर सके । इन परिस्थितियों मे स्वाभाविक है कि प्रत्येक नहीं करता कि बाजार में नियंत्रण कर सके । इन परिस्थितियों में स्वाभाविक है कि प्रत्येक इकाई छोटी होगी और उनमें से प्रत्येक की अपनी स्वतंत्र नीति होगी ।

2. **विभेदी उत्पाद** एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता में प्रत्येक विक्रेता का उत्पाद दूसरे विक्रेता से भिन्न होता है । यद्‌यपि ये वस्तुएं एक-दूसरे की निकट स्थानापन्न होती हैं, तथापि वे पूर्ण स्थानापन्न नहीं होती हैं ।

3. **फर्म के प्रवेश एवं निकास की स्वतंत्रता** एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता में सरल उत्पादन तकनीक, छोटे आकार की फर्म तथा कम पूंजी की आवश्यकता के कारण फार्मों के प्रवेश एवं निकास में कठिनाई नहीं आती हैं । वास्तव में नई फर्मो के प्रवेश में कमी लाने की अपेक्षा वस्तु विभेद बढ़ते जाने की ही संभावना होता हैं ।

4. **फर्मो की परस्पर निर्भरता का अभाव** एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता में प्रत्येक फर्म की अपनी मूल्य नीति, उत्पादन नीति मांग पूर्वानुमान तथा लागत तालिका होती हैं । अल्पाधिकार की अपेक्षा इस स्थिति में प्रत्येक फर्म स्वतंत्र होती हैं । फर्मो की अधिक संख्या उनका छोटा आकार, वस्तु विभेद तथा उनकी कार्यप्रणाली आदि ऐसी स्थितियां है जो प्रत्येक फर्म को एक प्रकार से एकाधिकारिक स्थिति प्रदान करता हैं ।

5. **गैर कीमत प्रतियोगिता** एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता के अंतर्गत वस्तु के मूल्य को लेकर विक्रेताओं मे प्रतियोगिता नहीं होती बल्कि उनके द्वारा अपनी वस्तु 'ब्रांड' नाम व ट्रेडमार्क पर ज्यादा जोर दिया जाता हैं । गैर-कीमत प्रतियोगिता के अंतर्गत सभी विक्रेता गहन विज्ञापन अभियान द्वारा उपभोक्ताओं को यह बताने का प्रयास करते हैं, कि उनकी उत्पादित वस्तु ही ज्यादा श्रेष्ठ हैं ।

6. **विक्रयोपरान्त सेवाएं** विक्रेताओं के द्वारा अपने ग्राहकों को विक्रयोपरान्त सेवाएं प्रदान की जाती हैं । वे अपने-अपने उत्पाद की कई-कई सालों की गारंटी तथा वारंटी की स्कीम देते हैं । जीरो परसेंन्ट फाइनेंस की सुविधा उपलब्ध करवाते हैं, किराया क्रय पद्धति पर माल खरीदने की छूट देते हैं, घर बैठे अपने माल की सुपुर्दगी देते हैं । तथा बेची हुई वस्तु टिकाऊ प्रकृति की है जैसे टीवी, फ्रिज, वाशिंग, कार ,मोटर साइकिल, स्कूटर आदि तो उसकी मरम्मत जीर्णोद्धार, नवीनीकरण आदि हेतु 'फ्री कैम्प' का आयोजन किया जाता हैं ।

7. **बाजार की स्थिति का पूर्ण ज्ञान** एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता के अंतर्गत सभी क्रेताओं तथा विक्रेताओं को बाजार की दशाओं का पूर्ण ज्ञान होता है । इसका परिणाम यह निकलता है कि कोई भी विक्रेता या क्रेता इस स्थिति में नहीं होता कि वह किसी दूसरे पक्ष का शोषण कर सके ।

8. **विज्ञापन लागते** एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता के अंतर्गत प्रत्येक विक्रेता अपनी वस्तु की विशिष्टता का विज्ञापन करता है ताकि उसके द्वारा विक्रय की जाने वाली वस्तु की बिक्री बढ़ सके ।

13.4 आगम वक्रों की प्रकृति (Nature of Revenue Curves)

एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता में कोई भी फ़र्म ऐसी स्थिति में नहीं होती है की वह बाजार पर नियंत्रण कर सकें । प्रत्येक फर्म कुल उत्पादन का केवल कुछ अंश ही उत्पादित करता हैं । अत: एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता में फर्म का औसत आगम वक्र न तो पूर्णतया लोचदार होता है और न ही कठोर एवं बेलोचदार अर्थात यह न तो क्षैतिजीय रेखा होती है और न ही अत्यन्त ढाल वाला बेलोचदार वक्र दोनों के बीच की स्थिति में होता हैं । जैसा कि रेखाचित्र 13.1 में दर्शाया गया है ।

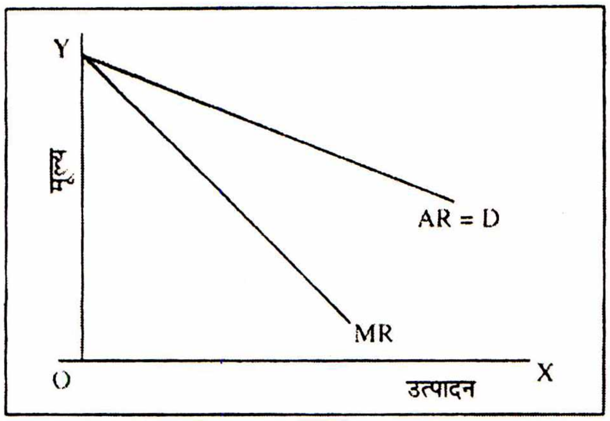

रेखाचित्र 13.1

रेखाचित्र 13.1 AR तथा MR क्रमश: एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता में औसत आगम और सीमान्त आगम वक्र हैं । औसत आगम (AR) वस्तु विभेद तथा फर्मो की अधिक संख्या के कारण लोचदार होता है । यदि फर्म वस्तु की ज्यादा मात्रा बेचना चाहते हैं तो उसे कीमत घटानी पडती हैं । एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता के अंतर्गत सीमांत आगम वक्र MR भी ऊपर से नीचे की ओर गिरता हुआ होता हैं । जब AR गिरता है तो MR तेज गति से गिरता है ।

13.5 अल्पकाल में मूल्य व उत्पादन का निर्धारण (Price and Output Determination in Short Period)

एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता मे फर्म मूल्य एवं उत्पादन का निर्धारण बाजार की अन्य स्थितियों की तरह से ही करती हैं । अल्पकाल इतना कम समय होता है कि जिसमें फर्म अपने संयत्र के आकार कोई परिवर्तन नहीं कर सकती । वह अपने उत्पाद के डिजाइन किस्म आदि में मामूली फेरबदल करके मांग की मात्रा में परिवर्तन कर सकती है । अल्पकाल में एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता के अंतर्गत एक फर्म उस समय तक उत्पादन बढ़ाती रहती है जब तक एक अतिरिक्त इकाई को उत्पन्न करने की लागत उस इकाई को बेचने से प्राप्त आगम से कम हो । जब वस्तु की सीमांत लागत तथा सीमांत आगम दोनों एक समान होते है तो फर्म साम्यावस्था में कहलाती हैं । ऐसी स्थिति में उत्पादन को कम या ज्यादा करने की प्रेरणा भी नहीं रहती । अल्पकाल में एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता की स्थिति में तीन दशाएं हो सकती हैं.

1. फर्म असमान्य लाभ कमाती हुई हो सकती है ।
2. फर्म सामान्य लाभ की स्थिति में हो सकती है अथवा
3. फर्म न्यूनतम हानि वहन करती हुई हो सकती है ।

इन स्थितियों का विश्लेषण निम्नलिखित रेखाचित्र 13.2 द्वारा किया जा सकता है ।

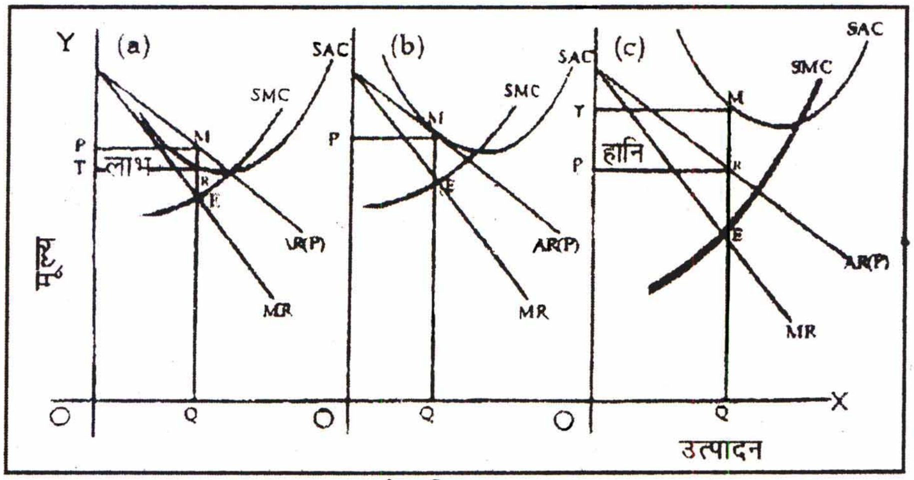

रेखाचित्र 13.2

रेखाचित्र 13.2 (a) 13.2(b) और 13.2 (c) क्रमश: अतिसामान्य लाभ, सामान्य लाभ और हानि की स्थिति को अल्पकाल में दिखाता है । AR और MR फर्म की औसत आगम और

सीमान्त आगम तथा SMC और SAC अल्पकाल में क्रमश: सीमांत लागत और औसत लागत वक्रों को दर्शाते हैं जो अल्पकाल मे एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता को दर्शाते हैं ।

1. **असामान्य लाभ की स्थिति**

रेखाचित्र 13.2 (a) अल्पकालीन सीमांत लागत वक्र एवं सीमांत आगम वक्र एक दूसरे को E बिन्दु पर काटते हैं । यहां पर ही फर्म का संतुलन स्थापित होता है । यहां कुल उत्पादन OQ के बराबर है तथा प्रति इकाई मूल्य OP है । प्रति इकाई लागत OT या RQ है । अत: मूल्य और लागत का अंतर (OP-OT=PT) के बराबर है । फर्म का प्रति इकाई लाभ न के बराबर हैं, अत: फर्म के संतुलन बिन्दु E पर कुल लाभ PT x OQ=PTRM

इस प्रकार फर्म अल्पकाल में अति सामान्य लाभ कमाती है जो कि PTRM के बराबर है।

2. **सामान्य लाभ की स्थिति**

इसी प्रकार 13.2(b) एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता मे अल्पकाल में सामान्य लाभ की स्थिति दर्शाता है । यहां पर भी संतुलन बिन्दू E है जो SMC और MR के काटने पर प्राप्त हुआ है । इस संतुलन बिन्दु E पर OP प्रति इकाई मूल्य और प्रति इकाई लागत है । यहां पर मूल्य और लागत दोनों बराबर हैं और फर्म इस स्थिति में सामान्य लाभ ही कमा रहीं है जो कि अल्पकालीन औसत लागत का भाग है ।

3. हानि की स्थिति'

रेखाचित्र 13.2(c) उस स्थिति को दर्शाता है जहां फर्म अल्पकालीन औसत लागत के बराबर भी भुगतान प्राप्त नहीं कर रहीं हैं । फलस्वरूप फर्म को हानि हो रहीं है । इस स्थिति में साम्य बिन्दु E पर है जहां अल्पकालीन सीमांत लागत वक्र (SMC) सीमांत आगम (MR) बराबर है । किन्तु इस बिन्दु पर फर्म की कीमत अल्पकालीन औसत लागत (SAC) से कम है । अत: फर्म को हानि हो रही हैं ।

इस स्थिति मे MQ या OT प्रति इकाई लागत है जो औसत आगम OPया QR से अधिक है । इन दोनों का अंतर OT-OP =PT प्रति इकाई हानि को बताता है । उत्पादन की मात्रा OQ है तथा कुल हानि PTMR के बराबर हैं । अल्पकाल में फर्म उत्पादन जारी रखेगी, इस आशा में यदि शायद दीर्घकाल में उत्पादन कम हो जाए । अल्पकाल में यदि कीमत से औसत परिवर्तनशील लागत (AVC) वसूल हो जाती है तो फर्म हानि के बावजूद उत्पादन जारी रखती हैं । क्योंकि अल्पकाल में उत्पादन बन्द करने पर भी स्थायी लागत के बराबर हानि वहन करनी पडेगी ।

निष्कर्षत: एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता में अल्पकाल में एक फर्म संतुलन में हो सकती है किन्तु फर्मो का समूह साम्य बिन्दु पर नहीं होता है । क्योंकि ऐसी बाजार संरचना मे फर्मो की संख्या निरंतर बदलती रहती हैं अर्थात अल्पकाल में एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता में फर्मो का समूह या उद्योग कभी भी संतुलन में नहीं पाया जाता हैं ।

13.6 दीर्घकाल में एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता के अंतर्गत मूल्य एवं उत्पादन निर्धारण अथवा फर्म का दीर्घकालीन संतुलन (Price and Output Determination under Monopolistic Competition in Long Run or Long Period Equilibrium of the Firm)

दीर्घकाल इतना लम्बा कल होता है की इसमें एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता की स्थिति में कार्यशील फ़र्में उत्पादन के सभी साधनों में इच्छित परिवर्तन कर सकती हैं ।

दीर्घकाल में किसी भी फर्म की उत्पादन एवं मूल्य नीति सामान्य सिद्धान्त द्वारा निर्धारित होती हैं, जहां सीमांत आगम और सीमान्त लागत एक-दूसरे के बराबर होते हैं । फर्म अपने शुद्ध लाभ को उस बिन्दु पर अधिकतम कर सकती है जहां दीर्घकालीन लागत दीर्घकालीन आगम के बराबर हो । दीर्घकाल में फर्म एवं समूह दोनों ही स्थिर संतुलन में हो सकते हैं किन्तु अल्पकाल में फर्मो के समूह संतुलन की स्थिति नहीं हो सकतीं । अर्थात् दीर्घकाल में एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता में फर्म को कुछ समायोजन निम्न प्रकार से करने पड़ते हैं-

1. बाजार में विक्रय के लिये उपलब्ध मात्रा दिए हुए मूल्य पर बाजार की मांग के बराबर होनी चाहिए ।
2. उपस्थिति फर्मो की सामान्य स्थिति में फर्मो का प्रवेश व निकास होना चाहिये ।

सामान्यतया एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता की स्थिति मे प्रवेश अवरूद्ध नहीं होता हैं । कार्यशील फर्मो के द्वारा असामान्य लाभ कमाये जाने की स्थिति में नई फर्मो का प्रवेश होगा तथा हानि होने की स्थिति में फर्म बाजार छोड़कर बाहर चली जायेंगी ।

अब हम दीर्घकाल में फर्मो के प्रवेश के खुला होने तथा प्रवेश अवरूद्ध होने की स्थितियों में साम्य का अलग-अलग अध्ययन करेंगें ।

1. प्रवेश खुला होने पर फर्म का साम्य
(Equilibrium of the Firm with Open Entry)

यदि एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता मे उपस्थित फर्म अति सामान्य लाभ कमा रही होगी तो नई फर्म उद्योग की ओर आकर्षित होंगी । जब नई फर्म समूह मे प्रवेश करेंगी तो लाभ की मात्रा स्वत: कम होने लगेंगी और अंतत: सामान्य लाभ की स्थित प्रचलित हो जाएगी । नई फर्म के प्रवेश से प्रचलित बाजार में विक्रेताओं की संख्या अधिक हो जाएगी और प्रत्येक विक्रेता पहले से कम मात्रा में अपने उत्पाद का विक्रय कर पाएगा फलस्वरूप मांग वक्र नीचे की ओर खिसक जाएगा । साथ ही नई फर्मो के प्रवेश के साथ ही उत्पादन के साधनों की मांग बढ़ने के कारण फर्म की व्यक्तिगत लागत बढ जाएगी जिससे लागत वक्र ऊपर की ओर झुकने और लागत वक्र के ऊपर की ओर उठने के दोहरे व्यवहार के कारण अति सामान्य लाभ की स्थिति समाप्त हो जाएगी । अत: दीर्घकाल मे फर्म केवल सामान्य लाभ ही कमा सकती हैं । जैसा कि रेखाचित्र 13.3 में दर्शाया गया हैं ।

नई फर्म के प्रवेश के पहले एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता मे फर्म E बिन्दु पर साम्यावस्था में हैं । जहां LMC.MR को काटता हैं और OQ उत्पादन मात्रा है OP मूल्य स्तर हैं । EQ या OC प्रति इकाई लागत है और OP प्रति इकाई लागत है और OP प्रति इकाई मूल्य है इस प्रकार PC प्रति इकाई लाभ है जो फर्म को प्राप्त हो रहा है अर्थात CPME अति सामान्य लाभ की वह कुल मात्रा हैं, जो कि दीर्घकाल में फर्म को प्राप्त हो रहीं है जबकि नई फर्म का प्रवेश नहीं हुआ हैं । जैसा कि रेखाचित्र 13.3 में दर्शाया गया हैं ।

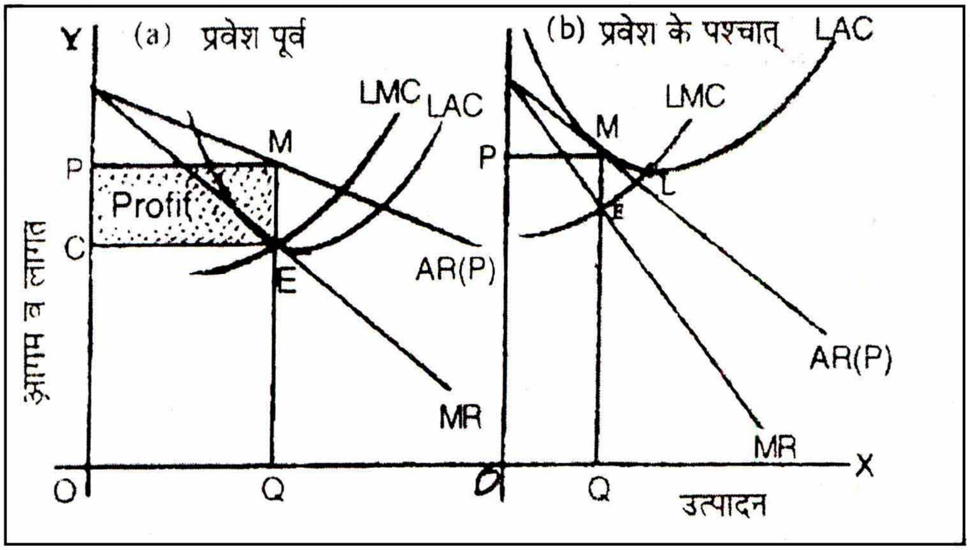

रेखाचित्र 13.3

इसी प्रकार रेखाचित्र 13.3(b) में सामान्य लाभ की स्थिति दर्शायी गई हैं जब कि स्वतन्त्र प्रवेश की स्थिति हैं । जब उपस्थित फर्म अति सामान्य लाभ कमाती हैं तो नई फर्मो के प्रवेश के साथ की मांग वक्र की ढाल नीचे की ओर झुक जाएगी और मूल्य स्तर भी नीचे आ जाएगा । परिणामतः: साम्य बिन्दु E पर मूल्य EQ होगी जिससे 0Q उत्पादन पर फर्मो को केवल सामान्य लाभ ही प्राप्त हो सकेगा ।

यदि एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता मे फर्म अति सामान्य लाभ नहीं कमाती हैं तो साथ ही वे हानि भी नहीं उठाती हैं । क्योंकि जैसे ही हानि की स्थिति उत्पन्न होती है तो वे उद्योग को छोड़ देती हैं । जिससे वस्तु की पूर्ति घट जाती है और मूल्य बढ़ जाता हैं । उत्पादन के साधनों की मांग कम होने के कारण उनका आधिक्य हो जाता हैं, और वे सस्ते हो जाते हैं । फलतः लागत और कम हो जाने के कारण हानि समाप्त हो जाती है जैसा कि रेखाचित्र 13.3(b) में दर्शाया गया हैं ।

एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता का यदि विश्लेषण किया जाए तो यह स्पष्ट होता हैं कि प्रत्येक फर्म और उद्योग अपने आदर्शतम उत्पादन क्षमता पर उत्पादन करती हुई नहीं होती हैं जैसा कि रेखाचित्र 13.3(b) में M बिन्दु है जहां पर लागत निम्नतम स्तर पर नहीं है बल्कि L बिन्दु लागत का न्यूनतम स्तर हैं, जहां फर्म को अपना उत्पादन करना चाहिए । इस प्रकार दीर्घकाल में फर्म के पास क्षमता का आधिक्य या अप्रयोगित क्षमता होती हैं ।

2. प्रवेश अवरूद्ध होने पर फर्म का साम्य

(Equilibrium of the Firm with Entry Restricted)

एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता में सामान्यतया प्रवेश खुला होता है परन्तु कभी-कभी प्रवेश अवरूद्ध होने की स्थिति भी हो सकती हैं । ऐसी स्थिति ज्यादातर किसी कानून के लागू होने के कारण होती हैं । एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता के अन्तर्गत कार्यशील फर्म यदि अपना संघ बना ले तथा वे सरकार को ऐसा विश्वास दिला दें कि वे उचित मूल्य पर वस्तु की आपूर्ति बनायें रखेगी तो हो सकता हैं कि सरकार कोई ऐसा कानून बना दे तथा नई फर्मो के प्रवेश को अवरूद्ध कर दे । ऐसी स्थिति मे प्रत्येक फर्म दीर्घकालीन लाभ को अधिकतम करने की दृष्टि से अपने उत्पादन के पैमाने को आवश्यकतानुसार समायोजित करने का प्रयास करती है । फर्म उस समय साम्य की स्थिति में कहलाती है जब फर्म का दीर्घकालीन सीमांत लागत वक्र (LAC) फर्म के दीर्घकालीन आगम वक्र (MR) को काटता हैं ।

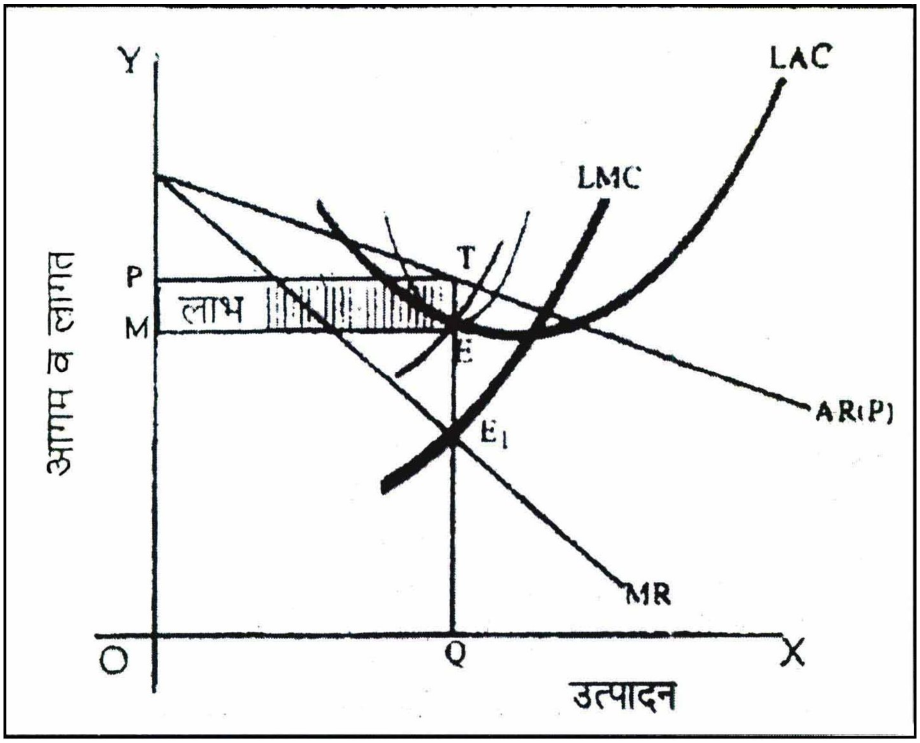

रेखाचित्र 13.4

रेखाचित्र 13.4 मे AR तथा MR क्रमश: फर्म के औसत आगम और सीमान्त आगत वक्र हैं । LAC तथा LAC क्रमश: फर्म के दीर्घकालीन सीमान्त लागत और दीर्घकालीन औसत लागत वक्र हैं । प्रत्येक फर्म अपने सीमान्त आगम को सीमान्त लागत के बराबर रखता है । रेखाचित्र 13.4 में E वह संतुलन बिन्दु है जबकि नई फर्मो को प्रवेश पर रोक या अवरोध होता है । ऐसी स्थिति में उपस्थित फर्म अति सामान्य लाभ कमाती हैं । जहां उत्पादन स्तर OQ तथा मूल्य OP के बराबर है तथा EQ या OM उत्पाद की प्रति इकाई लागत हैं । दोनों के बीच का अन्तर, अर्थात् OP-OM=OP प्रति इकाई लाभ है, अत: कुल लाभ MP+OQ=MPTE के

बराबर होगा । यह MPTE लाभ दीर्घकाल में फर्मो द्वारा, जबकि नई फर्मोका प्रवेश अवरूद्ध हैं, कमाया गया अति सामान्य लाभ है ।

13.7 समूह संतुलन (Group equilibrium)

एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता के अंतर्गत उन सभी फ़र्मों को एक समूह के रूप में जाना जाता है जो एक-दूसरे के बहुत निकटतम स्थानापन्न वस्तुओं का उत्पादन करती हैं । प्रो. चेम्बर लिन के अनुसार इन फर्मो के लिये उद्योग । शब्द का उपयोग उचित नहीं है बल्कि फर्मो का समूह (Group of Firms) शब्द का इस्तेमाल किया जाना चाहिये । प्रो. चेम्बर लिन ने सभी फर्मो को एक ही प्रकार की दशाओं में कार्य करते हुए मानकर विश्लेषण किया है यद्यपि वस्तुओं, लागतों मूल्यों तथा क्रेताओं की मांग में भिन्नता पाई जाती हैं ।

समूह-संतुलन की स्थिति तब कही जाती है जब फर्म केवल सामान्य लाभ कमा रही हों तथा फर्मो की संख्या में परिवर्तन न हो । चूंकि एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता के अंतर्गत फर्मो का स्वतंत्र प्रवेश तथा बहिर्गमन होता है, अत: यदि अल्पकाल में समूह की कुछ फर्मो को लाभ हो रहा हो तो उस लाभ से आकर्षित होकर नई फर्म समूह में प्रवेश करेंगी । इससे उत्पादन बढेगा, कीमत घटेगी तथा दीर्घकाल में सभी फर्म केवल सामान्य लाभ ही अर्जित कर पायेगी ।

इसी प्रकार अल्पकाल में हानि की स्थिति होने पर कुछ फर्म बाजार से ` कर जायेगी तथा दीर्घकाल में उत्पादन घटने व कीमत बढ़ने के कारण शेष फर्म सामान्य लाभ अर्जित करने लगेगी ।

इस प्रकार दीर्घकाल में फर्मो को केवल सामान्य लाभ ही प्राप्त होगा जिसे फर्मो का दीर्घकालीन साम्य या समूह-संतुलन कहा जाता है!

1. फर्मो की संख्या निश्चित व स्थिर हो
2. औसत आगम (अर्थात मूल्य) औसत लागत के बराबर हो अर्थात AR=AC हो तथा
3. सीमांत आगम व सीमांत लागत एक-दूसरे के बराबर हों अर्थात MR=MC हो । समूह-संतुलन को रेखाचित्र 13.5 द्वारा प्रदर्शित किया गया है -

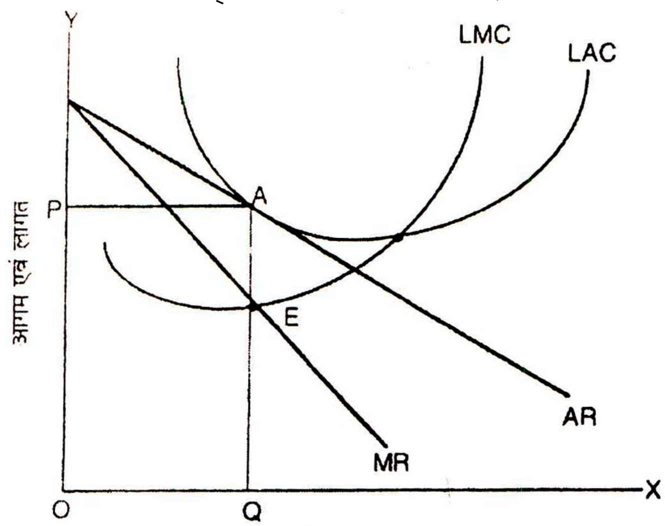

रेखाचित्र 13.5

रेखाचित्र 13.5 में LAC फर्म का दीर्घकालीन औसत लागत वक्र तथा LMC दीर्घकालीन सीमांत लागत वक्र खींचे गये हैं । LMC वक्र MR वक्र को E बिन्दु पर काटता है अर्थात यहां MR=MC की स्थिति है । अत: E बिन्दु साम्य बिन्दु कहलायेगा । इस बिन्दु के आधार पर प्रत्येक फर्म OQ मात्रा का उत्पादन करती है तथा AQ या OP प्रति इकाई कीमत (AP) वसूल करती हैं । इस बिन्दु पर फर्म को औसत लागत (AC) भी AQ भी OP ही चुकानी पड़ती है । अत: प्रत्येक फर्म को केवल सामान्य लाभ ही प्राप्त होता हैं ।

13.8 पूर्ण प्रतियोगिता तथा एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता में अन्तर (Difference between Perfect Competition and Monopolistic Competition)

क्र.सं.	अन्तर का आधार	पूर्ण प्रतियोगिता	एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता
1.	विक्रेताओं की संख्या	बाजार में विक्रेताओं की संख्या बहुत ज्यादा होती हैं।	विक्रेताओं की संख्या अपेक्षाकृत कम होती है।
2.	बाजार का ज्ञान	समस्त क्रेताओं तथा विक्रेताओं को बाजार का पूर्ण ज्ञान होता है।	समस्त क्रेताओं तथा विक्रेताओं को बाजार की समस्त दशाओं का ज्ञान नहीं होता |
3.	वस्तु विभेद	सभी विक्रेताओं के द्वारा बेची जाने वाली वस्तु समरूप होती है अर्थात वस्तु विभेद नहीं होता ।	इसके अंतर्गत वस्तु विभेद होता हैं ।
4.	मांग वक्र	प्रत्येक विक्रेता के लिये मांग वक्र पूर्णतया लोचदार होता है। अत ox-अक्ष के समांतर खींचा जाता है ।	प्रत्येक फर्म का मांग वक्र ऋणात्मक ढाल वाला अर्थात नीचे गिरता हुआ होता है ।
5.	मूल्य तथा उत्पादन की मात्रा	पूर्ण प्रतियोगिता में एकाधिकारात्मक प्रति. की तुलना में मूल्य नीचा तथा उत्पादन अधिक होता हैं	इसमें पूर्ण प्रतियोगिता की तुलना मे मूल्य ऊँचा तथा उत्पादन कम होता हैं।
6.	मूल्य नियंत्रण	पूर्ण प्रतियोगिता में कोई मूल्य नियंत्रण नही होता । अत: मांग व पूर्ति की सापेक्षिक शक्तियां ही संतुलन	कृत्रिम मूल्य नियंत्रण होने से कीमत का निर्धारण फर्म की नीति के अनुसार होता हैं ।

		स्थापित करती हैं	
7.	औसत आगम व सीमांत आगम	पूर्ण प्रतियोगिता के अंतर्गत AR=MR होते हैं	एकाधिकृत प्रतियोगिता में कीमत (औसत आगम) सीमांत आगम से अधिक होती है । अर्थात AR>MR होते हैं ।
8.	साधनों की गतिशीलता	उत्पादन के साधनों में पूर्ण गतिशीलता पाई जाती हैं।	उत्पादन के साधनों में पूर्ण गतिशीलता नहीं होती ।
9.	प्रति इकाई मूल्य	समरूप वस्तुओ का समस्त बाजार में एक ही मूल्य प्रचलित रहता हैं।	इसके अंतर्गत लगभग समरूप वस्तुओं के मूल्य भी अलग-अलग प्रचलित होते हैं ।
10.	परिवहन लागतें	पूर्ण प्रतियोगिता में परिवहन लागतें अनुपस्थित मानी जाती हैं ।	इसके अंतर्गत परिवहन लागत मौजूद रहती है।

13.9 एकाधिकार तथा एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता में अन्तर (Comparison between Monopoly and Monopolistic Competition)

क्र.सं.	अंतर का आधार	एकाधिकार	एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता
1.	विक्रेताओं की संख्या	वस्तु का केवल एक ही विक्रेता/उत्पादकता बाजार में मौजूद होता है ।	वस्तु के विक्रेताओं संख्या ज्यादा होती है ।
2.	फर्म एंव उद्योग	एकाधिकार में फर्म व उद्योग एक दूसरे से पर्यायवाची होते हैं	इसमें फर्म अनेक होती हैं अत: फर्मो को संयुक्त रूप से 'फर्मो का समूह' कहा जाता हैं ।
3.	मूल्य विभेद	इसमें विक्रेता मूल्य विभेद की नीति अपना सकता है।	प्रतियोगिता के कारण इसमें मूल्य विभेद संभव नहीं हैं ।
4.	फर्मो का प्रवेश	फर्मो के प्रवेश पर प्रभावपूर्ण रूकावटें होती हैं।	नई फर्मो के प्रवेश पर सामान्यतया रूकावटें नहीं होती हैं ।
5.	दीर्घकालीन में लाभ की स्थिति	एकाधिकारी फर्म को दीर्घकाल में भी असामान्य लाभ प्राप्त होता हैं ।	इसमें दीर्घकाल में केवल सामान्य लाभ ही प्राप्त होता हैं ।

6.	स्थानापन्न वस्तु	इस स्थिति में बाजार मे कोई स्थानापन्न वस्तु उपलब्ध नहीं होती हैं ।	इस स्थिति में निकटतम स्थानापन्न वस्तुएं उपलब्ध हो सकती हैं ।
7.	विज्ञापन लागतें	एकाधिकारी के अंतर्गत विज्ञापन लागतें नहीं होती है|	प्रतियोगिता के कारण लागतों का होना अनिवार्य हैं ।
8.	मूल्य तथा उत्पादन की मात्रा	एकाधिकार के अंतर्गत अपेक्षाकृत वस्तु का मूल्य ऊंचा तथा उत्पादन की मात्रा कम होती है ।	एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता के अंतर्गत अपेक्षाकृत वस्तु का मूल्य कम तथा उत्पादन की मात्रा ज्यादा होती हैं ।

13.10 सारांश

पूर्ण प्रतियोगिता तथा विशुद्ध एकाधिकारी बाज़ारों का वास्तव में कोई अस्तित्व नहीं होता। वस्तु बाजार में प्राय: एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता की स्थिति देखने में आती है । ऐसे बाजार में अनेक उत्पादक/विक्रेता विभेदीकृत वस्तुओं का उत्पादन करते हैं ।इनकी उत्पादन लागतों मे कोई अन्तर नहीं होता बल्कि रंग, रूप, ट्रेड, ब्रांड आदि का अंतर होता हैं । प्रत्येक विक्रेता की यह कोशिश रहती है कि वह अपने उत्पाद को विज्ञापन के माध्यम से अधिक से अधिक प्रचारित करे।

चूंकि एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता के अंतर्गत विभिन्न विक्रेताओं की वस्तुएं निकट स्थानापन्न होती हैं, अत: प्रत्येक फर्म यह सोचती है कि वह अपनी वस्तु का मूल्य थोड़ा कम करके उसकी ज्यादा मात्रा बाजार में बेचने में समर्थ हो जाएगी । ऐसी सोच के पीछे यह भ्रम रहता है कि अन्य फर्म अपनी कीमत पहले जितनी ही रखेगी । लेकिन व्यवहार में यह होता है कि अन्य फर्म भी अपनी-अपनी वस्तुओं की कीमत घटा देती हैं । परिणामस्वरूप फर्म की मांग वास्तविक मांग वक्र के अनुरूप बढ़ती है न कि प्रत्याशित मांग वक्र के अनुरूप । यह अघोषित मूल्य युद्ध तब तक जारी रहता है जब तक कि बाजार में कार्यशील सभी फर्म केवल सामान्य लाभ अर्जित न करने लगे । जब सामान्य लाभ की स्थिति उन्नत हो जाती है तो बाजार में नई फर्मो के प्रवेश तथा पुरानी फर्मो के बहिर्गमन की प्रक्रिया भी बंद हो जाती है । यह स्थिति दीर्घकाल में ही प्राप्त होती है जिसे समूह संतुलन कहा जाता है । एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता के अंतर्गत हम केवल फर्मो के समूह की ही बात कर सकते हैं किसी समरूप उत्पाद को निर्मित करने वाले उद्योग की नहीं । चेम्बर लिन ने जिन्होंने एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता के अंतर्गत हम केवल फर्मो के समूह की ही बात कर सकते हैं । किसी समरूप उत्पाद को निर्मित करने वाले उद्योग की नहीं । चेम्बर लिन ने जिन्होंने एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता के सिद्धांत का प्रतिपादन किया था, उद्योग के स्थान पर उत्पाद समूह का प्रयोग किया हैं ।

13.11 शब्दावली

उत्पाद विभेद (Product Differentiation) बाजार में क्रियाशील समस्त कार्यो द्वारा उत्पादित वस्तुएं गुण, रूप, रंग. आकार, वजन, स्वाद, ट्रेड मार्क, ब्रांड पैकिंग आदि की दृष्टि से

समरूप नहीं होती बल्कि उनमें उपरोक्त आधारों पर कोई न कोई अंतर पाया जाता है । यद्यपि ये वस्तुएं एक दूसरे की निकट स्थानापन्न होती हैं लेकिन पूर्ण स्थानापन्न नहीं होतीं ।

समूह संतुलन (Group Equilibrium) : एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता में सभी फर्म एक जैसी वस्तुओं का उत्पादन नहीं करती बल्कि वस्तु-विभेद पाया जाता है । प्रो. चेम्बर लिन के अनुसार इन फर्मो के लिये उद्योग शब्द का प्रयोग उचित नहीं है । बल्कि समूह शब्द का प्रयोग किया जाना चाहिए । समूह संतुलन की स्थिति उस समय कहलाती है जब फर्मो की संख्या में परिवर्तन न हो तथा फर्म केवल सामान्य लाभ अर्जित कर रही हों ।

13.12 स्वपरख प्रश्न

1. एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता से आप क्या समझते है ? इसके अंतर्गत उत्पादन एवं मूल्य निर्धारण कैसे होता हैं ?
2. एकाधिकार एवं एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता में अंतर स्पष्ट कीजिए । एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता के अंतर्गत उत्पादन एवं मूल्य निर्धारण कैसे होता हैं?
3. एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता की मुख्य विशेषताएँ क्या हैं? एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता के अन्तर्गत अल्पकाल एवं दीर्घकाल में फर्म की साम्यावस्था का वर्णन कीजिए ।

13.13 कुछ उपयोगी पुस्तके

- Chairman, E .H. : The Theory of Monopolistic Competition
- M.D. Agarwal. Som Deo: ‘Business Economics’(Ramesh Book Depot, Jaipur)
- N.D. Mathur : Business Economics (Shivam Book House , Jaipur)
- पी. सी. अग्रवाल एम. डी. अग्रवाल : व्यावसायिक अर्थशास्त्र (रमेश बुक डिपो, जयपुर)
- एन. डी. माथुर, ओ. पी. गुप्ता : व्यष्टि अर्थशास्त्र (शिवम् बुक हाउस, जयपुर)
- बरला, सी. एस. उच्चतर व्यष्टिगत अर्थशास्त्र (नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली)

इकाई-14

अल्पाधिकार के अंतर्गत कीमत एवं उत्पादन निर्धारण
(Price and Output Determination under Oligopoly)

इकाई की रूपरेखा

14.0 उद्देश्य

14.1 प्रस्तावना

14.2 अल्पाधिकार का अर्थ एवं परिभाषा

14.3 अल्पाधिकार की विशेषताएं

14.4 अल्पाधिकार के प्रकार

14.5 अल्पाधिकार के अन्तर्गत उत्पादन एवं मूल्य निर्धारण

14.5.1 गठबंधन के अन्तर्गत मूल्य निर्धारण

14.5.2 मूल्य नेतृत्व के अन्तर्गत मूल्य निर्धारण

14.5.3 स्वतंत्र मूल्य निर्धारण

14.6 सारांश

14.7 शब्दावली

14.8 कुछ उपयोगी पुस्तकें

14.9 स्वपरख प्रश्न

14.0 उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप :

- अल्पाधिकार का अर्थ बताने व उसे परिभाषित करने में समर्थ हो सकेंगे,
- अल्पाधिकार की विभिन्न विशेषताएं बता सकेंगे,
- अल्पाधिकार के विभिन्न प्रकारों के संबंध में जान जायेंगे,
- गठबंधन के अंतर्गत मूल्य निर्धारण कैसे होता है, यह समझ जायेंगे,
- मूल्य के अंतर्गत मूल्य निर्धारण कैसे किया जाता है, यह जान सकेंगे तथा
- स्वतंत्र मूल्य निर्धारण कैसे होता है, यह समझ जायेंगे ।

14.1 प्रस्तावना (Introduction)

आपने इससे पहले की इकाइयों में पूर्ण प्रतियोगिता ,एकाधिकार तथा एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता के बारे में पढ़ा है । इन सब विश्लेषणों के पीछे एक महत्वपूर्ण पूर्वधारणा यह है कि अन्य बातें समान रहती है । पूर्ण प्रतियोगिता बाजार की वह स्थिति होती है जिसमें वस्तु के बहुत अधिक क्रेता तथा विक्रेता बाजार में मौजूद रहते हैं तथा उनमें क्रय-विक्रय के लिए इतनी तीव्र प्रतिस्पर्द्धा होती है कि संपूर्ण बाजार में वस्तु का एक ही मूल्य प्रचलित रहता है तथा सभी फर्म उसी मूल्य पर अपना उत्पाद बेचती हैं । एकाधिकार के अंतर्गत किसी वस्तु का केवल एक ही

विक्रेता मौजूद होता है तथा उसके द्वारा उत्पादित वसा की कोई निकट स्थानापन्न भी नहीं होती। एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता से आशय बाजार की ऐसी स्थिति से हैं जहां विभेदी वस्तुओं के अनेक विक्रेता होते हैं । उत्पादकों को हमेशा इस बात का ध्यान रखना पड़ता है कि प्रतियोगियों की क्रियाएं उनके लाभ को कैसे प्रभावित करती हैं ।

बाजार की एक और स्थिति हैं अल्पाधिकार इस स्थिति में फर्म यह पूर्व धारणा नहीं करती है कि अन्य बातें पूर्ववत रहें । इसमें यह माना जाता है कि अन्य फर्म किसी फर्म द्वारा लिये गये निर्णय पर प्रतिक्रिया प्रकट करती हैं । ये क्रियाएं विभिन्न प्रकार की हो सकती हैं तथा इनके संबंध में सही-सही पूर्वानुमान लगाना आसान नहीं होता । इस प्रकार एक अनिश्चितता की स्थिति बनी रहती हैं । परिणामस्वरूप या तो विभिन्न फर्मो में अपने उत्पाद को बेचने हेतु मूल्य युद्ध (Price war) शुरू हो जाता है या फिर वे फर्म इस स्थिति से बचने के लिये आपस में किसी प्रकार का समझौता कर लेती हैं ताकि उनके लाभ पर विपरीत असर न पडे ।

14.2 अल्पाधिकार का अर्थ एवं परिभाषा (Meaning and Definition of Oligopoly)

अल्पाधिकार या Oligopoly शब्द की व्युत्पत्ति ग्रीक शब्द Oligio+ Pollein से हुई है । Oligoi का अर्थ है (a few) कुछ और Pollein का अर्थ है बेचना (to sell) अर्थात् अल्पाधिकार बाजार संरचना मे उस स्थिति को कहते हैं जिसमें किसी वस्तु के कुछ उत्पादक होते हैं । यह भी अपूर्ण प्रतियोगिता की एक स्थिति है । इनमें से प्रत्येक उत्पादक सामान्यतया कुल उत्पादन का एक बड़ा हिस्सा या अंश उत्पादित करता हैं, जिससे एक विक्रेता के उत्पादन का अन्य विक्रेताओं की कीमत पर बहुत अधिक प्रभाव पड़ता है । ये सभी उत्पादक समरूप या विभेदी वस्तुओं का उत्पादन करते हैं । जब सभी फर्म समरूप वस्तुओं का उत्पादन करते हैं तो उस स्थिति को शुद्ध अल्पाधिकार (Pure Oligopoly) तथा जब सभी फर्म भिन्न-भिन्न वस्तुओं का उत्पादन करती हैं तो उसे विभेदात्मक अल्पाधिकार कहते हैं ।

स्टिगलर के अनुसार 'अल्पाधिकार वह स्थिति होती हैं जिसके अंतर्गत एक फर्म अपनी विपणन नीति को निकट प्रतिद्वंद्वियों के अपेक्षित व्यवहार पर आधारित करती हैं ।' अर्थात अल्पाधिकार संपूर्ण प्रतियोगिता का वह रूप है जिसमें बाजार में कुछ फर्म होती हैं जो या तो समरूप या विभेदी वस्तुओं, जो निकट स्थानापन्न तो हैं परंतु पूर्ण स्थानापन्न नहीं है, का उत्पादन करती हैं ।

मेयर्स के अनुसार 'अल्पाधिकार बाजार की वह स्थिति हैं जिसमें वस्तु के कुछ ही विक्रेता होतें हैं, जो कि पूर्णतया प्रभावी कृत वस्तु का विक्रय करते हैं । उनमें से प्रत्येक उत्पादक कुल उत्पादन का इतना बड़ा भाग उत्पादित कर रहा होता हैं कि जिसमें किसी एक विक्रेता की कीमत या उत्पादन में होने वाला परिवर्तन प्रतियोगी विक्रेताओं को प्राप्त होने वाली कीमत या उत्पादन तथा उनकी विक्रय की जाने वाली मात्रा पर काफी प्रभाव डालेगा ।

इस प्रकार अल्पाधिकार वह बाजार संरचना है जिसमें वस्तु के कुछ विक्रेता होते हैं तथा प्रत्येक विक्रेता की क्रियाएं एवं प्रतिक्रियाएं एक-दूसरे के लिये महत्व रखती हैं ।

14.3 अल्पाधिकार की विशेषताएँ (Characteristics of Oligopoly)

अल्पाधिकार बाजार संरचना की विशेषताएँ निम्नलिखित हैं :

1. **विक्रेताओं की कम संख्या :** अल्पाधिकार बाजार संरचना वह है जिसमें वस्तु के कुछ ही विक्रेता होते हैं । अत: उनके मध्य प्रतियोगिता होती है और साथ ही इसका प्रभाव बाजार पर काफी पड़ता है । यहां पर कोई भी विक्रेता पूर्ण रूप से स्वतंत्र नहीं होता है । उसे दूसरे फर्म की कार्यप्रणाली का भी अध्ययन करना पड़ता है, विशेषकर दूसरे फर्मो की मूल्य नीति का ।

2. **उत्पाद या तो समरूप होते हैं या विभेदी :** एकाधिकार में विभिन्न विक्रेताओं के उत्पाद की प्रकृति समरूप भी हो सकती है या विभेदी भी । यदि उत्पाद समरूप है तो उसे शुद्ध अल्पाधिकार कहते हैं और दूसरी ओर जब उत्पाद समरूप नहीं होते अर्थात् वे आकार, किस्म, प्रभाव आदि में भिन्न-भिन्न होते है तो इसे विभेदात्मक अल्पाधिकार कहते हैं ।

3. **परस्पर निर्भरता :** अल्पाधिकार के अंतर्गत फर्म अपने आप में स्वतंत्र नहीं होती बल्कि वे परस्पर निर्भर होती हैं अर्थात वे एक दूसरे की कार्यप्रणाली से प्रभावित होती हैं क्योंकि सभी के उत्पाद एक-दूसरे के निकट स्थानापन्न होते हैं । इन उत्पादों की मांग की तिरछी लोच होती हैं तथा एक फर्म की उत्पादन एवं मूल्य नीति दूसरी फर्म को भी प्रभावित करती हैं ।

4. **मांग वक्र की अनिश्चितता :** अल्पाधिकार में मांग वक्र अनिश्चित होता हैं क्योंकि फर्मो की परस्पर निर्भरता से अनिश्चितता का वातावरण उपस्थित होता हैं । इस अनिश्चितता के कारण कोई भी फर्म बाजार में उत्पादन एवं मूल्य का अंदाजा नहीं लगा सकती हैं । इससे बाजार में अल्पाधिकारियों की मांग वक्र की अनिश्चितता और बढ़ जाती हैं ।

5. **फर्मो की द्वन्द्वात्मक प्रवृति:** अल्पाधिकार की स्थिति में कुछ विक्रेता होते हैं लेकिन प्रत्येक फ़र्म अपने लाभ को अधिकतम बनाने के लिये गठबंधन बना लेती हैं किंतु यह संभव है कि लाभ के वितरण एवं बाजार में निश्चिंत हिस्से की उपलब्धता के लिये वे आपस मे टकराए या झगड़े । इस प्रकार एक समय तो वे आपस मे सहयोग करती हैं और दूसरी परिस्थितियां उपस्थित होने पर आपस में वैमनस्य का भाव रखती हैं ।

6. **समरूपता का अभाव:** अल्पाधिकार में सभी फर्म अपने आकार में समरूप या बराबर नहीं होती हैं । कुछ फर्म तो बहुत बड़ी होती हैं और कुछ छोटी । इस प्रकार की स्थिति पूंजीवादी अर्थव्यवस्था में सामान्यतया देखने को मिलती हैं ।

7. **गलाकट प्रतिस्पर्धा:** अल्पाधिकार में प्रतिद्वंद्वी फर्मो के बीच गलाकट प्रतियोगिता होती हैं । प्रत्येक फर्म दूसरी फर्म की मूल्य नीति पर प्रतिक्रिया करके ही नीति निर्धारित करती हैं । अत: इन फर्मो के मध्य प्रतियोगिता समान रूप से चलती ही रहती हैं । प्रतिद्वंद्वी के साथ प्रतिद्वंद्विता ही अल्पाधिकार बाजार में संरचना की मुख्य विशेषता हैं ।

8. **मूल्य दृढ़ता एवं मूल्य युद्ध :** यह अल्पाधिकार की एक मुख्य विशेषता हैं । चूंकि ऐसी स्थिति में वस्तु विभेद के कारण यह संभावना होती है कि एक फर्म मूल्य दृढ़ता की नीति अपनाएं । साथ ही यदि कोई फर्म अपनी बिक्री को बढाने के लिये मूल्य को कम करती है तो अन्य फर्म भी प्रतिशोध की भावना से प्रेरित होकर अपने उत्पाद का मूल्य कम कर देती हैं । इस प्रकार 'मूल्य युद्ध' फर्मो के मध्य शुरू हो जाता है जिससे किसी भी लाभ नहीं होता हैं ।

9. **विज्ञापन लागतें :** अल्पाधिकार की बाजार संरचना में उपस्थित सभी फर्म उपभोक्ताओं को अपनी ओर आकर्षित करने के लिये विज्ञापन जैसे विक्रय लागत पर अत्यधिक खर्च करती हैं । एक फर्म का भाग्य दूसरे फर्म के उत्पादन एवं मूल्य नीति पर निर्भर करता हैं । यही कारण है कि अल्पाधिकार में फर्म विज्ञापन पर अत्यधिक खर्च करती हैं ताकि ज्यादा से ज्यादा उपभोक्ताओं को वे अपने उत्पाद की तरफ आकर्षित कर सकें ।

14.4 अल्पाधिकार के प्रकार (Types of Oligopoly)

अल्पाधिकार का वर्गीकरण अनेक आधारों पर किया जा सकता है -

(अ) **उत्पादन के आधार पर वर्गीकरण**

उत्पादन के आधार पर अल्पाधिकार को दो भागों में बांटा जा सकता हैं-

(i) **विशुद्ध अल्पाधिकार या पूर्ण अल्पाधिकार -** इसके अंतर्गत सभी प्रतियोगी फर्म एक जैसी वस्तुओं का उत्पादन या विक्रय करती हैं । इस समरूप अल्पाधिकार भी कहा जा सकता हैं ।

(ii) **विभेदात्मक अल्पाधिकार या अपूर्ण अल्पाधिकार-** इसके अंतर्गत सभी फर्म वस्तु विभेद की नीति का अनुसरण करती हैं । इनके द्वारा उत्पादित वस्तुएं निकट स्थानापन्न होती हैं लेकिन पूर्ण स्थानापन्न नहीं होतीं । वस्तुओं के रूप, रंग, आकार, स्वाद आदि में कोई न कोई भिन्नता पाई जाती हैं ।

(ब) **मूल्य नेतृत्व के आधार पर वर्गीकरण**

मूल्य नेतृत्व के आधार पर भी अल्पाधिकार को दो भागों में विभाजित किया जा सकता हैं-

(i) **आंशिक अल्पाधिकार -** यह अल्पाधिकार की एक ऐसी स्थिति है जिसके अंतर्गत संपूर्ण उद्योग मे किसी एक या कुछ फर्मो का मूल्य निर्धारण में खाना ज्यादा प्रभाव होता है कि अन्य फर्मो को उनका अनुसरण करना पडता हैं ।

(ii) **पूर्ण अल्पाधिकार -** इसके अंतर्गत अपने उत्पाद के मूल्य निर्धारण हेतु फर्म अन्य फर्मो पर निर्भर नहीं रहती बल्कि स्वतंत्र रूप से निर्णय लेती हैं ।

(स) समझौता के आधार पर वर्गीकरण

समझौता के आधार पर अल्पाधिकार को दो भागों में बांटा जा सकता हैं-

(i) **गठबंधन युक्त अल्पाधिकार -** गठबंधन युक्त अल्पाधिकार वह है जिसके अंतर्गत उद्योग में लगी फर्म किसी औपचारिक अथवा अनौपचारिक समझौता के अंतर्गत अपना कोई संघ बना लेती हैं । यह गठबंधन भी दो प्रकार का हो सकता हैं । प्रथम पूर्ण गठबंधन जिसके अंतर्गत किसी केन्द्रीय कार्टेल की स्थापना की जाती हैं । द्वितीय अपूर्ण गठबंधन जिसके अंतर्गत उद्योग में लगी फर्म किसी प्रमुख फर्म के मूल्य नेतृत्व को स्वीकार कर लेती हैं तथा मूल्य के लिये उसका अनुसरण करती हैं ।

(ii) **गठबंधन विहीन अल्पाधिकार -** इसके अंतर्गत फर्म किसी समझौते से नहीं बंधती बल्कि स्वतंत्र रूप से कार्य करती हैं । इसका परिणाम यह निकलता है कि फर्मो को प्रतियोगिता के कारण कम लाभ होता है ।

14.5 अल्पाधिकार के अन्तर्गत उत्पादन एवं मूल्य निर्धारण (Output and Price Determination under Oligopoly)

सामान्यता एक फ़र्म संतुलन में होती है जहां उसका सीमान्त लागत वक्र सीमान्त आगम वक्र होता है तथा मूल्य को औसत आगम वक्र या मांग वक्र के द्वारा दिखाया जाता हैं । लेकिन अल्पाधिकार में फर्मो की परस्पर निर्भरता के कारण तथा मांग वक्र की अनिश्चितता के कारण ऐसा संभव नहीं होता है । साथ ही विशिष्ट वस्तु के उत्पादन में सामान्य लागत को वितरित करने में आनी वाली कठिनाई के कारण कोई एक निश्चिंत लागत वक्र नहीं होता है । अल्पाधिकार में उत्पादन एवं मूल्य निर्धारण निम्नलिखित तीन स्थितियों में हो सकता हैं -

14.5.1 गठबंधन के अन्तर्गत मूल्य निर्धारण

14.5.2 मूल्य नेतृत्व के अन्तर्गत मूल्य निर्धारण

14.5.3 स्वतंत्र मूल्य निर्धारण

14.5.1 गठबंधन के अंतर्गत मूल्य निर्धारण (Price Determination under Collusion)

गठबंधन या कार्टेल विभिन्न फर्मो का संयोग है जिसका उद्देश्य बाजार में प्रतिद्वंद्वी शक्तियों के प्रभाव को कम करना होता है । प्रत्येक फर्म व्यक्तिगत रूप से जो एक निश्चिंत उद्योग में कार्यरत होती हैं एक केन्द्रीय शक्ति के समक्ष आत्मसमर्पण करती हैं कि उनके पक्ष में वह मूल्य एवं उत्पादन स्तर का निर्धारण करें । अर्थात् कार्टेल या गठबंधन में अल्पाधिकार एक एकाधिकारी शक्ति को मान लेते हैं, जो उनके समान उत्पाद का मूल्य एवं उत्पादन का निर्धारण कर सकें । इस बाबत किसी न किसी प्रकार का औपचारिक या अनौपचारिक समझौता हो जाता हैं । गठबंधन को दो भागों में विभाजित किया जा सकता है - पूर्ण गठबंधन या अपूर्ण गठबंधन ।

1. **पूर्ण गठबंधन -** केन्द्रीकृत या पूर्ण कार्टेल पूर्ण गठबंधन का एक असीम रूप हैं । यह वह व्यवस्था होती है जिसमें विभिन्न फर्म अपने प्रबंध कुछ निर्णय एवं कार्य एक गठबंधन को अपने लाभ की स्थिति में सुधार के उद्देश्य से हस्तांतरित कर देती हैं । इसका उद्देश्य लाभ को अधिकतम करना होता है । इसकी प्राप्ति के लिये केन्द्रीय संगठन द्वारा वस्तु का मूल्य, उत्पादन की मात्रा तथा व्यक्तिगत फर्मो के उत्पादन का कोटा निर्धारित किया जाता है । जब पूर्ण गठबंधन के अंतर्गत केन्द्रीय कोर्टल की स्थापना हो जाती है तब अल्पाधिकार एकाधिकार में बदल जाता है । इस स्थिति को रेखाचित्र 14.1 द्वारा दर्शाया जाता हैं ।

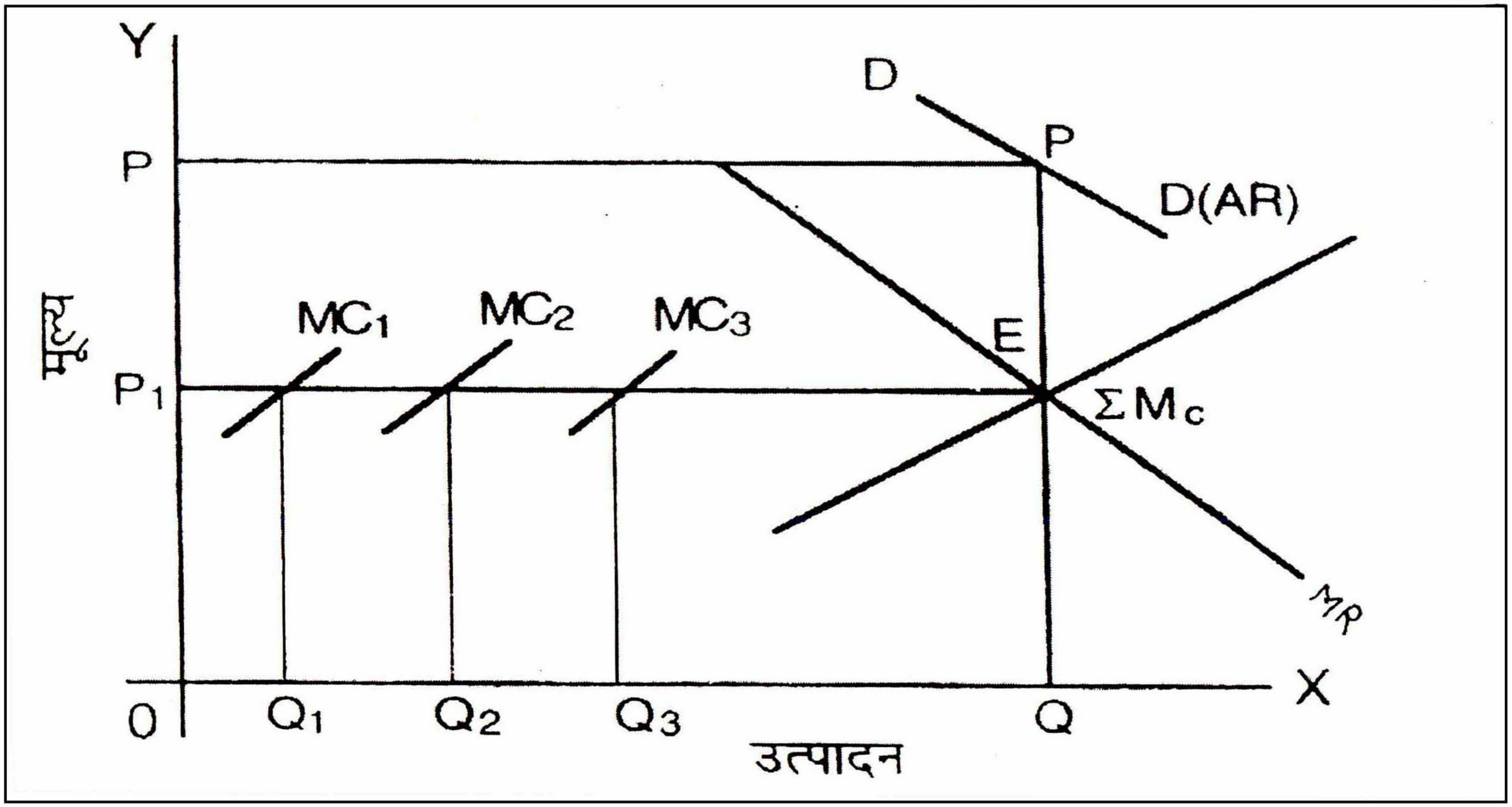

रेखाचित्र 14.1

उपर्युक्त रेखाचित्र 14.1 में DD उद्योग का मांग वक्र है और MR तत्सम्बन्धी सीमान्त आगम वक्र जो कि उद्योग के A, B,C, तीन फर्मो की स्थिति बताता है । OP1 मूल्य पर इन फर्मो का लागत वक्र क्रमश: MC1 MC2 तथा OQ3 उत्पादन करती है

इन सभी वक्रों के योग को दर्शाता है जो कि सीमान्त आगम वक्र को E बिन्दु पर काटता हैं । जहां उत्पादन स्तर OQ के बराबर है तथा मूल्य स्तर OP1 इस प्रकार उद्योग में उपस्थिति सभी फर्म पूर्ण गठबंधन में OQ उत्पादन करती हैं क्योंकि MC जहां पर MR के बराबर है वह बिन्दु हैं EP1 इस प्रकार A-OQ1, B-OQ2 तथा C-OQ3 उत्पादन स्तर रखेगी । OQ इन्ही तीनों लिए गए फर्मो के उत्पादन का समग्र उत्पादन स्तर हैं । (OQ1+OQ2+OQ3=OQ) यही उद्योग का उत्पादन स्तर हैं । परिणामस्वरूप उद्योग को अधिकतम लाभ प्राप्त होता हैं किन्तु यह आवश्यक नहीं है कि प्रत्येक फर्म को लाभ में कोटा/अंश बराबर ही प्राप्त हो । यह फर्मो के आपसी समझौते तथा उनके सापेक्षिक मोलतोल की शक्ति करता है और इसी पर फर्मो के लाभ की मात्रा निर्भर करती हैं ।

2. **अल्पाधिकार में बाजार के बंटवारे का कार्टेल -** अल्पाधिकार में बाजार के बंटवारे पर आधारित कार्टेल पूर्ण गठबंधन का ही रूप हैं । इसके अंतर्गत बिक्री के लिये कुल बाजार को उपस्थित फर्मो के मध्य बराबर-बराबर बांट दिया जाता है । विभेदात्मक अल्पाधिकार में उद्योग में उपस्थित सभी फर्म समान मूल्य वसूल करने के लिये गठबंधन करती हैं जो सभी फर्मो को मान्य होता है । वे परस्पर समझौते के अनुसार बाजार के आपस में विभाजित कर लेती हैं और अपनी बिक्री के अनुसार लाभ समझौते के अनुसार बाजार को आपस में विभाजित कर लेती हैं और अपनी बिक्री के अनुसार लाभ प्राप्त करती हैं । सभी फर्मो का मांग वक्र उद्योग का एक हिस्सा होता है, जैसा कि रेखाचित्र 14.2 में दर्शाया गया हैं ।

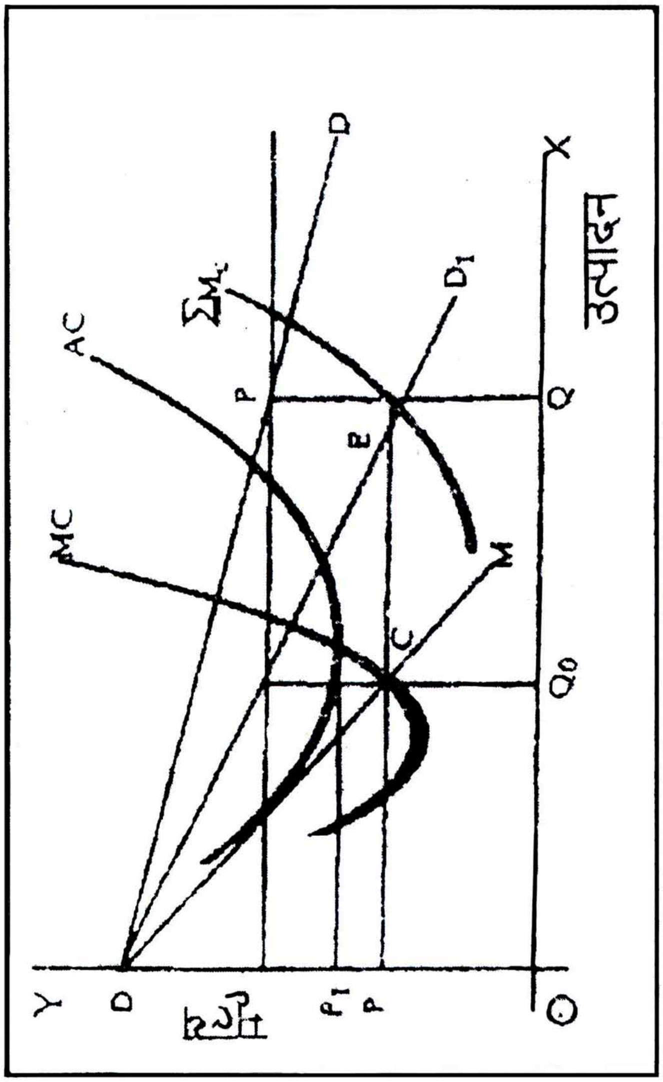

रेखाचित्र 14.2

जब बाजार को बराबर हिस्सेदारी के आधार पर विभाजित किया जाता है तो DD उद्योग का मांग वक्र है और MR तत्सम्बन्धी सीमांत आगम वक्र है । चित्र में इसे DD1 के द्वारा दिखाया गया हैं । $\sum MC$ उद्योग के सीमांत लागत का सकल योग दर्शाता हैं । MR वक्र को DD1$\sum MC$ को Eबिन्दु पर काटता है । फलतः OP मूल्य और OQ उत्पादन मात्रा निर्धारित होती हैं । ऐसी स्थिति में उद्योग का कुल उत्पादन OQ फर्मो के बीच बराबर बांटा जाता है । फर्म के MC वक्र C बिन्दु पर काटता है जो उद्योगों के कुल उत्पादन का आधार है और OQ0 के द्वारा दर्शाया गया हैं । (OQ0+Q0=OQ) इस प्रकार फर्म कुल उत्पादन के समान मात्रा की हिस्सेदारी करती हैं । प्रत्येक फर्म अपने इस हिस्से का गोपनीय रूप में मूल्य रियायत प्रदान कर बढ़ाने का प्रयास करती है जो कि मांग लागत स्थिति मे परिवर्तन उत्पन्न कर देता है तथा फर्मो के मध्य मूल्य भिन्नता सामान्य हो जाती है और अन्ततः उनके द्वारा किया गया समझौता एक दिखावा मात्र बनकर रह जाता है । फलस्वरूप सभी फर्म स्वतंत्र अल्पाधिकारी के रूप में कार्य करने लगती हैं ।

14.5.2 मूल्य नेतृत्व के अन्तर्गत मूल्य निर्धारण (Price Determination under Price Leadership) - मूल्य नेतृत्व अपूर्ण गठबन्धन का एक रूप है । इसके अन्तर्गत उद्योग मे उपस्थित एक बडी फर्म जो अन्य फर्मो पर अपना प्रभाव डालने में सक्षम रहती हैं, अन्य फर्मों को अपने नेतृत्व में चलने के लिये प्रभावित कर लेती हैं । कभी-कभी सभी फर्म एकत्रित होकर एक प्रभावी फर्म से निश्चित समझौता करती हैं कि वे नेतृत्व करने वाली फर्म द्वारा उत्पादित वस्तु समरूप भी हो सकती है और विभेदी भी अर्थात निकट स्थानापन्न भी, किन्तु उनका उत्पाद मूल्य नेतृत्व करने वाली फर्म के सामान ही होगा । उदाहरण के लिये मूल्य नेतृत्व वाले उद्योग हैं सीमेंट, सिगरेट, मैदा, आटा, खाद, पेट्रोलियम, इस्पात आदि । मूल्य नेतृत्व विभिन्न प्रकार के हो सकते हैं । :

1. इस स्थिति में कोई प्रभावी फर्म नहीं होती हैं, केवल एक दाब मापी मूल्य होता है जिसका निर्धारण निपुणतम फर्म द्वारा मांग, लागत स्थितियों आदि को ध्यान में रखकर किया जाता है तथा अन्य सभी फर्म उस मूल्य का अनुसरण करती हैं ।
2. जब मूल्य प्रभावी फर्म द्वारा घोषित किया जाता है तब इस स्थिति को हम प्रभावकारी मूल्य नेतृत्व कहते हैं । इसे आशिक एकाधिकारात्मक मूल्य नेतृत्व भी कहते हैं ।
3. ऐसा संभव है कि प्रभावी फर्म अपने लाभ को अधिकतम बनाने के लिये मूल्य निर्धारण करे तथा अन्य फर्मो को उसे मानने के लिये बाध्य करे । इस आक्रामक मूल्य नेतृत्व कहते हैं । कभी-कभी प्रभावी फर्म इतना कम मूल्य भी निर्धारित कर सकती है कि कुछ फर्म उद्योग छोड़कर ही चली जाएं ।

प्रभावी फर्म की नेतृत्व शक्ति का परीक्षण तो इसी आधार पर होता है कि उसके नेतृत्व को अन्य फर्म कितना स्वीकार करती है या मान्यता देती हैं । जैसे ही फर्म प्रभावी फर्म को मान्यता देना समाप्त करती हैं प्रभावी फर्म द्वारा बनाया गया मूल्य नेतृत्व मॉडल अपनी महत्ता खो देता है । इसके अतिरिक्त अल्पाधिकार में प्रत्येक फर्म का अपना भिन्न-भिन्न लागत वक्र होता है और यदि अल्पकालीन लाभ समान मूल्य से प्राप्त नहीं हो रहा हो तो ऐसी स्थिति भी मूल्य नेतृत्व में उत्पन्न हो सकती है । मूल्य नेतृत्व करने वाली फर्म को मूल्य निर्धारित करते समय निम्न बातों का ध्यान रखना चाहिए:

1. जब मूल्य घोषित किया जाए तो अन्य फर्मो की प्रतिक्रिया ।
2. मूल्य नेतृत्व वाली फर्म के उत्पाद एवं प्रतियोगी फर्मो के उत्पाद के बीच प्रतिस्थापन लोच ।
3. प्रतियोगी फर्मो की नीति का ज्ञान ।

मूल्य नेतृत्व में मूल्य निर्धारण का निरूपण निम्नलिखित रेखाचित्र द्वारा भली भांति किया जा सकता हैं

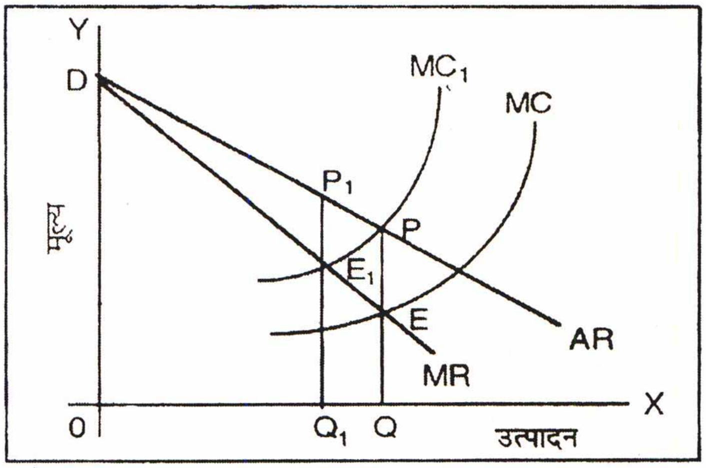

रेखाचित्र 14.3

उपर्युक्त रेखाचित्र में दो फर्म A एवं B हैं । MC और MC1 क्रमश: इनके सीमान्त लागत वक्र हैं तथा AR और MR इनके औसत आगम वक्र एवं सीमान्त आगम वक्र हैं । फर्म का सीमान्त लागत वक्र MC और सीमान्त आगम वक्र MR एक दूसरे का E बिन्दु पर काटते हैं जो कि संतुलन स्थापित करता हैं । यहां पर उत्पादन स्तर OQ है तथा मूल्य स्तर OP हैं । इसी प्रकार फर्म B के लिये संतुलन बिन्दु E1 है जहां उसकी सीमान्त लागत MC और सीमांत आगम एक-दूसरे के बराबर है । उत्पादन स्तर OQ1 है तथा मूल्य स्तर P1Q1 है । यदि हम दोनों की तुलना करें तो फर्म A का मूल्य स्तर फर्म B के मूल्य स्तर से कम हैं लेकिन उत्पादन मात्रा या स्तर फर्म A का अधिक है । अत: फर्म A मूल्य का नेतृत्व करेगी और मूल्य तथा उत्पादन नीतियों का निर्धारण करेगी तथा अल्पाधिकार में मूल्य नेतृत्व के अन्तर्गत उपस्थित अन्य फर्म उसका अनुसरण करेंगी ।

14.5.3 स्वतंत्र मूल्य निर्धारण नीति (Free Price Determination Policy) - अल्पाधिकार बाजार संरचना में प्रत्येक फर्म स्वतंत्र मूल्य एवं उत्पादन नीति अपनाने का प्रयास करती है । प्रत्येक फर्म द्वारा निर्धारित मूल्य, एकाधिकारिक मूल्य से कम या अधिक हो सकता है क्योंकि प्रत्येक फर्म का उत्पादन विभेदी होता है । ऐसी स्थिति के आधार पर प्रतियोगितात्मक मूल्य निर्धारित करने के लिये फर्मो के मध्य 'मूल्य युद्ध' प्रारंभ हो जाता है । अत: मुख्य रूप से दो सीमाओं के बीच मूल्य तय होता है । इसकी ऊपरी सीमा है एकाधिकारी मूल्य और न्यूनतम सीमा उस वास्तविक मूल्य द्वारा निर्धारित होती है जो अल्पाधिकारिक स्थितियों के अंतर्गत निर्धारित होती है । ऐसा कोई भी सरल एवं सामान्य सिद्धान्त नहीं है जो इस तथ्य का वर्णन करे कि वास्तविक मूल्य इस सीमा के अंतर्गत कहां निर्धारित होगा, जो कि पुन: बाजार में प्रचलित स्थितियों पर निर्भर करेगा । जहां पर सभी फर्म समरूप का उत्पादन करती हैं और प्रत्येक फर्म के पास बाजार का एक निश्चित एवं बराबर अनुपात उपलब्ध है तो उनके द्वारा ऐसी स्थिति में एक समान मूल्य नीति निर्धारित की जाएगी । किंतु यदि सभी फर्मो के उत्पाद विभेदी है तो जैसा कि पूर्व में कहा जा चुका है, प्रत्येक फर्म एक एकाधिकारी के समान अपने उत्पाद का मूल्य निर्धारित करेंगी ।

किन्तु आधुनिक अर्थशास्त्रियों का मत है कि स्वतंत्र मूल्य नीति जैसी स्थिति वास्तविक रूप में नहीं पायी जाती हैं । इसका मुख्य कारण है कुछ गलत या भ्रांतिपूर्ण मान्यताएं जैसे समरूप उत्पाद, समान लागत, समान एव आनुपातिक रूप से बांटा गया बाजार इत्यादि । अत: अल्पाधिकार में मूल्य स्थिर नहीं रहता हैं । अर्थशास्त्रियों का विचार है कि अल्पाधिकार में बाजार की स्थिति अनिश्चयात्मक होती हैं । उनका ऐसा कहने का तात्पर्य है कि अल्पाधिकार में बाजार की स्थिति अनिश्चयात्मक होती हैं । उनका ऐसा कहने का तात्पर्य है कि अन्य बाजारों के समान अवधारणात्मक उपकरण अल्पाधिकार में काम नहीं करते हैं । बाजार में इसी अनिश्चितता, असुरक्षा एवं प्रतिरोध के कारण कुछ अर्थशास्त्रियों का मत हैं कि यदि स्वतंत्र मूल्य नीति में मूल्य निर्धारण हो भी जाए तो भी वह अधिक लम्बे समय तक प्रचलित नहीं रह सकता और वह अन्य विधियों से निर्धारित हुए मूल्य द्वारा प्रतिस्थापित कर दिया जाता है । इस प्रकार बाजार की अनिश्चितता, असुरक्षा आदि के आधार पर हम कह सकते है कि स्वतंत्र मूल्य नीति के अंतर्गत अल्पाधिकारिक बाजार संरचना में मूल्य निर्धारण संभव नहीं हैं क्योंकि यह मूल्य युद्ध एवं कठोरता का वातावरण बनाता हैं ।

मूल्य युद्ध (Price War) : मूल्य युद्ध का प्रारंभ तब होता है, जब एक फर्म अपने विक्रय को बढ़ाकर अधिकतम आगम प्राप्त करने के लिये अपने उत्पाद का मूल्य कम कर देती हैं । प्रत्युत्तर में अन्य फर्म भी अपने मूल्य को कम कर देती हैं और यह प्रयत्न करती हैं । कि उनके द्वारा तय किया गया मूल्य अन्य फर्मो की तुलना में कम हो । इन्हीं परिस्थितियों में मूल्य युद्ध का जन्म होता हैं । इस स्थिति को रेखाचित्र 14.4 में भलीभाँति दर्शाया गया हैं ।

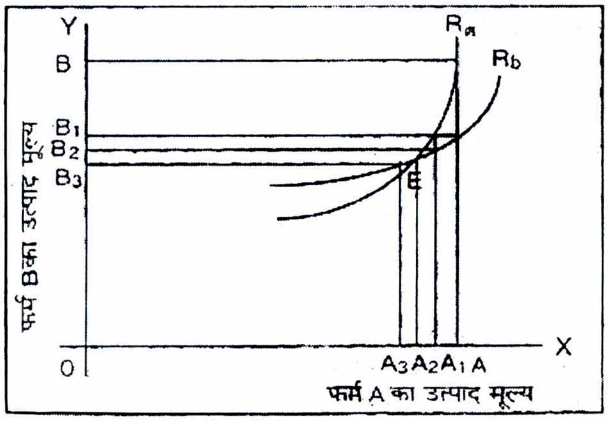

रेखाचित्र 14.4

मूल्य युद्ध की स्थिति की व्याख्या करने के लिये हम दो फर्मो को लेते हैं जिनकी प्रतिक्रिया वक्र अर्थात् मूल्य रेखा Ra एवं Rb हैं । फर्म A की मूल्य प्रतिक्रिया आधार अक्ष (X-axis) और फर्म B की मूल्य प्रतिक्रिया लम्बवत् अक्ष (Y-axis) पर दिखाई गई हैं Ra फर्म A की मूल्य चाल को दर्शाता है तथा Rb फर्म B का प्रतिक्रिया वक्र हैं । मान ले कि प्रारंभ में फर्म A अपने उत्पाद का मूल्य OA रखती है । तो प्रतिक्रिया स्वरूप फर्म B अपने उत्पाद का मूल्य OB से घटाकर OB1 कर देती है । फर्म A पुन: प्रतिक्रिया मूल्य घटाकर OB1 कर देती हैं । ऐसे में फर्म B फर्म A के इस कदम के प्रत्युत्तर में मूल्य घटाकर B2 के बराबर कर देती है ।

इस प्रकार बारम्बार मूल्य घटाने के कारण मूल्य कम करने की प्रवृत्ति मूल्य युद्ध का रूप ले लेती हैं । यह प्रवृत्ति तब तक जारी रहती है जब तक कि दोनों फर्म E बिन्दु पर नहीं पहुंच जाती हैं । वहां पर फर्म A,OA3 के बराबर मूल्य वसूलती है और फर्म B,OB3 के बराबर । इस बिन्दु के उपरान्त मूल्य कम करने की प्रवृति दोनों फर्मो के लिये खतरनाक एवं हानिप्रद होगी । इस प्रकार अल्पाधिकारिक बाजार में अनिश्चितता असुरक्षा एवं प्रतिरोध के कारण स्थिर साम्य बिन्दु का प्राप्त होना कठिन होता हैं ।

मूल्य दृढ़ता (Price Rigidity)

विकुंचित मांग वक्र (Kinked Demand Curve) को पॉल एम. स्वीजी मॉडल भी कहते है । अल्पाधिकारिक मूल्य जो कि कुछ समय तक स्थिर रहता हैं, मूल्य कठोरता के रूप में माना जाता है । यह वह स्थिति है जिसमें उत्पादन की लागत एवं मांग की स्थितियों में परिवर्तन आने पर भी फर्म की ओर से मूल्य एवं सेवाओं में कोई परिवर्तन नहीं किया जाता है । दीर्घकालीन वस्तुओं का मूल्य पूरे वर्ष भर में नहीं बदलता जैसे पंखा, रेडियों, टेलीविजन, घड़ी इत्यादि ।

मूल्य दृढ़ता के कारण

अल्पाधिकार के मूल्य दृढ़ता के लिये निम्नलिखित कारण उत्तरदायी होते हैं :

1. जबकि अल्पाधिकारिक को इस आधारभूत तथ्य का ज्ञान हो गया हो कि मूल्य युद्ध व्यर्थ होता है क्योंकि यह किसी भी फर्म के पक्ष में कार्य नहीं करता हैं ।
2. जब अल्पाधिकारी अपने वर्तमान चालू मूल्य से पूर्ण रूप से संतुष्ट हो ताकि बाजार की अनिश्चितता असुरक्षा एवं प्रतिरोध से बचा जा सके ।
3. नई फर्मो को प्रवेश से हतोत्साहित करने के लिये भी अल्पकारी मूल्य कठोरता को अपनाता हैं ।
4. यदि मूल्य निर्धारण किसी गठबंधन या समझौता के अंतर्गत किया गया है तो मूल्य युद्ध से बचने के लिये कोई भी फर्म उसमें परिवर्तन नहीं करेगी ।
5. चूंकि अत्यधिक बिक्री लागत सम्बद्ध है इसलिए कोई भी फर्म मूल्य में परिवर्तन नही करना चाहतीं
6. ऐसा संभव है कि फर्म मूल्य कम करने की अपेक्षा अपने बिक्री को बढ़ाकर लाभ को अधिकतम बना ले, अत: मूल्य कठोरता नीति अपनाई जाती हैं ।
7. अल्पाधिकारिक बाजार संरचना में मूल्य कठोरता विकुचित मांग वक्र के पक्ष में कार्य करता हैं ।

विकुंचित मांग वक्र की मान्यताएं

विकुचित मांग वक्र का विश्लेषण निम्नलिखित मान्यताओं पर निर्भर करता हैं:

1. अल्पाधिकारिक बाजार में एक स्थापित मूल्य प्रचलित होता हैं ।
2. प्रत्येक विक्रेता या फर्म का व्यवहार उसके प्रतिद्वंद्वियों के व्यवहार पर निर्भर होता हैं ।
3. यदि एक फर्म अपने उत्पाद का मूल्य कम या अधिक करती है तो उसके प्रतिद्वंद्वी भी उसका अनुसरण करते है ।

4. अल्पाधिकार में सीमान्त लागत वक्र सीमांत आगम वक्र के बिन्दु वाले क्षेत्र से गुजरता है जो इस तथ्य की व्याख्या करता है कि अल्पाधिकारिक बाजार संरचना में सीमांत लागत में परिवर्तन का उत्पादन एवं मूल्य निर्धारण पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता है ।
5. फर्म प्रतियोगी मूल्य नीति का अनुसरण करती हैं ।

मूल्य कठोरता की स्थिति का वर्णन विकुंचित मांग वक्र की सहायता निम्नलिखित रेखाचित्र 14.5 द्वारा भलीभांति किया जा सकता हैं ।

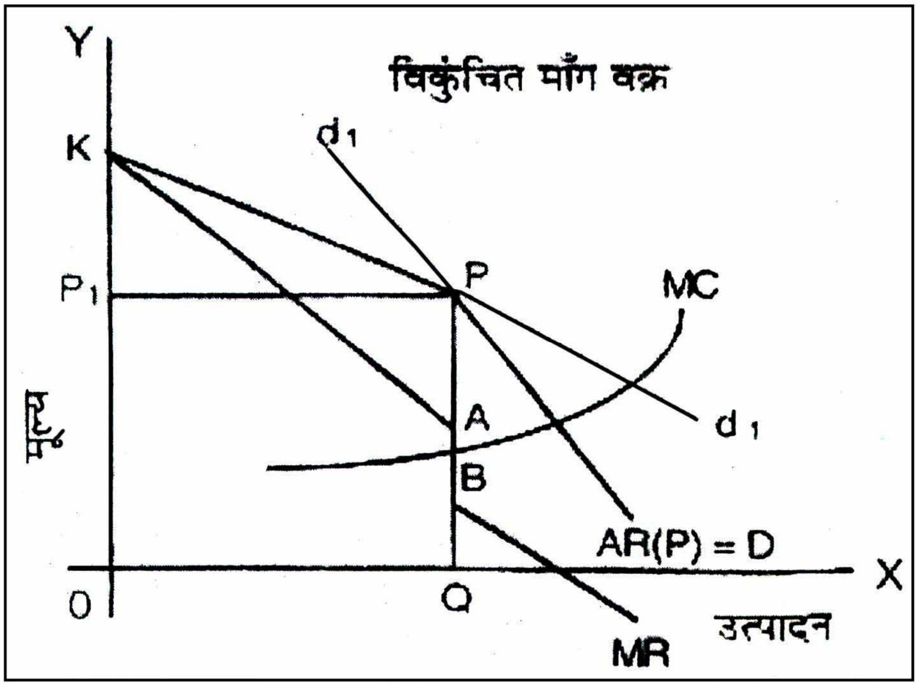

रेखाचित्र 14.5

रेखाचित्र 14.5 के अनुसार फर्म का मूल्य OP1 के बराबर हैं । KPD विकुंचित मांग वक्र (Kinked demand curve) हैं ।P बिन्दु है जो KPD मांग वक्र पर स्थित हैं । अत: अल्पाधिकारिक बाजार संरचना में OP1 बाजार में प्रचलित मूल्य हैं, जहां उत्पादन मात्रा OQ स्तर पर है और MR सीमान्त आगम वक्र हैं । सीमान्त आगम वक्र का AB अंश में निरंतरता का अभाव दर्शाता है और MC अल्पाधिकारी का सीमान्त लागत वक्र है । इस स्थिति में जबकि प्रचलित मूल्य OP1 है कोई भी कमी या वृद्धि फर्म के विक्रय को कम कर देगी और लाभ सीमित हो जाएगा । मांग वक्र के KP अंश के लोचदार होने के कारण तथा तत्संबंधी अंश KA सीमांत आगम वक्र का धनात्मक हिस्सा है । इस प्रकार मूल्य में किया गया कोई भी परिवर्तन कमी या वृद्धि बिक्री को कम कर देगा, साथ ही आगम भी घट जाएगा । फलस्वरूप लाभ भी घट जाएगा ।

इसके विपरीत यदि फर्म या विक्रेता मूल्य घटाकर OP1 से भी नीचे ले जाता है तो उसके प्रतिद्वंद्वी भी अपने उत्पाद का मूल्य कम कर देंगे । जिसके फलस्वरूप बिक्री तो बढ़ जाएगी लेकिन मुनाफा या लाभ पहले से कम हो जाएगा । इसका कारण स्पष्टतः यह है कि मांग वक्र पर PD अंश कम लोचदार है तथा B बिन्दु से नीचे का अंश सीमांत लागत वक्र पर

ऋणात्मक हैं । अर्थात् मूल्य में कमी या वृद्धि दोनों ही स्थितियों में विक्रेता को हानि ही होगी । अत: अल्पाधिकारी प्रचलित बाजार मूल्य OP1 पर ही अपने उत्पाद का विक्रय करेगा जो कि कठोर (rigid) होता है । इस प्रकार मूल्य कठोरता विंकुचन बिन्दु (Kinky point) जो कि विकुंचित मांग वक्र (Kinked Demand Curve) पर है मूल्य कठोरता का नियमन होता हैं । इस विंकुचन बिन्दु के बांई और मांग वक्र अधिक लोचदार होता है तथा दाई और बेलोचदार होता है । यही कारण है कि अधिक अल्पाधिकारिक बाजार संरचना में मूल्य कठोरता का विश्लेषण करते समय सीमांत आगम वक्र अधिक लोचदार होता है तथा दाई और बेलोचदार होता हैं । यही कारण है कि 'अधिक अल्पाधिकारिक बाजार संरचना में मूल्य कठोरता का विश्लेषण करते समय सीमांत आगम वक्र में निरंतरता का अभाव होता हैं । यदि कोण KPD समकोण हो जाता हैं । तो मांग वक्र में अंतर या रूकावट AB अधिकतम होगा । अत: जब सीमांत लागत वक्र सीमांत आगम वक्र को नीचे से काटता है तो उस बिन्दु पर मूल्य स्थिर एवं कठोर होता है यह स्थिति मांग वक्र को नीचे से काटता' है तो उस बिन्दु पर मूल्य स्थिर एवं कठोर होता है यह स्थिति मांग वक्र के AB भाग जो कि टूटा हुआ होता हैं होती हैं ।

विकुंचित मांग वक्र (Kinked Demand Curve) सिद्धांत की अपनी कमियां हैं :

1. सीमांत आगम वक्र (MR) में अंतर अस्थिर हो सकता हैं ।
2. इस सिद्धान्त से यह ज्ञात नहीं होता कि प्रारंभिक मूल्य op1 का कैसे अनुरक्षण (Maintain) होता हैं ।
3. इस अवस्था में मूल्य निर्धारण भ्रामक होता है अर्थात यह बाजार के व्यवहार का अनुसरण करता हैं ।
4. अल्पाधिकार में मूल्य की स्थिरता शंका के घेरे में रहती है क्योंकि अनेक उत्पादों का वास्तविक विक्रय मूल्य जानना संभव हैं ।
5. विंकुचन सिद्धांत मूल्य कम करने की नीति का तो अनुसरण करता हैं । लेकिन मूल्य वृद्धि को नहीं अपनाता हैं ।

14.6 सारांश

अल्पाधिकार उस स्थिति को कहते है जिसमें किसी वस्तु के कुछ उत्पादक होते है । इनमें से प्रत्येक उत्पादक सामान्यता कुल उत्पादन का एक बड़ा हिस्सा उत्पादित करता हैं जिससे अन्य उत्पादकों/विक्रेताओं की कीमत पर बहुत अधिक प्रभाव पडता हैं । फलस्वरूप प्रतियोगी फर्मो द्वारा प्रतिक्रिया होती हैं । इन प्रतिक्रियाओं के संबंध में कोई निश्चिंत सिद्धांत नहीं है, न ही इनका कोई निश्चिंत स्वरूप होती हैं । इन्हीं प्रतिक्रियाओं के आधार पर अल्पाधिकार को कई भागों में वर्गीकृत किया जा सकता हैं ।

जब फर्म विभेदित वस्तुओं का उत्पादन एवं विक्रय करती हैं तो विभेदात्मक अल्पाधिकार कहलाता है । वास्तविक विभेद किस्म अथवा डिजाइन का होता है । जब सभी फर्मो द्वारा लगभग एक जैसी वस्तुओं का उत्पादन एवं विक्रय किया जाता है तो इसे विशुद्ध अल्पाधिकार क्हा जाता है । जब उद्योग में लगी सभी फर्म किसी औपचारिक अथवा अनौपचारिक समझौते के

अंतर्गत कोई संघ बना लेती है तो गठंबंधनयुक्त अल्पाधिकार होता है लेकिन जब विभिन्न फर्मो के बीच कोई समझौता नहीं होता तो इसे स्वतंत्र अल्पाधिकार की संज्ञा दी जाती हैं ।

अल्पाधिकार के अंतर्गत उत्पादन एवं मूल्य निर्धारण मुख्यतः तीन स्थितियों में हो सकता है । गठबंधन के अंतर्गत मूल्य निर्धारण का उद्देश्य बाजार में प्रतिद्वंद्वी शक्तियों के प्रभाव को कम करना होता है । पूर्ण गठबंधन के अंतर्गत विभिन्न फर्म अपने प्रबंध संबंधी कुछ निर्णय एवं कार्य केन्द्रीय संगठन को हस्तांरित कर देती है ।ऐसी स्थिति में अल्पाधिकार एकाधिकार में बदल जाता है । बाजार के बंटवारे पर आधारित कार्टेल पूर्ण गठबंधन का ही एक रूप हैं । इसके अंतर्गत बिक्री के लिये कुल बाजार को उपस्थित फर्मो के मध्य बराबर बांट दिया जाता हैं ।

मूल्य नेतृत्व अपूर्ण गठबंधन का एक रूप हैं । इसके अंतर्गत एक बड़ी फर्म अन्य फर्मो को अपने नेतृत्व में चलने के लिये प्रभावित कर लेती हैं । प्रभावी फर्म का नेतृत्व शक्ति का परीक्षण तो इसी आधार पर होता है कि उसके नेतृत्व को अन्य हमे कितना स्वीकार करती हैं ।

विकुंचित मांग वक्र को'स्वीजी मॉडल' भी कहते हैं । इस मॉडल के अनुसार प्रतियोगी फर्मो की प्रतिक्रिया के बारे में अवधारणा यह है कि यदि एक फर्म मूल्य कम करती है तो प्रतियोगी फर्म भी मूल्य कम कर देगी और यदि फर्म मूल्य बढ़ती है तो अन्य फर्म मूल्य नहीं बढ़ायेगी । ऐसी स्थिति में फर्म के दो मांग वक्र होते हैं । जहां ये दोनों मिलते हैं वहां एक किंक बनता है और वहीं फर्म का संतुलन मूल्य होता है ।

14.7 शब्दावली

विकुंचित मांग वक्र (Kinked Demand Curve)

दो अलग लोच वाले मांग वक्रों को जोड़कर बनाया गया किसी अल्पाधिकार फर्म का मांग वक्र जिसके जोड़ने वाले बिन्दु को कि कहा जाता हैं ।

मूल्य दृढ़ता (Price Rigidity)

अल्पाधिकारिक मूल्य जो कि कुछ समय तक स्थिर रहता हैं, मूल्य दृढ़ता के रूप में माना जाता हैं ।

मूल्य नेतृत्व (Price Leadership)

यह अपूर्ण गठबंधन का एक रूप है जिसके अंतर्गत उद्योग में उपस्थित एक बड़ी फर्म अन्य फर्मो को अपने नेतृत्व में चलने के लिये प्रभावित कर लेती हैं ।

14.8 स्वपरख प्रश्न

1. अल्पाधिकार के अंतर्गत पूर्ण गठबंधन तथा अपूर्ण गठबंधन स्पष्ट कीजिये ।
2. अल्पाधिकार में किन परिस्थितियों में मांग वक्र विकुंचित (Kinked) हो जाता हैं? विकुंचित मांग वक्र का सामना करने वाली फर्म का संतुलन दर्शाइये ।
3. अल्पाधिकार की विशेषताएं क्या हैं? अल्पाधिकार में प्रभावी फर्म के मूल्य नेतृत्व का वर्णन कीजिए ।
4. अल्पाधिकार से आप क्या समझते हैं ' इसके विभिन्न रूप बताइये ।
5. क्या विकुंचित मांग वक्र समाधान अल्पाधिकार के मूल्य उत्पादन निर्णयों की संतोषजनक व्याख्या करता हैं ?

14.9 कुछ उपयोगी पुस्तकें

- पीसी अग्रवाल, एम. डी. अग्रवाल-'व्यावसायिक अर्थशास्त्र (रमेश बुक डिपो, जयपुर)
- एन. डी. माथुर, ओ पी. गुजा, 'व्यष्टि अर्थशास्त्र' (शिवम् बुक हाउस, जयपुर)
- R.H.Leftwich: The Price System and Resource Allocation(Hold , Rinehart and Winston, New York)
- A Koutsoyiannis: Modern Micro Economics (The Macmillan Press Ltd.)
- Sundaram, Vaish, 'Micro Economic Theory' (S.Chand & Co. New Delhi)
- M.D. Agarwal, Somdeo: 'Business Economics'(Ramesh Book Depot, Jaipur)
- N.D. Mathur: 'Business Economics'(Shivam Book House Jaipur)

इकाई- 15

वितरण का सीमान्त उत्पादकता सिद्धान्त
(Marginal Productivity Theory of Distribution)

इकाई की रूपरेखा

15.0 उद्देश्य
15.1 प्रस्तावना
15.2 उत्पादन साधनों के मूल्य निर्धारण के सिद्धान्त
15.3 सीमान्त उत्पादकता सिद्धान्त
1. सिद्धान्त की व्याख्या
2. सीमान्त उत्पादकता तथा सम्बन्धित धारणाएं
3. सिद्धान्त की मान्यताएं
4. फर्म का सन्तुलन
5. सिद्धान्त की प्रमुख आलोचनाएं
15.4 सारांश
15.5 शब्दावली
15.6 स्वपरख प्रश्न
15.7 कुछ उपयोगी पुस्तकें

15.0 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात् आप जान सकेगें कि :

- उत्पादन साधनों के मूल्य निर्धारण के विभिन्न सिद्धान्त कौन-कौन से है?
- वितरण के सीमान्त उत्पादकता सिद्धान्त क्या है?
- वितरण के सीमान्त उत्पादकता सिद्धान्त की मान्यताएं एवं आलोचनाएं क्या है?
- पूर्ण प्रतियोगिता तथा अपूर्ण प्रतियोगिता की बाजार स्थितियों में फर्म के साम्य का अध्ययन किस प्रकार किया जा सकता है?

15.1 प्रस्तावना

उत्पादन ,उत्पादन के साधनों के सामूहिक प्रयासों का परिणाम होता है । अतः सामाजिक उत्पत्ति का यथोचित अंश प्राप्त करना प्रत्येक साधन का अधिकार होता है । उन्नीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में अर्थशास्त्री भूमि, श्रम तथा पूँजी को ही उत्पादन के साधन मानते थे । परन्तु आगे चलकर साहस को भी उत्पादन का एक अपरिहार्य साधन माना जाने लगा । प्रारम्भ में भले ही उत्पादन के साधनों को लगान, मजदूरी, ब्याज तथा लाभ के रूप में आय प्राप्त होती थी, परन्तु आजकल विशुद्ध आर्थिक विश्लेषण में आर्थिक सिद्धान्त का सम्बन्ध केवल इस बात से नही है कि

राष्ट्रीय आय में उत्पादन के साधनों का अलग-अलग हिंसा क्या है, बल्कि इस तथ्य से है कि उत्पादन के साधनों का मूल्य कैसे निर्धारित होता है । अत: यही उस विधि का अध्ययन किया जा रहा है, जिसके द्वारा उत्पादन साधनों के मूल्य निर्धारित होते है ।

15.2 उत्पादन साधनों के मूल्य निर्धारण के सिद्धान्त (Theories of Factor Price Determination)

उत्पादन साधनों के मूल्य-निर्धारण अथवा राष्ट्रीय आय के वितरण के लिए निम्न तीन सिद्धान्तों का उल्लेख किया जाता है-

(1) प्रतिष्ठित सिद्धान्त (Classical Theory)

(2) सीमान्त उत्पादकता सिद्धान्त (Marginal Productivity Theory),

(3) आधुनिक सिद्धान्त अथवा मांग एवं पूर्ति का सिद्धान्त (Modern Theory of Distribution or Demand and Supply Theory)

इन सभी सिद्धान्तों में वितरण का सीमान्त उत्पादकता सिद्धान्त सर्वाधिक महत्वपूर्ण है जिसका हम विस्तार से अध्ययन कर सकते हैं ।

15.3 वितरण का सीमान्त उत्पादकता सिद्धान्त (Marginal Productivity Theory of Distribution)

सीमान्त उत्पादकता सिद्धान्त वितरण का एक सामान्य सिद्धान्त है । इस सिद्धान्त का प्रयोग उत्पादन के सभी साधनों के पुरस्कार निर्धारण के लिए किया जाता है । इस सिद्धान्त के विकास में जेवेन्स, विकस्टीड, मार्शल, वालरस एवं क्लार्क आदि अर्थशास्त्रियों का महत्त्वपूर्ण योगदान है । श्रीमती जोन रॉबिन्सन तथा हिक्स ने भी इस सिद्धान्त का विकास किया ।

1. **सिद्धान्त का सामान्य कथन एवं व्याख्या (General Statement and the Elucidation of the Theory) -** इस सिद्धान्त के अनुसार उत्पादन के एक साधन की कीमत उसकी उत्पादकता पर निर्भर करती है तथा इसका निर्धारण सीमान्त उत्पादकता द्वारा होता है । पूर्ण प्रतियोगिता की स्थिति में किसी साधन का पुरस्कार अल्पकाल में उसकी सीमान्त उत्पादकता से कम अथवा अधिक हो सकता है, परन्तु दीर्घकाल में यह सदैव ही साधन की सीमान्त उत्पादकता के बराबर होता है । स्टोनियार एवं हेग के शब्दों में, 'उत्पादन के साधनों की कीमत निर्धारण की कुंजी सीमान्त उत्पादकता के पास है तथा उत्पादन के किसी भी साधन का पुरस्कार अन्तत: उसकी सीमान्त उत्पादकता पर निर्भर करता है ।"

वितरण का सीमान्त उत्पादकता सिद्धान्त यह बतलाता है कि उत्पादन के साधनों का पुरस्कार उनकी उत्पादकता पर निर्भर करता है तथा वह सीमान्त उत्पादकता के बराबर होता है । उक्त कथन के प्रथम भाग के अनुसार उत्पादन के किसी भी साधन का पुरस्कार उसकी उत्पादकता पर निर्भर करता है । उत्पादन साधनों की माँग अन्य उपभोग वस्तुओं की तरह से प्रत्यक्ष माँग नहीं होती है, बल्कि अप्रत्यक्ष अथवा व्युत्पन्न माँग होती है । उत्पादन साधनों की माँग उन वस्तुओं की माँग पर निर्भर करती है, जिनका उत्पादन उनकी सहायता से किया जा सकता है । एक फर्म उत्पादन साधनों की माँग उनकी उत्पादकता के अनुसार करती है । जिस

साधन की उत्पादकता अधिक होती है, उसकी कीमत भी अधिक होती है तथा जिस साधन की उत्पादकता कम होती है उसकी कीमत भी कम होती है । उक्त कथन के दूसरे भाग के अनुसार उत्पादक साधनों की कीमत उनकी सीमान्त उत्पादकता द्वारा निर्धारित होती है । कोई भी फर्म, जो अधिकतम लाभ कमाने के उद्देश्य से कार्य करती है, वह किसी उत्पादन साधन की सेवाओं के लिए उसकी सीमान्त उत्पादकता से अधिक कीमत देने के लिए तैयार नहीं हो सकती है । क्योंकि एक फर्म साधन की सीमान्त उत्पादकता तथा साधन की सीमान्त लागत को बराबर करके ही अपने लाभ को अधिकतम कर सकती है; अत: इस सिद्धान्त के अनुसार उत्पादन साधनों की कीमत उनकी सीमान्त उत्पादकता के अनुसार चुकायी जाती है । यदि किसी साधन की कीमत उसकी सीमान्त उत्पादकता से कम होती है तो फर्म को लाभ होने के कारण वह उस साधन की अतिरिक्त इकाइयाँ काम में लेती है अर्थात अधिक इकाइयों की माँग करती है । साधन की अतिरिक्त इकाइयाँ काम पर लगाने पर उत्पत्ति ह्रास नियम की क्रियाशीलता के कारण साधन की सीमान्त उत्पादकता घटकर अन्तत: उसके पारिश्रमिक के बराबर हो जाती है । इसके विपरीत, यदि साधन की कीमत उसकी सीमान्त उत्पादकता से अधिक होती है तो फर्म हानि होने के कारण उस साधन की इकाइयों को कम करती है तथा ऐसा तब तक करती रहती है जब तक साधन की सीमान्त उत्पादकता उसकी कीमत के बराबर नहीं हो जाती है । इस प्रकार उत्पादन के प्रत्येक साधन का पुरस्कार उसकी सीमान्त उत्पादकता के बराबर होता है ।

वितरण के सीमान्त उत्पादकता सिद्धान्त के अनुसार राष्ट्रीय आय में से प्रत्येक साधन को जो पुरस्कार मिलता है, वह उसकी सीमान्त उत्पादकता के बराबर होता है । सन्तुलन की स्थिति में उत्पादन के साधनों की सीमान्त उत्पादकता हर प्रयोग में बराबर होती है, अत: उन्हें हर प्रयोग में एक समान पुरस्कार प्राप्त होता है । यदि ऐसा नहीं होता है तथा साधनों की विभिन्न इकाइयों को प्रत्येक जगह एक समान पुरस्कार नहीं मिलता है तो साधनों की कुछ इकाइयाँ कम पुरस्कार वाले उद्योग अथवा प्रयोगों को छोड़कर अधिक पुरस्कार वाले उद्योगों में जाने लगेंगी । इससे अधिक पुरस्कार वाले उद्योगों में साधनों की अधिक इकाइयों का प्रयोग होने के कारण उत्पत्ति ह्रास नियम की कार्यशीलता के फलस्वरूप साधनों की सीमान्त उत्पादकता घटेगी तथा कम पुरस्कार वाले उद्योगों से साधन की इकाइयाँ निकल जाने के कारण सीमान्त उत्पादकता बढ़ेगी और साधनों की इस पूर्ण गतिशीलता के कारण अन्तत: उत्पादन के साधनों की सीमान्त उत्पादकता सभी उद्योगों अथवा प्रयोगों में एक समान हो जायेगी और सभी उद्योगों में साधनों का पुरस्कार उनकी सीमान्त उत्पादकता के बराबर हो जायेगा ।

उत्पादन कार्य में प्रतिस्थापन का नियम कार्यशील होने के कारण उत्पादन के सभी साधनों की सीमान्त उत्पादकता सभी प्रयोगों में एक समान होती है, क्योंकि उत्पादक सीमान्त उत्पादकता के अनुसार सस्ते एवं उत्तम साधनों का प्रतिस्थापन कम लाभदायक एवं महँगे साधनों के स्थान पर करता है । साधनों के प्रतिस्थापन का यह कार्य वह तब तक करता रहता है, जब तक कि प्रत्येक साधन की सेवाओं की कीमत उसकी सीमान्त उत्पत्ति के बराबर न हो जाये । यही वितरण का सीमान्त उत्पादकता सिद्धान्त है । इस सिद्धान्त के अनुसार उत्पादन के प्रत्येक साधन को उसकी सीमान्त उत्पादकता के बराबर पुरस्कार मिलता है ।

इस सिद्धान्त के अनुसार सन्तुलन की स्थिति में निम्न तीन शर्तें पूरी होती हैं-

(1) उत्पादन के किसी भी साधन की सीमान्त उत्पादकता सभी व्यवसायों अथवा उद्योगों में एक समान होती है ।

(2) किसी एक व्यवसाय में उत्पादन के प्रत्येक साधन की सीमान्त उत्पादकता अन्य साधनों की सीमान्त उत्पादकता के बराबर होती है ।

(3) उत्पादन के किसी साधन का पुरस्कार उसकी सीमान्त उत्पादकता के बराबर होता है तथा दीर्घकाल में यह उसकी औसत उत्पादकता के भी बराबर होता है ।

2. सीमान्त उत्पादकता तथा सम्बन्धित अवधारणाएँ (Marginal productivity and Related Concepts)

सीमान्त उत्पादकता (Marginal Productivity) किसी उत्पादन प्रक्रिया में उत्पादन के अन्य सभी साधनों की मात्रा को स्थिर रखकर किसी एक साधन की मात्रा में जब एक इकाई से वृद्धि की जाती है तो उससे वस्तु के कुल उत्पादन में जो वृद्धि होती है, उस वृद्धि को परिवर्तनशील साधन की सीमान्त उत्पादकता कहते हैं । सीमान्त उत्पादकता को तीन वर्गों में बाँटा जा सकता है- (1) सीमान्त भौतिक उत्पादकता, (2) सीमान्त आगम उत्पादकता, तथा (3) सीमान्त भौतिक उत्पादकता का मुद्रा में मूल्य ।

1. **सीमान्त भौतिक उत्पादकता (Marginal Physical Productivity or M.P.P.)** जब उत्पादन के अन्य सभी साधनों को स्थिर रखकर किसी एक साधन की मात्रा में एक इकाई की वृद्धि की जाती है तो उससे वस्तु के कुल भौतिक उत्पादन में जो वृद्धि होती है उसे परिवर्तनशील साधन की सीमान्त भौतिक उत्पादकता कहते हैं । किसी भी साधन की सीमान्त भौतिक उत्पादकता उत्पत्ति के परिवर्तनशील अनुपातों के नियम के अनुसार परिवर्तित होती रहती है । यह प्रारम्भ में बढती हुई, एक बिन्दु पर अधिकतम तथा उसके बाद घटती हुई होती है । सीमान्त भौतिक उत्पादकता को प्रदर्शित करने वाली रेखा की आकृति अंग्रेजी के अक्षर U की उल्टी आकृति जैसी होती है । सीमान्त भौतिक को रेखा चित्र 15.1 में दिखाया गया है ।

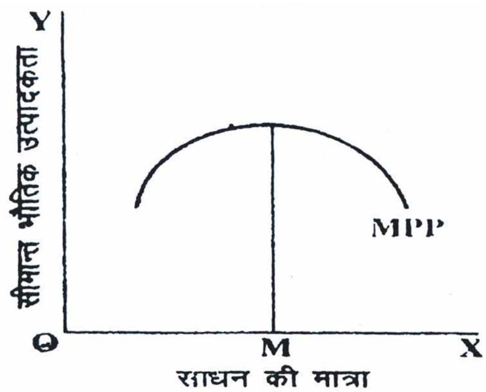

रेखाचित्र 15.1

सीमान्त भौतिक उत्पादकता की धारणा को एक उदाहरण के द्वारा भी स्पष्ट किया जा सकता है । माना कि एक उत्पादक 10 इकाई भूमि, 100 इकाई पूँजी, एक इकाई साहस तथा 200 इकाई श्रम लगाकर किसी वस्तु की 200 इकाइयाँ उत्पन्न करता है । यदि वह अन्य सभी

साधनों को स्थिर रखकर श्रम की एक और इकाई काम पर लगाकर वस्तु की 210 इकाइयाँ पैदा करता है तो यही श्रम की सीमान्त भौतिक उत्पादकता वस्तु की 210-200 = 10 इकाइयाँ होगी ।

(2) **सीमान्त आगम उत्पादकता (Marginal Revenue Productivity or M.R.P.)-** उत्पादक अथवा फर्म के लिए किसी साधन की सीमान्त भौतिक उत्पादकता अधिक महत्वपूर्ण नहीं होती है । उसके लिए तो यह बात अधिक महत्वपूर्ण होती है कि उस भौतिक उत्पादन को बेचने से उसे कितनी आगम प्राप्त होती है, अत: एक फर्म किसी भी साधन को काम पर लगाते समय सदैव इस बात में रूचि रखती है कि उस साधन की एक अतिरिक्त इकाई लगाने से उसकी कुल आगम में कितनी वृद्धि होगी अथवा उस साधन की सीमान्त आगम उत्पादकता कितनी है' एक उत्पादक द्वारा उत्पादन के अन्य साधनों की मात्रा स्थिर रखकर किसी परिवर्तनशील साधन की एक और इकाई को काम पर लगाकर उत्पादन करने एवं उत्पादन को बेचने से उसकी कुल आगम में जो वृद्धि होती है, उसे परिवर्तनशील साधन की सीमान्त आगम उत्पादकता कहते हैं ।

सीमान्त भौतिक उत्पादकता को सीमान्त आगम से गुणा करने पर सीमान्त आगम उत्पादकता प्राप्त हो जाती है । सूत्र के रूप में -

MRP= MPP x MR

यहाँ

MRP=सीमान्त आगम उत्पादकता

MPP = सीमान्त भौतिक उत्पादकता

MR= सीमान्त आगम

पूर्ण प्रतियोगिता की स्थिति में वस्तु का मूल्य फर्म के लिए दिया हुआ होता है अत: साधन की सीमान्त उत्पादकता को वस्तु के प्रति इकाई मूल्य से गुणा करके साधन की सीमान्त आगम उत्पादकता प्राप्त की जा सकती है ।

(3) **सीमान्त भौतिक उत्पादकता का मुद्रा में मूल्य अथवा मुद्रा में सीमान्त भौतिक उत्पादकता का मूल्य (Value of Marginal Physical Productivity or VMP)**- सीमान्त उत्पादकता (MPP) को वस्तु के मूल्य से गुणा करने पर मुद्रा में सीमान्त भौतिक उत्पादकता का मूल्य ज्ञात होता है । सूत्र के रूप में-

VMP=MPP x Price (or AR)

यहाँ

VMP= मुद्रा में सीमान्त भौतिक उत्पादकता का मूल्य

MPP= सीमान्त भौतिक उत्पादकता

Price= वस्तु का प्रति इकाई मूल्य

पूर्ण प्रतियोगिता तथा अपूर्ण प्रतियोगिता की बाजार दशाओं में सीमान्त भौतिक उत्पादकता, सीमान्त आगम उत्पादकता तथा मुद्रा में सीमान्त उत्पादकता का मूल्य तालिका 15.1 तथा तालिका 15.2 में गणना करके दिखाया गया है ।

अग्रलिखित तालिका 15.1 के कॉलम 5 तथा कॉलम 7 को देखने से ज्ञात होता है कि पूर्ण प्रतियोगिता की स्थिति में मुद्रा में सीमान्त उत्पादन का मूल्य एवं सीमान्त आगम उत्पादकता दोनों एक ही होता हैं ।

तालिका 15.1 सीमान्त भौतिक उत्पादकता सीमान्त आगम उत्पादकता तथा मुद्रा में सीमान्त परिवर्तनशील कुल साधन' की भौतिक इकाइयाँ उत्पादन

परिवर्तनशील साधन की इकाइयाँ	कुल भौतिक उत्पादन (किलो में)	सीमांत भौतिक उत्पादन (किलो में)	प्रति किलो मूल्य रु.	सीमांत उत्पादन का मूल्य रु .(V.M.P.)	कुल आगम रु. (T.R.)	सीमांत आगम उत्पादकता रु. (M.R.P.)
1	2	3	4	5	6	7
1	5	5	2	10	10	10
2	12	7	2	14	24	14
3	24	12	2	24	48	24
4	34	10	2	20	68	20
5	42	8	2	16	84	16
6	48	6	2	12	96	12
7	52	4	2	8	104	8
8	54	2	2	4	108	4

अपूर्ण प्रतियोगिता की स्थिति में सीमांत आगम उत्पादकता (M.R.P.) तथा मुद्रा में सीमान्त उत्पादन का मूल्य (V.M.P.) दोनों एक नहीं होते हैं, क्योंकि अपूर्ण प्रतियोगिता में फर्म को वस्तु की अधिक इकाइयाँ बेचने के लिए मूल्य कम करना पड़ता है । यह मूल्य केवल सीमान्त इकाई का ही कम नहीं करना होता है, बल्कि सभी इकाइयों का मूल्य कम करना होता है। यह तथ्य तालिका 15.2 में देखा जा सकता है ।

तालिका में कॉलम 5 तथा कॉलम 7 को देखने से ज्ञात होता है कि सीमान्त आगम उत्पादकता सीमान्त उत्पादन के मूल्य की तुलना में कम है ।

सीमान्त भौतिक उत्पादकता, सीमान्त आगम उत्पादकता तथा मुद्रा में सीमान्त उत्पादकता के मूल्य सम्बन्धी धारणाएँ समझने के बाद हम औसत आगम उत्पादकता की धारणाएँ स्पष्ट कर सकते हैं । औसत आगम उत्पादकता की दो धारणाएँ हैं- प्रथम, औसत कुल आगम उत्पादकता तथा द्वितीय, औसत विशुद्ध आगम उत्पादकता । यही इन्हें स्पष्ट किया जा सकता है-

(4) **औसत कुल आगम उत्पादकता तथा औसत विशुद्ध आगम उत्पादकता (Averae Gross Revenue Productivity, i.e. AGRP तथा Average Net Revenue Productivity**

i.e. ANRP)- किसी साधन की कुल आगम उत्पादकता में उस साधन की इकाइयों का भाग देने पर उस साधन की औसत आगम उत्पादकता प्राप्त होती है ।

तालिका 15.2 सीमांत भौतिक उत्पादकता, सीमांत आगम उत्पादकता तथा मुद्रा मे सीमांत उत्पादन मूल्य

(अपूर्ण प्रतियोगिता की स्थिति में)

परिवर्तनशील साधन की इकाइयाँ	कुल भौतिक उत्पादन (किलो में)	सीमांत भौतिक उत्पादन (किलो में)	प्रति किलो मूल्य रु.	सीमांत उत्पादन का मूल्य रु .(V.M.P.)	कुल आगम रु. (T.R.) (M.R.P)	सीमांत आगम उत्पादकता रु.
1	2	3	4	5	6	7
1	05	5	2.75	13.75	13.75	13.75
2	12	7	2.70	18.90	32.40	18.65
3	24	12	2.65	31.80	63.60	31.20
4	34	10	2.60	26.00	88.40	24.80
5	42	8	2.55	20.40	107.10	18.70
6	48	6	2.50	15.00	120.00	12.90
7	52	4	2.45	9.80	127.40	7.40

सूत्र के रूप में -

$$AGRP=\frac{TRP}{No.of\ units\ of\ the\ factor}$$

यहाँ

AGRP = औसत कुल आगम उत्पादकता

TRP= कुल आगम उत्पादकता

किसी साधन की कुल आगम धारणा दोषपूर्ण होती है, क्योंकि इस धारणा से स्पष्ट होता है जो आय प्राप्त होती है उसमें उसी साधन का योगदान होता है । यह ठीक नहीं है, क्योंकि किसी वस्तु का उत्पादन केवल परिवर्तनशील साधन के कारण ही उत्पन्न नहीं होता, बल्कि वह परिवर्तनशील साधन को स्थिर साधन के साथ प्रयोग करने पर प्राप्त होता है । इसलिए फर्म को किसी परिवर्तनशील साधन की मात्राएँ बढ़ाने पर जो आय प्राप्त होती है, उसमें से कुछ आगम अन्य साधनों (जैसे-भूमि, पूँजी, साहस आदि) के कारण प्राप्त होती है, अत: इस कुल आगम से अन्य साधनों की आय घटाई जानी चाहिए । औसत कुल आगम उत्पादकता (AGRP) की धारणा कुल आगम उत्पादकता से सम्बन्धित होने के कारण दोषपूर्ण है, अत: हमें औसत विशुद्ध आगम उत्पादकता की धारणा का अध्ययन करना चाहिए, जो कि एक अधिक शुद्ध धारणा है ।

किसी साधन की कुल आगम उत्पादकता में से अन्य साधनों की आगम का अंश घटाने पर साधन विशेष की कुल विशुद्ध आगम उत्पादकता (TNRP) ज्ञात हो जाती है तथा इस कुल

विशुद्ध आगमन उत्पादकता में साधन की इकाइयों का भाग देने पर हमें औसत विशुद्ध आगम उत्पादकता (ANRP) ज्ञात होगी ।

किसी साधन की कुल विशुद्ध आगम उत्पादकता ज्ञात करने की दो विधियाँ हैं- प्रथम विधि के अनुसार सरलता एवं सुविधा के लिए यह मान लिया जाता है कि परिवर्तनशील साधनों के साथ अन्य सहयोगी स्थिर साधनों की बहुत कम मात्रा प्रयुक्त की जा रही है, अत: इस मान्यता के कारण कुल आगम उत्पादकता में इन सहयोगी साधनों का बहुत कम अथवा नगण्य हिस्सा होगा । परिणामस्वरूप कुल आगम उत्पादकता तथा कुल विशुद्ध आगम उत्पादकता लगभग एक ही होगी, परन्तु यह विधि अवास्तविक है । दूसरी विधि, जो इससे श्रेष्ठ एवं अधिक व्यावहारिक है, के अनुसार हम किसी साधन की कुल विशुद्ध अगाम उत्पादकता ज्ञात कर सकते हैं, यदि हमें उत्पादन के प्रत्येक स्तर पर नये सहयोगी साधनों का पुरस्कार पृथक् से ज्ञात हो । इसलिए इस विधि के अनुसार एक साधन की कुल विशुद्ध आगम उत्पादकता ज्ञात करने के लिए हमें विचाराधीन साधन के प्रत्येक स्तर पर फर्म के कुल आगम से अन्य सहयोगी साधनों के पुरस्कार के बराबर मुद्रा की मात्रा घटानी पडती है । इस प्रकार प्राप्त साधन की कुल विशुद्ध आगम उत्पादकता में साधन की इकाइयों का भाग देकर औसत विशुद्ध आगम उत्पादकता (ANRP) ज्ञात कर ली जाती है । साधन की कुल विशुद्ध आगम उत्पादकता के आधार पर साधन की सीमान्त विशुद्ध उत्पादकता (Marginal Net Revenue Productivity) ज्ञात की जा सकती है । एक ही साधन परिवर्तनशील होने पर MRP तथा MNRP दोनों एक ही होते हैं ।

सीमान्त आगम उत्पादकता (MRP), औसत कुल आगम उत्पादकता (ANRP) में सीमान्त तथा औसत का सामान्य सम्बन्ध होता है, अत: MRP वक्र, AGRP वक्र तथा ANRP वक्रों को इनके उच्चतम बिन्दुओं से काटता है । इस वक्र का आधार MPP है अत: MRP वक्र भी अंग्रेजी के अक्षर U की उल्टी आकृति का होता है ।

साधन की सीमान्त आगम उत्पादकता एक फर्म के लिए साधन की माँग रेखा होती है, क्योंकि फर्म साधन की माँग उसकी सीमान्त उत्पादकता अथवा सीमान्त आगम उत्पादकता के अनुसार ही करती है ।

(5) **सीमान्त साधन लागत अथवा सीमान्त पुरस्कार (Marginal Factor Cost or Marginal Remuneration) तथा औसत साधन लागत अथवा औसत पुरस्कार** (Average Factor Cost or Average Remuneration)- उत्पादन के किसी साधन को जो पुरस्कार प्राप्त होता है, वह साधन की दृष्टि से आय है तथा फर्म की दृष्टि से लागत है । साधन बाजार में पूर्ण प्रतियोगिता होने पर प्रत्येक फर्म साधन की कुल माँग तथा कुल पूर्ति द्वारा निर्धारित कीमत पर साधन की जितनी चाहे उतनी इकाइयाँ प्राप्त कर सकती है, अत: फर्म के लिए साधन की औसत लागत (A.E.C.) वक्र एक पड़ी रेखा होती है । साधन की प्रचलित कीमत पर कितनी भी इकाइयाँ क्रय की जा सकती हैं, अत: साधन की औसत लागत (A.F.C.) तथा साधन की सीमान्त लागत (M.F.C.) दोनों एक ही होते हैं ।

सीमान्त उत्पादकता तथा इससे सम्बन्धित अन्य धारणाओं को समझने के बाद इस सिद्धान्त की मान्यताओं का अध्ययन करते हैं ।

3. **सिद्धान्त की मान्यताएँ (Assumptions) -** सीमान्त उत्पादकता सिद्धान्त की रचना कुछ मान्यताओं के आधार पर की गयी है । यह सिद्धान्त तभी कार्यशील होता है, जब निम्न मान्यतायें अथवा शर्तें पूरी हो:

(1) **उत्पादन के साधन विशेष की सभी. इकाइयाँ समरूप होती हैं-** इस सिद्धान्त के अनुसार उत्पादन के साधन विशेष की सभी इकाइयाँ समरूप होती है, अर्थात् उनकी उत्पादन कुशलता समान होती है ।

(2) **उत्पत्ति के साधनों के अनुपात में परिवर्तन सम्भव-** किसी भी वस्तु के उत्पादन के साधनों के अनुपात को परिवर्तित किया जा सकता है ।

(3) **उत्पत्ति के साधनों में गतिशीलता-** उत्पत्ति के विभिन्न साधनों में पूर्ण गतिशीलता पायी जाती है । यह गतिशीलता प्रादेशिक तथा व्यावसायिक दोनों प्रकार की होती है ।

(4) **साधन बाजार तथा वस्तु बाजार में पूर्ण प्रतियोगिता-** इस सिद्धान्त में यह मान लिया गया है । कि साधन बाजार में पूर्ण प्रतियोगिता है । इसी तरह से वस्तु बाजार में भी पूर्ण प्रतियोगिता की स्थिति होती है ।

(5) **पूर्ण रोजगार-** इस सिद्धान्त में यह भी मान लिया गया है कि अर्थव्यवस्था में पूर्ण रोजगार की स्थित होती है तथा उत्पादन का कोई भी साधन बेरोजगारित नहीं होता है ।

(6) **अधिकतम लाभ का उद्देश्य**- फर्म अथवा उत्पादक का उद्देश्य अपने लाभ को अधिकतम करना होता है ।

(7) **सीमान्त उत्पादकता मापनीय-** उत्पादक किसी भी साधन की सीमान्त उत्पादकता को माप सकता है अर्थात् उत्पादकता मापनीय होती है ।

(8) **उत्पत्ति ह्रास नियम की क्रियाशीलता-** उत्पादन क्रिया में उत्पत्ति ह्रास नियम लागू होता है ।

(9) **दीर्घकालीन प्रवृत्ति-** यह सिद्धान्त केवल दीर्घकालीन प्रवृत्ति का सूचक है ।

(10) **कुल आय का बँट जाना -** यदि साधनों को उनकी उत्पादकता के अनुसार पुरस्कार दिया जाये तो कुल आय उनमें बँट जाती है ।

4. **फर्म का सन्तुलन (Equilibrium of the Firm) -** सीमान्त उत्पादकता तथा इससे सम्बन्धित अन्य धारणाओं का अध्ययन करने के बाद अब हम सीमान्त उत्पादकता सिद्धान्त के अनुसार फर्म के साम्य का अध्ययन कर सकते हैं । यह अध्ययन हम पूर्ण प्रतियोगिता तथा अपूर्ण प्रतियोगिता की बाजार स्थितियों में कर सकते हैं ।

(अ) पूर्ण प्रतियोगिता में फर्म का सन्तुलन (Equilibrium of the Firm under Conditions of Perfect Competition) : साधन बाजार में पूर्ण प्रतियोगिता की स्थिति वह स्थिति होती है, जिसमें (1) फर्म साधन की कम अथवा अधिक मात्रा क्रय करके साधन के प्रचलित मूल्य को प्रभावित नहीं कर सकती है ।(2) फर्म को साधन की प्रचलित कीमत क्रो स्वीकार करना पड़ता है । ऐसी स्थिति में फर्म के लिए साधन की सीमान्त लागत (M.F.C.) तथा साधन की औसत लागत (A.F.C.) दोनों एक समान होंगी तथा इनका वक्र क्षितिजीय वक्र होगा । यह वक्र उद्योग की साधन की कुल माँग एवं कुल पूर्ति के साम्य द्वारा निर्धारित

पुरस्कार के बराबर होगा । रेखाचित्र 15.2 (B) में WW वक्र इसी तरह की साधन की सीमान्त लागत एवं औसत लागत को प्रदर्शित करने वाला वक्र है । यह वक्र उद्योग की साधन की कुल माँग व कुल पूर्ति के साम्य से प्राप्त हुआ है । उद्योग की कुल माँग व पूर्ति के साम्य को रेखाचित्र 15.2(A) से देखा जा सकता है ।

फर्म के लिए साधन की सीमान्त आगम उत्पादकता रेखा साधन की माँग वक्र का कार्य करती है, क्योंकि साधन की कीमत अथवा पुरस्कार दिया हुआ होने पर फर्म साधन की माँग उसकी सीमान्त आगम उत्पादकता के अनुसार ही करती है । एक फर्म अधिकतम लाभ कमाने के लिए पूर्ण प्रतियोगिता की स्थिति में किसी व्यक्तिगत साधन की इकाइयों को तब तक काम पर लगाती जाती है, जब तक साधन की सीमान्त आगम उत्पादकता साधन की सीमान्त लागत से अधिक है और फर्म उस समय साधन की अतिरिक्त इकाइयों को काम पर लगाना बन्द कर देती है जब साधन की सीमान्त आगम उत्पादकता के बराबर हो जाती है । इस स्थिति में फर्म सन्तुलन की अवस्था में होती है । फर्म यदि इसके बाद भी साधन की अतिरिक्त इकाई लगाती है तो उससे फर्म के कुल आगम में जो वृद्धि होती है उसकी तुलना में फर्म को अधिक भुगतान करना पड़ेगा । इसलिए फर्म का कुल लाभ कम हो जायेगा । इस सन्तुलन बिन्दु से साधन की कम इकाइयाँ लगाना भी फर्म के लिए अच्छा नहीं होता है, क्योंकि फर्म को साधन की अतिरिक्त इकाइयाँ लगाने पर सीमान्त आगम अधिक प्राप्त होती है, जबकि सीमान्त लागत इससे कम चुकानी पड़ती है अत: फर्म उस समय सन्तुलन में होती है, जब फर्म के लिए MRP=MFC हो ।

इस सन्तुलन को रेखाचित्र 15.2(B) में दिखाया गया है । रेखाचित्र में साधन की कीमत अथवा पुरस्कार WW वक्र द्वारा दिखाया गया है तथा यह फर्म के लिए दिया हुआ है । WW वक्र फर्म के लिए साधन का पूर्ति वक्र है । फर्म OW मजदूरी पर श्रम की चाहे जितनी इकाइयाँ काम पर लगा सकती है, अत: WW वक्र फर्म के लिए साधन की सीमान्त लागत एवं साधन की औसत लागत दोनों ही है । MRP वक्र फर्म के लिए साधन का माँग वक्र है । पूर्ण प्रतियोगिता में सीमान्त आगम उत्पादकता (MRP) तथा सीमान्त उत्पादकता का मूल्य (VMP) दोनों एक ही होते हैं (देखें तालिका 1) । फर्म उस समय सन्तुलन में होती है, जब MRP=MFC हो । रेखाचित्र में यह सन्तुलन स्थित E बिन्दु पर है, जहाँ MRP वक्र ने WW वक्र अथवा MFC वक्र को काटा है । इस सन्तुलन स्थिति में फर्म श्रम की M इकाइयों को काम पर लगाती है ।

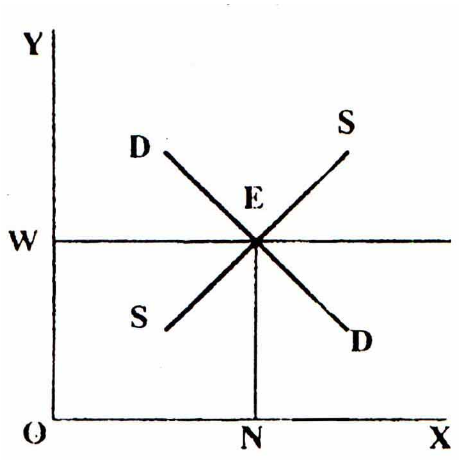

रेखाचित्र 15.2 (अ)

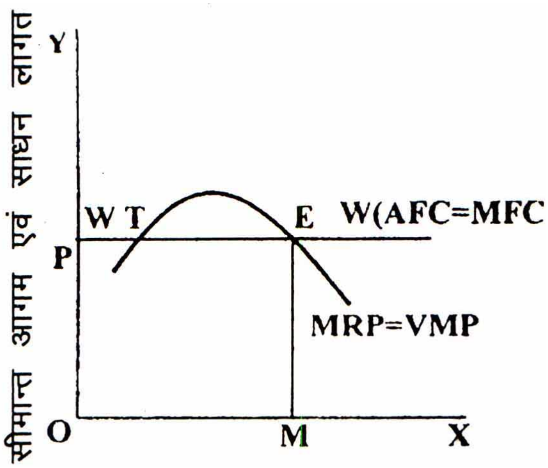

रेखाचित्र 15.2 (ब)

रेखाचित्र 15.2 (B) में T बिन्दु 2 पर भी MRP वक्र MFC वक्र को काटता है । परन्तु यह फर्म का सन्तुलन बिन्दु नहीं है, क्योंकि इस बिन्दु के बाद MRP बढ़ता हुआ है, जबकि साधन लागत स्थिर है, अत: श्रम की अधिक इकाइयों को लगाने पर फर्म का लाभ बढ़ सकता है । इसलिए फर्म का सन्तुलन बिन्दु पर T बिन्दु होकर E बिन्दु पर होगा, जहाँ गिरता हुआ MRP वक्र MFC वक्र को ऊपर से काटता है ।

अत: पूर्ण प्रतियोगिता में फर्म के सन्तुलन के लिए दो शर्त पूरी होना आवश्यक है-

(अ) MRP = MFC

(ब) MRP वक्र MFC को ऊपर से काटना चाहिए ।

रेखाचित्र 15.2 (B) से हम यह नहीं जान सकते हैं कि सन्तुलन स्थिति में फर्म लाभ कमा रही है अथवा हानि उठा रही है? यदि लाभ कमा रही है तो कितना? फर्म की लाभ अथवा हानि की स्थिति को जानने के लिए औसत विशुद्ध आगम उत्पादकता वक्र और खींचा जाना चाहिए । रेखाचित्र 15.3 से फर्म के लाभ अथवा हानि की जानकारी हो सकती है । रेखाचित्र में ANRP औसत विशुद्ध आगम उत्पादकता वक्र है तथा MRP सीमान्त आगम उत्पादकता वक्र है । सीमान्त आगम उत्पादकता वक्र ने औसत विशुद्ध आगम उत्पादकता वक्र को उच्चतम बिन्दु E पर काटा है । यदि OW_2 मजदूरी स्तर है तो फर्म का सन्तुलन E_2 बिन्दु पर होगा । इस सन्तुलन पर फर्म को प्रति इकाई साधन के E_2L_2 के बराबर हानि हो रही है । यह हानि की स्थिति अल्पकाल में ही रह सकती है, दीर्घकाल में नहीं, क्योंकि

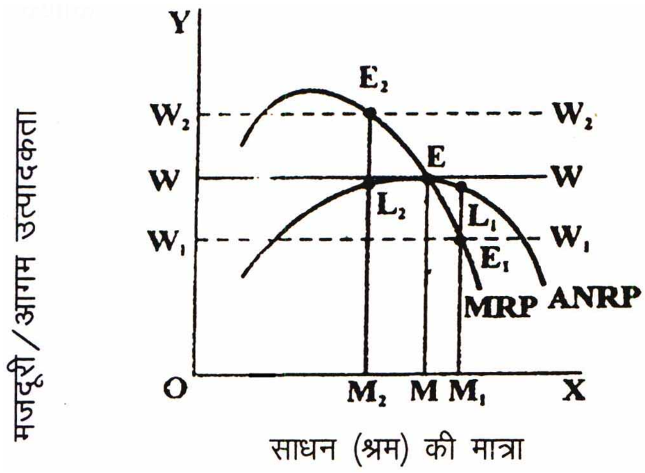

रेखाचित्र 15.3

हानि की स्थिति में दीर्घकाल में उद्योग में से कुछ फर्म बाहर चली जायेंगी, जिससे श्रम की माँग उस. समय तक कम होती जायेगी की, जब तक मजदूरी का स्तर घटकर OW तथा फर्म की हानि समाप्त नहीं हो जाती । अत: दीर्घकाल में साम्य E बिन्दु पर होगा जहाँ मजदूरी OW के बराबर होगी । यदि मजदूरी स्तर OW होता है तो फर्म का सन्तुलन E1 बिन्दु पर होगा । यही फर्म के साधन की प्रति इकाई E1L1 अतिरिक्त लाभ होगा । परन्तु यह स्थिति अल्पकाल में ही रह सकती है, दीर्घकाल में इस असामान्य लाभ के कारण उद्योग में नवीन फर्म प्रवेश करेंगी, जिससे श्रम की माँग बढ़ेगी । इससे मजदूरी का स्तर बढ़कर OW हो जायेगा, जहाँ सन्तुलन E बिन्दु पर होगा । इस सन्तुलन बिन्दु पर असामान्य लाभ समाप्त हो जाते हैं, क्योंकि मजदूरी औसत विशुद्ध आगम उत्पादकता के बराबर हो जाती है । यदि अल्पकाल में मजदूरी का स्तर OW है तो फर्म का सन्तुलन E बिन्दु पर होगा । यही फर्म को न असामान्य लाभ हो रहा है तथा न हानि । अत: दीर्घकाल में भी यही सन्तुलन स्थिति बनी रहेगी, क्योंकि यही मजदूरी श्रम की सीमान्त आगम उत्पादकता तथा औसत आगम उत्पादकता दोनों के बराबर है ।

हम निष्कर्ष के रूप में कह सकते हैं कि पूर्ण प्रतियोगिता की स्थिति में दीर्घकाल में मजदूरी श्रम की सीमान्त आगम उत्पादकता तथा औसत आगम उत्पादकता के बराबर होती है । अत: फर्म दीर्घकालीन साम्य की स्थिति में तब होती है, जब MRP=MFC=AFC=ANRP हो ।

(ब) **अपूर्ण प्रतियोगिता में फर्म का सन्तुलन (Equilibrium of the Firm under Conditions of Imperfect Competition) :** हमने अभी तक सीमान्त प्रतियोगिता सिद्धान्त का वर्णन पूर्ण प्रतियोगिता की स्थिति मे जाना है । सीमान्त उत्पादकता का सिद्धान्त पूर्ण प्रतियोगिता की पूर्व धारणा पर आधारित है । परन्तु हम जानते हैं कि पूर्ण प्रतियोगिता की स्थिति वास्तविक विश्व में देखने को नहीं मिलती है । वास्तविक विश्व में अपूर्ण प्रतियोगिता की स्थिति ही देखने को मिली है । साधन बाजार में अपूर्ण प्रतियोगिता की स्थिति होने पर साम्य की स्थिति में साधन का पुरस्कार उसकी सीमान्त आय उत्पादकता से कम होता है । यहाँ हम अपूर्ण प्रतियोगिता की चरम सीमा वाली दशा क्रय-एकाधिकार (Monopsony) का वर्णन करेंगे । साधन

बाजार में क्रय एकाधिकार एक ऐसी स्थिति होगी, जिसमें साधन खरीदने वाली फर्म का साधन बाजार में एकाधिकार है अथवा वह अकेली क्रेता है । अत: यह साधनों की क्रेता फर्म साधन बाजार में अपनी क्रियाओं द्वारा साधन की कीमत को प्रभावित कर सकती है । वह इस कीमत को कम अथवा अधिक कर सकती है । यदि वह श्रमिकों की कम माँग करती है तो उसे कम कीमत देनी होगी और यदि वह श्रमिकों की अधिक माँग करती है तो उसे मजदूरी बढ़ानी पड़ती है । अत: उसका औसत मजदूरी वक्र बायें से दायें को ऊपर की ओर उठता हुआ होता है तथा सीमान्त मजदूरी वक्र इसके ऊपर स्थित होता है ।

एकाधिकारी फर्म का सीमान्त आगम उत्पादकता वक्र तथा औसत आगम उत्पादकता वक्र पूर्ण प्रतियोगिता की तुलना में अधिक प्रपाती (Steeper) होता है अथवा अधिक तेजी से नीचे गिरता है । इसका कारण यह है कि पूर्ण प्रतियोगिता वाली फर्म का औसत आगम वक्र क्षितिजीय होता है, जबकि एकाधिकार के अन्तर्गत औसत आगम वक्र नीचे को झुकता हुआ होता है ।

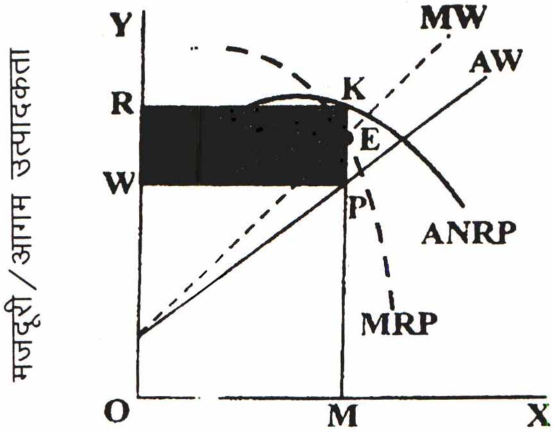

साधन (श्रम) की मात्रा

रेखाचित्र 15.4

रेखाचित्र 15.4 में अपूर्ण प्रतियोगिता में साधन बाजार में फर्म का सन्तुलन दिखाया गया है । रेखाचित्र में ANRP औसत विशुद्ध आगम उत्पादकता वक्र, MRP सीमान्त आगम उत्पादकता वक्र, AW औसत मजदूरी वक्र, तथा MW सीमान्त मजदूरी वक्र है । सीमान्त उत्पादकता वक्र ने फर्म के सीमान्त मजदूरी वक्र को E बिन्दु पर काटा है । अत: E फर्म का साम्य बिन्दु है । इस साम्य बिन्दु पर फर्म OM श्रमिकों को काम पर लगाती है तथा श्रमिकों को OW अथवा MP के बराबर मजदूरी देती है । OW औसत मजदूरी OR सीमान्त आय उत्पादकता से कम है । अत: श्रमिक नियोक्ता को अधिक उत्पादकता प्रदान करता है तथा नियोक्ता श्रमिक को उत्पादकता से कम भुगतान करता है । दूसरे शब्दों में नियोक्ता श्रम का शोषण करता है । इसे एकाधिकारात्मक शोषण(Monopolistic Exploitation) के नाम से पुकारा जाता है । यही क्रेता एकाधिकारी को OM मात्रा में श्रमिकों को काम पर लगाने से WPKR के बराबर लाभ प्राप्त होता है । यह स्वाभाविक भी है, क्योंकि जब साधन के क्रय में कोई प्रतियोगिता नही है तो एकाधिकारी नियोक्ता श्रम को कम-से-कम भुगतान करना चाहेगा ।

परिणामस्वरूप साधन बाजार में अपूर्ण प्रतियोगिता की स्थिति में साधन को उसकी सीमान्त आय उत्पादकता से कम भुगतान देकर उसका शोषण किया जाता है ।

5. **सिद्धान्त की प्रमुख आलोचनाएँ (Criticism of the Theory) -** सीमान्त उत्पादकता सिद्धान्त साधन मूल्य-निर्धारण का केन्द्रिय सिद्धान्त है, परन्तु इस सिद्धान्त की अनेक आलोचनाएँ की गयी हैं, जिनमें से अधिकांश आलोचनाएँ सिद्धान्त की मान्यताओं के सम्बन्ध में है । इस सिद्धान्त की प्रमुख आलोचनाएँ अग्रलिखित

(1) **साधन की सीमान्त उत्पादकता को ज्ञात करना कठिन (Difficult to Measure Marginal Productivity) -** किसी भी वस्तु का उत्पादन उत्पत्ति के विभिन्न साधनों के सामूहिक प्रयासों का फल होता है, अत: किसी एक साधन की सीमान्त उत्पादकता को ज्ञात करना अत्यन्त कठिन होता है । उत्पादन के कुछ साधन अविभाज्य भी हो सकते हैं । ऐसी स्थिति में उन साधनों की सीमान्त उत्पादकता को ज्ञात करना कठिन

(2) **साधन की सभी इकाइयाँ समरूप नहीं (All units of a Factor not Homogenous)** इस सिद्धान्त में यह माना गया है कि उत्पादन के एक विशेष साधन की सभी इकाइयाँ पूर्णत: समरूप होती हैं, परन्तु व्यवहार में साधनों की सभी इकाइयाँ समरूप नहीं होती हैं तथा उनमें भिन्नता पायी जाती है ।

(3) **पूर्ण प्रतियोगिता की अवास्तविक मान्यता (False Assumption of Perfect Competition) -** सीमान्त उत्पादकता सिद्धान्त में यह माना गया है कि वस्तु बाजार तथा साधन बाजार दोनों में ही पूर्ण प्रतियोगिता की स्थिति पायी जाती है, जो कि व्यवहार में ठीक नहीं है ।

(4) **पूर्ण रोजगार की अवास्तविक मान्यता (Unrealistic Assumption of Full Employment) -** कीन्स तथा अन्य अर्थशास्त्रियों ने बताया है कि पूर्ण रोजगार एक सामान्य दशा नहीं है बल्कि पूर्ण रोजगार से कम रोजगार अथवा अल्प रोजगार सामान्य स्थिति होती है, अत: दुनियाँ की अधिकांश अर्थव्यवस्थाओं में बेरोजगारी की स्थिति पायी जाती है । इसलिए साधनों का पुरस्कार उनकी सीमान्त उत्पादकता से कम हो सकता हे ।

(5) **लाभ अधिकतम करने की मान्यता दोषपूर्ण (Unrealistic Assumption of Maximization of Profit) -** सीमान्त उत्पादकता सिद्धान्त यह मानकर चलता है कि प्रत्येक उत्पादक अथवा फर्म अपने लाभ को अधिकतम करने के उद्देश्य से कार्य करते हैं । व्यवहार में यह मान्यता ठीक नहीं है ।

(6) **उत्पत्ति के साधनों में पूर्ण गतिशीलता की मान्यता गलत (Unrealistic Assumption of Perfect Mobility) -** सीमान्त उत्पादकता सिद्धान्त में उत्पति के सभी साधनों का व्यावसायिक तथा भौगोलिक दृष्टि से पूर्ण गतिशील माना गया है, परन्तु व्यवहार में उत्पत्ति के साधन पूर्ण गतिशील नहीं होते है ।

(7) **एकपक्षीय सिद्धान्त (One-sided Theory) -** फीडमैन, सेमुल्सन आदि अर्थशास्त्रियों के अनुसार यह सिद्धान्त एकपक्षीय होने के कारण अपूर्ण है, क्योंकि इस सिद्धान्त में केवल साधन

के माँग पक्ष को ही अधिक महत्व दिया गया है तथा साधन के पूर्ति पक्ष को बिल्कुल भुला दिया गया है ।

(8) **समाज में धन के असमान वितरण का समर्थन (It Supports Unequal Distribution of Wealth) -** यह सिद्धान्त समाज में धन के असमान वितरण को उचित बताता है, क्योंकि इस सिद्धान्त के अनुसार धनिक अधिक उत्पादन करते हैं, इसलिए उनकी आय अधिक तथा निर्धन कम उत्पादन करते हैं । परन्तु यह तर्क गलत है ।

(9) **जोड़ने की समस्या का बना रहना (Problem of Accumulation not Solved) -** यदि समाज के कुल उत्पादन को विभिन्न साधनों में उनके सीमान्त उत्पादकताओं के अनुसार बाँटा जाये तो कुल उपज समाप्त नहीं होगी, उसका कुछ भाग शेष बचा रहेगा अथवा कुछ कम पडेगा ।

(10) **केवल दीर्घकालीन विश्लेषण (Long Term Analysis) -** सीमान्त उत्पादकता सिद्धान्त के अनुसार उत्पत्ति के साधनों का परिमित दीर्घकाल में उनकी सीमान्त उत्पादकताओं के बराबर होता है, इसलिए यह सिद्धान्त हमें दीर्घकाल में साधनों के पुरस्कार निर्धारण के योग्य बनता है । परन्तु व्यावहारिक जीवन की अधिकांश समस्याएँ अल्पकाल में साधनों के पुरस्कार निर्धारण की होती है, जिनकी यह व्याख्या नहीं करता है ।

(11) **साहसी की सेवाओं पर लागू न होना (Not Applicable to Entrepreneurial Services) -** किसी भी साहसी की सीमान्त उत्पादकता को ज्ञात नहीं किया जा सकता है, क्योंकि एक व्यवसाय में सामान्यतया एक ही साहसी होता है, अत: साहसी की एक अतिरिक्त इकाई को बढ़ाना अथवा घटाना सम्भव नहीं होता है । इसलिए इस सिद्धान्त के अनुसार साहसी की सेवाओं का पुरस्कार निर्धारित नहीं किया जा सकता है ।

निष्कर्ष (Conclusion) - सीमान्त उत्पादकता सिद्धान्त की व्याख्या तथा उपयुक्त आलोचनाओं का अध्ययन करने के बाद हम यह कह सकते हैं कि उत्पादन साधनों की कीमत-निर्धारण की सन्तोषजनक व्याख्या करने में यह सिद्धान्त असमर्थ है । यह सिद्धान्त अवास्तविक मान्यताओं पर आधारित है । आज के प्रगतिशील विश्व में साधनों के मूल्य निर्धारण पर अनेक गैर-आर्थिक तत्वों का भी प्रभाव पड़ता है, जिनकी यह सिद्धान्त व्याख्या नहीं करता है । यह सिद्धान्त केवल फर्म की दृष्टि से अधिक महत्वपूर्ण है, क्योंकि यह तो केवल यह बताता है कि किसी साधन का पुरस्कार दिया हुआ होने पर वह अधिकतम लाभ कमाने के लिए उस साधन की कितनी इकाइयाँ काम पर लगायेगा । यह सिद्धान्त प्रगतिशील विश्व में लगान, मजदूरी, ब्याज तथा लाभ-निर्धारण की सही व्याख्या करने में असमर्थ है ।

15.4 सारांश

उत्पादन के विभिन्न साधनों को पुरस्कार प्रदान किया जाता है । उत्पादन के साधनों को पुरस्कार प्रदान करने के लिए या उनके मूल्यों को निर्धारित करने के लिए तीन सिद्धान्त प्रमुख है । प्रतिष्ठित सिद्धान्त के प्रतिपादकों द्वारा भूमि का पुरस्कार लगान है श्रम का पुरस्कार मजदूरी के निर्धारण के लिए जीवन निर्वाह मजदूरी सिद्धान्त एवं मजदूरी कोष सिद्धान्त बनाये । पूंजी एवं साहस का पुरस्कार ब्याज एवं लाभ है । इसका दूसरा महत्वपूर्ण सिद्धान्त वितरण का सीमान्त

उत्पादकता सिद्धान्त है जिसके अनुसार उत्पादन के एक साधन की कीमत उसकी उत्पादकता पर निर्भर करती है तथा इसका निर्धारण सीमान्त उत्पादकता द्वारा निर्धारित होता है । सीमान्त उत्पादकता को तीन वर्गों में बांटा गया है (1) सीमान्त भौतिक उत्पादकता (2) सीमान्त आगम उत्पादकता (3) सीमान्त भौतिक उत्पादकता का मुद्रा में मूल्य । सीमान्त उत्पादकता सिद्धान्त की रचना के लिए उत्पादन के साधन विशेष की सभी इकाइयां समरूप होती है पूर्ण रोजगार की स्थिति होती है । उत्पत्ति के साधनों में गतिशीलता होती है । वितरण का तीसरा सिद्धान्त साधन की मांग व पूर्ति का सिद्धान्त है । हमने इस इकाई में वितरण के सीमान्त उत्पादकता सिद्धान्त का ही अध्ययन किया है ।

15.5 शब्दावली

सीमान्त उत्पादकता - एक साधन की मात्रा में एक इकाई की वृद्धि की जती है तो उससे वस्तु के कुल उत्पादन में जो वृद्धि होती है ।

साधन बाजार - उत्पादन के साधनों का बाजार जैसे भूमि, पूंजी, श्रम, साहस संगठन ।

वस्तु बाजार - उपभोक्ता के द्वारा उपभोग की जाने वाली वस्तुऐं जैसे निर्मित वस्तुएं ।

सीमान्त आगम उत्पादकता - एक उत्पादक द्वारा उत्पादन के अन्य साधनों की मात्रा स्थिर रखकर किसी परिवर्तनशील साधन की एक और इकाई को काम पर लगाकर उत्पादन करने एवं उत्पादन को बेचने से उसकी कुल आगम में जो वृद्धि होती है ।

15.6 स्वपरख प्रश्न

1. वितरण के सीमान्त उत्पादकता सिद्धान्त को स्पष्ट कीजिए ।
2. निम्न में अन्तर स्पष्ट कीजिए
   (अ) सीमान्त आय उत्पादकता तथा सीमान्त भौतिक उत्पादकता ।
   (ब) औसत कुल आगम उत्पादकता तथा औसत विशुद्ध आगम उत्पादकता ।
3. विवरण के सीमान्त उत्पादकता सिद्धान्त पर एक विस्तृत लेख लिखिये ।
4. वितरण के सीमान्त उत्पादकता सिद्धान्त की विवेचना कीजिये ।

15.7 कुछ उपयोगी पुस्तकें

1. व्यावसायिक अर्थशास्त्र : अग्रवाल, अग्रवाल एवं गुप्ता, रमेश बुक डिपो, जयपुर ।
2. व्यावसायिक अर्थशास्त्र. माथुर एवं गुप्ता
3. Business Economics : Agarwal M.D. & Som Deo, Ramesh Book Depot, Jaipur

इकाई-16

मजदूरी का आधुनिक सिद्धान्त
(Modern Theory of Wages)

इकाई की रूपरेखा

16.0 उद्देश्य
16.1 प्रस्तावना
16.2 मजदूरी का अर्थ
16.3 मजदूरी के सिद्धान्तों के नाम
16.4 मजदूरी का आधुनिक सिद्धान्त
अथवा
मजदूरी का मांग एवं पूर्ति सिद्धान्त
16.4.1 पूर्ण प्रतियोगिता में मजदूरी का निर्धारण
16.4.2 अपूर्ण प्रतियोगिता में मजदूरी का निर्धारण
16.5 सारांश
16.6 शब्दावली
16.7 स्वपरख प्रश्न
16.8 उपयोगी पुस्तकें

16.0 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के बाद आप जान सकेंगे कि :-

- मजदूरी क्या होती है? इसका क्या अर्थ है?
- मजदूरी निर्धारण के विभिन्न सिद्धान्त कौन-कौन से हैं ।
- मजदूरी के आधुनिक सिद्धान्त की विवेचना कर सकेंगे ।
- मजदूरी के आधुनिक सिद्धान्त के अनुसार पूर्ण एवं अपूर्ण प्रतियोगिता में मजदूरी का निर्धारण कर सकेंगे ।

16.1 प्रस्तावना

उत्पादन के विभिन्न साधनों में से श्रम एक महत्त्वपूर्ण साधन है आजकल श्रम शक्ति बढ़ाने के लिए कई प्रकार के प्रयास किये जा रहे हैं । श्रम के बदले जो पुरस्कार दिया जाता है वह मजदूरी है । राष्ट्रीय आय तथा आर्थिक विश्लेषण में भी श्रम का महत्वपूर्ण योगदान है । अर्थशास्त्र में मजदूरी का अर्थ अत्यन्त विस्तृत है । श्रम में मनुष्य का शारीरिक तथा मानसिक प्रयत्न दोनों ही होते हैं । मौद्रिक मजदूरी का तात्पर्य एक श्रमिक को मुद्रा के रूप में प्राप्त होने वाली मजदूरी से होता है जबकि एक श्रमिक को अपने श्रम के बदले में मिलने वाली नकद मजदूरी से प्राप्त होने वाली वस्तुएँ व सेवाएँ वास्तविक मजदूरी होती है ।

16.2 मजदूरी का अर्थ (Meaning of Wages)

श्रम उत्पादन का एक महत्त्वपूर्ण साधन है । श्रमिक को अपने श्रम के प्रतिफल के बदले जो कुछ प्राप्त होता है, उसे मजदूरी कहते हैं । अर्थशास्त्र में मनुष्य का प्रत्येक प्रकार का शारीरिक तथा मानसिक परिश्रम, जो धनोपार्जन के उद्देश्य से किया जाता है, श्रम कहलाता है । अत: अर्थशास्त्र में शारीरिक तथा मानसिक दोनों ही प्रकार के श्रम के बदले में जो भुगतान प्राप्त होता है, मजदूरी के अन्तर्गत सम्मिलित किया जाता है । बेन्हम के शब्दों में "मजदूरी मुद्रा की वह रकम है, जो किसी प्रसंविदा के अन्तर्गत किसी नियोजक द्वारा किसी श्रमिक को उसकी अर्पित सेवाओं के बदले दी जाती है ।" यह मजदूरी दैनिक, साप्ताहिक, मासिक अथवा वार्षिक हो सकती है । अर्थशास्त्र में श्रम का बहुत विस्तृत अर्थ लिया जाता है, अत: मजदूरी के अन्तर्गत निम्न भुगतानों को सम्मिलित किया जाता है-

(i) संकीर्ण अर्थ में श्रमिक का अर्थ कारखानों,खेतों आदि पर काम करने वाले विभिन्न प्रकार के श्रमिकों से होता है, अत: उनके श्रम का भुगतान ।

(ii) कारखानों, दफ्तरों तथा व्यावसायिक संस्थानों में काम करने वाले क्लर्कों तथा दूसरे सहायकों को वेतन प्राप्त होता है, परन्तु आर्थिक दृष्टि से ये यह भी मजदूरी है । वेतन व मजदूरी में कोई अन्तर नहीं होता है ।

(iii) वकील, डॉक्टर, अध्यापक इत्यादि पेशेवर लोगों की सेवाओं का पुरस्कार भी मजदूरी में सम्मिलित किया जाता है।

(iv) विभिन्न प्रकार के मिस्त्रियों की सेवाओं, नाई, मोची आदि के कार्यो का भुगतान भी मजदूरी में सम्मिलित किया जाता है ।

(v) लेखकों को प्राप्त रायल्टी, विभिन्न विक्रय-प्रतिनिधियों, प्रबन्धकों आदि को प्राप्त कमीशन भी मजदूरी में सम्मिलित होता है ।

(vi) विभिन्न व्यक्तियों को प्राप्त बोनस भी मजदूरी ही है ।

अत: अर्थशास्त्र में मजदूरी का अर्थ बहुत विस्तृत है । इसमें मनुष्य के शारीरिक तथा मानसिक प्रयत्नों का प्रतिफल सम्मिलित होता ।

मौद्रिक मजदूरी तथा असल या वास्तविक मजदूरी (Money Wages and Real Wages)

मौद्रिक अथवा न- द मजदूरी (money or Nominal Wages) - अर्थशास्त्र में नकद मजदूरी का तात्पर्य एक श्रमिक को मुद्रा के रूप में प्राप्त होने वाली मजदूरी से होता है अर्थात् एक श्रमिक को मुद्रा के रूप में जो भुगतान प्राप्त होता है, वह श्रमिक की नकद मजदूरी कहलाती है । प्रो. थम के शब्दों में "नकद मजदूरी अथवा नकद आय मजदूरी की उस मात्रा को प्रदर्शित करती है जिसे मुद्रा में मापा जा सकता है ।" उदाहरण के लिए मोहन किसी कारखाने में कार्य करता है तथा उसे अपने श्रम के बदले 50 रूपये प्रति सप्ताह प्राप्त होता है, तो यह 50 रूपया उसकी साप्ताहिक मजदूरी कहलाएगी ।

असल मजदूरी अथवा वास्तविक मजदूरी (Real Wages) - एक श्रमिक को अपने श्रम के बदले में मिलने वाली नकद मजदूरी से प्राप्त होने वाली वस्तुएँ एवं सेवा तथा नियोक्ता से

नकद मजदूरी के अतिरिक्त प्राप्त होने वाली अन्य सुविधाएँ तथा प्रासंगिक लाभ मिलकर असल अथवा वास्तविक मजदूरी कहलाती है । प्रो. थॉमस के अनुसार, ' 'वास्तविक मजदूरी का अभिप्राय श्रमिक के व्यवसाय के शुद्ध लाभ से होता है अर्थात् अपनी सेवा के बदले में श्रमिक को जितनी मात्रा में आवश्यक, आरामदायक तथा विलासिता की वस्तुओं एवं सेवाओं पर अधिकार प्राप्त होता है वे सब ही उसकी वास्तविक मजदूरी होती हैं ।"

उपर्युक्त उदाहरण से यदि श्रमिक को 50 रूपये प्रति सप्ताह के अतिरिक्त मुफ्त कपड़े, रहने को मकान, बिजली, पानी, बस सेवा व चिकित्सा तथा अन्य सुविधाएँ प्राप्त होती हैं, तो श्रमिक की प्रति सप्ताह नकद मजदूरी तो 50 रूपये ही है, परन्तु प्रति सप्ताह वास्तविक मजदूरी = 50 रूपये से प्राप्त वस्तुएँ एवं सेवाएँ + कपड़े + मकान +बिजली + पानी + बस सेवा + चिकित्सा + अन्य सुविधाएँ । व्यवहार में जब श्रमिक को नकद मजदूरी के अतिरिक्त अन्य सुविधाएँ प्राप्त होती हैं तो श्रमिक की वास्तविक मजदूरी ऊँची होती है । इसलिए आजकल श्रमिक रोजगार को स्वीकार करते समय केवल नकद मजदूरी ही नहीं देखता है, बल्कि वास्तविक मजदूरी को भी देखता

नकद मजदूरी तथा वास्तविक मजदूरी दोनों सदैव एक ही दिशा में नहीं जाती हैं । अनेक बार नकद मजदूरी बढती हुई होती है, परन्तु वास्तविक मजदूरी बढ़ने के स्थान पर घटती हुई हो सकती है । ऐसा उस समय होता है, जब नकद मजदूरी में वृद्धि मूल्य स्तर में हुई वृद्धि की तुलना में धीमी गति से होती है । वास्तविक मजदूरी नकद मजदूरी की क्रय शक्ति तथा नियोक्ता से प्राप्त अन्य सेवाओं का योग होती है, अत: मूल्य स्तर में तेजी से वृद्धि होने के कारण मुद्रा की क्रय-शक्ति घटने के कारण वास्तविक मजदूरी कम होती जाती है । मन्दी के समय नकद मजदूरी स्थिर रहती है, परन्तु वास्तविक मजदूरी मुद्रा की क्रय शक्ति में वृद्धि के कारण बढ़ती हुई होती है।

वास्तविक मजदूरी के निर्धारक तत्व (Determinates of Real Wages) - एक श्रमिक की वास्तविक मजदूरी ज्ञात करते समय केवल उसकी नकद मजदूरी पर ही ध्यान नहीं देना चाहिए बल्कि अन्य तत्वों पर भी ध्यान देना चाहिए । वास्तविक मजदूरी निम्नांकित तत्वों पर निर्भर करती है-

(1) **मुद्रा की क्रय शक्ति (Purchasing Power of Money) -** मुद्रा की क्रय शक्ति का अर्थ है, मुद्रा की प्रति इकाई वस्तुओं व सेवाओं की क्रय की शक्ति । मुद्रा की क्रय शक्ति स्थिर नहीं रहती है । यह समय, स्थान तथा परिस्थितियों में परिवर्तन के अनुसार बदलती रहती है ।

(2) **अतिरिक्त मुक्त एवं रियायती सुविधाएँ (Additional free and concessional facilities)-** एक श्रमिक को अपने नियोक्ता से नकद मजदूरी के अतिरिक्त कितनी मुफ्त अथवा रियायती सुविधाएँ, वर्दी, मकान, जल, विद्युत, चिकित्सा आदि के रूप में प्राप्त होती है? यदि ये अधिक प्राप्त होती हैं तो श्रमिक की वास्तविक मजदूरी ऊँची होगी अन्यथा नीची ।

(3) **अतिरिक्त आय (Additional Income) -** एक श्रमिक को नियोक्ता के यही काम करने के बाद अतिरिक्त आय अर्जित करने के कितने वैधानिक स्रोत प्राप्त हैं- यह तथ्य भी

वास्तविक मजदूरी को प्रभावित करता है । यदि अतिरिक्त आय के स्रोत अधिक हैं तो श्रमिक की वास्तविक मजदूरी ऊँची होगी ।

(4) **आश्रितों को काम (Work to dependents) -** कुछ व्यवसाय ऐसे होते हैं, जिनमें एक श्रमिक को स्वयं को तो कार्य मिलता ही है, उसके आश्रितों को भी सहायक कार्य मिल जाता है । जिससे श्रमिक की वास्तविक मजदूरी ऊंची होगी ।

(5) **कार्य का स्वभाव (Nature of Work)-** कुछ कार्य स्वभाव से ही रूचिकर एवं स्वास्थ्य के लिए अनुकूल होते हैं । इसके विपरीत कुछ कार्य बहुत कठिन, अरूचिकर, स्वास्थ्य के लिए हानिकारक होते हैं । पहले प्रकार के कार्यो में नकद मजदूरी कम होने पर भी वास्तविक मजदूरी अधिक मानी जाती है, परन्तु दूसरे प्रकार के कार्यो में नकद मजदूरी अधिक होने पर भी वास्तविक मजदूरी कम मानी जाती है ।

(6) **कार्य के घण्टे एवं अवकाश (Working hours and holidays) -** जिन व्यवसायों में अन्य बातें समान रहते हुए कार्य के घण्टे अधिक तथा अवकाश की सुविधाएँ कम होती है उनमें श्रमिकों की वास्तविक मजदूरी उन व्यवसायों से कम होती है, जिनमें कार्य के घण्टे कम तथा अवकाश सुविधाएँ अधिक होती हैं ।

(7) **कार्य नियमितता (Continuity of work) -** अन्य बातों के समान रहने पर जिन व्यवसायों में श्रमिकों को नियमित अथवा स्थायी रूप से रोजगार प्राप्त रहता है, वहाँ वास्तविक मजदूरी अधिक होती है उन व्यवसायों की तुलना में, जहाँ श्रमिकों को अस्थायी अथवा अनियमित रूप से कार्य मिलता है ।

(8) **कार्य-दशाएँ (Working Conditions)-** जिस स्थान पर श्रमिक को कार्य करना होता है, उस स्थान की कार्य-दशाएँ भी श्रमिक की वास्तविक मजदूरी को प्रभावित करती है । उन श्रमिकों की वास्तविक मजदूरी कम होती है, जिन्हें अपेक्षाकृत अन्धेरे, गन्दे व अस्वास्थ्यकर वातावरण में कार्य करना पड़ता है ।

(9) **प्रशिक्षण व्यय एवं अवधि (Training expenditure and period)-** एक श्रमिक को अपने व्यवसाय का प्रशिक्षण प्राप्त करने में जितना अधिक व्यय एवं समय-अवधि लगती है, उसकी वास्तविक मजदूरी उन श्रमिकों से कम होगी, जिन्हें प्रशिक्षण पर कम व्यय तथा कम समय लगाना पडता है ।

(10) **व्यावसायिक व्यय (Professional Expenses)-** कुछ व्यवसायों में लगे लोगों को व्यावसायिक व्यय अधिक करने पडते हैं । अत: इस प्रकार के कार्यो में लगे लोगों की वास्तविक मजदूरी उन व्यवसायों में, जहाँ व्यावसायिक व्यय नहीं होते हैं, लगे लोगों की तुलना में कम होती है ।

(11) **कार्य की सामाजिक प्रतिष्ठा (Social prestige of the work)-** कुछ व्यवसायों की समाज में ऊँची प्रतिष्ठा होती है, अत: ऐसे व्यवसायों में लगे लोगों को लोग अधिक आदर देते हैं । इसलिए इन व्यवसायों में नकद मजदूरी कम होते हुए भी वास्तविक मजदूरी अधिक होती है ।

(12) **भविष्य में उन्नति के अवसर (Future opportunities of promotion)-** जिन व्यवसायों में श्रमिकों को भविष्य में उन्नति के अधिक अवसर मिलते हैं उनमें वर्तमान में नकद मजदूरी कम होने पर भी वास्तविक मजदूरी उन व्यवसायों की तुलना में अधिक होती है, जिनमें वर्तमान में नकद मजदूरी अधिक है, परन्तु उन्नति के अवसर नहीं है ।

(13) **बिना भुगतान के अतिरिक्त आय या बेगार (Additional work without reward)-**जिन व्यवसायों में श्रमिक को अतिरिक्त भुगतान के बगैर अपने नियमित समय के अतिरिक्त भी कार्य करना पड़ता है, उन व्यवसायों में वास्तविक मजदूरी कम होती है ।

16.3 मजदूरी के सिद्धान्तों के नाम (Names of theories of Wages)

अर्थशास्त्रियों द्वारा मजदूरी के निर्धारण के लिए विभिन्न सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया गया है । ये सिद्धान्त विभिन्न अर्थशास्त्रियों वे अपने काल की परिस्थितियों के सम्बन्ध में प्रतिपादित किये थे । इनमें से अधिकांश सिद्धान्त अब अपना महत्त्व खो चुके हैं । लगभग 1870 तक जीवन-निर्वाह सिद्धान्त, जीवन-स्तर सिद्धान्त, मजदूरी कोष सिद्धान्त तथा अवशिष्ट अधिकार सिद्धान्त लोकप्रिय रहे । इसके बाद 1930 तक मजदूरी का सीमान्त उत्पादकता सिद्धान्त अधिक प्रचलित रहा । अब मजदूरी का आधुनिक सिद्धान्त, जिसे श्रम का माँग व पूर्ति सिद्धान्त कहते हैं, लोकप्रिय है । आधुनिक सिद्धान्त के रूप में यही सिद्धान्त लोकप्रिय है । आधुनिक अर्थशास्त्रियों का कहना है कि मजदूरी में किसी भी सिद्धान्त के वास्तविक होने के लिए यह आवश्यक है कि नियोक्ताओं तथा श्रमिकों के उन संघों को ध्यान में रखा जाये जो मजदूरी के निर्धारण को प्रभावित करते हैं । यही हम मजदूरी के आधुनिक सिद्धान्त का विस्तार से अध्ययन करेंगे ।

16.4 मजदूरी का आधुनिक सिद्धान्त अथवा मजदूरी का माँग एवं पूर्ति सिद्धान्त (Modern Theory of Wages or Demand and Supply theory of Wages)

मजदूरी श्रमिक की सेवाओं का मूल्य होता है । आधुनिक अर्थशास्त्री मजदूरी का निर्धारण भी वस्तु मूल्य की तरह से श्रम की माँग एवं पूर्ति द्वारा करते हैं । श्रम की कुछ विशेषताएँ होती हैं, जिनके कारण से मजदूरी के निर्धारण के लिए अलग सिद्धान्त की आवश्यकता होती है । मजदूरी का निर्धारण मूल्य निर्धारण के सामान्य सिद्धान्त का ही एक विशिष्ट रूप है । मजदूरी निर्धारण के आधुनिक सिद्धान्त का अध्ययन पहले हम पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत तथा बाद में अपूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत करेंगे ।

16.4.1 पूर्ण प्रतियोगिता में मजदूरी का निर्धारण (Determination of Wages under Perfect Competition) - यही सर्वप्रथम हम श्रम बाजार तथा वस्तु बाजार दोनों में पूर्ण प्रतियोगिता का प्रचलन मानकर मजदूरी के निर्धारण को देखेंगे ।

पूर्ण प्रतियोगिता की स्थिति में मजदूरी का निर्धारण श्रम की कुल माँग तथा कुल पूर्ति के साम्य के द्वारा होता है । अत: हम पहले श्रम की माँग व उसके बाद श्रम की पूर्ति और अन्त में माँग व पूर्ति के साम्य द्वारा मजदूरी के निर्धारण को देखेंगे ।

श्रम की माँग (Demand for Labour) : श्रम की माँग व्युत्पन्न माँग होती है । इसलिए श्रम की माँग उन वस्तुओं की माँग से निर्धारित होती है जिनका उत्पादन करने में श्रम सहायता करता है । यदि श्रम द्वारा उत्पादित वस्तु की माँग के उतार-चढाव की आशा है तो श्रम की स्वयं की माँग में भी उतार-चढ़ाव आ जायेंगे ।

यदि उपभोक्ता किसी वस्तु की अधिक माँग करते हैं तो उत्पादक लोग उस वस्तु की पूर्ति बढाने के लिए उन श्रमिकों की अधिक माँग करते हैं, जो उस वस्तु के उत्पादन करने में सहायक होते हैं । इसके विपरीत, यदि उपभोक्ता उस वस्तु की कम माँग करते हैं तो उत्पादक लोग उस वस्तु का उत्पादन कम करने लगते हैं । इसके परिणामस्वरूप वे उन श्रमिकों की माँग भी कम करते हैं, जो उस वस्तु के उत्पादन में सहायक होते हैं । अत: श्रम की माँग इसके द्वारा उत्पादित वस्तु की माँग पर निर्भर करती है ।

श्रम की माँग के सम्बन्ध में दूसरा उल्लेखनीय तत्त्व यह है कि श्रमिक अकेला उत्पादन का कार्य नहीं करता है । सामान्यतया वह उत्पादन के अन्य साधनों के साथ मिलकर कार्य करता है । इसलिए श्रम की माँग अन्य साधनों की कीमतों पर निर्भर करती है । यदि दूसरे साधन सस्ते तथा श्रम के स्थान पर प्रतिस्थापनीय हों तो श्रम की माँग कम हो जायेगी । उदाहरण के लिए, कपडा बुनने वाली मशीनें सस्ती हो जाएँगी तो नियोक्ता श्रम की अपेक्षा मशीनें अधिक प्रयोग करेंगे और इसके परिणामस्वरूप श्रम की माँग घट जायेगी । इसके विपरीत मशीनें अपेक्षाकृत महँगी होने पर श्रम की माँग बढ जायेगी ।

तीसरे, श्रम की माँग तकनीकी तत्त्वों पर निर्भर करती है । तकनीकी तत्त्व उद्योग में लगी हुई फर्मो के उत्पादन-फलनों पर निर्भर करते हैं । यदि किसी वस्तु के उत्पादन में श्रम और यन्त्र एक निश्चित अनुपात में ही प्रयुक्त किये जा सकते हैं तो श्रम की माँग इस बात पर निर्भर करेगी कि साहसी उस तरह के कितने यन्त्र लगाने का निर्णय करता है । उदाहरण के लिए, एक करघे पर एक श्रमिक आवश्यक है तो श्रम की माँग इस बात पर निर्भर करेगी कि यही साहसी द्वारा कितने करघे लगाये गये हैं । तकनीकी प्रगति से श्रम की माँग घट सकती है । उदाहरण के लिए, अगर स्वचालित करघे का विकास हो जाता है तथा एक श्रमिक दो या दो से अधिक करघों को देख सकता है तो उस अवस्था में श्रम की माँग घट जायेगी ।

उपर्युक्त तत्त्व श्रम की माँग को प्रभावित करते हैं । एक नियोक्ता इन तत्त्वों को ध्यान में रखकर श्रम को एक आधारभूत तथ्य के अनुसार काम पर लगाता है । यह आधारभूत तथ्य श्रम की सीमान्त आगम उत्पादकता है । श्रम की माँग उसकी सीमान्त आगम उत्पादकता पर निर्भर करती है । सीमान्त उत्पादक अथवा फर्म के द्वारा श्रम की एक अतिरिक्त इकाई का प्रयोग करने से फर्म की कुल आगम में जो वृद्धि होती है, वह इस इकाई (श्रमिक) की सीमान्त आगम उत्पादकता कहलाती है । एक फर्म उस समय तक श्रमिकों को कार्य पर लगाती रहती है, जब तक श्रम की मजदूरी श्रम की सीमान्त आगम उत्पादकता से कम होती है, क्योंकि इससे लागतों की अपेक्षा आगम अधिक बढती है । परिवर्तनशील अनुपातों के नियम के अनुसार एक

सीमा के बाद श्रमिकों को लगाने से सीमान्त आगम उत्पादकता घटने लगती है । यही कारण है कि एक फर्म मजदूरी कम होने पर ही अधिक श्रमिकों को काम पर लगाती है । यहाँ यह बात ध्यान देने योग्य है कि मजदूरी का निर्धारण व्यक्तिगत फर्म की श्रम की माँग से नहीं बल्कि समूचे उद्योग की श्रम की माँग से होता है । समूचे उद्योग का श्रम का माँग वक्र उद्योग में लगी हुई सभी व्यक्तिगत फर्मो के माँग वक्रों को एक साथ रखकर योग द्वारा निकाला जाता है । उद्योग का माँग वक्र बायें से दायें नीचे की ओर झुकता हुआ होता है । यह इस तथ्य को व्यक्त करता है कि नीची मजदूरी की दरों पर अधिक तथा ऊँची मजदूरी की दरों पर कम श्रमिकों को उद्योग में लगाया जाता है । अर्थव्यवस्था में श्रम के माँग वक्र को रेखाचित्र 16.3 से देखा जा सकता है । श्रम का माँग वक्र DD बायें से दायें नीचे की ओर गिरता हुआ है ।

श्रम की पूर्ति (Supply of Labour) श्रम की पूर्ति का अर्थ है कि एक विशेष प्रकार के श्रमिकों की संख्या, जो विभिन्न मजदूरी दरों पर अपने श्रम को बेचने को तैयार हैं । श्रम की पूर्ति, कार्य-दिवसों तथा कार्य-घण्टों पर निर्भर करती है ।

श्रम की पूर्ति के तीन भिन्न-भिन्न अर्थ हैं- (i) किसी एक फर्म विशेष के लिए श्रम की पूर्ति, (ii) किसी एक उद्योग के लिए श्रम की पूर्ति, तथा (iii) सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था के लिए श्रम की पूर्ति । पूर्ण प्रतियोगिता की स्थिति में किसी एक फर्म विशेष के लिए श्रम की पूर्ति पूर्ण लोचदार होती है । पूर्ण प्रतियोगिता की स्थिति में श्रम को क्रय करने वाली फर्मो की संख्या बहुत अधिक होती है; अत. एक विशेष फर्म अपनी क्रियाओं द्वारा श्रम की मजदूरी पर कोई प्रभाव नहीं डाल सकती है । उसे तो बाजार में प्रचलित मजदूरी की दर को ही स्वीकार करना होता है । पूर्ण प्रतियोगिता की स्थिति में एक फर्म का पूर्ति वक्र प्रचलित मजदूरी की दर पर पूर्णतया मूल्य-सापेक्ष होता है।

परन्तु श्रम की पूर्ति सम्पूर्ण उद्योग के लिए पूर्ण लोचदार अथवा पूर्णतया मूल्य-सापेक्ष नहीं होती है । यदि एक उद्योग अधिक श्रमिकों को प्राप्त करना चाहता है तो उसे मजदूरी की दर में वृद्धि करनी होगी, तभी श्रमिक दूसरे उद्योगों से उस उद्योग की तरफ आकर्षित हो सकते हैं । जब किसी उद्योग में किसी विशेष प्रकार की श्रम की मजदूरी में वृद्धि की जाती है तो उससे मिलते-जुलते व्यवसायों से श्रमिक उस विशेष श्रम में आने का प्रयत्न करेंगे । इसके फलस्वरूप उस उद्योग के लिए उस विशेष प्रकार के श्रम की पूर्ति बढ़ जायेगी । इसीलिए एक उद्योग विशेष का श्रम का पूर्ति वक्र बायें से दायें की ओर चढता हुआ होता है, जो इस तथ्य को स्पष्ट करता है कि अधिक मजदूरी पर श्रम की पूर्ति अधिक तथा कम मजदूरी पर श्रम की पूर्ति कम होती है । अर्थात् एक उद्योग में मजदूरी तथा श्रम की पूर्ति में धनात्मक सीधा सम्बन्ध पाया जाता है ।

सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था के लिए श्रम की पूर्ति अनेक, सामाजिक तथा राजनीतिक तत्त्वों पर निर्भर करती है । सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था के लिए श्रम की पूर्ति देश की जनसंख्या के आकार, उसकी आयु तथा लिंग-विभाजन पर निर्भर करती है । इसके अतिरिक्त श्रम की पूर्ति इन बातों पर भी निर्भर करती है कि उस देश में स्त्रियाँ काम करती है या नहीं, देश के लोग किस आयु तक कार्य करते हैं? स्कूलों एवं कॉलेजों में पढ़ते समय अंशकालिक कार्य करने की प्रथा एवं व्यवस्था है या नहीं? किसी अर्थव्यवस्था में श्रम की पूर्ति इस बात पर निर्भर करती है कि उस देश में कितने घण्टे काम करने का रिवाज है, तथा श्रमिक ओवरटाइम काम करते हैं अथवा नहीं? श्रम की पूर्ति

इस तथ्य पर भी निर्भर करती है कि श्रमिकों की काम क्या आराम के प्रति सामान्य प्रवृत्ति क्या है' श्रम की गतिशीलता भी श्रम की पूर्ति को प्रभावित करती है । अन्त में, श्रम की पूर्ति देश के श्रमिकों की कार्य-कुशलता पर भी निर्भर करती है । यदि एक अर्थव्यवस्था में मजदूरी दर बताती जाती है तो प्रारम्भिक चरणों में श्रम की पूर्ति बढ़ती जाती है । परन्तु जब मजदूरी की दर बढ़ती जाती है तो एक अवस्था ऐसी आती है, जहाँ श्रमिकों का जीवन-निर्वाह आसानी से हो 'सकता है । इस अवस्था के बाद मी यदि श्रमिकों की मजदूरी में वृद्धि होती है तो श्रमिक एक दिन में कम घण्टे काम करने लगेंगे, क्योंकि वे अधिक मजदूरी की दर पर कम घण्टे अथवा कम दिन काम करके भी जीवन-निर्वाह के लिए पर्याप्त आय अर्जित कर सकते हैं तथा वे काम करने की अपेक्षा अवकाश (Leisure) को अधिक पसन्द करते हैं । इसलिए एक अर्थव्यवस्था में एक विशेष अवस्था के बाद मजदूरी की दर में वृद्धि से श्रम की पूर्ति बढ़ने की बजाय घटने लगती है । इसका तात्पर्य यह है कि श्रम की पूर्ति एक सीमा के बाद पीछे की ओर अर्थात् OY अक्ष की ओर झुकने लगती है । इसे अर्थव्यवस्था में पीछे झुकता हुआ श्रम का पूर्ति वक्र (Backward sloping supply curve of labour) भी कहते हैं ।

जब सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था के लिए श्रम का पूर्ति वक्र एक एक सीमा के बाद बायीं ओर पीछे को झुकता हुआ होता है तब इस स्थिति में एक तो प्रत्येक श्रमिक का श्रम कम हो सकता है, और दूसरे मजदूरी बढ़ने पर घर की स्त्रियाँ काम करना छोड़ सकती हैं तथा बच्चों को अधिक उस तक स्कूल व कॉलेजों में रखा जाता है, जिससे अर्थव्यवस्था में ऊँची मजदूरी पर काम करने वाले लोगों की संख्या कम हो सकती है ।

श्रम की पूर्ति का विश्लेषण करने के बाद कहा जा सकता है कि श्रम की पूर्ति वक्र के आकार के बारे में निश्चित रूप से कुछ भी कहना अत्यन्त कठिन है । परन्तु हमारे विश्लेषण के लिए हम यह कह सकते हैं कि सामान्यतया एक उद्योग का श्रम का पूर्ति वक्र बायें से दायें को ऊपर की ओर चढ़ता हुआ होता है अर्थात् श्रम की पूर्ति तथा मजदूरी में धनात्मक सम्बन्ध होता है । श्रम का पूर्ति वक्र SS रेखाचित्र 16.3 में दिखाया गया है ।

माँग एवं पूर्ति में सन्तुलन (Equilibrium between Demand and Supply) साम्य अथवा सन्तुलित मजदूरी वहाँ निर्धारित होती है, जहाँ उद्योग की श्रम की कुल माँग तथा कुल पूर्ति दोनों एक-दूसरे के समान होती है । रेखाचित्र 16.3 में यह दिखाया गया है कि किस प्रकार श्रम के माँग वक्र व पूर्ति वक्र के कटाव द्वारा सन्तुलित मजदूरी दर का निर्धारण होता है । रेखाचित्र 16.3 में वक्र SS द्वारा श्रम की पूर्ति तथा DD वक्र द्वारा श्रम की माँग दिखायी गयी है । श्रम के माँग वक्र DD तथा पूर्ति वक्र SS के कटाव द्वारा E साम्य बिन्दु ज्ञात होता है । साम्य बिन्दु E पर श्रम की ON मात्रा की माँग की जाती है तथा ON मात्रा की पूर्ति की जाती है । इस साम्य बिन्दु पर OW अथवा NE साम्य मजदूरी निर्धारित होती है । पूर्ण प्रतियोगिता की स्थिति में मजदूरी न तो OW से कम हो सकती है और न अधिक । यदि किसी कारणवश मजदूरी OW से कम अथवा अधिक हो जाती है तो वह पुन: OW होने की प्रवृत्ति रखती है । उदाहरण के लिए, किसी समय मजदूरी बढ़कर OW2 हो जाती है तो इस मजदूरी पर श्रम की पूर्ति W2T के बराबर है, जबकि श्रम की माँग WR के बराबर ही है; अत: RT के

बराबर श्रम का आधिक्य है । इतने श्रमिकों को काम न मिला होने के कारण वे कम मजदूरी पर भी काम करने को तैयार हो जायेंगे; अत: मजदूरी के घटने की प्रवृत्ति होगी और यह घटकर पुन: OW हो जायेगी । इसी तरह यदि मजदूरी किसी कारण से घटकर OW1 हो जाती है तो इस पर श्रम- की माँग W1Q होगी, जबकि श्रम की पूर्ति W1P ही होगी, अत: इच्छित मात्रा में श्रम उपलब्ध न होने के कारण उत्पादकों द्वारा मजदूरी में वृद्धि की जायेगी और इसके परिणामस्वरूप मजदूरी पुन: बढ़कर. OW हो जाएंगे । अत: सन्तुलित मजदूरी OW ही होगी ।

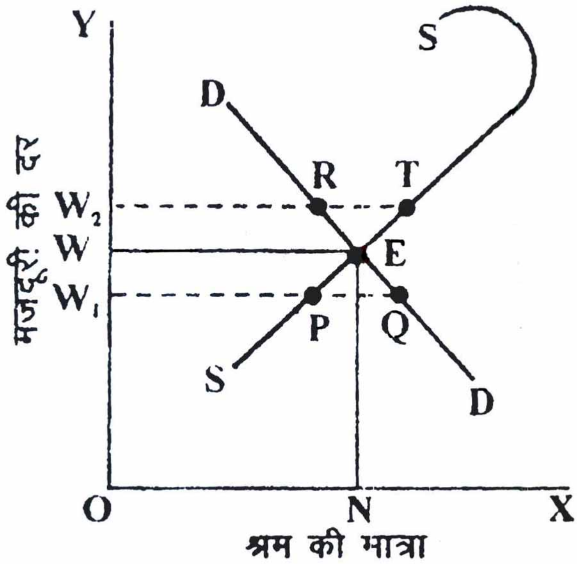

रेखाचित्र 16.1

16.4.2 अपूर्ण प्रतियोगिता में मजदूरी का निर्धारण

(Wages Determination under Imperfect Competition)

अभी तक हमने पूर्ण प्रतियोगिता की स्थिति में मजदूरी के निर्धारण का अध्ययन किया है, परन्तु वास्तविक विश्व में पूर्ण प्रतियोगिता की स्थिति नहीं पायी जाती है । आजकल अधिकांश देशों में और विशेषतः औद्योगिक दृष्टि से उन्नत राष्ट्रों में अपूर्ण प्रतियोगिता की स्थिति पायी जाती है । अत: हम अपूर्ण बाजारों में श्रम की मजदूरी का अध्ययन करेंगे। अपूर्ण प्रतियोगी बाजारों की विभिन्न स्थितियाँ अग्र हो सकती हैं-

(1) **श्रम बाजार में श्रम के क्रय में क्रेता-एकाधिकार एवं श्रम के विक्रय में पूर्ण प्रतियोगिता की स्थिति में मजदूरी निर्धारण (Determination of Wages under Conditions of Monopsony in Hire and Sale of Labour in the Perfect Competition)** सर्वप्रथम हम एक ऐसे श्रम बाजार में मजदूरी निर्धारण का अध्ययन करेंगे, जिसमें श्रम का क्रय एक ही नियोक्ता द्वारा किया जाता है, परन्तु श्रम का विक्रय श्रमिकों द्वारा व्यक्तिगत रूप से पूर्ण प्रतियोगिता के अधीन किया जाता है । क्रेता-एकाधिकार या तो श्रम का क्रय करने वाली अकेली फर्म होने के कारण हो सकता है अथवा कुछ फर्म आपस में मिलकर क्रेता-एकाधिकार का रूप ग्रहण कर सकती है । क्रेता-एकाधिकार में नियोक्ता अपनी क्रियाओं से मजदूरी को प्रभावित कर सकता है । अत: फर्म का औसत मजदूरी वक्र एवं सीमान्त मजदूरी वक्र दोनों एक नहीं होते

हैं तथा दायीं ओर ऊपर को चढ़ते हुए होते है । क्रेता-एकाधिकारी वस्तु बाजार में भी पूर्ण एकाधिकार की स्थिति में हैं तो क्रेता एकाधिकारी के श्रम के सीमान्त एवं औसत आगम वक्र अधिक प्रपाती होंगे । क्रेता एकाधिकारी अपने लाभ को अधिकतम करने के लिए श्रमिकों को उस समय तक काम पर लगाता रहता है, जब तक श्रम की सीमान्त आगम उत्पादकता श्रम की सीमान्त मजदूरी के बराबर नहीं हो जाती है । क्रय-एकाधिकार में मजदूरी के निर्धारण को रेखाचित्र 16.4 से स्पष्ट किया जा सकता है । भक्त एकाधिकारी की सीमान्त मजदूरी वक्र तथा AW एकाधिकारी की औसत मजदूरी वक्र हैं । MRP एकाधिकारी के लिए श्रम की सीमान्त आगम उत्पादकता वक्र तथा ANRP औसत विशुद्ध आगम उत्पादकता वक्र हैं । क्रय-एकाधिकारी E बिन्दु पर साम्य में है । इस स्थिति में वह श्रम की OM मात्रा को काम पर लगाता है, जिस पर MP के बराबर औसत मजदूरी का भुगतान करता है तथा MK के बराबर औसत आगम प्राप्त करता है । अत: OM मात्रा में श्रमिकों को लगाने पर WPKR के बराबर इसे अतिरिक्त लाभ प्राप्त होता है । इसे श्रम का शोषण कहा जाता है, क्योंकि क्रय-एकाधिकारी श्रम से अधिक उत्पादकता प्राप्त करता है, परन्तु उसे सीमान्त उत्पादकता से कम भुगतान करता है ।

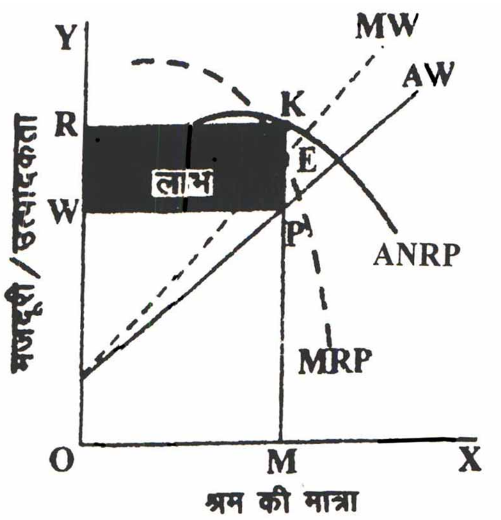

रेखाचित्र 16.4

(2) श्रम के क्रय में पूर्ण प्रतियोगिता तथा श्रम के विक्रय में एकाधिकार के अन्तर्गत मजदूरी का निर्धारण (Determination of wages under Condition of Pure Competition in The Hire and Monopoly in the Sale of Labour) अब हम एक ऐसी स्थिति का अध्ययन कर सकते हैं, जिसमें एक ओर तो बहुत बडी संख्या में स्वतन्त्रतापूर्वक कार्य करने वाले श्रम के नियोक्ता होते हैं और दूसरी ओर एक शक्तिशाली एवं सुद्दढ़ श्रम संघ होता है । यद्यपि ऐसी स्थिति व्यवहार में वर्तमान विश्व में दिखाई नहीं देती हैं परन्तु ऐसी स्थिति की यही हमने कल्पना कर ली है । इस स्थिति में श्रम की मजदूरी की दर श्रम संघ द्वारा निर्धारित की जाती है । इस दशा में मजदूरी निर्धारण को रेखाचित्र 16.5 में दिखाया गया है । रेखाचित्र के बायें भाग में पूर्ण प्रतियोगिता की स्थिति में श्रम की कुल माँग और श्रम की कुल पूर्ति के साम्य द्वारा मजदूरी का निर्धारण दिखाया गया है । पूर्ण प्रतियोगिता की स्थिति में OW सन्तुलित मजदूरी की दर

निर्धारित है और इस मजदूरी पर ON श्रमिकों को काम पर लगाया जाता है । इस स्थिति में फर्म के लिए श्रम का पूर्ति वक्र एक पूर्ण लोचदार वक्र होगा तथा यह OW मजदूरी स्तर पर OX अक्ष के समानान्तर एक क्षितिजीय रेखा के रूप में होगा, जिसे रेखाचित्र 16.5 के दायें भाग में दिखाया गया है । यह क्षितिजीय रेखा फर्म के लिए श्रम का औसत एवं सीमान्त मजदूरी वक्र होगा । OW मजदूरी वक्र को फर्म का श्रम का सीमान्त आगम उत्पादकता वक्र C बिन्दु पर काटता है । यह कर्म का साम्य बिन्दु है । इस पर फर्म OM श्रमिकों को कार्य पर लगाती है ।

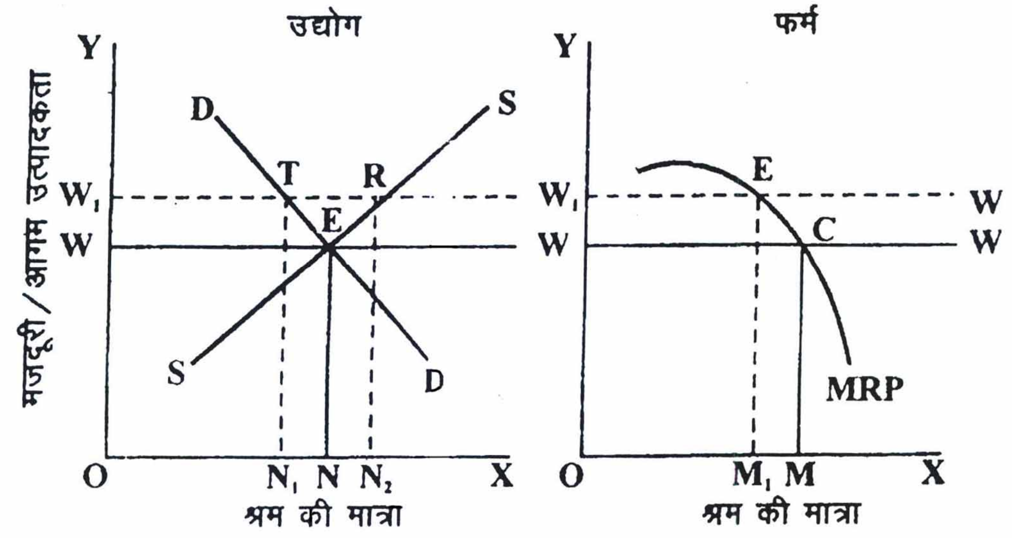

रेखाचित्र 16.5

अब हम यह मान लेते हैं कि पूर्ण प्रतियोगिता की स्थिति श्रम के विक्रय की दृष्टि से समाप्त हो जाती है अर्थात् सभी श्रमिक मिलकर एक शक्तिशाली श्रम संघ स्थापित कर लेते हैं । परन्तु श्रम के क्रय की दृष्टि से पूर्ण प्रतियोगिता विद्यमान रहती है । ऐसी स्थिति में श्रम संघ अपनी एकाधिकारात्मक शक्ति का प्रयोग करता है और स्वयं मजदूरी की ऊँची दर निर्धारित कर देता है । माना कि श्रमिक संघ ने प्रचलित मजदूरी CW से कुछ ऊँची OW_1 मजदूरी निर्धारित कर दी है । OW_1 मजदूरी पर श्रम की पूर्ति ON_2 होती है, जबकि नियोक्ता लोग OW_1 मजदूरी पर श्रम की माँग ON_2 करते हैं । अत: श्रम संघ, द्वारा ऊँची मजदूरी निर्धारित करने पर रोजगार की मात्रा N1N के बराबर कम हो जाती है । एकाधिकारी श्रम संघ द्वारा निर्धारित OW_1 मजदूरी सभी फर्मो द्वारा स्वीकार कर ली जायेगी । OW_1 मजदूरी पर श्रम की पूर्ति व्यक्तिगत फर्मो के लिए पूर्ण लोचदार होगी । रेखाचित्र 16.5 में दायें भाग की ओर OW_1 मजदूरी वक्र ने फर्म के श्रम के सीमान्त आगम वक्र को E बिन्दु पर काटा है । E फर्म का साम्य बिन्दु है । इस पर फर्म OM_1 श्रमिकों को काम पर लगाती है । अत: एकाधिकारी श्रम संघ द्वारा निर्धारित ऊँची मजदूरी के कारण प्रभावित फर्मो के उत्पादन एवं रोजगार मात्राओं में कमी हो जाती है । श्रमिक संघ द्वारा निर्धारित ऊँची मजदूरी के परिणामस्वरूप जो श्रमिक बेकार हो जाते हैं वे अन्य व्यवसायों, उगते अथवा स्थानों पर चले जाते हैं ।

पूर्ण प्रतियोगिता की स्थिति तथा श्रम पूर्ति में एकाधिकार की स्थिति दोनों में श्रमिकों की कुल मजदूरी प्राप्तियों की तुलना की जा सकती है । पूर्ण प्रतियोगिता की स्थिति में कुल मजदूरी की प्राप्तियाँ ONEW क्षेत्र के बराबर हैं, जबकि श्रम पूर्ति में एकाधिकार की स्थिति में कुल मजदूरी प्राप्तियों ON1TW1 क्षेत्र के बराबर हैं । श्रम संघ द्वारा निर्धारित मजदूरी की स्थिति में कुल मजदूरी प्राप्तियाँ अधिक हैं परन्तु यहाँ यह बात ध्यान रखने की है कि श्रम संघ द्वारा निर्धारित मजदूरी की स्थिति में कुल मजदूरी प्राप्तियाँ अधिक तभी होती है, जब श्रम की माँग अधिक बेलोचदार हो । यदि श्रम की माँग अधिक लोचदार होगी तो कुल मजदूरी प्राप्तियाँ पूर्ण प्रतियोगिता की तुलना में कम होंगी ।

(3) **श्रम के क्रय में क्रेता एकाधिकार एवं श्रम के विक्रय मे विक्रय एकाधिकार के अन्तर्गत मजदूरी का निर्धारण (Determination of Wages under Conditions of Monopoly in the Hire and Monopoly in the Sale of Labour)** - यह एक स्थिति होती है, जिसमें एक तरफ श्रम के नियोक्ताओं के सुदृढ़ एकाधिकारी संघ होते हैं और दूसरी तरफ श्रमिकों के अपने सुदृढ़ श्रम संघ होते हैं । इस स्थिति को द्विपक्षीय एकाधिकार की स्थिति भी कहते हैं । इस स्थिति में एक ओर नियोक्ताओं का एकाधिकार होता है और दूसरी और श्रमिकों का एकाधिकार होता है । अत: एक ओर श्रम का क्रेता (नियोक्ताओं का संघ) कम-से-कम मजदूरी देना चाहता है और दूसरी ओर श्रम का विक्रेता (श्रम संघ) अधिक-से-अधिक मजदूरी लेना चाहता है । श्रम का विक्रेता एकाधिकारी संघ श्रम की पूर्ति नियन्त्रण करके मजदूरी बढ़ाना चाहता है और दूसरी ओर श्रम का क्रेता नियोजकों का एकाधिकारी संघ श्रम की माँग को नियन्त्रित करके मजदूरी कम करना चाहता है । इस स्थिति में मजदूरी विक्रेता एकाधिकारी दर से नीची तथा क्रेता एकाधिकारी दर से ऊँची, इन दोनों सीमाओं के मध्य कहीं निर्धारित होती है । यदि श्रम संघ सौदा करने की अधिक शक्ति रखता है तो मजदूरी क्रय एकाधिकारी दर के पारा और यदि श्रम संघ सौदा-शक्ति अधिक रखता है तो विक्रय एकाधिकारी दर के पास निर्धारित होती है ।

16.5 सारांश

मजदूरी निर्धारण के लिए अलग-अलग सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया गया है उसमें से महत्त्वपूर्ण सिद्धान्त मजदूरी का आधुनिक सिद्धान्त है जिसे मजदूरी का माँग एवं पूर्ति सिद्धान्त भी कहते हैं । इसमें पूर्ण प्रतियोगिता व अपूर्ण प्रतियोगिता में मजदूरी का निर्धारण किया जाता है। श्रम की माँग उसके द्वारा उत्पादित वस्तु की माँग पर निर्भर करती है । श्रम की माँग अन्य साधनों की कीमतों पर भी निर्भर करती है । श्रम की माँग तकनीकी तत्त्वों पर भी निर्भर करती है । तकनीकी प्रगति से श्रम की माँग घट जाती है । श्रम की पूर्ति कार्य-दिवसों तथा कार्य घण्टों पर निर्भर करती है । श्रम की पूर्ति के तीन अर्थ है किसी (i) एक फर्म विशेष के लिए श्रम की पूर्ति (ii) किसी एक उद्योग के लिए श्रम पूर्ति (iii) सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था के लिए श्रम की पूर्ति । सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था के लिए श्रम की पूर्ति अनेक आर्थिक, सामाजिक तथा राजनैतिक तत्त्वों पर निर्भर करती है । जहाँ उद्योग की श्रम की कुल माँग तथा कुल पूर्ति दोनों एक दूसरे के बराबर होती है वहाँ साम्य अथवा सन्तुलित मजदूरी निर्धारित होती है ।

16.6 शब्दावली

मजदूरी- श्रम के प्रयोग के लिए दी गई कीमत ।

मौद्रिक या नकद मजदूरी (Money or Nominal Wages)- किसी मजदूर को उसके श्रम के बदले में मुद्रा के रूप में जो पारिश्रमिक दिया जाता है ।

असल मजदूरी (Real Wages)- जो श्रमिक की मौद्रिक मजदूरी के बदले वस्तुएँ व सेवाएँ प्राप्त होती है या मुद्रा की क्रय-शक्ति ।

श्रम की माँग (Demand for Labour)- श्रम की माँग श्रम की उत्पादकता पर निर्भर करती है ।

श्रम की पूर्ति- श्रमिकों की वह संख्या जो मजदूरी की विभिन्न दरों पर अपना श्रम बेचने के लिए तैयार रहता है ।

16.7 स्वपरख प्रश्न

1. मौद्रिक मजदूरी एवं वास्तविक मजदूरी में अन्तर स्पष्ट कीजिए ।
2. मजदूरी का आधुनिक सिद्धान्त क्या है?
3. पूर्ण प्रतियोगिता तथा अपूर्ण प्रतियोगिता की दशाओं में मजदूरी का निर्धारण किस प्रकार होता है?
4. मजदूरी के आधुनिक सिद्धान्त की सचित्र व्याख्या कीजिये ।

16.8 उपयोगी पुस्तकें

व्यावसायिक अर्थशास्त्र : अग्रवाल, अग्रवाल एवं गुप्ता, रमेश बुक डिपो, जयपुर

व्यावसायिक अर्थशास्त्र बी.पी. गुप्ता

Business Economics: Agrawal M.D. & Som Deo, Ramesh Book Depot, Jaipur

इकाई- 17

लगान
(Rent)

इकाई की रूपरेखा

17.0 उद्देश्य

17.1 प्रस्तावना

17.2 लगान का अर्थ एवं महत्व

17.3 लगान के प्रकार

17.3.1 भूमि लगान

17.3.2 आर्थिक लगान

17.4 रिकार्डो का लगान सिद्धान्त

1. मान्यताऐं

2. भेदात्मक लगान एवं निरूपण

3. दुर्लभता लगान

4. रिकार्डो के सिद्धान्त की आलोचनात्मक समीक्षा

17.5 लगान का आधुनिक सिद्धान्त

17.6 अर्द्ध लगान

17.7 सारांश

17.8 स्वपरख प्रश्न

17.9 संदर्भ ग्रन्थ

17.0 उद्देश्य

इस अध्याय का उद्देश्य पाठकों को अर्थशास्त्र में लगान की अवधारणा, परिभाषा, सिद्धान्त एवं इसके आर्थिक महत्व को बताना है । लगान के शब्द को आर्थिक एवं बोलचाल की भाषा में किस प्रकार प्रयुक्त किया जाता है एवं इसके क्या प्रयोजन हैं यह छात्रों को अवगत होना चाहिये ।

17.1 प्रस्तावना

सामान्य बोलचाल की भाषा में भवन,भूमि,दुकान,मकान आदि के प्रयोग में लाने के लिये जो भुगतान किया जाता है उसे लगान (Rent) कहा जाता है । भू अथवा सम्पत्ति के स्वामी को किसी भी प्रयोगार्थ कोई निश्चित भुगतान अथवा लीज राशि मिलती है उसे भी लगान ही माना जाता है । परन्तु भू-स्वामी जो भुगतान प्राप्त करता है वह शुद्ध लगान (pure rent) न होकर एक संविदात्मक भुगतान है जिसे हम सकल लगान (gross rent) कह सकते हैं । वस्तुत: हम विभिन्न उत्पादन के साधनों (यथा भूमि, श्रम, पूंजी एवं साहस) द्वारा प्राप्त किये गये भुगतानों

में से भूमि द्वारा प्राप्त किया गया भुगतान 'लगान' कहते हैं । अर्थात् यह वह भुगतान है जो भूमि के प्रयोग के बदले भू-स्वामी को दिया जाता है अथवा प्राप्त होता है । परन्तु आधुनिक आर्थिक सिद्धान्त में लगान शब्द का प्रयोग केवल भू-उपयोग के लिये किये जाने वाले भुगतान के लिये ही नहीं बल्कि उन सभी साधनों के प्रयोग से प्राप्त उस आधिक्य से लगाया जाता है जो कि उस साधन की हस्तांतरण आय (transfer earnings) के अतिरिक्त प्राप्त होता है ।

17.2 लगान का अर्थ एवं महत्व (Meaning and Importance of Rent) :

हम सबसे पहले लगान की परिभाषाओं पर विचार करते हैं । रिकार्डो के अनुसार, "लगान भूमि की उपज का वह भाग है जो भू-स्वामी को भूमि की मौलिक एवं अविनाशी शक्तियों के प्रयोग के लिये दिया जाता है ।"

अल्फेड मार्शल के अनुसार, "प्रकृति के उपहारों के स्वामित्व से प्राप्त आय को लगान कहा जाता है ।"

उपरोक्त परिभाषाओं में लगान को एक संकुचित रूप में प्रयोग किया गया है जिसके अन्तर्गत लगान केवल भूमि के प्रयोग से ही प्राप्त होता है जो कि भूमि की उत्पादकता के आधार पर तय होता है, अर्थात् भूमि की उत्पादकता कम या अधिक होने पर भूमि से प्राप्त लगान भी परिवर्तित होगा । परन्तु आधुनिक विचारधारा में लगान का यह संकुचित प्रयोग नहीं है । आधुनिक विचारधारा में लगान केवल भू-साधन से ही नहीं बल्कि किसी भी उत्पादन के साधन से प्राप्त हो सकता है । इसी कारण लगान की आधुनिक परिभाषाओं में हम भूमि के समकक्ष अन्य उत्पादन के साधनों को भी मानते हैं ।

बेनहम के अनुसार, "उत्पादन के साधन की कोई भी इकाई जो अपनी हस्तांतरण आय से अधिक आय प्राप्त करती है उसे लगान कहा जाता है ।"

बोल्डिंग के अनुसार, "किसी भी उत्पादन के साधन की एक इकाई को उसके वर्तमान कार्य में रखने के लिये जो न्यूनतम भुगतान देय है उससे अधिक दिया जाने वाला भुगतान लगान कहलाता है ।"

श्रीमती जॉन रॉबिन्सन के अनुसार, "लगान की धारणा से आशय उस आधिक्य से है जो एक उत्पादन के साधन की इकाई को उत्पादन में बनाये रखने के लिये किये जाने वाले न्यूनतम भुगतान से अधिक दिया जाता है ।"

यहाँ पर हस्तांतरण आय (अथवा अवसर लागत) एक महत्वपूर्ण अवधारणा है । यदि वास्तव में दिया गया भुगतान किसी साधन की अवसर लागत से अधिक है तो उसे आधुनिक आर्थिक विचारधारा में लगान की संज्ञा दी जाती है । अवधारणा केवल भूमि पर ही नहीं बल्कि किसी भी उत्पादन के साधन पर लागू की जा सकती है । अब प्रश्न यह है कि हस्तांतरण आय (अथवा अवसर लागत) क्या है? उदाहरण के लिये एक व्यक्ति किसी संस्था में लिपिक का कार्य करता है और उसे 3,000 रूपये मासिक वेतन प्राप्त होता है । यदि यही व्यक्ति किसी और संस्था में कार्य करे और उसे 3,500 रूपये प्राप्त हो तो वह 500 रूपये का लगान प्राप्त करता है

। यदि वह अन्य संस्था में भी 3000 रूपये की राशि प्राप्त करता है तो उसे कोई लगान प्राप्त होना नहीं माना जायेगा ।

अत: लगान = वास्तविक आय- (अवसर लागत या हस्तांतरण आय)

17.3 लगान के प्रकार (Types of Rent)

मूलत: लगान की अवधारणा भूमि के एक उत्पादन साधन के रूप में प्रयोग से संबंधित है जिसकी अपनी विशेषताएं हैं । आधुनिक आर्थिक सिद्धान्त में लगान को विस्तृत स्वरूप में लिया गया है जिसमें भूमि का उपयोग एक भाग है । आधुनिक आर्थिक सिद्धान्त लगान को निम्न रूपों में प्रयुक्त करता है-

17.3.1 भूमि लगान - मानवीय प्रयासों पर गैर निर्भर यह उत्पादन का साधन प्रकृति के निःशुल्क उपहार के रूप में जाना जाता है । सभी प्राकृतिक साधनों को हम किसी न किसी रूप में उत्पादन कार्यो में प्रयुक्त करते हैं । इस उपयोग के प्रतिफल में हम जो भुगतान करते हैं वही भू-लगान कहलाता है । मूलत: डेविड रिकार्डों ने लगान के सिद्धान्त का निरूपण किया । इसे हम 'रिकार्डियन लगान' भी कहते हैं । रिकार्डों के लगान सिद्धान्त में अधिक उपजाऊ भूमि पर कम उपजाऊ भूमि की अपेक्षा अधिक लगान प्राप्त होता है ।

17.3.2 आर्थिक लगान - आर्थिक लगान वह आधिक्य है जो किसी साधन को उसके वर्तमान प्रयोग में रखने के लिये न्यूनतम रूप से प्राप्त भुगतान से अधिक प्राप्त होता है । साधन के वैकल्पिक प्रयोग से प्राप्त होने वाली आय हस्तांतरण आय है । अगर कोई साधन वैकल्पिक प्रयोग मे लाने योग्य नहीं है तो उसकी हस्तांतरण आय शून्य होगी । अगर कोई साधन (अथवा भूमि) वर्तमान में 500 रूपये की आय प्राप्त कर रहा है और इसके वैकल्पिक प्रयोग में केवल 450 रूपये ही प्राप्त होते हैं तो वर्तमान में इसका आर्थिक लगान 50 रूपये है । यदि वैकल्पिक प्रयोग से 550 रूपये प्राप्त होते हैं तो वैकल्पिक प्रयोग से प्राप्त आधिक्य (50 रूपये) उसका लगान होगा । यहीं पर कुल लगान (gross rent) की अवधारणा भी महत्वपूर्ण है जिसमें कि अचल सम्पत्ति की घिसावट, अनुरक्षण एवं आय भी सम्मिलित है । अर्थात्

कुल लगान = आर्थिक लगान + अनुरक्षण लागत + ब्याज + प्रबंध व्यय + जोखिम का प्रतिफल

अत: आर्थिक लगान एक साधन की अवसर लागत पर आधिक्य है ।

17.4 रिकार्डो का लगान सिद्धान्त (Recording Theory of Rent) :

प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों में लगान का सुव्यवस्थित सिद्धान्त विकसित करने में डेविड रिकार्डों का स्थान प्रमुख है । 19 वीं शताब्दी में रिकार्डों ने लगान की विस्तृत व्याख्या की । उनके अनुसार लगान भूमि की "मौलिक एवं अविनाशी शक्तियों के प्रयोग" के बदले में भू-स्वामी के द्वारा प्राप्त की जाने वाली राशि है । स्पष्ट है कि यह लगान कृषि पर आधारित उत्पादन के आधार पर माना जाता है जो कि ह्रासमान उत्पादन के नियम पर आधारित है । उनके अनुसार विभिन्न भूमि की उर्वरा शक्ति भिन्न भिन्न होती है । अत: उत्पादन लागत समान होने पर भी किसी भूमि से अधिक तथा किसी भूमि से कम उत्पादन प्राप्त होता है । यही रिकार्डों के सिद्धान्त में अधिसीमान्त एवं सीमांत भूमि के अन्तर का आधार होता है । रिकार्डों के अनुसार लगान का

सिद्धान्त गहन एवं विस्तृत खेती दोनों में ही लागू होता है । रिकार्डों यह मानते हैं कि प्रत्येक भूमि की श्रेणी (grade) अलग अलग है । इस कारण भूमि पर लागत एवं उससे प्राप्त आय के अंतर का आधिक्य ही आर्थिक लगान कहलाता है । चूंकि लगान बढिया एवं घटिया भूमि की उपज के अंतर के बराबर होगा अत: इसे भेदात्मक बचत कहा जाता है । ऐसी भूमि, जिस पर लागत व आय में अंतर नहीं होता वह भूमि लगान रहित भूमि (no rent land) कहलाती है । रिकार्डों के अनुसार भूमि पर लगान को विस्तृत एवं गहन खेती के रूप में समझा जा सकता है । इस सब को समझने से पहले हमें रिकार्डों के लगान सिद्धान्त की मान्यताओं पर विचार करना होगा ।

1. **लगान सिद्धान्त की मान्यताएं (Assumptions of Recardian Theory of Rent)**

(1) भूमि में कुछ मौलिक एवं अविनाशी शक्तियां हैं जो अन्य किसी उत्पादन के साधन में नहीं पाई जाती हैं ।

(2) रिकार्डों के अनुसार लगान केवल "प्रकृति के निःशुल्क उपहार-भूमि पर ही पाया जाता है, मानव निर्मित साधनों पर नहीं । "

(3) रिकार्डों के अनुसार भूमि का उपयोग उसकी उर्वरा शक्ति के घटते हुए क्रम में किया जाता है, अर्थात् सबसे अधिक उपजाऊ भूमि पर खेती सर्वप्रथम होगी उसके बाद उससे कम उपजाऊ भूमि का उपयोग किया जायेगा ।

(4) लगान भूमि की उर्वरता में अंतर एवं उसकी भेदात्मक स्थिति से उत्पन्न होता है ।

(5) कृषि में उत्पादकता हास नियम लागू होता है ।

(6) यह सिद्धान्त दीर्घकालीन समय की अवधारणा पर आधारित है ।

(7) इस सिद्धान्त के अनुसार ऐसी भूमि का अस्तित्व है जिस पर कोई लगान प्राप्त नहीं होता है । मूलत: यही भूमि अन्य भूमि पर प्राप्त किये गये लगान का आधार है जिसे कि रिकार्डों ने लगान रहित भूमि कहा है ।

(8) जनसंख्या लगातार वृद्धिशील है ।

(9) भूमि का आपूर्ति गैर लोचदार है ।

(10) भू-स्वामियों एवं भू-प्रयोग कर्ताओं (किसानों) के मध्य पूर्ण प्रतियोगिता है ।

उपरोक्त मान्यताओं से दो मुख्य बिन्दु स्पष्टतः परिलक्षित होते हैं-एक, भूमि उर्वरता एवं स्थिति में भिन्न होती है एवं श्रेष्ठ श्रेणी की भूमि की दुर्लभता लगान को जन्म देती है, जिसे रिकार्डों ने भेदात्मक लगान (differential rent) कहा है। दो, यदि भूमि समरूप (homogeneous) है, तो भूमि की आपूर्ति के संदर्भ में उसकी मांग लगान को निर्धारित करती है जिसे रिकार्डों ने दुर्लभता लगान (scarcity rent) कहा है ।

2. **भेदात्मक लगान (Differential Rent)**

भेदात्मक लगान की व्याख्या विस्तृत एवं गहन कृषि के माध्यम से की जा सकती है । हम यह जानते हैं कि भूमि अलग अलग उपजाऊपन वाली है अर्थात् अलग अलग श्रेणी की है । भूमि की उर्वरता की भिन्नता प्राकृतिक एवं मानव निर्मित दोनों कारणों से ही हो सकती है । यदि

हम ऐसी कल्पना करें कि एक मानव विहीन द्वीप पर यदि जनसंख्या प्रारम्भ होती है तो सबसे पहले उच्चतम उर्वरता वाली भूमि का प्रयोग किया जायेगा और उसके समाप्त होने अथवा अनुपलब्ध होने पर उससे कम उर्वरता की भूमि का प्रयोग होगा । यदि जनसंख्या बढती है, (अथवा उदाहरण के लिये हम गेहूँ की उपज लेते हैं की मांग बढती है) तो या तो वर्तमान भूमि का गहन प्रयोग होगा अथवा उससे कम उर्वरता की भूमि पर विस्तृत खेती होगी । उदाहरण के लिये इस द्वीप पर चार श्रेणी की भूमियां -A,B,C एवं D उपलब्ध है । जैसे ही जनसंख्या का प्रथम समूह आयेगा वह A श्रेणी की भूमि का प्रयोग करेगा । उच्च श्रेणी (अर्थात् भूमि-A) पर खेती करने की लागत कम उर्वरता वाली भूमि (श्रेणी-B) की लागत से कम होगी । इसी प्रकार इन भूमियों की अवस्थिति भी लागत का निर्धारण करेगी । जब तक जनसंख्या के बढने से श्रेणी A भूमि का प्रयोग सम्पूर्ण नहीं हो जाता तब तक श्रेणी B भूमि का प्रयोग नहीं होगा । इसके अतिरिक्त जब तक श्रेणी B भूमि का प्रयोग नहीं होगा तब तक श्रेणी A की भूमि पर लगान उत्पन्न नहीं होगा । इसी प्रकार जब तक C श्रेणी, D श्रेणी भूमि का उपयोग नहीं होगा तब तक क्रमश: B व C भूमि पर लगान उत्पन्न नहीं होगा । यही पर यह दोहराने की आवश्यकता नहीं है कि श्रेणी A पर लागत कम से कम है । माना कि A श्रेणी की भूमि में एक इकाई श्रम एवं पूँजी से प्रति एकड़ 100 टन गेहूँ का उत्पादन होता है । जब जनसंख्या का दूसरा समूह आयेगा तो उसके पास दो विकल्प होंगे-एक, B श्रेणी की भूमि का प्रयोग करे और उस पर विस्तृत खेती करे, या दो, A श्रेणी के किसानों से वह भूमि किराये पर प्राप्त करे । हम यही यदि यह मानें कि B श्रेणी की भूमि से समान मात्रा में प्रयुक्त श्रम एवं पूँजी से प्रति एड 80 टन गेहूँ उ्त्पादित किया जाता है तो भूमि A को काम में लेने पर 20 टन गेहूँ प्रति एक्ड़ लगान देना होगा (100-80) । इसी लगान को रिकार्डो ने भेदात्मक लगान कहा है । यदि अब गेहूँ की मांग लगातार बढती जाये तो या तो A श्रेणी का गहन प्रयोग हो अथवा B श्रेणी वाली भूमि का विस्तृत प्रयोग हो । गहन प्रयोग का अर्थ होगा कि उस भूमि पर अधिकाधिक श्रम एवं पूँजी का प्रयोग कर अधिक उत्पादन किया जाये । इसके बाद भी- भूमि का प्रयोग इस तथ्य पर निर्भर करेगा कि अन्य श्रेणियों की भूमि की लागत बाजार में मिलने वाली गेहूँ की कीमत से कम हो । यदि यह लागत बाकी श्रेणियों की भूमि (B, C अथवा D) से प्राप्त गेहूँ की उपज की कीमत से अधिक है तो इन श्रेणियों की भूमि का प्रयोग संभव नहीं हो पायेगा । परन्तु यह सत्य है कि गेहूँ की मांग में वृद्धि गेहूँ की कीमत को बढायेगी और उत्तरोत्तर निम्न श्रेणी की भूमियों का भी विस्तृत प्रयोग संभव होगा । जैसे ही A श्रेणी के बाद B, B के बाद C अथवा C के बाद D का प्रयोग होगा उन भूमियों की उत्पादकता के अंतर के बराबर प्रथम श्रेणी का लगान निश्चित होगा । यह याद रखें कि अंतिम भूमि पर लगान नहीं होगा इसे हम सीमान्त भूमि अथवा लगान रहित भूमि कहेंगे । इस के लिये पूर्व में लिये गये उदाहरण को ही आगे बढा सकते हैं । माना कि गेहूँ की कीमत बढ रही है इस कारण उत्तरोत्तर श्रेणी B,C तथा D भूमियों की मांग भी बढ रही है । यहॉ पर हमको यह जानकारी होनी चाहिये कि जैसे जैसे हम उत्तरोत्तर श्रेणी की भूमि का प्रयोग करते हैं, पूर्व में प्रयोग की गई भूमि का भी गहन प्रयोग (अर्थात् अधिक श्रम व पूँजी का प्रयोग) करके उसकी उत्पादकता में वृद्धि करते हैं । इसे हम निम्न चित्र के माध्यम से समझ सकते हैं:

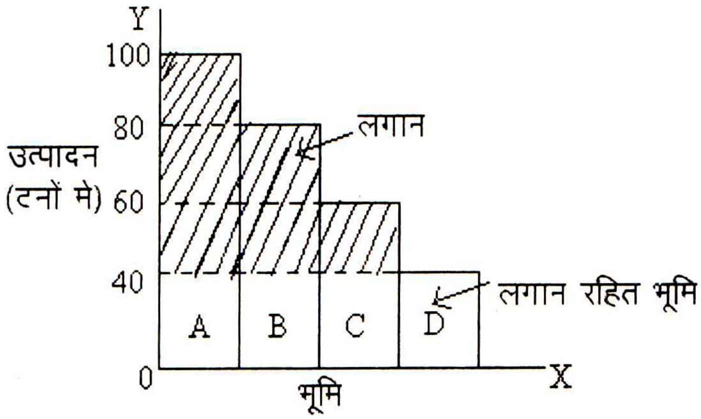

चित्र –1

उपरोक्त चित्र- 1 से स्पष्ट हैं कि जैसे जैसे हम उत्तरोत्तर श्रेणी की भूमि का प्रयोग करते जाते हैं वैसे वैसे अगली श्रेणी की भूमि से प्राप्त उपज एवं पूर्व में प्रयुक्त भूमि की उपज के अंतर के बराबर लगान उत्पन्न होता जाता है । चित्र से स्पष्ट है कि जब केवल श्रेणी A भूमि का प्रयोग करते हैं तो उस पर लगान प्राप्त नहीं होता है लेकिन जैसे ही श्रेणी B का प्रयोग करते हैं जिससे कि 80 टन प्रति एकड़ उत्पादन प्राप्त हो रहा है उस समय A भूमि पर 20 टन का लगान (आधिक्य के रूप में, अथवा भेदात्मक रूप में) प्राप्त हो रहा है । इस समय पर श्रेणी B की भूमि पर कोई लगान प्राप्त नहीं होता है । इसी प्रकार जैसे ही मांग बढने पर श्रेणी A की भूमि प्रयुक्त होती है श्रेणी A पर 40 टन एवं श्रेणी B पर 20 टन प्रति एकड़ का लगान प्राप्त होता है । प्रस्तुत चित्र में श्रेणी D एक सीमान्त भूमि है जिसे लगान रहित भूमि भी कहा जाता है । यहां पर यह स्पष्ट करना आवश्यक होगा कि उत्तरोत्तर श्रेणी की भूमियों पर बढती लागत तब तक पूरी नहीं होगी जब तक गेहूँ की कीमत में वृद्धि नहीं होगी । बाजार में गेहूँ की कीमत उत्तरोत्तर प्रयोग में आने वाली भूमि के प्रयोग की लागत से निर्धारित होती है । यह प्रक्रिया तब तक जारी रहेगी जब तक कि गेंहू की मांग में वृद्धि होती रहेगी और उसकी कीमत में वृद्धि होती जायेगी । स्वयं रिकार्डों के शब्दों में "अनाज (अपने उदाहरण में गेहूँ) महंगा इसलिये नहीं है क्योंकि लगान दिया जाता है बल्कि लगान इसलिये दिया जाता है कि अनाज महंगा है ।" अर्थात् रिकार्डो के सिद्धान्त में लगान उपज की कीमत निर्धारित नहीं करता है बल्कि उपज की कीमत लगान को निर्धारित करती है ।

3. **दुर्लभता लगान (Scarcity rent) -** रिकार्डों के सिद्धान्त में भेदात्मक लगान अप्रत्यक्ष रूप से भूमि की मांग एवं अप्रत्यक्ष से निर्धारित होता है । रिकार्डों के अनुसार भूमि की आपूर्ति - निश्चित एवं स्थिर है अत: भूमि की मांग एक व्युत्पन्न (अर्थात् गेहूँ की मांग होने के कारण) मांग है । रिकार्डों यह भी मानते हैं कि भूमि का प्रयोग केवल एक ही प्रयोग (कृषि के लिये) के लिये होता है और समस्त अर्थव्यवस्था की भूमि की आपूर्ति को वह ध्यान में रखकर इसकी आपूर्ति को स्थिर मानते हैं । दुर्लभता लगान तब ही प्राप्त होता है जब हम भूमि की आपूर्ति मांग के संदर्भ में निश्चित एवं स्थिर मानते हैं । यहां पर यह स्पष्ट करना आवश्यक होगा कि रिकार्डों ने प्रत्यक्ष रूप से दुर्लभता लगान की व्याख्या नहीं की है परन्तु लगान का मॉडल इस प्रकार की परिस्थिति बनाता है जबकि भूमि एक पूर्णतया बेलोचदार वक्र के अन्तर्गत आती है । इसे चित्र-2

के द्वारा समझा जा सकता हैं । यहॉ पर हम सरलता की दृष्टि से यह मान लेते हैं कि सभी भूमि समरूप है और उसकी अवस्थिति भी समान है ।

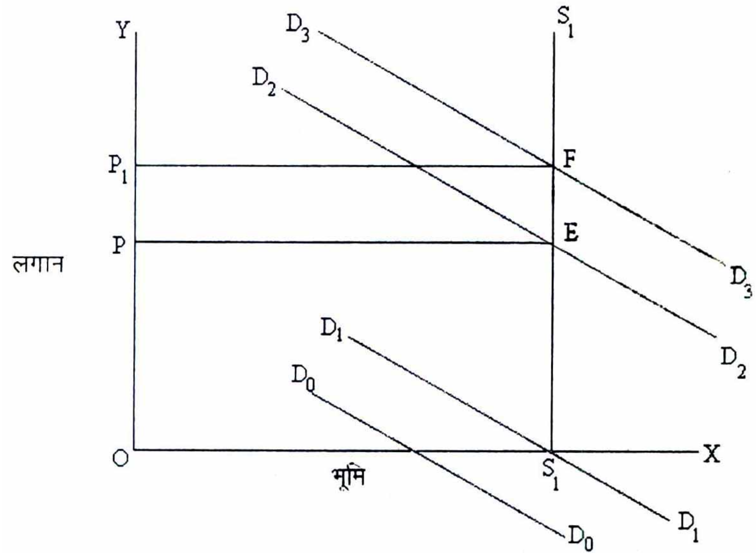

चित्र–2

चित्र में D_0, D_1, D_2, D_3 विभिन्न मांग वक्र हैं एवं SS_1 भूमि का आपूर्ति वक्र है । मांग की स्थिति भूमि की उपज की मांग पर आधारित है । यह स्पष्ट करदें कि भूमि का मांग वक्र (D_0,D_0,$D_1$$D_1$,$D_2$$D_2$ तथा $D_3$$D_3$) सभी कृषकों के सीमान्त आगम उत्पादकता वक्र का संयोग है । अत: अन्य उत्पादन के साधनों की भीति भूमि की मांग भी उसके सीमान्त आगम उत्पादकता से निर्धारित होती है । अब यदि हम देखें तो D_0D_0 की मांग होने पर किसी प्रकार का लगान निर्मित नहीं होता हैं अर्थात् यह मांग लगान रहित मांग है क्योंकि इस पर भूमि की आपूर्ति OS होने पर भी उसका प्रयोग OL के बराबर है । यही पर LS भूमि अप्रयुक्त है । यदि भूमि की मांग D_1D_1 भी हो जाती है तो भी लगान उत्पन्न नहीं होता है क्योंकि भूमि की आपूर्ति व मांग बराबर है (OS) । यदि इसके बाद भूमि की मांग बढती जाती है तब लगान की मात्रा D_2D_2 मांग पर OP तथा D_3D_3 पर OP_1 हो जाती है इस प्रकार हम रिकार्डो के लगान सिद्धान्त की व्याख्या मांग एवं आपूर्ति के आधार पर भी कर सकते हैं । एक दी हुई भूमि की आपूर्ति के संदर्भ में यदि मांग में वृद्धि होती जाये तो पूर्व में मांगी जाने वाली भूमि पर लगान प्राप्त होता जायेगा जो कि उत्तरोत्तर भूमि की लागत से अधिक होगा ।

4. **रिकार्डो के सिद्धान्त की आलोचनात्मक समीक्षा (Critical Evaluation of Recardian Theory) -** रिकार्डो के लगान सिद्धान्त की निम्न बिन्दुओं पर आलोचना की गयी है -

(1) भूमि में कोई मौलिक एवं अविनाशी शक्तियां नहीं है:- रिकार्डो यह मानते हैं कि लगान भूमि की मौलिक एवं अविनाशी शक्तियों के प्रयोग का प्रतिफल है । भूमि की उर्वरा शक्ति को मानव निर्मित कृत्रिम साधन से बढाया भी जा सकता है । ऐसी भूमि जिसे हम पूर्णत: अकृषि योग्य समझते हैं उसे भी कृषि योग्य बनाया जा सकता है । अत: यह अवधारणा अवास्तविक है ।

(2) लगान भूमि की मात्रा के सीमित होने के कारण है न कि उर्वरता के कारण - यह सही है कि भूमि की उर्वरता भिन्न भिन्न स्थानों पर भिन्न भिन्न है । परन्तु अधिक उर्वर भूमि को अधिक एवं कम उर्वर भूमि को कम लगान प्राप्त होगा यह सत्य नहीं है । लगान मूलत: भूमि की आपूर्ति की सीमितता के कारण उत्पन्न होता है । कृषि उपज की मांग मे परिवर्तन से भूमि प्रयोग की मांग में परिवर्तन होता है और इसी से कृषि उपज की कीमत में भी परिवर्तन होता है । अत: दुर्लभता आयाम भेदात्मक आयाम से अधिक तर्क संगत एवं समाचीन है ।

(3) **लगान रहित भूमि का कोई अस्तित्व नहीं है-** डेविड रिकार्डो लगान रहित भूमि की कल्पना करते है, वास्तव में इस प्रकार की भूमि का कोई अस्तित्व नहीं है । यह संभव है कि भूमि किसी एक प्रयोग में लगान अर्जित न करे परन्तु किसी दूसरे प्रयोग में लगान अर्जित कर सकती है । साथ ही लगान हीन भूमि की अवधारणा लगान सिद्धान्त की व्याख्या के लिये आवश्यक भी नहीं है ।

(4) **सर्वश्रेष्ठ भूमि का प्रयोग सर्वप्रथम होना आवश्यक नहीं -** डेविड रिकार्डो की कल्पना है कि सर्वप्रथम प्रयोग सर्वश्रेष्ठ भूमि का होगा । ऐसा होना न केवल अनावश्यक है बल्कि संभव भी नहीं है । ऐतिहासिक तथ्य भी इस बात की पुष्टि नहीं करते हैं । एच.सी.केरी के अध्ययन के अनुसार तो 19 वीं शताब्दी में अमरीकी उपनिवेशन की व्यवस्था रिकार्डो के सिद्धान्त के ठीक विपरीत थी । वास्तविकता तो यह है कि जब प्रवासियों की संख्या एवं शक्ति का विस्तार होता है तब श्रेष्ठ भूमियों का प्रयोग बढता है ।

(5) **उत्पादन ह्रास नियम केवल कृषि क्षेत्र में ही लागू नहीं होता -** रिकार्डो के अनुसार केवल कृषि क्षेत्र में ही उत्पादन ह्रास नियम लागू होता है जबकि वास्तविकता यह है कि यह नियम सर्वव्यापी है । इसके अतिरिक्त यह भी एक तथ्य है कि विभिन्न उन्नत तकनीकी एवं संगठनात्मक तरीकों से इस नियम की क्रियाशीलता को भी लम्बित किया जा सकता है । रिकार्डो इस प्रकार की संभावनाओं पर विचार करने में असफल रहे हैं ।

(6) **श्रम एवं पूँजी उत्पादन के समरूप साधन नहीं है-** डेविड रिकार्डो अपने सम्पूर्ण लगान सिद्धान्त में श्रम एवं पूँजी को भूमि पर प्रयुक्त किये जाने वाले समरूप साधनों के रूप में मानते हैं जबकि ऐसा नहीं है । रिकार्डो यह मानते हैं कि श्रम एवं पूँजी को समान रूप से भूमि पर लगाने के बाद जो शेष बचता है वही लगान है । परन्तु यह सत्य नहीं है क्योंकि श्रम एवं पूँजी को अपना पारिश्रमिक अलग प्राप्त होता है । साथ ही रिकार्डो इस बात को समझाने में भी असफल रहे हैं कि श्रम एवं पूँजी को किरन अनुपात में लगाया जाना चाहिये । यह स्पष्ट है कि श्रम एवं पूँजी के अनुपात की भिन्नता उत्पादन की भिन्नता को प्रभावित करती है ।

(7) अन्य प्रतिष्ठित सिद्धान्तों की भांति पूर्ण प्रतियोगिता की मान्यता अवास्तविक है ।

(8) **लगान केवल दीर्घकाल में ही नहीं बल्कि अल्पकाल में भी प्राप्त हो सकता है ।** यह मान्यता अन्य प्रतिष्ठित सिद्धान्तों की मान्यता के अनुसार ही है । रिकार्डो के अनुसार लगान एक दीर्घकालीन घटना है । मूलत: लगान साधनों की मात्रा के संदर्भ में उनकी मांग के आधार पर निश्चित होता है जैसा कि हम आगे चल कर आधुनिक सिद्धान्त के अंतर्गत देखेंगे । अल्फ्रेड मार्शल ने अल्पकाल में लगान को अर्द्ध लगान कहा है जो कि भूमि पर ही नहीं, किसी भी साधन पर प्राप्त हो सकता है ।

उपरोक्त आलोचनाओं के बावजूद भी रिकार्डों को इस बात का श्रेय जाता है कि वितरण के सिद्धान्त में लगान एक महत्वपूर्ण हिस्सा है जिसका अध्ययन अर्थशास्त्र में अत्यंत महत्वपूर्ण है।

17.5 लगान का आधुनिक सिद्धान्त (Modern Theory of Rent)

लगान के आधुनिक सिद्धान्त में आर्थिक लगान को सामान्य रूप से सभी उत्पादन के साधनों पर लागू किया गया है जिसमें भूमि भी सम्मिलित है । जैसा कि हम देख चुके हैं कि रिकार्डों ने भूमि को "प्रकृति का एक निःशुल्क उपहार" बताया है और उसकी समस्त आय को आर्थिक लगान कहा है । बाद में इस अवधारणा को हस्तांतरण आय से जोड़ा गया जिसमें कहा गया कि एक साधन को एक प्रयोग में बनाये रखने के लिये जो उसकी न्यूनतम आय आवश्यक है उस पर मिलने ताला आधिक्य ही हस्तांतरण आय है ।

लगान साधनों की सीमितता एवं इस सीमितता के संदर्भ में उस साधन की मांग से निर्धारित होता है । लगान प्रत्येक उत्पादन के साधन को प्राप्त होता है जो उसकी विशिष्टता का परिणाम है । यह संभव है कि कोई साधन आंशिक रूप से विशिष्ट अथवा अविशिष्ट होता है । किसी भी साधन के पुरस्कार में उस सीमा तक लगान का अंश हो सकता है जिस सीमा तक उसमें विशिष्टता होती है । लगान वास्तविक आय एवं उसकी अवसर लागत के अंतर के बराबर होता है । यदि किसी श्रमिक को एक स्थान अथवा गतिविधि में रू. 10,000 प्राप्त हो रहे हैं और किसी अन्य गतिविधि में यदि रू.8 000 प्राप्त होते हैं तो यहां पर उस श्रमिक को रू.2,000 का लगान मिल रहा है, यही हस्तांतरण आय (transfer earning) पर आधिक्य लगान है । इस प्रकार लगान मांग एवं पूर्ति के बलों की अन्तर्तप्रक्रिया का परिणाम है । लगान का आधुनिक सिद्धान्त मांग व पूर्ति का सिद्धान्त है । यहां पर यह स्पष्ट करना होगा कि साधनों (अथवा साधन) की मांग उनके द्वारा उत्पादित वस्तुओं की मांग के कारण होती है । अत. लगान के आधुनिक सिद्धान्त के अनुसार भूमि का लगान, अन्य साधनों के पारिश्रमिक की तरह, उसकी मांग व पूर्ति के संतुलन से निर्धारित होता है । भूमि के संदर्भ में मांग एक सक्रिय निर्धारक है क्योंकि भूमि की आपूर्ति स्थिर है । अत: लगान भूमि पर एक प्रेरणा दायी कारक साबित नही होता अर्थात् लगान में वृद्धि होने पर भू-आपूर्ति में वृद्धि नहीं की जा सकती है ।

डेविड रिकार्डों इस तथ्य की ओर तो इंगित करते हैं कि एक श्रेणी की भूमि की अपेक्षा इसकी दूसरी श्रेणी की भूमि पर लगान कितना होगा परन्तु इस तथ्य की ओर वे इशारा नहीं करते हैं कि "आखिर लगान उत्पन्न क्यों होता है ?" इस प्रश्न का उत्तर हमें आधुनिक सिद्धान्त में ही तर्क संगत मिलता है । जैसा कि वाटसन कहते हैं "पूर्णतया लोचदार से कम आपूर्ति वाले साधनों के स्वामियों को प्राप्त होने वाली आय का आधिक्य ही लगान कहलाता है ।" यदि साधन पूर्णतया बेलोचदार है तो सम्पूर्ण आय ही लगान है और जब साधन की पूर्ति लोचदार से कम हो तो वास्तविक आय व हस्तांतरण आय का अंतर ही लगान होगा । जो साधन जितना विशिष्ट है उतना ही कम लोचदार पूर्ति वाला साधन है ।

यहां पर यह याद रहे कि सामान्यता कोई भी साधन किसी एक उद्योग के लिये पूर्णतया बेलोचदार नहीं होता क्योंकि साधनों के विभिन्न प्रयोग होते हैं अत: व्यक्तिगत उद्योगों के लिये साधनों की आपूर्ति व मांग दोनों ही कुछ लोचदार होते हैं अत: मांग व पूर्ति की अन्तर्तप्रक्रिया से

लगान तय हो जाता है । आधुनिक सिद्धान्त में लगान एक आधिक्य के रूप में माना जाता है जो कि साधन की मांग व पूर्ति की स्थिति से निर्धारित होता है । आधुनिक सिद्धान्त, "लगान क्यों उत्पन्न होता है' '? का उत्तर इसी रूप में देता है । आधुनिक सिद्धान्त में साधन की पूर्ति

1. पूर्णतया लोचदार हो सकती है, अथवा
2. पूर्णतया बेलोचदार हो सकती है, अथवा
3. उपरोक्त दोनों के मध्य हो सकती है

इन तीनों स्थितियों को हम चित्र 3 व 4 एवं 5 द्वारा समझ सकते हैं-

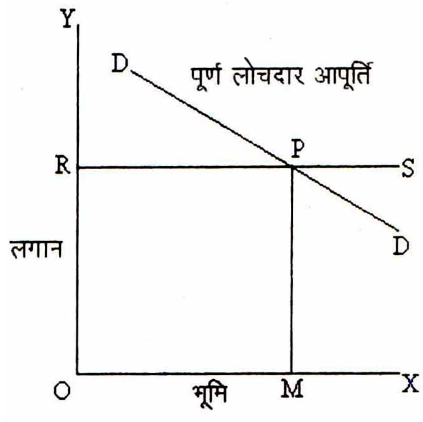

चित्र–3

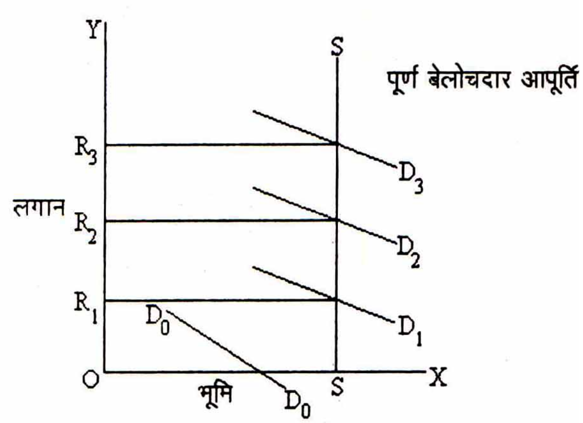

चित्र–4

उपरोक्त दोनों चित्रों (3 व 4) में यह स्पष्ट है कि पूर्णतया लोचदार पूर्ति में लगान का जन्म नहीं होता है लेकिन पूर्णतया बेलोचदार में जैसे जैसे मांग में वृद्धि होती है लगान में भी वृद्धि होती जाती है ।

तीसरी परिस्थिति में. जिसमें कि आपूर्ति न तो पूर्ण बेलोचदार है और न ही पूर्ण लोचदार लगान मांग व पूर्ति के संतुलन से निर्धारित होती है जैसा कि चित्र 5 में दिखाया गया है ।

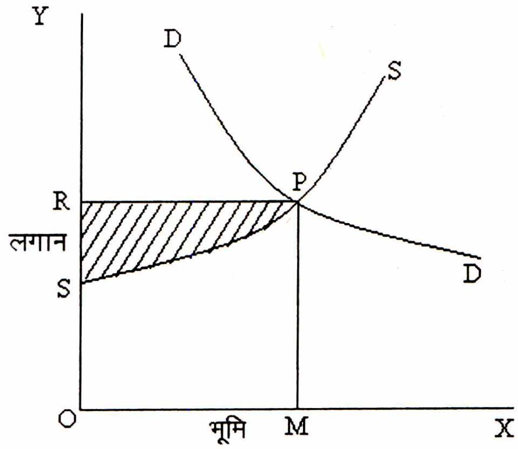

चित्र–5

उपरोक्त चित्र-5 में OM भूमि का प्रयोग होता है और लगान प्रति इकाई OR (=PM) है । इसमें सम्पूर्ण आय OMPR है और हस्तांतरण आय OMPS है । इसके अंतर्गत OMPR -

OMPS=RPS आधिक्य है जो कि लगान कहलाता है, यही आधुनिक लगान का सिद्धान्त है । संक्षेप में आधुनिक सिद्धान्त में लगान के दो अर्थ हैं-

a) लगान भूमि के प्रयोग के लिये चुकाया भुगतान है जो उसकी मांग व पूर्ति से निर्धारित होता है ।

b) लगान एक आधिक्य है (वास्तविक आय का हस्तांतरण आय पर) और यह सभी साधनों पर लाग होता है यथा श्रम, पूँजी, साहस, भूमि ।

17.6 अर्द्ध लगान (Quasi Rent)

अर्ध लगान अथवा आभास लगान का प्रतिपादन अल्फ्रेड मार्शल ने किया । भूमि के अतिरिक्त किसी अन्य साधन को जो अतिरिक्त आय प्राप्त होती है जो कि लगान की तरह ही होती है, उसे अर्द्ध लगान कहा जाता है । चूंकि भूमि की आपूर्ति अल्पकाल व दीर्घकाल दोनों में स्थिर रहती है परन्तु अन्य साधन केवल अल्पकाल में ही बेलोचदार आपूर्ति वाले होते हैं और दीर्घकालीन में इनकी आपूर्ति लोचदार हो जाती है । इस प्रकार के साधनों पर अल्पकाल में मिलने वाली अतिरिक्त आय ही आभास लगान कहलाती है । अल्फ्रेड मार्शल के शब्दों में "आभास लगान उस अतिरिक्त आय को कहते हैं जो मानव निर्मित उत्पादन के साधनों पर अल्पकाल में पूर्ति की सीमितता के कारण प्राप्त होती हे ।" फ्लक्स के अनुसार, "आभास लगान भूमि के अतिरिक्त उत्पत्ति के अन्य साधनों की वह अतिरिक्त आय है जो सामान्य आय से अधिक है ।" ऐसे मानव निर्मित साधन जिनकी अल्पकाल में मांग बढ जाये परन्तु उनकी आपूर्ति एकदम करना संभव नही तो इस साधन की मांग बढने से जो अतिरिक्त आय प्राप्त होगी वह आभास लगान है । आभास लगान दीर्घकाल में विलुप्त हो जाता है क्योंकि दीर्घकाल में उस साधन की आपूर्ति लोचदार होकर बढी हुई मांग को पूरा कर देती है और अतिरिक्त आय समाप्त हो जाती है । अतः आभास लगान अल्पकालीन अवधारणा है । यही पर यह याद रखना आवश्यक होगा कि आभास लगान धनात्मक और ऋणात्मक हो सकता है । यदि साधन की आय उसकी सामान्य आय से कम है तो आभास लगान ऋणात्मक है और यदि आय सामान्य आय से अधिक है तो आभास लगान धनात्मक है । यदि लागत को दो भागों में बीटा जाये-मुख्य लागत एवं पूरक लागत तो हम यह कह सकते हैं कि दीर्घकाल में तो हमें साधनों के प्रयोग से दोनों ही लागतें प्राप्त होनी चाहिये अन्यथा उत्पादन बंद करना होगा किन्तु यदि अल्पकाल में केवल मुख्य लागत भी प्राप्त होती रहे तो उत्पादन जारी रह सकता है । अतः अल्पकाल में मुख्य लागत से अधिक प्राप्त होने वाली आय का भाग ही आभास लगान कहलाता है । आधुनिक अर्थशास्त्री आभास लगान को अल्पकाल में औसत परिवर्तनशील लागत पर मिलने वाले आधिक्य के रूप में भी परिभाषित करते हैं । इसको चित्र 6 द्वारा निम्न रूप से समझाया जा सकता है-

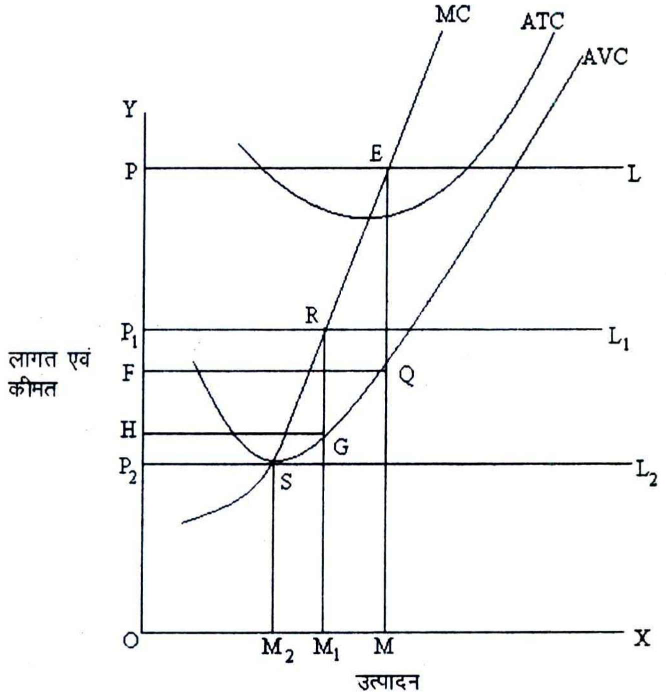

चित्र–6

प्रस्तुत चित्र-6 में एक फर्म का अल्पकालीन उत्पादन लागत एवं मूल्य दिखाया गया है जबकि फर्म को OP कीमत पर मांग वक्र अथवा सीमान्त आगम वक्र (अथवा औसत आगम वक्र) PL प्राप्त होता है । ATC एवं AVC क्रमशः कुल औसत लागत एवं औसत परिवर्तनशील लागत है । MC फर्म की सीमान्त लागत है । जब फर्म OM मात्रा का उत्पादन करती है तो उसे कुल आगम OMEP प्राप्त होता है जिसमें से OMQF उसकी लागत है अत: FQEP आभास लगान है । अब यदि सीमान्त एवं औसत आगम गिर कर P_1L_1 हो जाता है तो उसकी कुल आगम OM_1RP_1 है तथा कुल लागत में से वह केवल OM_1RP_1 आगम प्राप्त कर रहा है जो कि परिवर्तन लागत OM_1GH से अधिक है । यह आधिक्य $HGRP_1$ के बराबर है जिसे हम आभास लगान कहेंगे । यहां समझने की बात यह है कि यदि कीमत OP_2 या इससे कम है तो फर्म को अल्पकाल में आभास लगान प्राप्त नहीं होगा और यदि कीमत OP_2 से कम है तो उसे अपना उत्पादन भी बंद करना पड सकता है । अत: अल्पकाल में अल्पकालीन लागत पर आयु का आधिक्य ही आभास लगान कहलाता है । इस अवधारणा के आधार पर आभास लगान ऋणात्मक नहीं हो सकता । अत: आभास लगान की अवधारणा की तीन बातें प्रमुख है-

1. यह दीर्घकाल में लुप्त हो जाता है ।
2. यह ऋणात्मक नहीं होता ।
3. यह मानव निर्मित साधनों पर ही उपलब्ध होता है ।

17.7 सारांश

अर्थशास्त्र में लगान की अवधारणा एक अत्यंत महत्वपूर्ण अवधारणा है । डेविड रिकार्डो केवल भूमि की "मौलिक एवं अविनाशी शक्तियों" के प्रयोग के लिये दिया जाता है जिसे केवल

कृषि कार्य में ही लाया जाता है और उस पर उत्पादन ह्रासमान नियम कार्यशील होता है । एक श्रेणी की भूमि की लागत व दूसरी भूमि से प्राप्त उत्पादन का अंतर भेदात्मक लगान कहलाता है। रिकार्डो ने भेदात्मक लगान को विस्तृत एवं गहन खेती के माध्यम से समझाया है परन्तु रिकार्डो इस प्रश्न का उत्तर देने में समर्थ नहीं हो पाये कि "लगान क्यों उत्पन्न होता है ?"

आधुनिक अर्थशास्त्रियों ने इस प्रश्न का उत्तर साधनों की मांग की मात्रा के संदर्भ में सीमित आपूर्ति की अंर्तप्रक्रिया के माध्यम से समझाया है । इनके अनुसार लगान केवल भूमि पर ही नहीं बल्कि उन सभी साधनों पर उपलब्ध होता है जिनकी मांग पूर्ति से अधिक है ।

आभास लगान एक अल्पकालीन घटना है जो कि भूमि के अतिरिक्त प्रत्येक मानव निर्मित साधन पर प्राप्त होता है और दीर्घकाल में विलुप्त हो जाता है ।

17.8 स्वपरख प्रश्न

प्रश्न 1 लगान का अर्थ समझाइये । लगान के डेविड रिकार्डो के सिद्धान्त की आलोचनात्मकता व्याख्या कीजिये ।

प्रश्न 2 लगान के आधुनिक सिद्धान्त को समझाइये । यह रिकार्डो के सिद्धान्त से किस प्रकार भिन्न है?

प्रश्न 3 आभास लगान क्या है । चित्र द्‌वारा समझाइये ।

17.9 उपयोगी पुस्तकें

1. Dougles C. Hague and Alfred Stonier; A Text Book of Economics Theory,ELBS
2. Alfred Marshall, Principals of Economics, Macmillan
3. Ravindra H. Dhokalia and Ajay N. Oza; Microeconomics for management Students, Ox- ford, Chapter 19
4. Agrawal M.D. & Som Deo% Business Economics, Ramesh Book Depot, Jaipur.
5. व्यावसायिक अर्थशास्त्र अग्रवाल, अग्रवाल एवं गुप्ता, रमेश बुक डिपो, जयपुर ।

इकाई-18

ब्याज का सिद्धान्त : प्रतिष्ठित, कीन्स एवं आधुनिक (Classical, Keynesian and Modern Theories of Interest)

इकाई की रूपरेखा

18.0 उद्देश्य

18.1 प्रस्तावना

18.2 ब्याज का अर्थ एवं परिभाषा

18.3 ब्याज का प्रतिष्ठित सिद्धान्त

1. पूँजी की माँग अथवा निवेश अनुसूची
2. पूँजी की पूर्ति अथवा बचत अनुसूची
3. पूँजी की माँग एवं पूर्ति की समानता
4. ब्याज के प्रतिष्ठित सिद्धान्त की आलोचनाएँ
5. ब्याज का नव-प्रतिष्ठित सिद्धान्त

18.4 कीन्स का ब्याज का तरलता अधिमान सिद्धान्त

1. तरलता अधिमान का अर्थ
2. तरलता अधिमान के प्रयोजन अथवा उद्देश्य
   - (1) लेनदेन उद्देश्य
   - (2) दूरदर्शिता उद्देश्य
   - (3) सट्टा उद्देश्य
3. तरलता अथवा मुद्रा की पूर्ति
4. ब्याज दर का निर्धारण
5. कीन्स के तरलता अधिमान सिद्धान्त की आलोचनाएँ

18.5 ब्याज का आधुनिक सिद्धान्त

1. IS वक्र की उत्पत्ति
2. LM वक्र की उत्पत्ति
3. ब्याज दर का निर्धारण

18.6 सारांश

18.7 शब्दावली

18.8 स्वपरख प्रश्न

18.9 उपयोगी पुस्तकें

18.0 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के बाद आपको जानकारी मिल सकेगी-

- ब्याज का अर्थ एवं परिभाषा ।
- ब्याज के विभिन्न सिद्धान्तों की जानकारी ।
- ब्याज दरों में भिन्नता क्यों होती है?
- तरलता अधिमान के क्या प्रयोजन होते हैं?

18.1 प्रस्तावना

अर्थशास्त्र की भाषा में ब्याज का अर्थ व्यापक रूप में लगाया गया है । ब्याज का अर्थशास्त्र की विभिन्न समस्याओं के विश्लेषण में महत्वपूर्ण स्थान है । प्राचीन अर्थशास्त्रियों-प्लेटो, अरस्तु तथा कौटिल्य आदि के समय से आज तक सभी अर्थशास्त्रियों ने ब्याज के सम्बन्ध में प्रचुर मात्रा में आर्थिक साहित्य का सृजन किया है । उत्पादन के विभिन्न साधनों में से पूँजी बहुत महत्वपूर्ण साधन है जिसके प्रयोग के बदले ब्याज का भुगतान किया जाता है । पूँजी के लेन-देन में जोखिम पाई जाती है जैसे ऋणदाता को ऋणी से समय पर ऋण की वसूली ना होना, ऋणी का व्यवसाय खत्म हो जाना, और ऋणी का बेईमान हो जाना ।

18.2 ब्याज का अर्थ एवं परिभाषा (Meaning and Definition of Interest)

आधुनिक युग में पूँजी का अत्यधिक महत्त्व है । बड़े पैमाने की उत्पादन व्यवस्था पूँजी के अभाव में कार्यशील नहीं रह सकती है । पूँजी के उपयोग के बदले किये जाने वाले भुगतान को ब्याज कहते हैं । ब्याज की परिभाषा विभिन्न अर्थशास्त्रियों द्‌वारा भिन्न-भिन्न प्रकार से की गई है ।

मैयर्स के अनुसार, "ब्याज वह मूल्य है, जो उधार योग्य कोषों के प्रयोग के लिए दिया जाता है ।"

मार्शल के शब्दों में, "ब्याज किसी बाजार में पूँजी के प्रयोग का मूल्य है ।"

विक्सैल के अनुसार, "ब्याज वह भुगतान है, जो पूँजी की उत्पादकता के कारण ऋणी द्‌वारा पूँजीपति को उसके त्याग के प्रतिफल के रूप में दिया जाता है ।"

जे.एम. कीन्स के शब्दों में, "ब्याज एक निश्चित अवधि के लिए तरलता के परित्याग का पुरस्कार है ।" इन परिभाषाओं के आधार पर कहा जा सकता है कि ब्याज का सम्बन्ध मुद्रा अथवा पूँजी से होता है । पूँजी के उपयोग के बदले दिया गया भुगतान ब्याज कहलाता है ।

कुल ब्याज एवं शुद्ध ब्याज (Gross Interest and Net Interest)

अर्थशास्त्रियों द्‌वारा कुल ब्याज तथा शुद्ध ब्याज में भेद किया जाता है । पूँजीपति अथवा ऋणदाता द्‌वारा ऋणी से अपनी पूँजी के अतिरिक्त जो आय अथवा भुगतान प्राप्त किया जाता है वह कुल ब्याज कहलाता है । शुद्ध ब्याज तो कुल ब्याज का एक अंश होता है । शुद्ध ब्याज केवल पूँजी के प्रयोग के लिए भुगतान होता है । उसमें अन्य तत्त्वों से सम्बन्धित भुगतान शामिल नहीं

होता है । कुल ब्याज में शुद्ध ब्याज के अतिरिक्त बहुतसे अन्य भुगतान भी सम्मिलित होते हैं । **प्रो. मार्शल** के शब्दों में, "अर्थशास्त्र में हम जिस ब्याज का अध्ययन करते हैं अथवा जब हम यह कहते हैं कि ब्याज केवल पूँजी की आय अथवा प्रतीक्षा का प्रतिफल है, वह शुद्ध ब्याज होता है, परन्तु सामान्यतया जिसे ब्याज के नाम से पुकारा जाता है, उसमें ऐसे ब्याज के अतिरिक्त अन्य अनेक तत्त्व भी सम्मिलित रहते हैं और इसे हम कुल ब्याज कहते हैं ।"

कुल व्याज में निम्नलिखित भुगतान शामिल होते हैं -

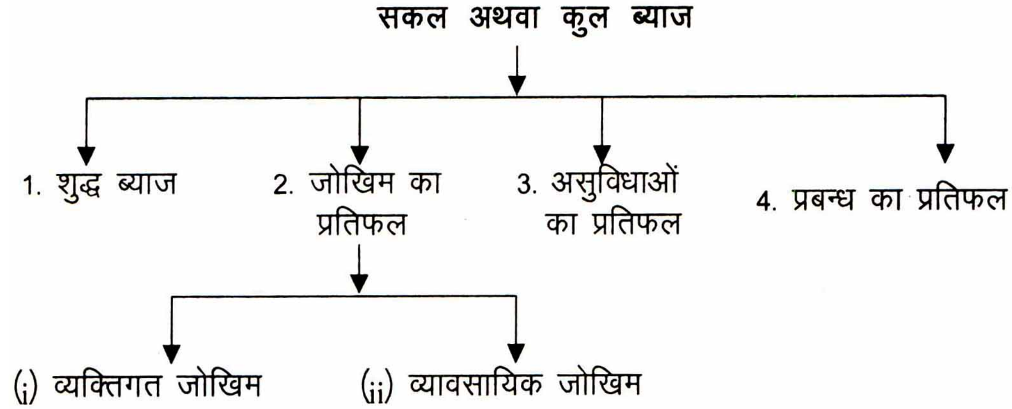

(1) **शुद्ध ब्याज (Net Interest) -** केवल पूँजी को उधार देने का पुरस्कार शुद्ध ब्याज होता है । इसमें ऋणदाता को ऋण के सम्बन्ध में किसी प्रकार की जोखिम नहीं होती है तथा न उसे किसी प्रकार की असुविधा का सामना करना पड़ता है।

(2) **जोखिम का पुरस्कार (Reward for Risk) -** जब ऋणदाता किसी व्यक्ति अथवा संस्था को ऋण देता है तो वह इस कार्य में जोखिम उठाता है । वह जोखिम दो प्रकार की होती है - (i) व्यावसायिक जोखिम, तथा (ii) व्यक्तिगत जोखिम । व्यावसायिक जोखिम वह जोखिम है, जो ऋणी के व्यवसाय के असफल होने पर उत्पन्न-होती है । व्यक्तिगत जोखिम वह जोखिम है, जो ऋणी के चरित्र, ईमानदारी तथा विश्वसनीयता पर निर्भर करती है । अत: ऋण देने में जितनी अधिक जोखिम होगी, ऋणदाता इस जोखिम के लिए उतना ही अधिक प्रतिफल ऊँची व्याज की दर के रूप में वसूल करेगा ।

(3) **पूँजीपति की असुविधा का प्रतिफल (Reward for the Inconvenience of Capitalist)-** यदि ऋणदाता को ऋणी से समय पर ऋण की वसूली न हो अथवा छोटी-छोटी किस्तों के रूप में हो अथवा बार-बार तकाजा करने पर हो अथवा न्यायालय की शरण लेनी पड़े तो उससे पूँजीपति अथवा ऋणदाता को अनेक असुविधाओं का सामना करना पडता है । ऋणदाता को जितनी सम्भावित असुविधा अधिक होगी वह ऋणी से उतना ही अधिक ब्याज वसूल करना चाहेगा।

(4) **प्रबन्ध का प्रतिफल (Remuneration for Management) -** ऋणदाता को ऋण के लेन-देन का हिसाब रखने के लिए बही-खाते बनाने होते हैं, मुनीम रखना होता है तथा समय-समय पर तकाजा कराने के लिए नौकर रखने होते हैं । ऋण की वसूली के लिए वैधानिक

कार्यवाही की व्यवस्था करनी पड़ती है । अत: व्यवस्था अथवा प्रबन्ध सम्बन्धी व्ययों की वसूली ऊँची ब्याज दर के द्वारा की जाती है ।

ब्याज निर्धारण के सिद्धान्त (Theories of Interest Determination)

ब्याज निर्धारण के सम्बन्ध में अर्थशास्त्रियों द्वारा अनेक सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया गया है, जिन्हें ब्याज के अमौद्रिक एवं मौद्रिक सिद्धान्त कहते हैं । इन सिद्धान्तों में से निम्न चार सिद्धान्त प्रमुख हैं -

1. ब्याज का प्रतिष्ठित सिद्धान्त ।
2. व्याज का उधार देय कोष सिद्धान्त अथवा नव-प्रतिष्ठित सिद्धान्त ।
3. कीन्स का ब्याज का तरलता अधिमान सिद्धान्त ।
4. व्याज का आधुनिक सिद्धान्त ।

18.3 ब्याज का प्रतिष्ठित सिद्धान्त अथवा ब्याज का बचत एवं विनियोग सिद्धान्त (The Classical Theory of Interest)

ब्याज के प्रतिष्ठित सिद्धान्त को ब्याज का माँग व पूर्ति सिद्धान्त भी कहते हैं । इस सिद्धान्त का प्रतिपादन प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों द्वारा किया गया था । इस सिद्धान्त में सुधार का श्रेय मार्शल, पीगू, वालरस, नाइट जैसे अर्थशास्त्रियों को जाता है ।

इस सिद्धान्त के अनुसार ब्याज दर वही निर्धारित होती है, जहाँ पूँजी की माँग पूँजी की पूर्ति के बराबर होती है । पूँजी की माँग निवेशों (विनियोग) से उत्पन्न होती है और पूँजी की पूर्ति बचतों से उत्पन्न होती है, अत: ब्याज दर बचतों एवं निवेशों के सन्तुलन से निर्धारित होती है ।

प्रतिष्ठित सिद्धान्त में बचत का तात्पर्य वास्तविक बचत और निवेश का तात्पर्य वास्तविक निवेश से होता है । वास्तविक बचतों का अर्थ उन वस्तुओं से होता है, जिनका उपभोग नहीं किया जाता बल्कि जिन्हें उत्पादक कार्यों के लिए प्रयोग किया जाता है । वास्तविक निवेश का अर्थ किसी नवीन पूँजीगत वस्तु के निर्माण से होता है, जैसे-कारखाना भवन, संयंत्र, मशीन इत्यादि । वास्तविक विनियोग मौद्रिक विनियोग अथवा निवेश से भिन्न होता है । मौद्रिक निवेश का अर्थ पूँजी को अंशों एवं ऋणपत्रों में लगाने से होता है । इसलिए प्रतिष्ठित सिद्धान्त को ब्याज का वास्तविक अथवा गैर-मौद्रिक सिद्धान्त कहते हैं । यह सिद्धान्त उत्पादकता तथा मितव्ययिता जैसे वास्तविक तत्त्वों पर बल देता है । इस सिद्धान्त के अनुसार ब्याज दर के निर्धारण में मुद्रा कोई प्रत्यक्ष भूमिका नहीं निभाती है ।

अब हम ब्याज के प्रतिष्ठित सिद्धान्त के माँग व पूर्ति दोनों पक्षों का अध्ययन करेंगे तथा सन्तुलित ब्याज दर का निर्धारण करेंगे ।

1. पूँजी की माँग अथवा निवेश अनुसूची (Demand for Capital or investment Schedule): पूँजी की माँग उद्यमियों द्वारा पूँजीगत वस्तुओं के क्रय के लिए की जाती है, जिनसे उपभोग वस्तुओं का उत्पादन किया जाता है, अर्थात् एक उद्यमी पूँजी की माँग उसकी उत्पादकता के कारण करता है । अन्य साधनों की तरह से पूँजी की सीमान्त उत्पादकता जैसे-जैसे

इसकी अधिक इकाइयों का प्रयोग किया जाता है, परिवर्तनशील अनुपातों के नियम की क्रियाशीलता के कारण घटती जाती है । एक उत्पादक पूँजी अथवा बचतों की माँग करता है तथा इसके बदले उसने एक पुरस्कार अर्थात् ब्याज देना पडता है । अत: एक उद्यमी पूँजी को उस बिन्दु तक प्रयोग में लाता रहेगा, जब तक पूँजी की सीमान्त उत्पादकता घटकर ठीक ब्याज दर के बराबर नहीं हो जाती है । ब्याज दर नीची होने पर उद्यमी पूँजी की अधिक माँग करता है तथा ब्याज दर ऊँची होने पर पूँजी की कम माँग करता है । यह बात एक उद्यमी पर ही नहीं, सम्पूर्ण समाज पर भी लागू होती है । ब्याज दर कम होने पर पूँजी की अधिक माँग की जाती है तथा ब्याज-दर ऊँची होने पर पूँजी की कम माँग की जाती है । इसीलिए पूँजी का माँग वक्र बायें से दायें को नीचे की ओर गिरता हुआ होता है । पूँजी का माँग वक्र रेखाचित्र 18. 1 में II वक्र द्वारा दिखाया गया है । बचतों की माँग पूँजीगत वस्तुओं में निवेश के लिए की जाती है, अत: पूँजी की माँग को निवेश माँग (Investment Demand) भी कहते हैं ।

2. **पूँजी की पूर्ति अथवा बचत अनुसूची (Supply of Capital or Saving Schedule) :** किसी समाज में पूँजी की पूर्ति बचतों पर निर्भर करती है । बचतें, व्यक्तियों, फर्मो तथा सरकार द्वारा की जाती हैं । किसी समाज में बचतें अनेक तत्त्वों से प्रभावित होती हैं, जैसे- आय का स्तर, रहन-सहन का स्तर, परिवार के प्रति स्नेह, दूरदर्शिता, शान्तिपूर्ण राजनीतिक व्यवस्था आदि । यदि इन सब तत्त्वों को स्थिर मान लिया जाये तो किसी समय विशेष पर बचतों की पूर्ति सबसे अधिक ब्याज दर से प्रभावित होती है । ब्याज की दर जितनी अधिक होगी, उतनी ही अधिक बचत की जायेगी तथा ब्याज दर जितनी कम होगी, बचतें भी उतनी ही कम की जायेंगी । इसलिए पूँजी का पूर्ति वक्र बायें से दायें को ऊपर उठता हुआ होता है । समाज में पूँजी के कुल पूर्ति वक्र को रेखाचित्र 18.1 में SS वक्र द्वारा दिखाया गया है । ब्याज के प्रतिष्ठित सिद्धान्त के अनुसार ब्याज दर इतनी ऊँची होनी चाहिए, जिससे बचतकर्ता को आवश्यक प्रोत्साहन मिले । यदि ऐसा नहीं होगा तो वह बचत नहीं करेगा तथा पूँजी की कुल पूर्ति घट जायेगी ।

3. **पूँजी की माँग एवं पूँजी की पूर्ति की समानता अथवा निवेशों एवं बचतों की समानता (Equity of Demand of Capital and Supply of Capital or Equity of Investment and Saving) :** ब्याज की दर वहाँ निर्धारित होती है, जहाँ पूँजी की माँग एवं पूर्ति में समानता हो अथवा निवेश एवं बचत में समानता हो । रेखाचित्र 18.1 में पूँजी की माँग व पूर्ति के साम्य द्वारा EM अथवा RO ब्याज दर का निर्धारण होता है । इसी ब्याज दर पर कुल विनियोग तथा कुल बचत एक-दूसरे के बराबर हैं । यदि बाजार में ब्याज दर इससे अधिक होगी तो पूँजी की पूर्ति इसकी माँग की तुलना में अधिक होने के कारण ब्याज दर नीचे की ओर गिरेगी और पुन: व्याज दर घटकर EM हो जायेगी । इसी तरह व्याज दर EM से कम होने पर पूँजी माँग पूर्ति की तुलना में अधिक होगी और इससे ब्याज दर पुन: बढकर EM हो जायेगी ।

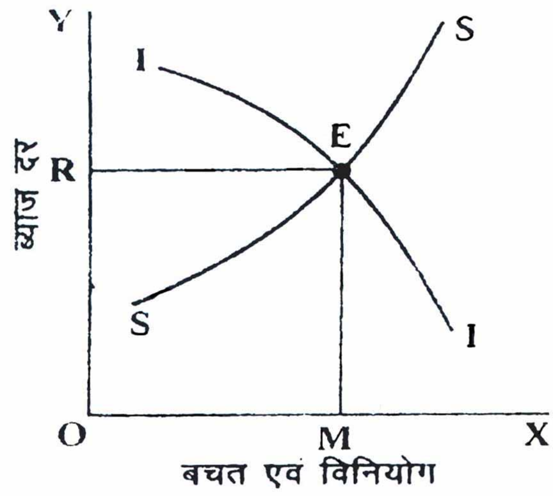

रेखाचित्र 18.1

4. **ब्याज के प्रतिष्ठित सिद्धान्त की आलोचनाएँ (Criticism of the Classical Theory of Interest) :** ब्याज के प्रतिष्ठित सिद्धान्त की अनेक आलोचनाएँ की गई हैं । प्रमुख आलोचनाएँ निम्न हैं -

(1) **बचत एवं विनियोग में समानता ब्याज दर से नहीं बल्कि आय-स्तर से होती है (Equality between savings and investment is not on account of interest rate but on account of level of income) -** प्रतिष्ठित सिद्धान्त के प्रतिपादकों के अनुसार बचत एवं विनियोग में समानता ब्याज दर के द्वारा होती है, जबकि प्रो. कीन्स ने बतलाया कि बचत एवं विनियोग में समानता ब्याज दर के द्वारा नहीं होती है बल्कि आय-स्तर के परिवर्तनों द्वारा स्थापित होती है ।

(2) **बचत एवं निवेश केवल ब्याज सापेक्ष नहीं होते हैं (Savings and investment are not interest elastic) -** कीन्स के अनुसार बचत एवं निवेश इतने ब्याज सापेक्ष नहीं होते हैं, जितना प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों द्वारा माना गया है । उदाहरणार्थ, बचत ब्याज दर की अपेक्षा आय-स्तर पर अधिक निर्भर करती है । निम्न आय स्तरों पर व्याज दर में पर्याप्त वृद्धि करने पर भी बचत पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता है । निवेश भी ब्याज दरों से अधिक प्रभावित नहीं होता है । ब्याज दरें ऊँची होने पर भी पूँजी की सीमान्त उत्पादकता अधिक होने के कारण अधिक निवेश हो सकता है । इसके विपरीत पूँजी की सीमान्त उत्पादकता नीची होने पर घटती ब्याज दरें भी निवेश में वृद्धि नहीं कर सकती हैं ।

(3) **आय स्तर पर निवेशों के प्रभावों की उपेक्षा (Ignores effects of investment on income level) -** ब्याज के प्रतिष्ठित सिद्धान्त ने यह माना है कि जब निवेश में परिवर्तन होते हैं तो आय-स्तर स्थिर रहता है । प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों की यह मान्यता गलत व तर्कहीन है । कीन्स के अनुसार आय-स्तर के निर्धारण में निवेश महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं ।

(4) **ब्याज दर अनिर्धारणीय (Interest rate indeterminate)-** इस सिद्धान्त के अनुसार ब्याज दर अनिर्धारणीय (Indeterminate) है । कीन्स ने बताया कि इस सिद्धान्त के अनुसार

ब्याज दर पूँजी की माँग तथा पूँजी की पूर्ति पर निर्भर करती है । पूँजी की पूर्ति में सामान्य आय-स्तर के साथ-साथ परिवर्तन होते रहते हैं, अर्थात् आय-स्तर जितना ऊँचा होगा उतनी ही पूँजी की पूर्ति अधिक होगी । अत. हम ब्याज दर उस समय तक ज्ञात नहीं कर सकते हैं, जब तक हमें ब्याज दर की जानकारी न हो, क्योंकि ब्याज दर विनियोग के माध्यम से आय-स्तर को प्रभावित करती है । इस तरह प्रतिष्ठित सिद्धान्त के अनुसार ब्याज दर अनिर्धारणीय है ।

(5) **पूर्ण रोजगार की अवास्तविक मान्यता (Unrealistic assumption of full employment) -** ब्याज का प्रतिष्ठित सिद्धान्त इस मूल मान्यता पर आधारित है कि समाज के सभी साधन पूर्णतया रोजगार में लगे हुए रहते हैं । परन्तु यह मान्यता बिल्कुल गलत एवं अवास्तविक है । कीन्स के अनुसार समाज में पूर्ण रोजगार से कम रोजगार की स्थिति होती है ।

(6) **मौद्रिक तत्त्वों की उपेक्षा (Ignores monetary factors) -** ब्याज का प्रतिष्ठित सिद्धान्त शुद्ध या वास्तविक सिद्धान्त है, जो पूँजी की सीमान्त उत्पादकता तथा मितव्ययिता जैसे वास्तविक तत्त्वों पर विचार करता है और ब्याज के निर्धारण में मुद्रा तथा साख मुद्रा जैसे मौद्रिक तत्त्वों की बिल्कुल उपेक्षा करता है ।

(7) **बचत केवल चालू आय में से ही नही की जाती है (Savings are not made out of current income only) -** इस सिद्धान्त के अनुसार बचत केवल चालू आय से ही प्राप्त होती है, जबकि वास्तव में बचतें चालू आय के अतिरिक्त पुराने संचय, बैंक साख तथा अविनियोग से भी होती हैं, जिनकी इस सिद्धान्त में उपेक्षा की गई है ।

(8) **स्वाभाविक ब्याज दर एवं बाजार ब्याज दर स्वत: समान नहीं होती हैं (Natural interest rate and market interest rate are not automatically equal) -** प्रतिष्ठित सिद्धान्त के अनुसार बाजार ब्याज दर एवं स्वाभाविक ब्याज दर (सन्तुलित ब्याज दर) सदैव बराबर होती हैं । दोनों में कोई भी अन्तर अस्थायी होता है तथा दीर्घकाल में समाप्त हो जाता है । कीन्स इन दरों में अन्तर को आकस्मिक अथवा अस्थायी नहीं मानते हैं ।

(9) **बचत एवं निवेश अनुसूचियाँ स्वतन्त्र नहीं होती (Savings and investment schedules are not independent) -** इस सिद्धान्त में ब्याज के निर्धारण में पूँजी की माँग (अर्थात् निवेशों) तथा पूँजी की पूर्ति (अर्थात् बचतों) को एक-दूसरे से स्वतन्त्र माना गया है, परन्तु कीन्स के अनुसार बचत एवं निवेश अनुसूचियाँ स्वतन्त्र नहीं हैं ।

(10) **ब्याज की परिभाषा पर मतभेद (Difference of opinion on the definition of interest) -** ब्याज दर की परिभाषा तथा निर्धारण के सम्बन्ध में प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों तथा कीन्स में बड़ा मतभेद है । कीन्स के अनुसार ब्याज प्रतीक्षा अथवा उपभोग के स्थान का प्रतिफल नहीं बल्कि एक निश्चित अवधि के लिए तरलता के त्याग का पुरस्कार है ।

(11) **संकुचित क्षेत्र (Limited scope) -** इस सिद्धान्त का क्षेत्र बहुत संकुचित है क्योंकि यह सिद्धान्त उपभोग ऋणों की उपेक्षा करता है तथा केवल उसी पूँजी से सम्बन्धित है, जिसका प्रयोग उत्पादक उद्देश्यों के लिए किया जाता है ।

ब्याज के प्रतिष्ठित सिद्धान्त में सुधार कर के एक नवीन सिद्धान्त उधार देय-कोष सिद्धान्त विकसित किया गया है, जो ब्याज का नव-प्रतिष्ठित सिद्धान्त कहलाता है । इस सिद्धान्त

के विकास में स्वीडन के अर्थशास्त्री नट विकसेल, बर्टिन ओहलिन ऐरिक लिण्डाल, गुन्नार मिर्डल तथा ब्रिटिश अर्थशास्त्री सर डेनिस रॉबर्टसन तथा जे. वायीनर का महत्त्वपूर्ण योगदान है।

इस सिद्धान्त के अनुसार ब्याज दर का निर्धारण उधार-देय कोषों की माँग तथा उधार-देय कोषों की पूर्ति के साम्य द्वारा होता है । यह सिद्धान्त ब्याज के प्रतिष्ठित सिद्धान्त पर स्पष्ट सुधार है, क्योंकि उधार-योग्य कोषों की यह माँग व पूर्ति का विस्तृत विवेचन करता है ।'उधार-योग्य कोषों की पूति' में केवल प्रचलित आय में से की गयी बचत को ही नहीं बल्कि बैंक साख, अपसंचय तथा अविनियोग को भी सम्मिलित किया जाता है । इसी प्रकार 'उधार-देय कोषों की माँग' में केवल निवेश के लिए माँग को ही नहीं बल्कि संचय, उपभोग तथा अन्य कार्यो के लिए माँग को भी सम्मिलित किया जाता है ।

18.4 कीन्स का ब्याज का तरलता अधिमान सिद्धान्त (Keynes' liquidity Preference Theory of Interest)

प्रो. जे. एम. कीन्स ने ब्याज के प्रतिष्ठित तथा नव-प्रतिष्ठित सिद्धान्तों की बहुत आलोचनाएँ की हैं तथा ब्याज के एक नये सिद्धान्त का प्रतिपादन किया है । कीन्स के ब्याज के सिद्धान्त को तरलता अधिमान सिद्धान्त के नाम से पुकारा जाता है । कीन्स के अनुसार ब्याज विशुद्धतया एक मौद्रिक क्रिया है, क्योंकि ब्याज की गणना मुद्रा अथवा तरलता के माध्यम से की जाती है । कीन्स के अनुसार"'ब्याज निश्चित समय के लिए तरलता के परित्याग का पुरस्कार है ।" दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि एक व्यक्ति को ब्याज इसलिए दिया जाता है कि वह व्यक्ति निश्चित समय के लिए तरलता का परित्याग करता है । कीन्स के शब्दों में, "ब्याज वह कीमत है जो धन को नकद रूप में रखने की इच्छा तथा प्राप्य नकदी की मात्रा में समानता स्थापित करती है ।" कीन्स के अनुसार ब्याज दर तरलता की माँग तथा तरलता की पूर्ति के साम्य द्वारा निर्धारित होती है, अत: इस सिद्धान्त को स्पष्ट रूप से समझने के लिए हमें सर्वप्रथम तरलता का अर्थ और उसके बाद तरलता की माँग एवं तरलता की पूर्ति को समझना आवश्यक है ।

1. **तरलता अधिमान का अर्थ (Meaning of Liquidity Preference)** कीन्स के अनुसार तरलता अधिमान का अर्थ धन को नकदी के रूप में रखने को अधिक पसन्द करना अथवा तरजीह देना होता है । उनके अनुसार हम अपने धन एवं आय को कई रूप में रख सकते हैं । उनमें से सबसे तरल रूप धन को मुद्रा अथवा नकदी में रखना होता है । यदि हमारा धन मुद्रा अथवा नकदी के रूप में होता है तो उसे हम इच्छानुसार प्रयोग कर सकते हैं तथा हमें तनिक भी कठिनाई नहीं होती है । यदि हम धन को नकदी के अतिरिक्त अन्य रूप में रखें तो वह हमारे लिए कम सुविधाजनक होता है । उदाहरण के लिए, यदि हमारा धन भूमि, भवन, अंशों, ऋण-पत्रों, सरकारी प्रतिभूतियों आदि के रूप में होता है तो हम उसे तत्काल अपनी इच्छानुसार प्रयोग में नहीं ला सकते हैं । उसे इच्छानुसार प्रयोग में लाने के लिए पहले मुद्रा के रूप में बदलना होगा । धन को मुद्रा अथवा नकदी के रूप में बदलने के बाद ही उसे इच्छानुसार तुरन्त प्रयोग किया जा सकता है । अत: इस अर्थ में तरलता का अर्थ है मुद्रा अथवा नकदी ।

अपने धन को मुद्रा अथवा नकदी के अतिरिक्त अन्य रूपों में रखना भी लाभदायक होता है । उदाहरणार्थ, यदि हम धन को अंशों के रूप में रखते हैं तो लाभांश मिलता है, ऋण-पत्रों के रूप में रखते हैं तो ब्याज तथा भूमि व भवन के रूप में रखते हैं तो किराया प्राप्त होता है । इसके विपरीत हम धन को मुद्रा या नकदी के रूप में रखते हैं तो हम उसे इच्छानुसार प्रयोग कर सकते हैं परन्तु ऐसा करने पर हमें उस आय से वंचित रहना पड़ता है, जो हमें धन को अन्य रूपों में रखने में प्राप्त हो सकती थी ।

इस प्रकार धन को मुद्रा या नकदी के रूप में रखना लाभदायक एवं हानिकारक दोनों ही है, अत: यह हमारे निर्णय पर निर्भर करेगा कि किसी समय हम धन को मुद्रा या नकदी के रूप में रखने को धन के अन्य रूपों की तुलना में कितना अधिमान देते हैं । यदि हम सभी सम्बद्ध परिस्थितियों पर विचार करने के बाद भी यह निर्णय करते हैं कि हम अपने धन को मुद्रा या नकदी के रूप में रखें तो कीन्स के विचारानुसार यह कहेंगे कि इस समय हम तरलता अथवा नकदी या मुद्रा को अधिमान दे रहे हैं अर्थात् यहाँ हमारा तरलता अधिमान अधिक है । इसके विपरीत ऐसी परिस्थितियाँ भी होती हैं, जब हम अपने धन को नगदी के रूप में रखने की अपेक्षा अन्य रूपों में रखने को अधिक अच्छा समझते हैं । ऐसी परिस्थितियों में हमारा तरलता अथवा नगदी अधिमान कम होता है, अर्थात् हम तरलता अथवा नगदी की कम माँग करते हैं ।

उपर्युक्त विवरण से यह स्पष्ट हो जाता है कि तरलता अथवा नगदी अधिमान का अर्थ है तरलता अथवा मुद्रा या नगदी की मॉग । जब तरलता अधिमान अधिक होता है तो इसका अर्थ यह होता है कि लोग तरलता या नगदी की अधिक माँग करते हैं तथा जब तरलता अधिमान कम होता है तब इसका अर्थ होता है कि लोग तरलता अथवा नकदी की माँग कम करते हैं ।

तरलता अधिमान का अर्थ समझने के बाद अब हम तरलता अधिमान का ब्याज के साथ सम्बन्ध देख सकते हैं । प्रत्येक समय हमारा कुछ तरलता अधिमान होता है । इस धिमान को प्रचलित ब्याज दर से अधिक ब्याज देकर खरीदा जा सकता है अर्थात् ब्याज दर वह प्रलोभन होता है, जिससे लोगों के तरलता अधिमान को खरीदा जा सकता है । जब लोगों का तरलता अधिमान बहु त ऊँचा होता है तो उन्हें उतनी ही अधिक ऊँची ब्याज की दर चुकानी होती है, तब ही वे तरलता का परित्याग करने को तत्पर होते हैं । इसके विपरीत लोगों का तरलता अधिमान कम होने पर वे कम ब्याज दर पर ही अपनी तरलता या नगदी उधार दे सकते हैं अथवा तरलता के परित्याग के लिए तैयार हो सकते हैं । अत: कहा जा सकता है कि तरलता अधिमान ऊँचा होने पर तरलता के परित्याग के लिए ऊँची ब्याज दर की आवश्यकता होगी तथा तरलता अधिमान कम होने पर नीची ब्याज दर पर भी तरलता का परित्याग सम्भव होता है ।

2. **तरलता अधिमान के प्रयोजन अथवा उद्देश्य (Motives behind Liquidity Preference):** ऊपर हम देख चुके हैं कि तरलता अधिमान का अर्थ है नगदी अथवा मुद्रा की माँग । लोग मुद्रा की माँग किस प्रयोजन से करते हैं? यहाँ हम इस प्रश्न पर विचार करेंगे । मुद्रा की माँग निम्न उद्देश्यों के लिए की जाती है-

(1) **लेन-देन उद्देश्य अथवा कार्य सम्पादन उद्देश्य (Transaction Motive) -** सभी व्यक्तियों को आवश्यकता की वस्तुएँ तथा सेवाएँ क्रय करने के लिए कुछ मुद्रा की आवश्यकता होती है । प्राय: व्यक्तियों को उनकी आय प्रति क्षण प्राप्त नहीं होती है बल्कि समय की कुछ

निश्चित अवधि के बाद ही प्राप्त होती है, परन्तु उन्हें व्यय प्रतिदिन करना पड़ता है । अत: उपभोक्ता अपने प्रतिदिन के लेन-देनों को पूरा करने के उद्देश्य से अपनी आय का एक भाग तरल अथवा नकद रूप में रखते हैं ।

लेन-देन के उद्देश्यों की पूर्ति के लिए मुद्रा अथवा नकदी की आवश्यकता केवल उपभोक्ताओं (अथवा व्यक्तियों एवं परिवारों) को ही नहीं होती है, बल्कि व्यावसायिक प्रतिष्ठानों को भी होती है । व्यवसायों को भी प्रतिदिन नियमित आय प्राप्त नहीं होती है और उनके दैनिक खर्चे उनकी दैनिक आय के समान नहीं होते हैं । किसी दिन आय अधिक परन्तु खर्चे कम तथा किसी दिन आय बहुत कम तथा खर्चे अधिक होते हैं । अत व्यावसायिक प्रतिष्ठानों के संचालक अपने अनुभव के आधार पर सदैव अपने पास पर्याप्त नकदी रखते हैं, जिससे उनका लेन-देन का कार्य चल सके ।

लेन-देन के उद्देश्य के लिए नकदी की माँग देश में आय तथा रोजगार की मात्रा, आय प्राप्त होने के समय में अन्तर तथा व्यय करने की आवृत्ति पर निर्भर करती है । प्राय: एक देश में व्यक्तियों तथा व्यवसायों के आय के प्राप्ति के समय तथा व्यय करने की आवृत्ति में अल्पकाल में परिवर्तन नहीं होते हैं, क्योंकि ये बातें एक देश के रिवाज व प्रथाओं पर निर्भर करती हैं, जो दीर्घकाल तक स्थिर रहते हैं, परन्तु एक देश में रोजगार तथा आय का स्तर अल्पकाल में भी बदलता रहता है और लोगों की व्यक्तिगत आय भी बदलती है । अत: अल्पकाल में लेन-देन के उद्देश्य के लिए मुद्रा अथवा नगदी की माँग में परिवर्तन आय में हुए परिवर्तनों के कारण होते हैं अर्थात् लेन-देन के उद्देश्य के लिए मुद्रा की माँग आय-सापेक्ष होती है ।

(2) **दूरदर्शिता अथवा सतर्कता उद्देश (Precautionary Motive) -** प्रत्येक व्यक्ति तथा व्यवसायी कुछ नगदी अपने पास इसलिए रखते हैं कि उसको आकस्मिकता के समय प्रयोग कर लें । व्यक्ति के जीवन में कभी भी बीमारी, दुर्घटना, बेरोजगारी तथा अन्य आकस्मिक घटनाएँ घट सकती हैं । दूरदर्शी व्यक्ति इन आकस्मिक दुर्घटनाओं का मुकाबला करने के लिए कुछ राशि बचाकर मुद्रा या नगदी के रूप में अपने पास अवश्य रखते हैं जिससे उसे आवश्यकता पड़ने पर प्रयोग किया जा सके । किसी भी व्यक्ति की दूरदर्शिता अथवा सतर्कता उद्देश्य के लिए मुद्रा की माँग उसके स्वयं के स्वभाव, मनोवैज्ञानिक प्रवृत्ति तथा आय-स्तर पर निर्भर करती है । जब लोग अधिक दूरदर्शी होते हैं तो वे इस उद्देश्य के लिए मुद्रा की अधिक माँग करते हैं तथा कम दूरदर्शी होने पर मुद्रा की कम माँग करते हैं । दूरदर्शिता अथवा सतर्कता उद्देश्य के लिए मुद्रा की माँग व्यवसायी द्वारा भी की जाती है ।

दूरदर्शिता अथवा सतर्कता उद्देश्य के लिए मुद्रा की माँग आय-सापेक्ष होती है, अर्थात् धनवान व्यक्ति निर्धन व्यक्तियों की तुलना में अधिक मुद्रा अपने पास सतर्कता उद्देश्य के लिए रखते हैं ।

(3) **सट्टा उद्देश्य (Speculative Motive)** ब्याज के निर्धारण में कीन्स ने सट्टा उद्देश्य को सबसे अधिक महत्त्व प्रदान किया है । कीन्स के अनुसार, 'लोगों में सट्टे की प्रवृत्ति पायी जाती है । लोग सट्टे द्वारा लाभ कमाने के लिए अपने पास नगदी अथवा मुद्रा रखते हैं । सट्टा उद्देश्य के लिए रखी गयी मुद्रा का प्रयोजन यह होता है कि भविष्य की घटनाओं के सम्बन्ध में बाजार की अपेक्षा अधिक जानकारी होने के कारण लाभ कमाया जा सके । वर्तमान प्रतिस्पर्धात्मक

अर्थव्यवस्था में कृषि, उद्योग, व्यापार, वाणिज्य, परिवहन, संचार, बीमा, बैंकिंग आदि उत्पादन की सभी क्रियायें अनिश्चितता व जोखिम भरी होने के कारण सट्टे के रूप में ही होती हैं । अत: सट्टा उद्देश्य का क्षेत्र अत्यन्त विस्तृत है । लोग लेन-देन तथा सतर्कता उद्देश्यों के लिए मुद्रा की माँग पूरी होने के बाद भी अपने पास मुद्रा की मात्रा इसलिए रखना चाहते हैं, जिससे वे बॉण्डो एवं प्रतिभूतियों के बाजारों में होने वाले उतार-चढ़ावों से लाभ कमा सकें । विकसित देशों, जिनके बारे में कीन्स ने लिखा है, में लोग अपने पास प्रतिभूतियों एवं बॉण्ड खरीदने के लिए मुद्रा रखना पसन्द करते हैं, जब वे सोचते हैं कि ऐसा करना लाभदायक है । जब लोग सोचते हैं कि निकट भविष्य में बॉण्डों व प्रतिभूतियों के मूल्य बढ़ेंगे तो वे उन्हें खरीद लेते हैं तथा अपने पास सट्टा उद्देश्य के लिए मुद्रा की कम मात्रा रखते हैं । दूसरी तरफ यदि वे सोचते हैं कि बॉण्डों व प्रतिभूतियों के मूल्य निकट भविष्य में गिरेंगे तो वे अपने पास सट्टा उद्देश्य के लिए मुद्रा की अधिक मात्रा रखते हैं । लोगों की सट्टे की क्षमता मुद्रा द्वारा ही सन्तुष्ट की जा सकती है तथा यह बॉण्डों व प्रतिभूतियों के मूल्यों के परिवर्तन पर निर्भर करती है ।

पूँजी बाजार का एक आधारभूत उल्लेखनीय तत्त्व यह है कि बॉण्डों तथा प्रतिभूतियों के मूल्यों में ब्याज दरों के परिवर्तनों की विपरीत दिशा में परिवर्तन होते हैं । बाजार में जब ब्याज दर बढ़ती है तब बॉण्डों व प्रतिभूतियों का मूल्य घटता है और जब ब्याज दर घटती है तब बॉण्डों व प्रतिभूतियों का मूल्य बढ़ता है ।

बहुत से लोग बॉण्डों व प्रतिभूतियों के मूल्यों के परिवर्तन से लाभ कमाने के लिए अपने पास मुद्रा रखते हैं । ऐसे लोगों का जब यह अनुमान होता है कि भविष्य में व्याज दरें बढ़ेगी तथा बॉण्डों व प्रतिभूतियों के मूल्य घटेंगे तो वे अपने पास मुद्रा अधिक रखते हैं ताकि भविष्य में ब्याज दर बढ़ने पर कम मूल्य पर बॉण्ड व प्रतिभूतियाँ खरीद सकें । इसके विपरीत जब वे सोचते हैं कि भविष्य में ब्याज दरें घटेंगी और बॉण्डों व प्रतिभूतियों के मूल्य बढ़ेंगे तो वे वर्तमान में कम मूल्य पर बॉण्ड व प्रतिभूतियाँ खरीद लेते हैं ताकि भविष्य में उन्हें बढ़े हुए मूल्यों पर बेचकर लाभ कमा सकें, अर्थात् वे वर्तमान में अपने पास कम मुद्रा रखते हैं । अत: कहा जा सकता है कि सट्टे के उद्देश्य से मुद्रा अथवा नगदी कम ब्याज दर पर अधिक माँगी जाती है तथा अधिक ब्याज दर पर कम । सट्टा उद्देश्य के लिए मुद्रा की माँग तथा ब्याज दरों में उल्टा सम्बन्ध होता है ।

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट होता है कि लेन-देन उद्देश्य तथा दूरदर्शिता उद्देश्य के लिए तरलता अथवा मुद्रा की माँग आय-सापेक्ष होती है, अर्थात् वह आय-स्तर पर निर्भर करती है । इन पहले दो उद्देश्यों के लिए मुद्रा की माँग को L1 का नाम दिया जा सकता है । सट्टा उद्देश्य के लिए तरलता अथवा मुद्रा की माँग ब्याज सापेक्ष होती है । इसे L2 का नाम दिया जा सकता है । तीनों उद्देश्यों के लिए तरलता अथवा मुद्रा की माँग को L का नाम दिया जाये तो इसे सूत्र रूप में निम्न प्रकार लिखा जा सकता है -

$$L = L1 + L2$$

अब हम **तरलता अधिमान अनुसूची एवं वक्र** पर विचार कर सकते हैं । तरलता अधिमान अनुसूची अथवा मुद्रा माँग अनुसूची एक सारणी होती है, जो यह बताती है कि अर्थव्यवस्था में लोग व व्यावसायिक प्रतिष्ठान विभिन्न ब्याज दरों पर कुल कितनी-कितनी मुद्रा अपने पास रखना

चाहते हैं । जब ऐसी सारणी को रेखाचित्र पर व्यक्त किया जाता है तो उससे बनने वाले वक्र तरलता-अधिमान अथवा नगदी-अधिमान वक्र कहलाती है ।

रेखाचित्र 18.2 में एक ऐसा तरलता-अधिमान अथवा मुद्रा माँग वक्र दिखाया गया है । रेखाचित्र में LP तरलता अधिमान अथवा मुद्रा का माँग वक्र है । यह बायें से दायें को नीचे की ओर गिरता हुआ है, जो यह बताता है कि अधिक ब्याज दर पर लोगों की तरलता अथवा मुद्रा की माँग कम है तथा कम ब्याज दर पर तरलता अथवा मुद्रा की माँग अधिक है।

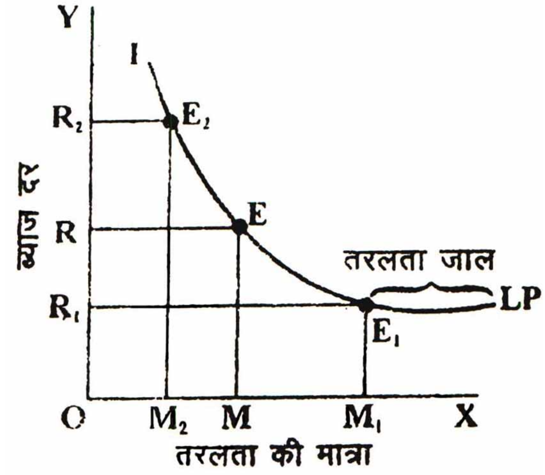

रेखाचित्र 18.2

जब ब्याज दर ऊँची OR_2 है तो तरलता की कम माँग OM_2 की जाती है, जबकि ब्याज दर घट कर OR हो जाती है तो तरलता की माँग बढकर OM हो जाती है तथा ब्याज दर के घटकर OR_1 होने पर तरलता की माँग बढ़कर OM_1 हो जाती है । इसे दूसरे शब्दों में इस प्रकार कहा जा सकता है कि कम ब्याज दर पर लोग तरलता का परित्याग करने के लिए कम तैयार होते हैं तथा अधिक ब्याज दर पर अधिक तरलता के परित्याग के लिए प्रेरित रहते हैं । इस रेखा का अन्तिम भाग OX के बिल्कुल समानान्तर हो गया है । इस भाग को 'तरलता का जाल' (Liquidity Trap) कहते हैं । जब ब्याज की दर बहुत नीची हो जाती है तो लोग यह सोचने लगते हैं कि मुद्रा को अन्य लोगों को उधार देने में जो जोखिम होती है उसकी तुलना में ब्याज दर बहुत कम है, अतः वे मुद्रा को उधार देने की अपेक्षा अपने पास ही रखना पसन्द करेंगे, अर्थात् लोग अपने धन को मुद्रा के रूप में तरल रखेंगे तथा बिल्कुल उधार नहीं देंगे । इस स्थिति को कीन्स ने तरलता जाल कहा है ।

3. **तरलता अथवा मुद्रा की पूर्ति (supply of Money)** मुद्रा की पूर्ति में सिक्के, पत्र मुद्रा तथा बैंक साख सम्मिलित होती हैं । किसी समय विशेष पर एक अर्थव्यवस्था में मुद्रा की पूर्ति दी हुई अथवा स्थिर होती है । यह मुद्राधिकरण (Monetary Authority) पर निर्भर करती है । मुद्रा की पूर्ति सरकार अथवा मुद्राधिकरण द्वारा निर्गमित मुद्रा की मात्रा तथा केन्द्रीय बैंक द्वारा अपनायी गयी साख नीति पर निर्भर करती है । मुद्रा की पूर्ति रेखा पूर्ण बेलोचदार खड़ी रेखा (Vertical Line) होती है । किसी समय एक देश में मुद्रा की पूर्ति कितनी होगी, इसका

निर्धारण मुद्राधिकरण द्वारा किया जाता है और इस पर देश के लोगों तथा व्यवसायों का कुछ भी हाथ नहीं होता है । रेखाचित्र 18.3 में SS वक्र एक ऐसा ही मुद्रा का पूर्ति वक्र है ।

4. **ब्याज दर का निर्धारण (Determination of the Rate of Interest)** कीन्स के अनुसार ब्याज दर का निर्धारण उस बिन्दु पर होता है, जहाँ मुद्रा के स्थिर पूर्ति वक्र को तरलता अधिमान वक्र अथवा मुद्रा का माँग वक्र काटता है । रेखाचित्र 18.3 से ब्याज दर के निर्धारण को स्पष्ट किया जा सकता है । रेखाचित्र में LP वक्र तरलता अधिमान अथवा मुद्रा का माँग वक्र है तथा SS मुद्रा का पूर्ति वक्र है । मुद्रा के माँग वक्र ने मुद्रा के पूर्ति वक्र को E बिन्दु पर काटा है। E साम्य अथवा सन्तुलन बिन्दु है । इस साम्य बिन्दु पर OR अथवा EM साम्य ब्याज है ।

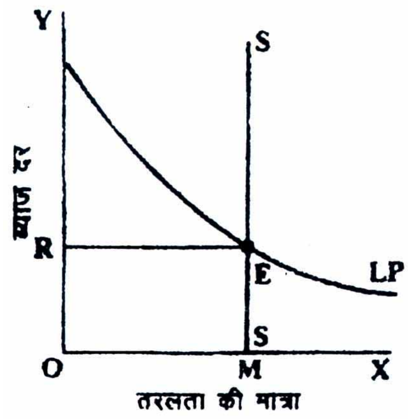

रेखाचित्र 18.3

अब हम ब्याज दर पर मुद्रा की पूर्ति एवं माँग में परिवर्तनों के प्रभाव को देख सकते हैं । यदि मुद्रा की माँग अथवा तरलता अधिमान स्थिर रहे और मौद्रिक अधिकरण द्वारा मुद्रा की पूर्ति की मात्रा में वृद्धि कर दी जाये तो इससे ब्याज दर घट जाती है । रेखाचित्र 18.5(a) में मुद्रा की माँग LP वक्र स्थिर रहती है, परन्तु जब मुद्रा की पूर्ति बढ़ कर S_1S_1 हो जाती है तो नया साम्य E_1 पर होता है, जहाँ R_1O अथवा E_1M_1 ब्याज दर का निर्धारण होता है । E_1M_1 ब्याज दर, EM ब्याज दर से कम है ।

अब हम तरलता अधिमान में होने वाले परिवर्तनों का ब्याज दर पर प्रभाव देख सकते हैं। रेखाचित्र 18.4(b) में SS मुद्रा का पूर्ति वक्र है तथा LP मुद्रा का माँग वक्र है । इसके साम्य द्वारा EM अथवा RO ब्याज दर का निर्धारण होता है । अर्थव्यवस्था में मुद्रा की पूर्ति स्थिर रहती है परन्तु किन्हीं कारणों से लोगों का तरलता अधिमान अथवा मुद्रा की माँग बढ जाती है तो मुद्रा का माँग वक्र दायीं ओर ऊपर को सरक कर LP_1 हो जायेगा । इससे ब्याज दर बढ जायेगी। रेखाचित्र 18.4(b) में नया साम्य E_1 बिन्दु पर होता है, जहाँ R_1O अथवा E_1M ब्याज दर निर्धारित होती है । यह नयी ब्याज दर पहले से अधिक है । अत: कहा जा सकता है कि मुद्रा की पूर्ति स्थिर रहने पर तरलता अधिमान अथवा मुद्रा की माँग में वृद्धि होती है तो ब्याज दर बढ़ जाती है ।

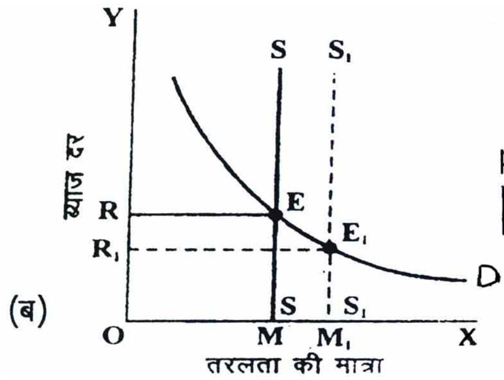

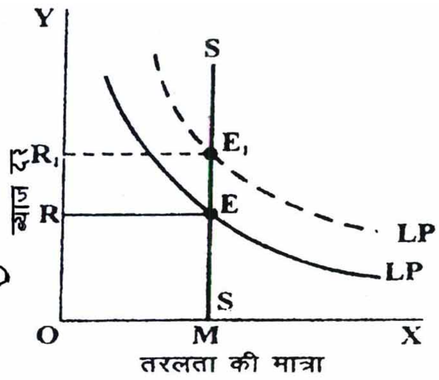

रेखाचित्र 18.4 (अ) रेखाचित्र 18.4(ब)

5. **कीन्स की तरलता अधिमान सिद्धान्त की आलोचनाएँ (Criticism of the Keynes 'Theory of Interest) :** कीन्स के तरलता अधिमान सिद्धान्त की हैनसन, रॉबर्टसन, नाइट, हेजलिट आदि अर्थशास्त्रियों द्वारा कड़ी आलोचनाएं की गई हैं । कुछ प्रमुख आलोचनाएं निम्न हैं-

(1) **प्रारम्भिक ब्याज दर अनिर्धारणीय (Preliminary Rate of interest Indeterminate) -** कीन्स ने ब्याज के प्रतिष्ठित सिद्धान्त की आलोचन उसे अनिर्धारणीय बताकर की थी । प्रो. हैनसन का कहना है कि कीन्स का सिद्धान्त भी इस आलोचना से मुक्त नहीं है । कीन्स के अनुसार ब्याज दर का निर्धारण तरलता की माँग व मुद्रा की पूर्ति द्वारा होता है । लेन-देन के उद्देश्य तथा सतर्कता उद्देश्य के लिए तरलता की माँग आय-स्तर पर निर्भर करती है । अत: तरलता की माँग के निर्धारण के लिए आय-स्तर का ज्ञान आवश्यक है और आय-स्तर का ज्ञान तब तक नहीं हो सकता जब तक ब्याज दर ज्ञात न हो, क्योंकि ब्याज दर विनियोग को प्रभावित करके आय-स्तर को प्रभावित करती है । अत: इस सिद्धान्त के अनुसार ब्याज दर का निर्धारण नहीं हो सकता है ।

(2) **वास्तविक तत्त्वों की पूर्ण उपेक्षा (Ignores real factors altogether) -** कीन्स के सिद्धान्त की सबसे बड़ी भ्रांति यह है कि यह सिद्धान्त ब्याज दर के निर्धारण में वास्तविक तत्त्वों की पूर्ण उपेक्षा करता है । यह ब्याज दर के निर्धारण को विशुद्ध मौद्रिक घटना मानता है, जो ठीक नहीं है ।

(3) **बचत के बगैर तरलता नहीं (No liquidity without saving) -**कीन्स के अनुसार ब्याज दर तरलता के त्याग का प्रतिफल है और यह बचत प्रेरणा अथवा प्रतीक्षा करने का पुरस्कार नहीं है, परन्तु बचत के बगैर परित्याग का प्रश्न ही उत्पन्न नहीं हो सकता है ।

(4) **एकपक्षीय सिद्धान्त (One-sided theory) -** यह सिद्धान्त ब्याज -दर के निर्धारण में अल्पकाल में मुद्रा की पूर्ति को स्थिर तथा दिया हुआ मानकर मुद्रा की माँग के आधार पर ब्याज दर का निर्धारण करता है । यह व्याज के निर्धारण में मुद्रा की माँग पर अधिक बल देता है । अत: यह सिद्धान्त एकपक्षीय है ।

(5) **सामान्य अनुभव के विपरीत (Goes contrary to facts) -** कीन्स का तरलता अधिमान सिद्धान्त सामान्य अनुभव के विपरीत है । इस सिद्धान्त के अनुसार मन्दी के निम्नतम

बिन्दु पर ब्याज दर अधिकतम होनी चाहिए, क्योंकि उस समय लोगों का तरलता अधिमान सर्वाधिक होता है । परन्तु हम देखते हैं कि वास्तविक स्थिति इसके विपरीत होती है ।

(6) **केवल अल्पकालीन दरों की व्याख्या (Explains only short-period interest rates) -** कीन्स का तरलता अधिमान सिद्धान्त ब्याज की केवल अल्पकालीन दरों की व्याख्या करता है तथा ब्याज की दीर्घकालीन प्रवृत्तियों पर किसी प्रकार का प्रकाश नहीं डालता है ।

(7) **संकुचित क्षेत्र (Limited Scope) -** कीन्स का ब्याज का सिद्धान्त केवल मौद्रिक तत्त्वों पर आधारित है, अत: मौद्रिक अर्थव्यवस्थाओं पर इस सिद्धान्त को लागू नहीं किया जा सकता है।

(8) **एक साथ विभिन्न ब्याज दरों की उपस्थिति की व्याख्या नहीं करता (Does not explain the existence of different rates of interest) -** इस सिद्धान्त के अनुसार सभी व्यक्तियों के नकद कोषों के समरूपता के कारण बाजार में एक ही ब्याज दर प्रचलित होनी चाहिए, परन्तु व्यवहार में एक ही बाजार में एक ही समय अनेक ब्याज दरें प्रचलित होती हैं । इन विभिन्न ब्याज दरों के एक साथ प्रचलन को यह सिद्धान्त स्पष्ट नहीं करता है । प्रो. हॉग के शब्दों में, "तरलता अधिमान सिद्धान्त के आधार पर ब्याज की विभिन्न दरों के सह-अस्तित्व को समझना असम्भव है, क्योंकि नकदी में पूर्ण एकरूपता के कारण व्याज दर भी सदैव समान रहनी चाहिए ।"

18.5 ब्याज का आधुनिक सिद्धान्त (Modern Theory of Interest)

हमने अभी तक ब्याज के जिन सिद्धान्तों का अध्ययन किया है, उनमें से कोई भी सिद्धान्त ब्याज दर की संतोषजनक व्याख्या प्रस्तुत नहीं करता है । ब्याज का प्रतिष्ठित सिद्धान्त ब्याज दर के निर्धारण में वास्तविक तत्वों, वास्तविक बचतों, तथा वास्तविक निवेश पर ध्यान देता है । परन्तु इस सिद्धान्त के अनुसार ब्याज दर अनिर्धारणीय है अर्थात् प्रतिष्ठित सिद्धान्त के अनुसार ब्याज दर का निर्धारण नहीं हो सकता है । उधार-देय कोष सिद्धान्त ने ब्याज दर के निर्धारण के लिए अमौद्रिक तत्त्वों (वास्तविक तत्त्वों) तथा मौद्रिक तत्त्वों को एक साथ संयोजित करने का प्रयत्न किया, परन्तु यह प्रयत्न भी सफल नहीं हो सका । कीन्स ने ब्याज दर के निर्धारण में तरलता अधिमान तथा मुद्रा की पूर्ति जैसे मौद्रिक तत्त्वों पर ध्यान दिया । परन्तु कीन्स के सिद्धान्त के अनुसार भी ब्याज दर अनिर्धारणीय है ।

पिछले कुछ वर्षा में प्रो. हैन्सन एवं प्रो. लरनर जैसे अर्थशास्त्रियों ने ब्याज के प्रतिष्ठित सिद्धान्त तथा कीन्स के ब्याज के तरलता अधिमान सिद्धान्त से कुछ महत्त्वपूर्ण अंशों को निकालकर एक नवीन सिद्धान्त में संयोजित करने का प्रयत्न किया है । इस नवीन सिद्धान्त को ब्याज का आधुनिक सिद्धान्त कह सकते हैं । यह सिद्धान्त आय सहित बचत, निवेश, तरलता अधिमान तथा मुद्रा की पूर्ति जैसे चार परिवर्तनशील चरों को एक सुसंगठित सिद्धान्त में संयोजित करता है । ब्याज के आधुनिक सिद्धान्त को व्याज का निर्धारणीय सिद्धान्त भी कहते हैं, क्योंकि इसके अनुसार व्याज दर निर्धारणीय है ।

ब्याज के आधुनिक सिद्धान्त के निर्माण के लिए दो वक्रों का निर्माण किया गया है । ये IS वक्र तथा LM वक्र हैं । IS वक्र वास्तविक क्षेत्र में सन्तुलन को व्यक्त करता है तथा LM वक्र मौद्रिक क्षेत्र के सन्तुलन को व्यक्त करता है । आधुनिक- सिद्धान्त के अनुसार ब्याज दर उस

बिन्दु पर निर्धारित होती है, जिस पर IS वक्र व LM वक्र एक दूसरे को काटते हैं । ब्याज की इस सन्तुलित दर पर वास्तविक क्षेत्र तथा मौद्रिक क्षेत्र दोनों ही साम्य में होते हैं । इसे ब्याज दर पर एक ही आय-स्तर पर एक तरफ कुल बचत एवं कुल निवेश बराबर होते हैं । तथा दूसरी ओर मुद्रा की कुल माँग एव मुद्रा की कुल पूर्ति भी बराबर होती है ।

अब हम यही पर IS वक्र तथा LM वक्र के निर्माण की विधि का वर्णन कर सकते है ।

1. **IS वक्र की व्युत्पत्ति (Derivation of IS Curve) -** IS वक्र एक वह वक्र होता है, जो विभिन्न आय स्तरों (Y) तथा ब्याज दरों (R) के ऐसे संयोगों को व्यक्त करता है, जिसके प्रत्येक बिन्दु पर कुल वास्तविक बचतें (S) कुल वास्तविक विनियोग (I) के बराबर होती हैं । IS वक्र की व्युत्पत्ति को रेखाचित्र 18.5 से स्पष्ट किया जा सकता है । हम जानते हैं कि बचत आय-स्तर पर निर्भर करती है तथा सामान्यतया जैसे-जैसे आय-स्तर बढ़ता है, वैसे-वैसे बचतें बढ़ती हैं । माना कि Y_1,Y_2,Y_3,Y_4 तथा Y_5 बढ़ते हुए आय-स्तरों को व्यक्त करते हैं । रेखाचित्र 18.5(a) में आय के इन बढ़ते हुए स्तरों से सम्बन्धित बचतों को व्यक्त करने वाली रेखाएँ $S_1Y_1,S_2Y_2,S_3Y_3,S_4Y_4$ तथा S_5Y_5 हैं । बचतों को व्यक्त करने वाले ये वक्र दायीं ओर खिसकते जा रहे हैं, जो व्यक्त करते हैं कि आय में वृद्धि से बचत बढ़ायी जाती है । इस रेखाचित्र 18.5(a) में I वक्र विनियोग रेखा है । विनियोग ब्याज दर घटने पर बढते हैं तथा ब्याज दर बढने पर घटते हैं अत: I वक्र बायें से दायें को नीचे की ओर झुकता है ।

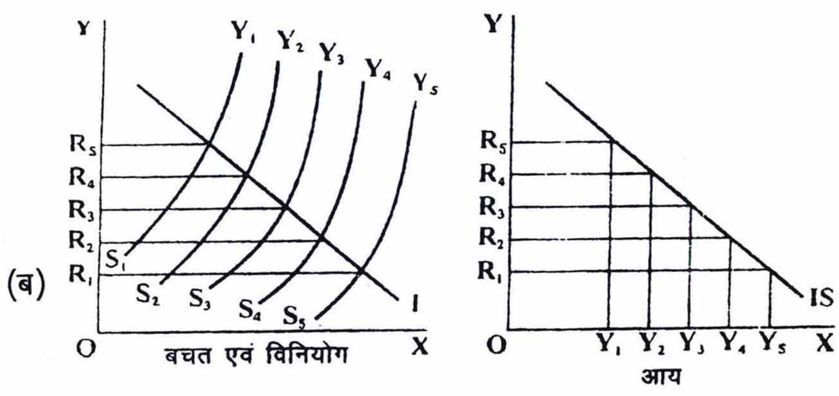

रेखाचित्र 18.5 (अ) **रेखाचित्र 18.5(ब)**

आय-स्तर पर बचत वक्र Y_1S_1 तथा विनियोग वक्र I के साम्य द्वारा OR_5 ब्याज दर का निर्धारण होता है, अर्थात् OR_3 ब्याज दर Y_1 आय-स्तर पर बचत व विनियोग के बीच सन्तुलन स्थापित करती है । इसी तरह Y_2 आय-स्तर पर बचत वक्र Y_2S_2 तथा विनियोग वक्र I के साम्य द्वारा OR_4 ब्याज दर निर्धारित होती है । इसी तरह Y_3Y_4 तथा Y_5 आय-स्तरों पर ब्याज की दरें OR_3,OR_2 तथा OR_1 निर्धारित होती हैं ।

यदि हम विभिन्न आय-स्तरों तथा उनसे सम्बन्धित ब्याज की दरों, जिन पर बचत व विनियोग में सन्तुलन होते हैं, कें सम्बन्ध को एक वक्र द्वारा व्यक्त करें तो हमें IS वक्र प्राप्त होगा । रेखाचित्र 18.5(b) में एक ऐसा ही IS वक्र दिखाया गया है । यह IS वक्र उन विभिन्न आय-स्तरों तथा ब्याज दरों के सम्बन्धों को व्यक्त करता है, जिन पर उनसे सम्बन्धित बचतें एवं

विनियोग सन्तुलन में होते हैं । IS वक्र का ढाल ऋणात्मक है अर्थात् वह बायें से दाये को नीचे की ओर गिरता हुआ है । यह ढाल आयस्तर व ब्याज दर में उल्टे सम्बन्ध को बताता है अर्थात् जैसे-जैसे आय-स्तर बढता जाता है (Y_1,Y_2,Y_3 इत्यादि होता है) वैसे-वैसे ब्याज दर घटती जाती है (OR_5,OR_4,OR_3 इत्यादि होती जाती है) । अर्थात् ऊँचे आय-स्तर पर अधिक बचतें होंगी, अत: ब्याज की नीची दरें निर्धारित होंगी तथा नीचे आय-स्तर पर कम बचतें होंगी, अत: ऊँची ब्याज दरें निर्धारित होंगी ।

2. **LM वक्र की व्युत्पत्ति (Derivation of LM Curve) -** अब हम LM वक्र की व्युत्पत्ति को स्पष्ट कर सकते हैं । LM वक्र एक वह वक्र होता है, जो विभिन्न आय-स्तरों (Y) तथा विभिन्न ब्याज दरों (R) के विभिन्न संयोगों को व्यक्त करता है, जिन पर तरलता अधिमान अथवा मुद्रा की माँग तथा मुद्रा की पूर्ति में संतुलन होता है । रेखा चित्र 18.6(a एवं b) से LM वक्र की व्युत्पत्ति को स्पष्ट किया जा सकता है । रेखाचित्र 18.6 (a) में आय-स्तर के बढ़ने के साथ-साथ बढता हुआ तरलता अधिमान **LP_1, LP_2, LP_3, LP_4** तथा **LP_5** वक्रों द्वारा दिखाया गया है तथा मुद्रा की पूर्ति को **ON** मात्रा पर **S** वक्र द्वारा दिखाया गया है । मुद्रा की पूर्ति भार स्थिर रहने तथा आय-स्तर की वृद्धि के साथ तरलता अधिमान बढते जाने से ब्याज दर बढ़ती जाती है । अर्थात् **Y_1** आय-स्तर पर तरलता अधिमान **LP_2** है, जिससे ब्याज दर तरलता अधिमान **LP_1,** व मुद्रा की स्थिर पूर्ति वक्र **S** के साम्य से **OR_1** निर्धारित होती है । इसी तरह **Y_2** आय-स्तर पर तरलता अधिमान **LP_2** है तथा मुद्रा की स्थिर पूर्ति के साथ इसके साम्य से ब्याज दर **OR_2** निर्धारित होती है । इसी तरह **Y_3,Y_4** तथा **Y_5** आय-स्तरों पर तरलता अधिमान **LP_3,LP_4,LP_5** तथा इनके मुद्रा की स्थिर पूर्ति की **ON** मात्रा के सन्तुलनों से **OR_3, OR_4** तथा **OR_5** ब्याज दरें निर्धारित होती है ।

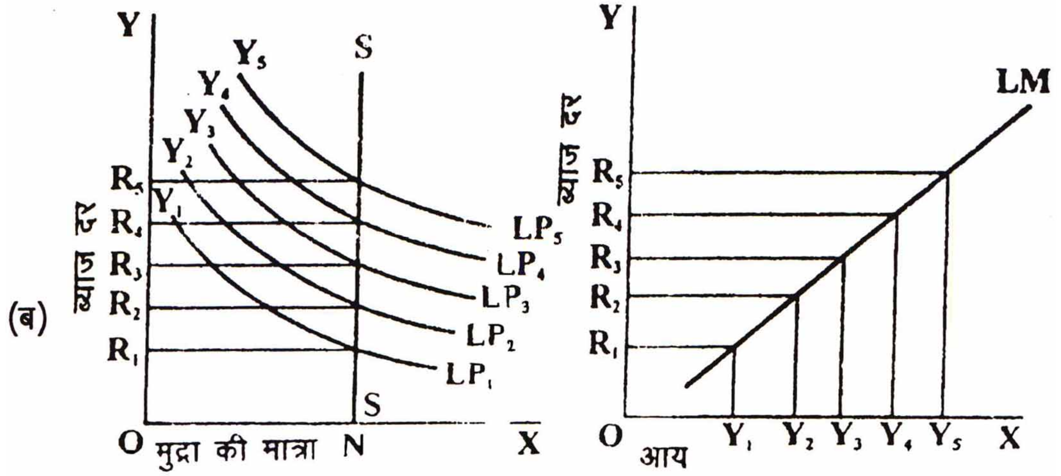

रेखाचित्र 18.6 (अ) **रेखाचित्र 18.6(ब)**

यदि हम विभिन्न आय-स्तरों तथा उनसे सम्बन्धित ब्याज दरों, जिन पर मुद्रा की माँग (तरलता अधिमान) तथा मुद्रा की पूर्ति में सन्तुलन होता है, को एक वक्र द्वारा व्यक्त करें तो हमें **LM** वक्र प्राप्त होता है, जिसे रेखाचित्र 18.6**(b)** में दिखाया गया है । यह **LM** वक्र विभिन्न

आय-स्तरों व ब्याज दरों के सम्बन्ध को बताता तथा इसका प्रत्येक बिन्दु मुद्रा की माँग तथा मुद्रा की पूर्ति के साम्य को बताता है । **LM** वक्र का ढाल धनात्मक है अर्थात् यह वक्र बायें से दायें को ऊपर को चढ़ता हुआ है । इसका कारण यह है कि यह वक्र आयस्तर तथा ब्याज दरों में धनात्मक प्रत्यक्ष सम्बन्ध को बताता है अर्थात् जैसे-जैसे आय का स्तर बढ़ता जाता है **(Y_1,Y_2,Y_3** इत्यादि होता जाता है) वैस-वैसे ब्याज दर भी बढ़ती जाती है **(R_1,R_2,R_3,R_4** होती जाती है) । इसका कारण यह है कि जब मुद्रा की पूर्ति दी हुई तथा स्थिर है तब आय-स्तर के साथ-साथ तरलता अधिमान (मुद्रा की माँग) बढ़ता जाता है और इसके परिणामस्वरूप ब्याज दरें भी बढती जाती हैं अत: आय-स्तरों व ब्याज-दरो में प्रत्यक्ष धनात्मक सम्बन्ध होता है ।

3. **ब्याज -दर का निर्धारण (Determination of Rates of Interest) :** ब्याज दर **IS** वक्र तथा **LM** वक्र के कटाव बिन्दु पर निर्धारित होती है अर्थात् ब्याज दर वही निर्धारित होती है, जहाँ **LM** वक्र व **IS** वक्र एक-दूसरे को काटते है । रेखाचित्र 18.7 से स्पष्ट होता है कि **E** बिन्दु पर **LM** वक्र तथा **IS** वक्र एक-दूसरे को काटते है । इस सन्तुलन बिन्दु पर **OR3** ब्याज -दर का निर्धारण होता है । इस रेखाचित्र से यह स्पष्ट होता है कि आय का सन्तुलन स्तर **OR3** निर्धारित होगा । इस सन्तुलित **OY_3** आय स्तर पर एक तरफ **OR_3** ब्याज दर पर वास्तविक क्षेत्र में कुल बचत एवं कुल विनियोग बराबर होंगे तथा दूसरी ओर इसी आय-स्तर पर मौद्रिक क्षेत्र में OY_3 ब्याज दर पर मुद्रा की माँग तथा मुद्रा की पूर्ति बराबर होगी ।

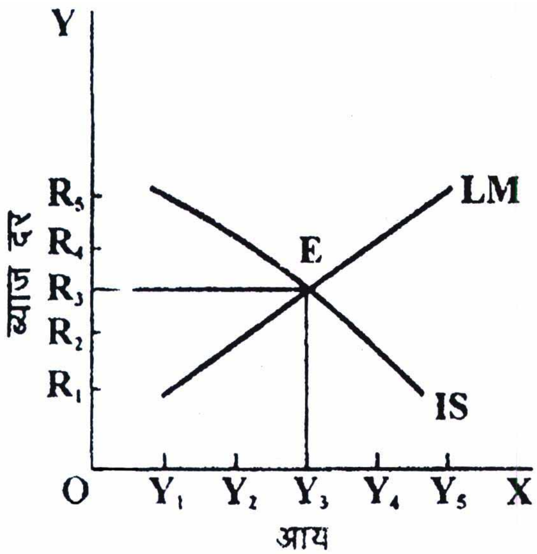

रेखाचित्र 18.7

इस प्रकार हम हिक्स हैनसन के आधुनिक सिद्धान्त के अनुसार इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि वह साम्य ब्याज दर तथा साम्य आय-स्तर निर्धारित होगे, जिस ब्याज दर तथा आय-स्तर पर बचत तथा विनियोग आपस में समान होंगे तथा मुद्रा की माँग व मुद्रा की पूर्ति भी एक-दूसरे के समान होगी ।

18.6 सारांश

उत्पादन व्यवस्था में उत्पत्ति के साधनों का महत्वपूर्ण योगदान है उनमें से पूँजी का महत्वपूर्ण स्थान है । पूँजी को प्रयोग करने के बदले में दिया जाने वाला पुरस्कार ही ब्याज कहलाता है । अर्थशास्त्रियों द्वारा अनेक सिद्धान्त प्रतिपादित किये गये है । प्रतिष्ठित सिद्धान्त जिसे ब्याज का माँग एवं पूर्ति सिद्धान्त भी करते हैं । इस सिद्धान्त के अनुसार ब्याज दर वहां निर्धारित होती है, जहां पूँजी की माँग पूँजी की पूर्ति के बराबर होती है । कीन्स ने प्रतिष्ठित सिद्धान्त की आलोचना करते हुए ब्याज का तरलता अधिमान सिद्धान्त प्रतिपादित किया जिसके अनुसार ब्याज दर तरलता की माँग एव तरलता की पूर्ति के साम्य द्वारा निर्धारित होती है । तरलता अधिमान के तीन उद्देश्य होते हैं (अ) लेन-देन उद्देश्य अथवा कार्य सम्पादन उद्देश्य (ब) दूरदर्शिता अथवा सतर्कता उद्देश्य (स) सट्टा उद्देश्य

ब्याज के आधुनिक सिद्धान्त के निर्माण के लिए दो वक्रों का निर्माण किया गया है । एक वक्र वास्तविक क्षेत्र में सन्तुलन को व्यक्त करता है तथा दूसरा वक्र मौद्रिक क्षेत्र में सन्तुलन को व्यक्त करता है ।

18.7 शब्दावली

ब्याज - पूँजी के प्रयोग के बदले जो मूल्य चुकाया जाता है ।

ऋणदाता - जो पैसा या पूँजी उधार देता है ।

ऋणी - जो पूँजी उधार लेता है ।

तरलता अधिमान - अपने स्वयं के पास नकद मुद्रा रखना ।

सट्टा - वर्तमान में भविष्य के लेन-देन का सौदा करना ।

वास्तविक क्षेत्र - बचत एवं विनियोग ।

मौद्रिक क्षेत्र - मुद्रा की माँग एवं मुद्रा की पूर्ति ।

18.8 स्वपरख प्रश्न

1. ब्याज से आप क्या समझते है?
2. तरलता अधिमान के क्या उद्देश्य हैं?
3. "ब्याज तरलता के त्याग का पुरस्कार है । यह मुद्रा की माँग एवं पूर्ति द्वारा निर्धारित होती है ।" विवेचना कीजिए।
4. IS वक्र किसे कहते हैं?
5. ब्याज के प्रतिष्ठित सिद्धान्त की आलोचनात्मक व्याख्या कीजिये ।
6. ब्याज के आधुनिक सिद्धान्त का सचित्र विवेचन कीजिए ।

18.9 उपयोगी पुस्तकें

1. व्यावसायिक अर्थशास्त्र — अग्रवाल, अग्रवाल एवं गुप्ता
2. व्यावसायिक अर्थशास्त्र — गुप्ता बी. पी.
3. Business Economics — Agarwal M.D. & Som Deo

इकाई-19

लाभ : अवधारणा एवं सिद्धान्त
(Profit : Concept and Theories)

इकाई की रूपरेखा

19.0 उद्देश्य

19.1 प्रस्तावना

19.2 लाभ का अर्थ

1. कुल लाभ एवं आर्थिक लाभ
2. कुल लाभ के अंग
3. सामान्य लाभ एवं असामान्य लाभ

19.3 लाभ के सिद्धान्त

1. लाभ का लगान सिद्धान्त
2. लाभ का मजदूरी सिद्धान्त
3. लाभ का समाजवादी सिद्धान्त
4. लाभ का प्रावैगिक सिद्धान्त
5. लाभ का नव-प्रवर्तन सिद्धान्त
6. लाभ का जोखिम सिद्धान्त
7. लाभ का अनिश्चितता सिद्धान्त
8. लाभ का सीमान्त उत्पादकता सिद्धान्त

19.4 लाभ का माप

19.5 सारांश

19.6 शब्दावली

19.7 स्वपरख प्रश्न

19.8 कुछ उपयोगी पुस्तकें

19.0 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के बाद आप इस योग्य हो सकेंगे कि -

- लाभ के अर्थ एवं परिभाषा का वर्णन कर सकें ।
- कुल लाभ एवं आर्थिक लाभ का अर्थ समझ सकेंगे ।
- कुल लाभ के अंग जान सकेंगे ।
- लाभ के विभिन्न सिद्धान्तों की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे ।

19.1 प्रस्तावना

उत्पादन भूमि, श्रम, पूँजी, संगठन एवं साहसी की सेवाओं के सहयोग से होता है । उत्पादन कार्य में सहयोग करने के लिए साहसी को जो कुछ भुगतान प्राप्त होता है, लाभ कहलाता है । साहसी को यह भुगतान अवशिष्ट आय राशि के रूप में प्राप्त होता है अर्थात् उत्पादन के अन्य सभी साधनों को पुरस्कार चुकाने के बाद जो राशि शेष बच रहती है वह साहसी का लाभ होता है । यहाँ यह बात ध्यान देने योग्य है कि भूमि, श्रम, पूँजी तथा संगठन उत्पादन के ऐसे साधन हैं जो स्वयं अपने-आप उत्पादन कार्य में सहयोग देने के लिए आगे नहीं आते हैं वरन् इन साधनों को उत्पादन कार्य चलाने के लिए साहसी द्वारा आवश्यक अनुपात में जुटाया जाता है । साहसी इन सभी साधनों के स्वामियों को उनकी योग्यतानुसार ठहराया गया मूल्य चुकाने का दायित्व अपने ऊपर लेता है, चाहे उत्पादन कार्य सफल हो अथवा न हो । इस प्रकार साहसी एक भारी जोखिम उठाता है तथा उसके बदले में प्रतिफल की आशा करता है । लाभ इसी जोखिम उठाने का प्रतिफल होता है । भूमि, श्रम, पूँजी एवं संगठन के पारिश्रमिक तो पूर्व निर्धारित एवं निश्चित होते हैं, परन्तु साहसी का लाभ एकदम अनिश्चित एवं अनिर्धारित होता है।

19.2 लाभ का अर्थ (Meaning of Profit)

अर्थशास्त्र में लाभ का कोई एक निश्चित अर्थ नहीं है, जैसा कि **प्रो. नाइट** ने ठीक ही कहा है, "सम्भवत: आर्थिक विश्लेषण में लाभ के अतिरिक्त कोई ऐसा शब्द नहीं है जिसे इतने विभिन्न अर्थों में प्रयोग किया गया हो ।" **फ्रांसिस एल. वाकर** ने लाभ को साहसियों की योग्यता का लगान कहा है । **टॉजिग** तथा **डेवनपोर्ट** ने इसे साहसी अथवा उद्यमी की मजदूरी कहा है । **हॉले** ने इसे जोखिम उठाने का पुरस्कार माना है । **एच. एफ. नाईट** ने इसे अबीमा योग्य जोखिमों अथवा अनिश्चितताएँ उठाने का पुरस्कार मान है **प्रो. जे.बी. क्लार्क** ने इसे बाजार की अपूर्णताओं का परिणाम माना है । जबकि **कार्ल मार्क्स** ने इसे 'वैध डाका' माना है ।

प्रो. हेनरी ग्रेसन विभिन्न विचारधाराओं में समन्वय करते हुए लाभ को (i) नव-प्रवर्तन का पुरस्कार, (ii) जोखिम तथा अनिश्चितताओं को स्वीकार करने का पुरस्कार, एवं (iii) बाजार संरचना में अपूर्णता का परिणाम कहा है । हेनरी ग्रेसन के अनुसार उपर्युक्त में किसी एक अथवा तीनों के किसी सम्मिश्रण से लाभ उत्पन्न हो सकता है ।

कुल लाभ एवं आर्थिक लाभ (Total Profit and Economic Profit)

साधारण भाषा में जिसे लाभ कहा जाता है, उसे अर्थशास्त्र में कुल लाभ कहते हैं । साहसी द्वारा अपनी वस्तुओं के विक्रय से प्राप्त कुल आगम में से उत्पत्ति में प्रयुक्त विभिन्न साधनों यथा भूमि, श्रम, पूँजी एवं संगठन की सेवाओं को ठहराया गया भुगतान तथा ह्रास व्यय निकालने के बाद जो राशि शेष बचती है, कुल लाभ (Total Profit) कहलाती है । अनुबन्ध पर प्राप्त साधनों के अतिरिक्त साहसी उत्पादन कार्यो में अपनी स्वयं की भूमि, पूँजी, श्रम तथा प्रबन्ध योग्यता का भी प्रयोग करता है । साहसी के स्वयं के साधनों का पुरस्कार बाहरी व्यक्ति को नहीं चुकाना होता है । इसलिए इसको सामान्यतया लेखाशास्त्री पुस्तकों में नहीं लिखते हैं । इन साधनों के पुरस्कार को अव्यक्त लागतें अथवा अन्तर्निहित लागतें (Implict Cost) कहते है

। इसीलिए साहसी द्वारा कुल लागत में से केवल व्यक्त लागतें (Explict) घटाने पर जो राशि शेष बचती है, उसे लाभ कहा जाता है जबकि कुल आगम में से कुल व्यक्त एवं अव्यक्त लागतें घटाने पर जो शेष बचता है, वह आर्थिक लाभ होता है ।

सूत्र रूप में-

कुल लाभ	=	कुल आगम - स्पष्ट लागतें
आर्थिक लाभ	=	कुल आगम - स्पष्ट लागतें-अस्पष्ट लागतें
आर्थिक लाभ	=	कुल लाभ - अस्पष्ट लागतें

आर्थिक लाभ धनात्मक भी हो सकता है तथा ऋणात्मक भी हो सकता है । आर्थिक लाभ उस समय धनात्मक होता है जब कुल आगम कुल स्पष्ट तथा अस्पष्ट लागतों से अधिक हो । उत्पादन के साधनों के पुरस्कार में लाभ ही एक ऐसा पुरस्कार है, जो ऋणात्मक हो सकता है । जब कुल लाभ अस्पष्ट लागतों से कम होता है, आर्थिक लाभ ऋणात्मक हो सकता है । माना कि किसी फर्म की कुल आगम 4,000 रूपये है तथा फर्म की स्पष्ट लागतें 3,000 रूपये एवं अस्पष्ट लागतें 2,000 रूपये हैं । ऐसी स्थिति में कुल लाभ = 4,000 -3,000 = 1,000 रूपये । आर्थिक लाभ = 1,000-2,000 = (-) 1,000 रूपये ।

कुल लाभ के अंग (Constituents of Gross Profit or Total Profit)

कुल लाभ में निम्न सम्मिलित होते हैं-

(1) **आर्थिक लाभ अथवा शुद्ध लाभ (Economic Profit or Net Profit) -** कुल लाभ का एक प्रमुख अंग आर्थिक लाभ होता है । यह साहसी को जोखिम उठाने, अनिश्चितता वहन करने, नव-प्रवर्तन करने, समन्वय करने तथा अपनी विशिष्ट योग्यता के कारण मिलता है । सामान्यतया आर्थिक लाभ में निम्न का भुगतान सम्मिलित होता है-

(अ) **अनिश्चितताएँ वहन करने एवं जोखिम उठाने का पुरस्कार (Reward for Uncertainty Bearing and Risk Taking)** - एक उद्यमी अथवा साहसी को प्राप्त होने वाला लाभ उन जोखिमों और अनिश्चितताओं को वहन करने का पुरस्कार है जिसका बीमा नहीं करवाया जा सकता है ।

(ब) **सामंजस्य स्थापित करने का पुरस्कार (Reward for Coordination) -** एक उद्यमी उत्पादन कार्य की योजना बनाता है, उत्पादन साधनों को एकत्र करता है, और उन्हें आवश्यक अनुपात में मिलाकर उत्पादन कार्य चलाता है । अत: जो साहसी उत्पादन साधनों में अच्छा सामंजस्य स्थापित करता है और इसके परिणामस्वरूप लाभ कमाता है ।

(स) **नव-प्रवर्तन का पुरस्कार (Reward for Innovations) -** उद्यमी नवीन वस्तु का उत्पादन करके अथवा नवीन उत्पादन तकनीक का विकास करके अथवा नवीन कच्चे माल स्रोतों का नवीन बाजारों की खोज कर अर्थव्यवस्था को नवीनता प्रदान करता है; तथा लाभ प्राप्त करता है ।

(2) **उद्यमी के स्वयं के उत्पादन साधनों का पुरस्कार (Reward for Entrepreneur's Own Resources) -** उद्यमी उत्पादन कार्य में अपनी भूमि व पूँजी लगा सकता है तथा वह स्वयं या उसके परिवार के सदस्य कार्य कर सकते हैं । अत: इन सब का भुगतान अव्यक्त लागतें

कहलाती हैं तथा ये कुल लाभ में सम्मिलित रहती हैं । उद्यमी के स्वयं के उत्पादन साधनों के पुरस्कार में निम्न महत्वपूर्ण होते हैं-

(अ) **भूमि का किराया (Rent of Land) -** साहसी अपने कारखाने के लिए अपनी स्वयं की भूमि प्रयोग कर सकता है । इस भूमि का किराया आर्थिक लाभ नहीं है । अत: आर्थिक लाभ की गणना करते समय कुल लाभ में से इस अव्यक्त किराये को घटाया जाना चाहिए ।

(ब) **पूँजी का ब्याज (Interest on Capital) -** एक साहसी दूसरे व्यक्तियों से उधार लेने की असुविधाओं से बचने के लिए अपनी पूँजी का उपयोग कर सकता है । इस पूँजी का ब्याज भी आर्थिक लाभ ज्ञात करते समय अव्यक्त ब्याज के रूप में घटाया जाना **चाहिए ।**

(ग) **प्रबन्ध की मजदूरी (Wages for Management) -** उद्यमी स्वयं ही अपने व्यापार अथवा उद्यम का प्रबन्ध कर सकता है । यदि वह प्रबन्ध का कार्य स्वयं न करके एक प्रबन्धक रखे तो उसे वेतन अथवा मजदूरी देनी होती है । अत: उसके कुल लाभ में अव्यक्त मजदूरी शामिल है जिसे शुद्ध या आर्थिक लाभ ज्ञात करते समय घटाना चाहिए ।

(3) **घिसाई प्रभार (Depreciation Charges) -** उत्पादन प्रक्रिया में प्लांट एव मशीनरी का ह्रास होता है तथा अनेक मशीनें अप्रचलित हो जाती हैं । अत: ह्रास तथा अप्रचलन हानि उत्पादन लागत का भाग हैं । इसलिए शुद्ध अथवा आर्थिक लाभ को ज्ञात करते समय घिसाई प्रभार को कुल लाभ में से घटा देना चाहिए ।

(4) **बीमा प्रभार (Insurance Charges) -** इसी प्रकार विभिन्न प्रकार की जोखिमों के लिए जो बीमा व्यय चुकाये जाते हैं, उन्हें भी आर्थिक लाभ ज्ञात करते समय कुल लाभ में से घटा देना चाहिए ।

(5) **एकाधिकारी लाभ (Monopoly Gains) -** जब कोई उद्यमी अपने उद्योग में अकेला उत्पादक होता है तो वह अपनी एकाधिकारी स्थिति के कारण वस्तु की पूर्ति को नियन्त्रित करके वस्तु के मूल्य को बढ़ाने में सफल हो जाता है, अत: वह सामान्य से अतिरिक्त एकाधिकारी लाभ अर्जित करता है । एकाधिकारी लाभ कुल लाभ का भाग होता है ।

(6) **अप्रत्याशित आय (Wind Fall Income) -** कभी-कभी उद्यमियों को आर्थिक, सामाजिक तथा राजनीतिक परिस्थितियों में परिवर्तन होने से वस्तुओं की कीमतें अनायास बढ़ जाने से अप्रत्याशित आय प्राप्त होती है । यह भी कुल लाभ का अंग है ।

सामान्य लाभ एवं असामान्य लाभ (Normal profit and Supernormal Profit) :

प्रत्येक उद्यमी, साहसी अथवा फर्म को किसी उत्पादन कार्य को प्रारम्भ करने में लाभ की आशा अवश्य होती है । अत: लाभ की वह न्यूनतम मात्रा जिसमें किसी उद्योग में लगी हुई फर्मो को उद्योग छोड़ने वले विवश न होना पड़े तथा नई फर्मो को प्रवेश करने के लिए प्रोत्साहन न हो, सामान्य लाभ कहलाता है । अल्पकाल में एक फर्म हानि उठा कर भी कार्य कर सकती है परन्तु दीर्घकाल में कोई भी फर्म हानि उठा कर उत्पादन कार्य नहीं करेगी बल्कि सामान्य लाभ से कम लाभ प्राप्त होने पर भी कार्य नहीं करेगी । **श्रीमती जोन रॉबिन्सन** ने ठीक ही कहा है, "सामान्य लाभ वह होता है, जो कि न तो इतना अधिक होता है कि नई-नई फर्म उद्योग की ओर आकर्षित हों और न इतना कम होता है कि वर्तमान फर्म ही उद्योग छोड़ने लग जाएँ ।"

असामान्य लाभ वह लाभ होता है जो एक साहसी को सामान्य लाभ के अतिरिक्त प्राप्त होता है । यह कुशल साहसियों को सीमान्त साहसी की तुलना में अपनी कुशलता के कारण अथवा बाजार की अपूर्णता के कारण प्राप्त होता है । पूर्ण प्रतियोगिता में दीर्घकाल में किसी भी फर्म को असामान्य लाभ प्राप्त नहीं हो सकता है ।

समान्य लाभ तथा असामान्य लाभ में निम्न अन्तर होते हैं -

1. सामान्य लाभ ज्ञात जोखिम का जबकि असामान्य लाभ अज्ञात जोखिम का प्रतिफल है ।
2. सामान्य लाभ उत्पादन लागत का एक भाग होता है, जबकि असामान्य लाभ उत्पादन लागत का भाग नहीं होता है, अत: उसमें सम्मिलित नहीं होता है ।
3. सामान्य लाभ तो स्थिर रहता है, जबकि असामान्य लाभ तेजी-मन्दी के अनुसार बढ़ता-घटता रहता
4. सामान्य लाभ सदैव धनात्मक होता है जबकि असामान्य लाभ ऋणात्मक भी हो सकता है ।

19.3 लाभ के सिद्धान्त (Theories of Profit)

लाभ क्यों उत्पन्न होता है तथा लाभ का निर्धारण कैसे होता है? इस सम्बन्ध में अर्थशास्त्रियों में बड़ा मतभेद है । लाभ के निर्धारण के लिए लाभ का लगान सिद्धान्त, लाभ का मजदूरी सिद्धान्त, लाभ का जोखिम सिद्धान्त, लाभ का अनिश्चितता वहन सिद्धान्त, लाभ का नवप्रवर्तन सिद्धान्त, लाभ का प्रावैगिक सिद्धान्त, लाभ का सीमान्त उत्पादकता सिद्धान्त आदि सिद्धान्त प्रचलित हैं; परन्तु इनमें कोई भी सिद्धान्त श्रेष्ठ सिद्धान्त नहीं है, जिसे लाभ-निर्धारण के लिए सभी के द्वारा स्वीकार किया जा सके । यहाँ लाभ के प्रमुख सिद्धान्तों का संक्षिप्त वर्णन किया गया है-

1. **लाभ का लगान सिद्धान्त (Rent Theory of Profit)**

इस सिद्धान्त का प्रतिपादन अमेरिका के अर्थशास्त्री फ्रांसिस एल.वाकर द्वारा किया गया है । यद्यपि लाभ के लगान सिद्धान्त के बारे में ब्रिटिश अर्थशास्त्री सीनियर तथा जे.एस.मिल द्वारा भी विचार प्रकट किये गये थे । प्रो. वाकर के अनुसार लाभ योग्यता का लगान है । उनके अनुसार लगान एवं लाभ में अनेक समानताएँ हैं । लगान भूमि के प्रयोग के लिए भुगतान हैं, जबकि लाभ साहसी की योग्यता का भुगतान है । जिस प्रकार भूमियां विभिन्न उत्पादकता वाली होती हैं, ठीक उसी प्रकार साहसी भी विभिन्न व्यावसायिक योग्यता वाले होते हैं । जिस प्रकार अधिसीमान्त भूमि पर सीमा भूमि की तुलना में अधिक उत्पादकता के कारण लगान उत्पन्न होता है, ठीक उसी प्रकार साहसी भी विभिन्न व्यावसायिक योग्यता वाले होते हैं । जिस प्रकार अधिसीमान्त भूमि पर सीमान्त भूमि की तुलना में अधिक उत्पादकता के कारण लगान उत्पन्न होता है, ठीक उसी प्रकार अधिक योग्य साहसियों का लाभ भी अधिसीमान्त तथा सीमान्त साहसियों की उत्पादकताओ के अन्तर के आधार पर निर्धारित होता है । जिस प्रकार सीमान्त अथवा लगान रहित भूमि होती है, ठीक उसी प्रकार सीमान्त साहसी भी होता है । सीमान्त साहसी का तात्पर्य उस साहसी से है जो अपनी वस्तु का उत्पादन करके उसे बेचकर केवल लागत ही वसूल कर पाता है । अत: सीमान्त साहसी को कोई लाभ नहीं मिलता ।

आलोचनाएँ (Criticism) -लाभ के लगान सिद्धान्त की प्रमुख आलोचनाएँ निम्न हैं-

(1) **लाभ एवं लगान में पूर्ण समानता सम्भव नहीं (Profit and Rent Cannot be Similar) -** इस सिद्धान्त के आलोचकों का कहना है कि लाभ तथा लगान में पूर्ण समानता नहीं हो सकती है । लगान सदैव धनात्मक होता है तथा कभी अपवाद स्वरूप ही शून्य हो सकता है, परन्तु कभी भी ऋणात्मक नहीं होता है ।

(2) **लाभ केवल योग्यता का पुरस्कार नहीं (profit is not the reward of Ability alone) -** साहसी को लाभ केवल उसकी व्यावसायिक योग्यता के कारण ही प्राप्त नहीं होती है । लाभ एकाधिकार के कारण अथवा अनायास अच्छे अवसर प्राप्त होने के कारण भी प्राप्त होता है।

(3) **सीमान्त अथवा लाभ रहित साहसी का न पाया जाना (Absence of marginal or No-Profit Entrepreneur) -** सीमान्त अथवा लगान रहित भूमि पायी जा सकती है, परन्तु लाभ रहित साहसी का पाया जाना असम्भव है ।

(4) **लाभ केवल प्रावैगिक अर्थव्यवस्था में उत्पन्न होता है (Profit Arises in Dynamic Economy Only) -** लगान स्थैतिक तथा प्रावैगिक दोनों ही प्रकार की अर्थव्यवस्थाओं में उत्पन्न होता है, परन्तु लाभ केवल प्रावैगिक अर्थव्यवस्था में भविष्य सम्बन्धी अनिश्चितताओं के कारण उत्पन्न होता है । स्थैतिक अर्थव्यवस्था में अनिश्चितताएँ न होने से लाभ उत्पन्न नहीं होता है ।

(5) **लाभ उत्पादन लागत का भाग है (Profit is a Part of Cost) -** वाकर ने यह माना है कि सीमान्त साहसी लाभ प्राप्त नहीं करता है तथा बाजार मूल्य सीमान्त साहसी की उत्पादन लागत के बराबर होने के कारण इसमें लाभ शामिल नहीं होता है । आधुनिक अर्थशास्त्रियों का कहना है कि अल्पकाल में तो लाभ लागत में शामिल न हो परन्तु दीर्घकाल में लाभ लागत में अवश्य शामिल होता है ।

(6) **लाभ की प्रकृति को ठीक प्रकार न समझना (Could not Understand the nature of Profit)** वाकर लाभ की वास्तविक प्रकृति को नहीं समझ सके । वाकर के अनुसार लाभ साहसी की जोखिम वहन करने की व्यावसायिक योग्यता के कारण उत्पन्न होता है, परन्तु आलोचकों का कहना है कि लाभ जोखिम वहन करने की योग्यता का पुरस्कार नहीं है, बल्कि यह जो जोखिम से बचने का पुरस्कार है ।

(7) **संयुक्त स्कन्ध प्रमण्डलों के अंशधारियों के लाभों की व्याख्या करने में असमर्थ (Unable to explain the profit of Joint Stock Companies) -** संयुक्त स्कन्ध प्रमण्डल के अंशधारियों को प्राप्त होने वाले लाभ का सम्बन्ध उन अंशधारियों की योग्यता से बिल्कुल नहीं होता है, क्योंकि योग्य तथा अयोग्य अंशधारियों ने अनायास ऊँचे लाभांश देने वाले प्रमण्डलों के अंश खरीद लिये हैं तो उन्हें अधिक लाभ प्राप्त होगा ।

2. **लाभ का मजदूरी सिद्धान्त (Wage Theory of Profit)**

इस सिद्धान्त का प्रतिपादन अमेरिका के अर्थशास्त्री टॉजिग द्वारा किया गया । इस सिद्धान्त का समर्थन अमेरिका के प्रसिद्ध अर्थशास्त्री डेवनपोर्ट द्वारा भी किया गया । इस सिद्धान्त के अनुसार लाभ भी एक तरह की मजदूरी है जो उत्पादन कार्य में साहसी द्वारा प्रदान की गयी

सेवाओं के बदले चुकायी जाती है । प्रो. टॉजिग के शब्दों में, "लाभ केवल संयोगवश प्राप्त नहीं होते इसके लिए विशेष ज्ञान की आवश्यकता होती है, यह भी उसी प्रकार का श्रम होता है, जैसा एक वकील अथवा दण्ड नायक होता है ।" इस सिद्धान्त के अनुसार साहसी अथवा उद्यमी भी एक श्रमिक है, जो शारीरिक श्रम के स्थान पर उद्यम को चलाने के लिए मानसिक श्रम करता है तथा इस श्रम के बदले लाभ प्राप्त करता है । टॉजिग ने लाभ को साहसी की विशेष योग्यता की मजदूरी कहा है । टॉजिग के शब्दों में "लाभ साहसी की वह मजदूरी है जो उसे अपनी योग्यता के कारण प्राप्त होती है ।" निष्कर्ष के रूप में कहा जा सकता है कि उद्यम में साहसी एक विशेष प्रकार का श्रम करता है तथा उसकी मजदूरी ही उसे लाभ के रूप में प्राप्त होती है ।

आलोचनाएँ (Criticism) - लाभ के मजदूरी सिद्धान्त की निम्न आलोचनाएँ की जाती हैं-

1. **श्रमिक तथा उधमी के मौलिक कार्यो में भेद नहीं करता (It does not distinguish between the functions of worker and entrepreneur)-** यह सिद्धान्त श्रमिक तथा साहसी के मौलिक कार्यो में भेद को नहीं समझता है । साहसी का प्रमुख कार्य जोखिम एवं अनिश्चितता वहन करना होता है । श्रमिक सामान्यतया कोई जोखिम नहीं उठाता है ।

2. **मजदूरी ऋणात्मक नहीं हो सकती (Wages cannot be negative) -** एक श्रमिक को उसके श्रम के लिए मजदूरी प्राप्त होती है तथा यह कभी भी ऋणात्मक नहीं हो सकती है । साहसी को अपने श्रम के बदले लाभ प्राप्त होता है, वह ऋणात्मक भी हो सकता है ।

3. **अपूर्ण प्रतियोगिता में लाभ बढ़ते हैं तथा मजदूरी घटती है (Profits increase and wages decrease in imperfect companies) -** अपूर्ण प्रतियोगिता में श्रम की मजदूरी घटती है अर्थात् अपूर्ण प्रतियोगिता की स्थिति में श्रम का शोषण होता है । इसके विरूद्ध अपूर्ण प्रतियोगिता की स्थिति में लाभ बढ़ते हैं ।

4. **संयुक्त प्रमण्डल अंशधारियों के लाभों की व्याख्या नहीं करता (Unable to explain the profits of joint stock companies)-** संयुक्त प्रमण्डल अंशधारी फर्म में किसी प्रकार का श्रम नहीं करते परन्तु उन्हें लाभ प्राप्त होता है । इस लाभ की व्याख्या यह सिद्धान्त नहीं करता है ।

3. **लाभ का समाजवादी सिद्धान्त (The Socialist Theory of Profit)**

इस सिद्धान्त का प्रतिपादन कार्ल माक्स द्वारा किया गया है । इस सिद्धान्त के अनुसार किसी वस्तु का मूल्य उसमें लगाये गये श्रम द्वारा निर्धारित होता है । किसी भी उत्पादन कार्य में श्रम श्रमिक द्वारा लगाया जाता है । अत: उस उत्पादन का समस्त मूल्य श्रमिक को मिलना चाहिए । परन्तु पूँजीवादी अर्थव्यवस्था में श्रमिकों द्वारा उत्पादित वस्तु के मूल्य में से श्रमिक को केवल एक भाग ही प्राप्त होता है तथा शेष पूँजीपतियों द्वारा हड़प लिया जाता है । ऐसा शेष मूल्य ही लाभ कहलाता है । लाभ के उत्पन्न होने का प्रमुख कारण पूँजीपतियों द्वारा श्रमिकों का शोषण किया जाना है । कार्ल मार्क्स ने इसे कानूनी डकैती की संज्ञा दी थी । श्रमिकों का जितना ज्यादा शोषण किया जाएगा, लाभ उतना ही अधिक होगा । समाजवादी अर्थव्यवस्थाओं में श्रमिकों का शोषण नहीं किया जाता है, अत: उनमें निजी लाभ समाप्त हो गया है ।

आलोचनाएँ (Criticism) - इस सिद्धान्त की प्रमुख आलोचनाएँ निम्न है-

1. वस्तु का उत्पादन केवल श्रम के कारण ही नहीं होता है । वस्तु का उत्पादन भूमि, पूँजी, साहस, संगठन तथा श्रम के साथ मिलकर कार्य करने पर होता है । अत: वस्तु के मूल्य में अन्य साधनों का पुरस्कार भी सम्मिलित रहता है ।
2. साहसियों के द्वारा केवल श्रमिकों के शोषण से लाभ उत्पन्न नहीं होते बल्कि साहसियों द्वारा जोखिम उठाने तथा अनिश्चितताएँ वहन करने के कारण लाभ उत्पन्न होते हैं ।
3. यह सिद्धान्त प्रवृत्ति का विरोध करता है, परन्तु समाजवादी देशों में सरकार लाभ अर्जित करती है ।

4. **लाभ का प्रावैगिक सिद्धान्त (Dynamic Theory of Profit)**

इस सिद्धान्त का प्रतिपादन प्रो. जे.बी.क्लार्क द्वारा किया गया है । जे.बी.क्लार्क अमेरिका के प्रसिद्ध अर्थशास्त्री हुए हैं । क्लार्क के अनुसार लाभ वस्तुओं के मूल्यों एव वस्तुओं की लागतों के अन्तर के बराबर होते हैं । लाभ केवल प्रावैगिक समाज में ही उत्पन्न होते हैं । क्लार्क के अनुसार प्रावैगिक अर्थव्यवस्था वह होती है, जिसमें निम्न पाँच आधारभूत परिवर्तन निरन्तर होते रहते हैं - (i) जनसंख्या में परिवर्तन, (ii) पूँजी की मात्रा में परिवर्तन, (iii) उपभोक्ताओं की रूचियों, फैशन तथा आवश्यकताओं में परिवर्तन, (iv) उत्पादन विधियों में परिवर्तन, तथा (v) औद्योगिक इकाइयों के संगठन के रूपों में परिवर्तन । इस परिवर्तित परिस्थितियों में केवल वे ही उत्पादक जीवित रह सकते हैं तथा विकसित हो सकते हैं जो अपने को बदलती हुई परिस्थितियों के अनुसार परिवर्तित कर लें तथा अपनी वस्तुओं को इस तरह से परिवर्तित कर लें कि वे उपभोक्ताओं की आवश्यकताओं को अधिकतम रूप से सन्तुष्ट कर सकें । जो साहसी ऐसा नहीं कर सकते हैं वे असफल होते हैं अथवा बहुत कम लाभ कमाते हैं ।

निष्कर्ष के रूप में कहा जा सकता है कि लाभ प्रावैगिक अर्थव्यवस्था के मूल्यों तथा लागतों में अन्तर के कारण उत्पन्न होते हैं ।

आलोचनाएँ (Criticism) - इस सिद्धान्त की प्रमुख आलोचनाएँ निम्न हैं-

(1) **प्रावैगिक अर्थव्यवस्था का प्रत्येक परिवर्तन लाभ का सृजन नहीं करता (Every change of dynamic economy does not create profits) -प्रो. नाइट** के अनुसार प्रावैगिक समाज के सभी परिवर्तन लाभ का सृजन नहीं करते हैं । नाइट के अनुसार कुछ परिवर्तनों को पहले से जाना जा सकता है और उनका बीमा करवाया जा सकता है । ये परिवर्तन लाभ को जन्म नहीं देते ।

(2) **सभी अर्थव्यवस्थाएँ प्रावैगिक होती हैं (All economics are dynamic) -** वर्तमान विश्व की सभी अर्थव्यवस्थाएँ प्रावैगिक हैं । अत: इस सिद्धान्त के अनुसार उन अर्थव्यवस्थाओं में लाभ पहले से ही उपस्थित रहते हैं, यह धारणा ठीक नहीं है ।

(3) **साहसी के जोखिम एवं अनिश्चितता वहन कार्य को महत्त्व नहीं देता (Does not give importance to uncertainty bearing and risk-taking) -** यह सिद्धान्त साहसी द्वारा उठायी जाने वाली जोखिम तथा अनिश्चितता के कार्य को आवश्यक महत्व नहीं देता है ।

(4) **लाभ तथा प्रबन्धकों की मजदूरी में कृत्रिम भेद करता है (Artificial difference between wages for management and profit) -** प्रो. टॉजिग ने बताया है कि यह सिद्धान्त लाभों तथा प्रबन्धकों की मजदूरी में कृत्रिम भेद करता है ।

5. **लाभ का नव-प्रवर्तन सिद्धान्त (Innovation Theory of Profit)**

इस सिद्धान्त का प्रतिपादन शुम्पीटर द्वारा किया गया है । यह सिद्धान्त क्लार्क के प्रावैगिक सिद्धान्त से अधिक व्यापक हैं । इस सिद्धान्त के अनुसार लाभ नव-प्रवर्तनों का पुरस्कार होता है । शुम्पीटर के अनुसार नव-प्रवर्तन का तात्पर्य पुरानी उत्पादन तकनीक एवं मशीनों के स्थान पर नवीन उत्पादन तकनीक एवं मशीनों का प्रयोग करना, कच्चे माल के नये स्रोत खोज निकालना, नये बाजारों में वस्तुओं का विक्रय करना, वितरण की नवीन विधियों को खोज निकालना तथा उद्योग का पुनर्संगठन करना होता है । इन नव-प्रवर्तनों के कारण वस्तु के मूल्यों तथा लागतों में अन्तर उत्पन्न होते हैं । नव-प्रवर्तन का कार्य सदैव चलता रहता है और इसके कारण उस समय तक लाभ उत्पन्न होते हैं जब तक इसे कोई उद्यमी गुप्त रखता है । जब अन्य सभी उद्यमी इस नव-प्रवर्तन को अपना लेते हैं तो लाभ समाप्त हो जाते हैं । नव-प्रवर्तन कार्य को शुम्पीटर ने तीन अवस्थाओं में बाँटा है - (i) नये यन्त्र विधि अथवा विचारों की योजना बनाना, (ii) इस योजना को मूर्त रूप देने के लिए आवश्यक वित्तीय तथा गैर-वित्तीय साधनों की व्यवस्था करना, तथा (iii) योजना को उत्पादन कार्य में प्रयुक्त करने की जोखिम उठाना है । जब एक साहसी ये विभिन्न कार्य सफलतापूर्वक कर लेता है तो उससे वस्तु की उत्पादन लागत उसके मूल्य से कम होती जाती है और साहसी का लाभ बढ़ता जाता है, परन्तु जैसे-जैसे अन्य साहसी इन नव-प्रवर्तनों को समझ कर इनका प्रयोग करने लगते हैं तो लाभ वस्तुओं की लागत बढ़ने तथा मूल्य कम होने के कारण समाप्त हो जाते-हैं । इसलिए यह कहा जाता है कि लाभ नव-प्रवर्तन द्वारा उत्पन्न होते हैं तथा अनुकरण द्वारा लुप्त हो जाते हैं ।

आलोचनाएँ (Criticism) - इस सिद्धान्त की प्रमुख आलोचनाएँ निम्न हैं-

(1) **साहसी के जोखिम उठाने के कार्य की उपेक्षा (It ignores the risk-bearing function of entrepreneur) -** शुम्पीटर लाभ को जोखिम उठाने का पुरस्कार नहीं मानता । उसके अनुसार जोखिम उठाने का कार्य साहसी का नहीं बल्कि पूँजीपति का होता है ।

(2) **नव-प्रवर्तन साहसी का एकमात्र कार्य नहीं (Innovation is not the only function of entrepreneur) -** इस सिद्धान्त के अनुसार साहसी को नव-प्रवर्तन के कारण लाभ प्राप्त होता है; परन्तु आलोचकों का कहना है कि साहसी को एकमात्र नव-प्रवर्तन के कारण ही लाभ प्राप्त नहीं होता, बल्कि उसे व्यवसाय का अच्छा संगठन करना होता है; अत: साहसी संगठनात्मक योग्यता के कारण भी लाभ प्राप्त करता है ।

(3) **लाभ की मात्रा का निर्धारण करने में असमर्थ (Unable to determine the quantum of profits) -** यह सिद्धान्त यह तो बताता है कि लाभ नव-प्रवर्तन के कारण उत्पन्न होते हैं परन्तु किसी नव-प्रवर्तन से एक साहसी को कितने लाभ प्राप्त होंगे, इसकी व्याख्या नहीं करता है ।

6. **लाभ का जोखिम सिद्धान्त (The Risk Theory of Profit)**

इस सिद्धान्त का प्रतिपादन अमेरिका के अर्थशास्त्री हॉले द्वारा सन् 1907 में किया गया । इस सिद्धान्त को एल्फर्ड मार्शल का भी समर्थन प्राप्त हुआ । इस सिद्धान्त के अनुसार लाभ जोखिम उठाने का पुरस्कार है । किसी भी अर्थव्यवस्था में वर्तमान में एक साहसी भविष्य की माँग के अनुमान के आधार पर उत्पादन कार्य की योजना बनाकर उत्पादन करता है । इस कार्य में साहसी को जोखिम उठानी पड़ती है और लाभ इसी जोखिम का पुरस्कार होता है । उत्पादन कार्य की योजना बनाने में साहसी को वस्तु की मांग, मूल्य तथा लागत के सम्बन्ध में पूर्वानुमान करना होता है । यदि उसके पूर्वानुमान सही सिद्ध होते हैं तो उसे लाभ प्राप्त होता है और उसके पूर्वानुमान गलत सिद्ध होते हैं तो उसे हानि उठानी पड़ती है ।

आलोचनाएँ (Criticism) - इस सिद्धान्त की निम्न आलोचनाएँ की गयी है-

(1) **सभी प्रकार की जोखिमों के लिए लाभ आवश्यक नहीं (All types of risks do not generate profits) -** प्रो. नाइट के अनुसार जोखिमें दो प्रकार की होती हैं- (i) बीमा योग्य जोखिमें, (ii) अबीमा योग्य जोखिमें । बीमा योग्य जोखिमें वे होती हैं, जिनका अनुमान लगाया जा सकता है और बीमा कराके उन्हें दूर किया जा सकता है । इसके विपरीत कुछ जोखिमें ऐसी होती हैं जिनका न तो अनुमान लगाया जा सकता है और न ही बीमा करवाया जा सकता है । लाभ केवल दूसरे प्रकार की जोखिमों के कारण ही उत्पन्न होता है ।

(2) **लाभ जोखिम झेलने के कारण नहीं बल्कि जोखिम कम करने के कारण उत्पन्न होते हैं (profits are made not because risks are born but because these have been avoided) -** प्रो. कार्वर के अनुसार लाभ साहसियों को इसलिए प्राप्त नहीं होता है कि वे जोखिम झेलते हैं, बल्कि योग्य साहसी अपनी व्यावसायिक योग्यता के कारण जोखिम को कम करने में सफल होते हैं इसलिए वे लाभ कमाते हैं ।

(3) **लाभ तथा जोखिम में सीधा सम्बन्ध नहीं (No direct relation between profits and risk) -** एक साहसी द्वारा प्राप्त लाभ की राशि तथा उठायी गयी जोखिम की मात्रा में प्रत्यक्ष सम्बन्ध नहीं होता है । यदि ऐसा होता तो प्रत्येक साहसी अधिक लाभ कमाने के लिए अपने को बहुत बड़ी जोखिम में डाल देता ।

(4) **लाभ एकमात्र जोखिम के कारण उत्पन्न नहीं होते (Profits are not made solely on accounts of risks)-** इस सिद्धान्त के अनुसार साहसी का एकमात्र कार्य जोखिम उठाना माना है और लाभ को जोखिम का परिणाम बताया गया है; परन्तु साहसी जोखिम उठाने के अतिरिक्त नव-प्रवर्तन, समन्वय, उत्पत्ति कार्य के संगठन की व्यवस्था आदि अन्य कार्य भी करता है । इन कार्यो की इस सिद्धान्त में उपेक्षा की गयी है ।

7. **लाभ का अनिश्चितता वहन सिद्धान्त (Uncertainty Bearing Theory of Profit)**

इस सिद्धान्त का प्रतिपादन अमेरिका के अर्थशास्त्री एफ. एच. नाइट द्वारा किया गया । इस सिद्धान्त के अनुसार लाभ अनिश्चितता वहन करने का पुरस्कार होता है । नाइट के शब्दों में, "लाभ अबीमा योग्य जोखिमों अर्थात् अनिश्चितता को वहन करने का पुरस्कार है और लाभ की मात्रा अनिश्चितता उठाने की मात्रा पर निर्भर करती है । प्रो. नाइट ने जोखिम उठाने तथा अनिश्चितता उठाने में अन्तर किया है । उनके अनुसार सभी जोखिमें अनिश्चितताएँ उत्पन्न नहीं

करती हैं । केवल वे जोखिम ही, जो अनिश्चितताएँ उत्पन्न करती हैं, लाभ को जन्म देती हैं । प्रो. नाइट ने जोखिम तथा अनिश्चितताओं के अन्तर को स्पष्ट करने के लिए जोखिम को दो भागों में बीटा है - (i) बीमा योग्य जोखिमें तथा (ii) अबीमा योग्य जोखिमें ।

बीमा योग्य जोखिमें (Insurable risks) - ये वे जोखिमें होती हैं जिनका पहले से अनुमान लगाया जा सकता है और बीमा करवाया जा सकता है । इन जोखिमों के कारण अनिश्चितता उत्पन्न नहीं होती । उदाहरण के लिए आग लगने, माल के चोरी होने, दुर्घटना, तोडफोड, मृत्यु होने से जो जोखिमें उत्पन्न होती हैं उनका बीमा-कम्पनी से बीमा करवाया जा सकता है । अत: इनके कारण लाभ उत्पन्न नहीं होता । इन जोखिमों के बीमें के लिए जो प्रीमियम दिया जाता है, वह लागत का एक आवश्यक भाग होता है ।

अबीमा योग्य जोखिमें (Non-Insurable risks) - ये वह जोखिमें होती हैं, जिनका अनुमान नहीं लगाया जा सकता और इनका बीमा भी नहीं कराया जा सकता है । इन्हें अबीमा योग्य जोखिमें कहते हैं । आधुनिक व्यवसाय में जो अबीमा योग्य जोखिमें उत्पन्न होती हैं, उनमें से कुछ निम्न हैं-

(अ) **प्रतिस्पर्द्धा की जोखिमें (Risks of competition) -**किसी उद्योग में कुछ नवीन फर्मे प्रवेश कर सकती हैं जिनके परिणामस्वरूप विद्यमान फर्मो को कड़ी प्रतियोगिता का सामना करना पड़ सकता है । इसलिए फर्म विशेष का लाभ कम हो सकता है ।

(ब) **तकनीकी जोखिमें (Risks of technology) -** कोई नवीन उत्पादन तकनीक विकसित हो सकती है अथवा उत्पादन की कोई कुशल मशीन विकसित हो सकती है । विद्यमान फर्म इस परिवर्तन के अनुसार अपने आपको समायोजित करने में असमर्थ रहने पर हानि उठा सकती है ।

(स) **सरकारी प्रतिरोधी की जोखिम (Risks of Government interventions) -** सरकार किसी उद्योग विशेष की वस्तुओं के मूल्य निर्धारित कर सकती है अथवा अन्य कोई कार्य कर सकती है जिससे फर्म के लाभ कम हो जायें ।

(द) **व्यापार-चक्र की जोखिमें (Risks of trade cycles) -** आधुनिक अर्थव्यवस्थाओं में व्यापार चक्रों के कारण तेजी-मन्दी आती रहती है और इनसे फर्म के लाभों में परिवर्तन होता रहता है ।

(य) **उपभोक्ताओं की रूचियों, आवश्यकताओं एवं फैशन में परिवर्तन की जोखिमें (Risks of changes in consumer tastes, wants and fashions) -** आधुनिक युग में उपभोक्ताओं की रूचियाँ, फैशन तथा आवश्यकताएँ तेजी से परिवर्तित होती रहती हैं । इनके कारण फर्म विशेष को वस्तुओं की माँग के अभाव की समस्या का सामना करना पड़ सकता है और इसके कारण फर्म के लाभ प्रभावित हो सकते हैं ।

उपयुक्त जोखिमों से अनिश्चितताएँ उत्पन्न होती हैं । इन जोखिमों का पूर्वानुमान नहीं किया जा सकता, न सांख्यिकी मापन किया जा सकता और न ही बीमा करवाया जा सकता है । अत: इन अनिश्चितताओं के उठाने का प्रतिफल ही लाभ होता है । जितनी अधिक अनिश्चितताएँ

होंगी उतना ही अधिक लाभ का स्तर ऊँचा होता है । साहसी इन अनिश्चितताओं को उठाता है और बदले में लाभ प्राप्त करता है ।

आलोचनाएँ (Criticisms) - इस सिद्धान्त की प्रमुख आलोचनाएँ निम्न हैं-

(1) **केवल अनिश्चितता उठाना साहसी का कार्य नहीं (Uncertainty bearing is not only a function of an entrepreneur) -**इस सिद्धान्त के अनुसार साहसी को अनिश्चितता उठाने के कारण लाभ प्राप्त होता है, परन्तु आलोचकों का कहना है कि लाभ साहसी को अनिश्चितता उठाने के अतिरिक्त उत्पादन की व्यवस्था करने, उत्पादन साधनों में समन्वय करने एवं नव-प्रवर्तन करने के कारण भी प्राप्त होता है ।

(2) **अनिश्चितता का सही मापन नहीं (Exact measurement of uncertainty is not possible) -** इस सिद्धान्त के अनुसार अनिश्चितता के सही मापन की विधि नहीं है, इसलिए लाभ का सही निर्धारण सम्भव नहीं ।

(3) **अनिश्चितता उठाने के तत्त्व को एक स्वतन्त्र पृथक उत्पादन साधन नहीं माना जा सकता (Uncertainty bearing is not a separate factor of production) -** प्रो. नाइट ने अनिश्चितता वहन करने को उत्पादन का एक पृथक साधन माना है, परन्तु अनिश्चितता वहन करना साहसी के बहु त से कार्यो में से एक कार्य है ।

(4) **एकाधिकारात्मक लाभ की व्याख्या नहीं करता (It does not explain monopolistic profit) -** यह सिद्धान्त इस बात की व्याख्या नहीं करता है कि प्रतियोगी फर्मो की तुलना में एकाधिकारी फर्मे ऊँचे लाभ क्यों प्राप्त करती हैं ।

(5) **संयुक्त स्कन्ध उपक्रमों पर लागू न होना (Non-applicable to Joint Stock Companies) -** इन उपक्रमों में साहसी के कार्य अंशधारियों, संचालकों तथा प्रबन्धकों में विभक्त होते हैं । यह स्पष्ट नहीं है कि इनमें कौन अनिश्चितता वहन करता है ।

8. **लाभ का सीमान्त उत्पादकता सिद्धान्त (The Marginal Productivity Theory of Profit)**

इस सिद्धान्त के अनुसार उत्पादन के किसी भी साधन का पुरस्कार उसकी सीमान्त उत्पादकता के आधार पर निर्धारित किया जा सकता है । एजवर्थ, चैपमैन, स्टीगलर, स्टोनियर तथा हेग आदि ने सीमान्त उत्पादकता सिद्धान्त की सहायता से लाभ के निर्धारण की व्याख्या की है । सीमान्त उत्पादकता सिद्धान्त के अनुसार एक साहसी का लाभ उसकी सीमान्त उत्पादकता द्वारा निर्धारित होता है ।

जिस तरह से किसी उत्पादन साधन का सीमान्त उत्पादकता वक्र उस साधन का माँग वक्र होता है, ठीक उसी तरह से एक साहसी का सीमान्त उत्पादकता वक्र भी साहसी का माँग वक्र होता है । साहसियों की पूर्ति इस बात पर निर्भर करती है कि उनकी अवसर लागत अथवा स्थानान्तरण आय क्या है ।

पहले हम साहसियों की सीमान्त आगम उत्पादकता वक्र के आधार पर विचार कर सकते हैं । साहसियों की सीमान्त आगम उत्पादकता वक्र के निर्माण करने में हमें एक प्रमुख कठिनाई का सामना करना पड़ता है । साहसियों के अतिरिक्त उत्पादन के किसी भी अन्य साधन भूमि,

श्रम, पूँजी तथा संगठन की सीमान्त उत्पादकता ज्ञात करनी हो तो उस साधन की एक और इकाई को लगाकर सीमान्त भौतिक एवं सीमान्त आगम उत्पादकता को ज्ञात किया जा सकता है । परन्तु एक उद्योग के लिए साहसी की उत्पादकता को ज्ञात करना कठिन नहीं होता है । इस उद्योग में साहसियों की संख्या में परिवर्तन करके साहसियों की सीमान्त आगम उत्पादकता को ज्ञात किया जा सकता है । उत्पत्ति के परिवर्तनशील अनुपातों के नियम के अनुसार साहसियों की सीमान्त उत्पादकता निश्चित रूप में घटती हुई होती है । एक उद्योग में सभी साहसियों को समरूप मानकर साहसियों की सीमान्त आगम उत्पादकता को रेखाचित्र 19.1 में दिखाया गया है । इस चित्र में साहसी की सीमान्त आगम उत्पादकता वक्र बायें से दायें और गिरती हुई है । इसका कारण स्पष्ट है कि किसी उद्योग में साहसियों की अधिक संख्या होती है तो लाभ का स्तर नीचा होता है ।

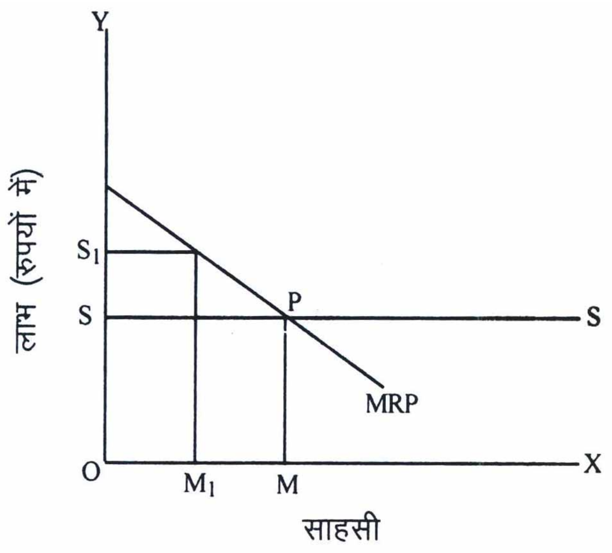

रेखाचित्र न. 19.1

अब हम साहसियों की पूर्ति पर विचार कर सकते हैं । सभी साहसियों को समरूप एवं समान कुशल मानने पर यह कहा जा सकता है कि उद्योग में कोई भी साहसी एक न्यूनतम लाभ स्तर (यह साहसियों की स्थानान्तरण आय पर निर्भर करता है अर्थात् स्थानान्तरण आय से कम पर एक भी साहसी उद्योग में कार्य करने के लिए तैयार नहीं है) से कम पर कार्य करने के लिए तैयार नहीं होगा और यह लाभ का स्तर मिलने पर उद्यमियों की पूर्ति असीमित होगी । रेखाचित्र 19. 1 में OS को न्यूनतम आवश्यक लाभ स्तर मानकर साहसियों की पूर्ति को SS वक्र द्वारा दिखाया गया है ।

अब हमें साहस की माँग एवं पूर्ति वक्र प्राप्त हो गये हैं । साहस की माँग रेखा MRP है व साहस की पूर्ति रेखा SS है । दोनों रेखाएँ एक-दूसरे को P बिन्दु पर काटती हैं जिससे MP अथवा OS लाभ स्तर उद्योग के लिए ज्ञात होता है । इस लाभ स्तर पर साहसियों की OM माँग है तथा OM ही पूर्ति है । OS लाभ स्तर साहसियों की स्थानान्तरण आय के बराबर है । अत: दीर्घकाल में प्रतियोगिता की स्थिति में यह लाभ स्तर बना रहेगा क्योंकि प्रत्येक साहसी केवल सामान्य लाभ कमाता हुआ है । अल्पकाल में साहसी असामान्य लाभ कमा सकते हैं जिसे

इस रेखाचित्र से देखा जा सकता है । माना कि अल्पकाल में साहसियों की पूर्ति OM1 है, ऐसी स्थिति में साहसी OS1 लाभ स्तर में SS1 के बराबर असामान्य लाभ है । यह असामान्य लाभ जब इस उद्योग में दीर्घकाल में नयी फर्म प्रवेश करेंगी, समाप्त हो जायेगा । अत: दीर्घकाल में पूर्ण प्रतियोगिता की स्थिति में साहसी केवल सामान्य लाभ ही अर्जित कर सकता है ।

आलोचनाएँ (Criticism) - इस सिद्धान्त की निम्न आलोचनाएँ की जाती हैं-

(1) उत्पादन के अन्य साधनों की तरह से साहसी की सीमान्त उत्पादकता ज्ञात नहीं की जा सकती, क्योंकि एक फर्म में एक ही साहसी होता है ।

(2) इस सिद्धान्त में सभी साहसियों को समरूप एवं समान कुशल माना गया है, जो अवास्तविक है ।

(3) यह सिद्धान्त आकस्मिक तथा एकाधिकारात्मक लाभों की व्याख्या नहीं करता ।

(4) यह एक एकपक्षीय सिद्धान्त है क्योंकि यह उद्यमियों की केवल माँग पर विचार करता है तथा उद्यमियों की पूर्ति की उपेक्षा करता है ।

(5) यह पूर्ण प्रतियोगिता तथा दीर्घकाल की अवास्तविक मान्यताओं पर आधारित है ।

19.4 लाभ का माप (Profit Measurement)

एक फ़र्म द्वारा किसी निश्चिंत अवधि में अर्जित लाभ का मापन इतना सरल कार्य नहीं है , जितना यह दिखाई देता है । लाभ के माप को समझने के लिए लाभ की लेखाशास्त्रीय धारणा एवं अर्थशास्त्रीय धारणा समझना आवश्यक है ।

लेखाशास्त्रीय लाभ की धारणा (Accounting Concept of Profit) : लेखाशास्त्र के अनुसार लाभ अनिवार्यतः: एक अवशिष्ट राशि (Residual sum) है जो किसी फर्म को एक निश्चित अवधि में प्राप्त आगम, अथवा विक्रय मूल्य में से सम्बन्धित सभी व्ययों व लागतों को घटाने के बाद अवशिष्ट रहती है । लेखाशास्त्र में इस अवशिष्ट राशि के लिए 'सकल लाभ' (Gross Profit) तथा शुद्ध लाभ (Net Profit) शब्दों का प्रयोग किया जाता है । किसी निश्चित अवधि में विक्रय मूल्य अथवा समस्त आगम में से उत्पादित अथवा विक्रय किये जाने वाले माल या सेवा की प्रत्यक्ष लागत घटाने के बाद जो राशि शेष बच रही है उसे सकल लाभ कहते हैं । इस सकल लाभ में से व्यवसाय के संचालन के सम्बन्ध में अन्य समस्त व्ययों एवं लागतों की पूर्ति तथा ज्ञात हानियों, व्ययों एवं दायित्वों के लिए प्रावधान करने के बाद जो राशि शेष बचती है उसे शुद्ध लाभ (Net Profit) कहा जाता है । इसके विपरीत यदि सम्बन्धित अवधि की आगम अथवा विक्रय मूल्य व्यवसाय संचालन के व्ययों तथा उत्पादन लागतों से कम होती है तो फर्म को लाभ के स्थान पर हानि होगी जिसे सकल हानि' तथा 'शुद्ध हानि' कहा जा सकता है । एक फर्म को सकल लाभ हो सकता है परन्तु साथ ही शुद्ध हानि भी हो सकती है । ऐसा तब होता है जब फर्म को उत्पादन प्रक्रियाओं की प्रत्यक्ष लागतों से अधिक भुगतान प्राप्त हो जावे परन्तु फर्म के प्रशासन व्यय तथा अन्य अप्रत्यक्ष व्यय इतने अधिक हो सकते हैं कि उनकी व्यवस्था सकल लाभ से नहीं हो सके । अत: ऐसी स्थिति में सकल लाभ, शुद्ध हानि में बदल सकता है । इस

प्रकार हम यह कह सकते हैं कि लेखाशास्त्र में लाभ (शुद्ध लाभ) एक फर्म को एक निश्चित अवधि में प्राप्त कुल आगम का आधिक्य है, जो उस आगम को प्राप्त करने के लिए किये गये व्ययों एवं लागतों के घटाने के बाद बच रहता है ।

अर्थशास्त्रीय लाभ की धारणा (Economic Concept of Profit) : जैसा कि पिछले पृष्ठों पर स्पष्ट किया जा चुका है कि अर्थशास्त्र में लाभ का अर्थ स्पष्ट नहीं है । कुछ अर्थशास्त्री इसे योग्यता का लगान मानते हैं, कुछ इसे साहसी की मजदूरी मानते हैं, कुछ इसे नव-प्रवर्तन का पुरस्कार मानते हें, तथा अन्य इसे बाजार अपूर्णताओं का परिणाम मानते हैं । परन्तु सभी अर्थशास्त्री आर्थिक लाभ की धारणा के सम्बन्ध में एकमत हूँ और अर्थशास्त्रियों के अनुसार आर्थिक लाभ का तात्पर्य उस शेष राशि से होता है, जो एक फर्म की कुल आगम (Total Revenue) में से कुछ लागतें घटाने के बाद रहती है । कुल लागतों में व्यक्त लागतें (Explicit Cost) तथा अव्यक्त लागतें (Implicit Cost) दोनों ही सम्मिलित की जाती हैं । अर्थशास्त्र में फर्म की कुल आगम में से कुल व्यक्त लागतें घटाने पर जो राशि शेष बच रहती है, उसे कुल लाभ (Gross Profit)कहा जाता है तथा इस कुल लाभ में से अव्यक्त लागतें घटाने के बाद बचने वाली शेष राशि को शुद्ध लाभ (Net Profit) अथवा आर्थिक लाभ कहते हैं ।

लेखाशास्त्रीय लाभ की धारणा एवं अर्थशास्त्रीय लाभ की धारणा में अन्तर लाभ के लेखाशास्त्रीय दृष्टिकोण तथा अर्थशास्त्रीय दृष्टिकोण में निम्न अन्तर होते हैं-

(i) लेखाशास्त्र में सकल लाभ (Gross Profit) का तात्पर्य वस्तु के विक्रय मूल्य में से वस्तु की प्रत्यक्ष लागतें घटाने के बाद बची शेष राशि सें होता है, जबकि अर्थशास्त्र में सकल लाभ अथवा कुल लाभ का तात्पर्य फर्म की कुल आगम में से फर्म की कुल व्यक्त लागतें घटाने के बाद बची शेष राशि से होता है ।

(ii) लेखाशास्त्र में शुद्ध लाभ (Net Profit) का तात्पर्य सकल लाभ में से फर्म के प्रशासन से सम्बन्धित अन्य सभी व्ययों एवं प्रावधानों की राशि घटाने के बाद शेष बची राशि से होता है जबकि अर्थशास्त्र में शुद्ध लाभ जिसे आर्थिक लाभ भी कहा जाता है, ऐसी राशि होती है जो फर्म की कुल आगम से सभी व्यक्त तथा अव्यक्त लागतें घटाने के बाद शेष रहती हैं ।

(iii) अर्थशास्त्र में लाभ को विभिन्न तत्त्वों का पुरस्कार माना जाता है, जिनके बारे में अर्थशास्त्रियों में एकमत का अभाव है, जबकि लेखाशास्त्र इस बात पर मौन है कि लाभ किस तत्त्व का पुरस्कार है ।

इस प्रकार लेखाशास्त्रीय लाभ अर्थशास्त्रीय दृष्टिकोण से भिन्न है तथा लेखाशास्त्रीय लाभ को अर्थशास्त्रीय आर्थिक लाभ में बदलने के लिए कुछ समायोजन करने होते हैं । ये समायोजन अन्तर्निहित अथवा अव्यक्त लागतों (Implicit Costs) से सम्बन्धित होते हैं, जिनको घटाना होता है । अन्तर्निहित अथवा अव्यक्त लागतें वे लागतें होती हैं जो किसी बाहरी साधन को नहीं चुकाई गई हैं, परन्तु उत्पादक के स्वयं के साधनों के प्रयोग के लिए होती हैं । उदाहरण के तौर पर साहसी अथवा उत्पादक के कार्यो का वेतन जो उसे अन्यत्र काम करने पर मिल सकता था, साहसी की स्वयं की भूमि का किराया जो वह भूमि को अन्य किसी को किराये पर देकर प्राप्त

कर सकता था, साहसी की स्वयं की पूँजी का ब्याज जो अन्यत्र पूँजी विनियोजित करने पर प्राप्त कर सकता था आदि को लाभ में से घटना होता है ।

आर्थिक लाभ = लेखाशास्त्रीय लाभ - अन्तर्निहित या अव्यक्त लागतें ।

19.5 सारांश

उत्पादन के विभिन्न साधनों को पुरस्कार चुकाने के बाद जो राशि शेष रहती है वह लाभ होता है । लाभ जोखिम एवं अनिश्चितताओं को स्वीकार करने तथा नव प्रवर्तन का पुरस्कार है ।

लाभ के लगान सिद्धान्त के अनुसार सीमान्त साहसी केवल प्रबन्ध की मजदूरी प्राप्त करता है । लाभ के मजदूरी सिद्धान्त के अनुसार साहसी अपने विशेष प्रकार के श्रम का भुगतान मजदूरी के रूप में प्राप्त करता है वही लाभ होता है । लाभ प्रावैगिक अर्थव्यवस्था में वस्तुओं के मूल्यों तथा लागतों में अन्तर के कारण उत्पन्न होते हैं । जिस उद्यम में अधिक जोखिम होती है उसमें लाभ की आशा भी अधिक होती है । जोखिम को दो वर्गो में बीटा है (1) बीमा योग्य जोखिमें (2) अबीमा योग्य जोखिमें । बीमा योग्य जोखिमों का पहले से अनुमान लगाया जा सकता है और बीमा करवाया जा सकता है । अबीमा योग्य जोखिमों का अनुमान नहीं लगाया जा सकता है और उनका बीमा भी नहीं कराया जा सकता है । अबीमा योग्य जोखिमें जैसे - प्रतिस्पर्द्धा की जोखिमें तकनीकी जोखिमे, व्यापार-चक्र की जोखिमें हैं । बीमा योग्य जोखिमें जैसे आग लगना, माल का चोरी होना, दुर्घटना, तोड़फोड़ है । लाभ अबीमा योग्य जोखिमों के कारण ही उत्पन्न होता है ।

19.6 शब्दावली

नव-प्रवर्तन- नवीन उत्पादन तकनीक एवं मशीनों का प्रयोग करना ।

व्यक्त लागतें अथवा स्पष्ट लागतें- उत्पादक द्वारा उत्पादन साधनों का द्रव्य में भुगतान जैसे भूस्वामी को लगान, श्रम को मजदूरी, पूँजीपति को ब्याज, प्रबन्धकों को वेतन तथा अन्य वस्तुओं एवं सेवाओं के लिए चुकाया जाने वाला द्रव्य (मुद्रा) ।

अस्पष्ट लागतें- उत्पादक किसी अन्य को भुगतान नहीं करता पर अपने स्वयं के साधनों एवं सेवाओं के बदले मुद्रा प्राप्त करना जैसे उत्पादक की स्वयं की पूँजी पर ब्याज उद्योगों में लगी स्वयं की सम्पत्ति, भवन, फर्नीचर आदि ।

जोखिमें- व्यापार में कोई भी घटना घटित होना जैसे आग लगना, माल की चोरी, तोड़-फोड़, मृत्यु होना, नवीन तकनीक का विकास आदि ।

व्यापार चक्र- बाजार में कभी उतार एवं चढ़ाव आना अर्थात कभी तेजी एवं कभी मंदी होना ।

19.7 स्वपरख प्रश्न

1. लाभ को परिभाषित कीजिए तथा लाभ के विभिन्न सिद्धान्तों को स्पष्ट कीजिए ।
2. लाभ क्या है ? इसका निर्धारण किस प्रकार होता है ?
3. "लाभ अनिश्चितता -वहन करने का पुरस्कार है ।" समझाइये ।

4. "लाभ का सिद्धान्त वर्तमान समय में अर्थशास्त्र का सर्वाधिक विवादग्रस्त तथा असन्तोषजनक सिद्धान्त है ।" विवेचना कीजिए ।
5. लाभ के अनिश्चितता वहन सिद्धान्त की आलोचनात्मक व्याख्या कीजिये ।
6. लाभ का सीमान्त उत्पादकता सिद्धान्त क्या है?

19.8 उपयोगी पुस्तकें

व्यावसायिक अर्थशास्त्र : अग्रवाल, अग्रवाल एवं गुप्ता

व्यावसायिक अर्थशास्त्र : गुप्ता बी. पी.

Business economics : Agarwal M.D. & Som Deo

इकाई-20

राष्ट्रीय आय विश्लेषण
(National Income Analysis)

इकाई की रूपरेखा

20.0 उद्देश्य

20.1 प्रस्तावना

20.2 राष्ट्रीय आय की परिभाषा एवं महत्व

20.3 राष्ट्रीय आय की विभिन्न अवधारणाएं

20.4 राष्ट्रीय आय की गणना के तरीके

20.5 राष्ट्रीय आय की गुणात्मक कठिनाइयां

20.6 राष्ट्रीय आय एवं कल्याण

20.7 सारांश

20.8 स्वपरख प्रश्न

20.9 कुछ उपयोगी पुस्तकें

20.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन का मुख्य उद्देश्य है की छात्रों को इस बात का ज्ञान हो की राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था में उत्पादन एवं आय का निर्माण किस प्रकार होता है: अर्थव्यवस्था सम्पूर्ण रूप से किस प्रकार कार्य करती है तथा अर्थव्यवस्था में संचालित विभिन्न आर्थिक गतिविधियों से होने वाली आय की गणना किस प्रकार की जाती है । राष्ट्रीय आय की विभिन्न अवधारणाओं एवं अंगों का विश्लेषण एवं उनका ज्ञान इस इकाई के अध्ययन से प्राप्त किया जा सकेगा ।

20.1 प्रस्तावना

राष्ट्रीय आय का विश्लेषण समष्टि अर्थशास्त्र का अत्यधिक महत्वपूर्ण भाग है । एक देश की अर्थव्यवस्था में विभिन्न प्रकार की गतिविधियाँ चलाई जाती है जिनको आर्थिक एवं गैर-आर्थिक भागों में बॉटा जाता है । हम यहां पर केवल आर्थिक गतिविधियों पर ही चर्चा करेंगे जिनके माध्यम से देश में रोजगार, आय, विनियोग, विनिमय, वितरण, उपभोग आदि गतिविधियाँ संचालित होती हैं । इन प्रत्येक आर्थिक संपादनों का हम मुद्रा के रूप में मूल्यांकन करते हैं और उन सबसे प्राप्त समंकों का एक समेकित विश्लेषण कर उनसे नीति संबंधी निर्णय लेते हैं । राष्ट्रीय आय को हम विकास के एक मापक के रूप में लेते हैं जिनसे अन्तर्देशीय तुलनात्मक अध्ययन संभव होता है । राष्ट्रीय आय की वृद्धि अथवा कमी की दर ही विकास दर का आधार बनती है । अर्थव्यवस्था के विभिन्न क्षेत्र यथा, कृषि, उद्‌योग, व्यापार आदि इस राष्ट्रीय आय में अपना योगदान करते हैं ।

20.2 राष्ट्रीय आय की परिभाषा एवं महत्व (Definition and Importance of National Income)

राष्ट्रीय आय की परिभाषा विभिन्न अर्थशास्त्रियों ने भिन्न भिन्न प्रकार से दी है । मार्शल के अनुसार, "किसी भी देश की पूँजी व श्रम का उसके प्राकृतिक साधनों पर प्रयुक्त करने से प्रतिवर्ष जो भौतिक एवं अभौतिक सभी प्रकार की वस्तुओं एवं सेवाओं की शुद्ध सामूहिक उत्पत्ति होती है उसे ही देश की वास्तविक राष्ट्रीय आय अथवा आगम अथवा राष्ट्रीय लाभांश कहा जाता है ।"

मार्शल की परिभाषा में वस्तुओं व सेवाओं की मात्रा के उत्पादन को समझाया गया है परन्तु इनके मूल्य की बात गौण रह गयी है, यद्यपि परोक्ष रूप से इस 'सामूहिक उत्पत्ति' को हम मुद्रा के रूप में ही व्यक्त करेंगे । **पीगू** ने इस कमी को अपनी परिभाषा में दूर कर किया है । पीगू के शब्दों में, 'राष्ट्रीय आय किसी समुदाय (राष्ट्र) की वास्तविक आय है, जिसमें विदेशों से प्राप्त आय भी सम्मिलित है, जिसको मुद्रा के रूप में मापा जा सकता है।

यहां पर यह समझना अत्यंत महत्वपूर्ण है कि राष्ट्रीय आय में केवल उन वस्तुओं एवं सेवाओं को ही सम्मिलित किया जायेगा जिनका मापन मुद्रा के रूप में किया जा सकता है । उदाहरण के लिये घर में एक माँ अपने बच्चे को प्यार से खाना खिलाती है, उसकी देखभाल करती है परन्तु यह सब वह बिना किसी मौद्रिक प्रतिफल के करती है । यह सेवा पीगू के अनुसार राष्ट्रीय आय का भाग नहीं है । लेकिन यदि यही सेवा एक सेवक के रूप में किसी महिला द्वारा की जाये और उसे इस सेवा के बदले भुगतान किया जाये तो यह राष्ट्रीय आय का भाग बन जायेगी । पीगू ने स्वयं एक उदाहरण से यह बात समझाई है । वेतन पर रखी गयी नौकरानी जो कार्य करती है उसकी आय राष्ट्रीय आय का हिस्सा है और यदि मालिक उस नौकरानी से विवाह कर लेता है तो वह उस सेवा के बदले कोई भुगतान प्राप्त नहीं करती है । दूसरी अवस्था में उस महिला द्वारा किया गया कार्य राष्ट्रीय आय का भाग नहीं है क्योंकि इसका मूल्यांकन मुद्रा के रूप में संभव नहीं है ।,

बाद के वर्षा में **इरविंग फिशर** ने इस परिभाषा में और अधिक सुधार किया है । फिशर ने उपभोग दृष्टिकोण को परिभाषा का आधार माना है । उनके शब्दों में, "राष्ट्रीय आय अथवा लाभांश में केवल अंतिम उपभोक्ताओं द्वारा किये गये उपभोग, चाहे: वे भौतिक अथवा मानवीय पर्यावरण से प्राप्त हुए हों, को सम्मिलित किया जाता है । जिस प्रकार एक पियानो अथवा ओवर कोट का निर्माण मेरे लिये इस वर्ष में हुआ है, मेरे इस वर्ष की आय का अंश न होकर पूँजी में वृद्धि मात्र है, इस वर्ष में केवल मेरे द्वारा उपभोग की गयी सेवाएं ही इस वर्ष की आय है ।"

यहां पर निम्न बातों को समझना आवश्यक है:-

1. केवल आर्थिक गतिविधियों को, जिनको मुद्रा के रूप में व्यक्त किया जा सकता है वे ही राष्ट्रीय आय का हिस्सा है ।
2. राष्ट्रीय आय में अंतिम वस्तुओं व सेवाओं के 'अंतिम मूल्य' को ही आंका जाता है । उदाहरण के लिये एक खेत में उगाया गया कपास, सूत में, सूत कपड़े में और कपड़ा

कमीज में परिवर्तित होता है यहां पर कमीज का मूल्य ही अंतिम मूल्य है न कि कपास, सूत अथवा कपड़े का । कमीज के साथ साथ यदि कपास, सूत व कपड़े का मूल्य भी हम जोड़ देंगे तो हम दोहरी गणना करने की गलती करेंगे । अत: ऐसे उत्पादन जो अंतिम उपभोग के काम आने के बजाय उत्तरोत्तर उत्पादन में काम आते हैं उन्हें अर्थशास्त्र में अर्न्तवर्ती उत्पादन (Intermediate Products) कहते हैं ।

3. पुरानी वस्तुओं के क्रय विक्रय के मूल्य को हम राष्ट्रीय आय में सम्मिलित नहीं करते हैं । उदाहरण के लिये मोहन ने एक पुरानी कार रू. 50,000 में वर्ष 2006 में खरीदी लेकिन वर्ष 2006 में खरीदी यह पुरानी कार इस वर्ष की राष्ट्रीय आय में शामिल नहीं होगी क्योंकि इस कार का मूल्य पहले ही इसके उत्पादन वर्ष में सम्मिलित हो चुका है ।

अत: सर्वमान्य परिभाषा के रूप में यह कहा जा सकता है कि 'राष्ट्रीय आय अनुमान से आशय किसी दी हुई अवधि, सामान्यत: एक वर्ष, में समस्त अंतिम वस्तुओं एवं सेवाओं के उत्पादन का वह अंतिम मौद्रिक मूल्य है जो बिना किसी दोहरी गणना के मापा जाता है ।"

सइमन कुजनेट्स के शब्दों मे, "राष्ट्रीय आय एक वर्ष के दौरान उन सभी शुद्ध उत्पादित वस्तुओं एवं सेवाओं का प्रवाह है जो देश की उत्पादन प्रणाली से अंतिम उपभोक्ताओं तक पहुँचता है । " यहाँ पर स्पष्ट है कि राष्ट्रीय आय 'प्रवाह' (flow) है न कि 'स्टॉक' (stock) । प्रवाह एवं स्टॉक में अंतर यह है कि प्रवाह समयावधि से संबंधित है जबकि स्टॉक समय के एक बिन्दु से संबंधित है ।

उपरोक्त परिभाषाओं के आधार पर राष्ट्रीय आय के निम्न तत्व मुख्य हैं:-

1. उत्पादन में वस्तुएं एव सेवाएं दोनों ही सम्मिलित हैं और उनका अंतिम मौद्रिक मूल्य राष्ट्रीय आय में शामिल होता है ।
2. उत्पादन अंतिम है, उत्पादन में आगे मूल्य जोड़ (value addition) की संभावना नहीं है ।
3. यह एक निश्चित समयावधि (सामान्यतया एक वर्ष) से संबंधित है ।
4. राष्ट्रीय आय एक प्रवाह अवधारणा है जिसकी प्रकृति चक्रीय है ।

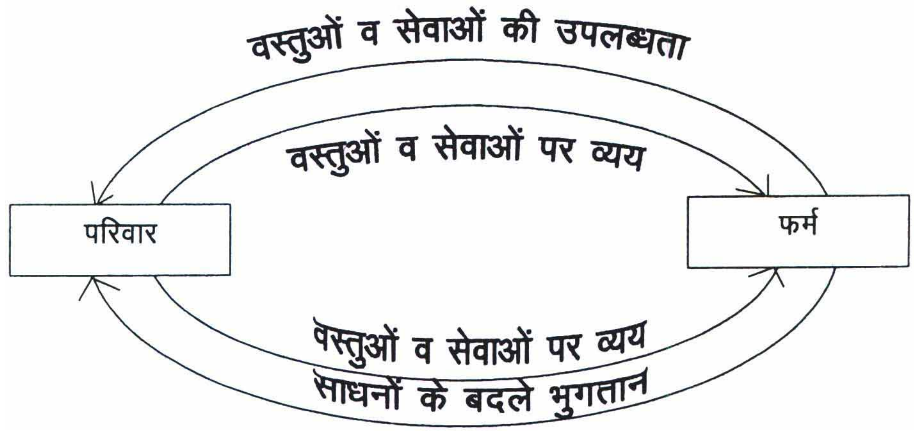

आय का चक्रीय प्रवाहा

उपरोक्त चित्र से यह स्पष्ट है कि परिवार व व्यवसाय अर्थव्यवस्था के दो क्षेत्र हैं । दोनों ही उत्पादक हैं तथा दोनों ही उपभोक्ता हैं । यह प्रवाह वर्ष पर्यन्त चलने और उनसे प्राप्त वस्तुओं व सेवाओं का मौद्रिक मूल्य ही राष्ट्रीय आय है । इस चित्र में हम सरकारी क्षेत्र, बैंकिग एवं पूँजी बाजार, तथा विदेशी व्यापार क्षेत्र को जोड़ कर इस आय के प्रवाह को अधिक विस्तृत बना सकते हैं । जैसे जैसे अर्थव्यवस्था में क्षेत्रों की वृद्धि होती जायेगी आर्थिक गतिविधियाँ बढ़ जायेंगी और राष्ट्रीय आय का भी विस्तार होता जायेगा ।

राष्ट्रीय आय के अध्ययन में कुछ अन्य पारिभाषिक शब्दों का अर्थ भी समझना आवश्यक है जो कि निम्नलिखित है:-

1. **राष्ट्रीय उत्पाद -** यह एक वर्ष के भीतर समस्त वस्तुओं व सेवाओं का मौद्रिक मूल्य है ।

2. **राष्ट्रीय आय -** यह सभी उत्पादन के साधनों (जैसे भूमि, पूँजी, श्रम, साहस) द्वारा प्राप्त की गयी आय वर्ष भर में मिलने वाला योग है ।

3. **राष्ट्रीय व्यय -** सभी उत्पादन के साधन जो वर्ष भर में संपूर्ण व्यय करते हैं उसे राष्ट्रीय व्यय कहा जाता है ।

उपरोक्त तीनों मूलत: एक ही बात की ओर लक्ष्य करते हैं:-

राष्ट्रीय आय= राष्ट्रीय व्यय = राष्ट्रीय उत्पाद

अंतर केवल इतना है कि हम इनको अलग अलग दृष्टिकोणों से देखते हैं ।

4. **राष्ट्रीय सम्पदा -** एक दिये हुये समय बिन्दु पर उपलब्ध वे सभी साधन, प्राकृतिक एवं मानव निर्मित, जो उपलब्ध हैं वह राष्ट्रीय सम्पदा कहलाती है ।

5. **राष्ट्रीय पूँजी -** यह वह राष्ट्रीय सम्पदा का भाग है जो कि एक समय बिन्दु पर उत्पादन के लिये काम में ली जाती है । अर्थात् एक देश में अकूत संपदा हो सकती है परन्तु उस देश का विकास उस संपदा में से पूँजी के रूप में काम में आने वाले साधनों की मात्रा से निर्धारित होता है।

20.2 राष्ट्रीय आय की विभिन्न अवधारणाएं

1. **सकल घरेलू उत्पाद (Gross Domestic product) -** यह एक देश की अर्थव्यवस्था की घरेलू सीमाओं के भीतर एक वर्ष के अन्तर्गत उत्पादित होने वाली सभी वस्तुओं एवं सेवाओं का मौद्रिक मूल्य है । देश की घरेलू सीमा में निम्न को सम्मिलित किया जाता है-

a) राजनैतिक सीमाओं के अन्दर जिसमें कि राज्यक्षेत्र में सम्मिलित होने वाली तटीय सीमा भी है

b) एक देश के द्वारा संचालित जहाजरानी एवं हवाई जहाज से प्राप्त आय जो उस देश के निवासियों के स्वामित्व में है

c) मत्स्यपोत, तेल व प्राकृतिक गैस जो देश के निवासियों के स्वामित्व में हैं

d) सभी दूतावास एवं सैनिक संस्थान जो देश के बाहर स्थित हैं ।

सकल घरेलू उत्पाद बाजार कीमत एवं साधन लागतों के आधार पर बताये जा सकते हैं ।

सकल घरेलू उत्पाद (बाजार मूल्य पर) = वस्तुओं व सेवाओं का मूल्य x वस्तुओं व सेवाओं की मात्रा

सकल घरेलू उत्पाद (साधन लागत पर) = सकल घरेलू उत्पाद - अप्रत्यक्ष कर + आर्थिक अनुदान

इसकी गणना अन्य प्रकार से भी की जा सकती है:-

सकल घरेलू उत्पाद = साधनों की आय + स्थिर पूँजी का उपभोग

चूंकि अप्रत्यक्ष कर एवं आर्थिक अनुदान साधनों की आय में सम्मिलित नहीं होते हैं अत: इससे भी सकल घरेलू उत्पाद (GDP) की गणना साधन लागत पर की जा सकती है ।

इसके अतिरिक्त सकल घरेलू उत्पाद (GDP) की गणना **स्थिर कीमत** (constant price) पर भी की जाती है । इसे वास्तविक सकल घरेलू उत्पाद कहा जाता है । उदाहरण के लिये देश में उत्पादन की मात्रा में कमी या स्थिरता हो सकती है परन्तु कीमत में वृद्धि के कारण उसका मूल्यांकन बढ सकता है इसलिये सकल घरेलू उत्पाद का मूल्यांकन आधार वर्ष की कीमतों पर करना ही वास्तविक मूल्य कहलाता है । सूत्र के रूप में

वास्तविक सकल घरेलू उत्पाद = $\frac{GDP \text{ चालू मूल्य पर}}{\text{चालू वर्ष का सूचकांग}}$ X आधार वर्ष का सूचकांक (100)

2. **शुद्ध घरेलू उत्पाद (Net Domestic Product / NDP) -** विभिन्न उत्पादन गतिविधियाँ संचालित करने के दौरान पूँजी का एक भाग घिसावट (Depreciation) के रूप में खर्च होता है जो कि स्थिर पूँजी का भाग है । यदि इस भाग को सकल घरेलू उत्पाद में से घटा दिया जाये तो उसे हम शुद्ध घरेलू उत्पाद कहते हैं । सूत्र के रूप में

शुद्ध घरेलू उत्पाद = सकल घरेलू उत्पाद – घिसावट

(NDP) = (GDP) – (Depreciation)

शुद्ध घरेलू उत्पाद की भी हम चालू बाजार मूल्य पर, साधन लागत पर गणना कर सकते हैं ।

3. **सकल राष्ट्रीय उत्पाद (Gross National Product/GNP) -** एक अर्थव्यवस्था में उत्पादन की गतिविधियाँ केवल अपनी सीमा क्षेत्र में ही नहीं वरन् सीमाओं से बाहर (beyond territories) भी संचालित होती है । इसे हम 'निर्यात' अथवा 'विदेशों से साधन आय' कहते हैं । यदि इसको भी सकल घरेलू उत्पाद में सम्मिलित कर दिया जाये तो यह सकल राष्ट्रीय उत्पाद कहलाता है ।

सूत्र के रूप में -

सकल राष्ट्रीय आय = सकल घरेलू उत्पाद + विदेशों से प्राप्त आय

(GNP) = (GDP) +(Net factor income from abroad)

यह उत्पाद का वह हिस्सा है जो देश के निवासियों द्वारा विदेशों से अर्जित किया जाता है ।

4. **शुद्ध राष्ट्रीय उत्पाद (Net National Product/NNP) -** यदि सकल राष्ट्रीय उत्पाद में से उत्पादन के दौरान पूँजी की ह्रास की मात्रा (घिसावट) को घटा दिया जाये तो उसे हम शुद्ध राष्ट्रीय उत्पाद कहते हैं । **सूत्र के अनुसार -**

शुद्ध राष्ट्रीय उत्पाद = सकल राष्ट्रीय उत्पाद - घिसावट

(NNP) = (GNP) - (Depreciation)

दूसरे शब्दों में.

शुद्ध राष्ट्रीय उत्पाद = शुद्ध घरेलू उत्पाद + विदेशों से प्राप्त आय

यहां पर यह उल्लेखनीय है कि साधन लागत पर शुद्ध **राष्ट्रीय उत्पाद को ही अवधारणात्मक रूप से राष्ट्रीय आय कहा जाता है ।** इसे हम साधन लागत पर शुद्ध मूल्य जोड़ कर भी प्राप्त कर सकते हैं ।

5. **व्यक्तिगत आय (Personal Income/P.I.) -** यह वह आय है जो सभी व्यक्तियों को एक वर्ष में मौद्रिक आय के रूप में प्राप्त होती है । यह ध्यान में रहे कि सभी व्यक्तियों की आय का योग राष्ट्रीय आय नहीं है बल्कि इन दोनों में अंतर है । राष्ट्रीय आय का ऐसा भी भाग होता है जो व्यक्तियों की आय का भाग नहीं है । उदाहरण के लिये निगम कर, निगमों द्वारा रखा गया आधिक्य (Business surplus) आदि । इसी प्रकार कुछ ऐसे हस्तांतरण आय के भाग है (जैसे पेंशन, ग्रेच्युटी, सामाजिक सुरक्षा योगदान आदि) जो राष्ट्रीय आय का नहीं बल्कि व्यक्तिगत आय का भाग है । व्यक्तिगत आय में हम निजी व्यक्तियों एवं स्व-रोजगार में संलग्न व्यक्तियों की आय भी सम्मिलित करते हैं । स्व-रोजगार में संलग्न व्यक्तियों की आय को हम मिश्रित आय भी कहते हैं । ये सभी आय व्यक्तिगत आय कहलाती है । सूत्र के अनुसार

व्यक्तिगत आय (P.I.) = निजी व मिश्रित आय+ सरकार से प्राप्त व्यक्तिगत आय + राष्ट्रीय ऋण पर देय ब्याज + सामाजिक सुरक्षा अंशदान + विदेशों से प्राप्त शुद्ध आय

6. **खर्च योग्य व्यक्तिगत आय (Disposable Personal Income/ DPI) -** यह वह आय है जो हमें व्यक्तिगत आय में से व्यक्तिगत करों को घटाने के बाद प्राप्त होती है ।

सूत्र के अनुसार,

खर्च योग्य व्यक्तिगत आय = व्यक्तिगत आय – व्यक्तिगत कर

(DPI) = (PI) – (Personal Tax)

7. **प्रति व्यक्ति आय (Per capita income/PCI) -** यह देश के नागरिक की औसत आय है जो कुल राष्ट्रीय आय में जनसंख्या के भाग देने से प्राप्त होती है । प्रति व्यक्ति आय व्यक्तिगत आय से कम अथवा अधिक हो सकती है । अर्न्तदेशीय तुलनात्मक अध्ययन में इस अवधारणा का बहुत महत्व है । यदि देश A की प्रति व्यक्ति आय देश B से अधिक है तो इसका अर्थ होगा देश A अधिक समृद्ध है ।

सूत्र के अनुसार,

$$\text{प्रतिव्यक्ति आय} = \frac{\text{राष्ट्रीय उत्पाद}}{\text{कुल जनसंख्या}}$$

उपरोक्त सभी अवधारणाओं के ज्ञान से ही राष्ट्रीय आय की सम्पूर्णता का आभास होता है । प्रत्येक अवधारणा का एक विशिष्ट महत्व है । यहां पर यह समझाने की आवश्यकता नहीं है कि राष्ट्रीय उत्पाद ही राष्ट्रीय आय तथा राष्ट्रीय व्यय है । पारिभाषिक रूप से ये सभी समान हैं केवल मात्र गुणात्मक दृष्टि का अंतर है । राष्ट्रीय आय की विभिन्न अवधारणाओं के अंर्तसंबंध को निम्न रूप से समझा जा सकता है-

सकल घरेलू उत्पाद (बाजार कीमत) = परिवारों का उपभोग + सरकारी उपभोग + विनियोग व्यय

शुद्ध घरेलू उत्पाद (बाजार कीमत) = सकल घरेलू उत्पाद - ह्रास

सकल घरेलू उत्पाद (साधन कीमत)	=	सकल घरेलू उत्पाद - अप्रत्यक्ष कर + अनुदान (बाजार कीमत)
शुद्ध घरेलू उत्पाद (साधन कीमत)	=	सकल घरेलू उत्पाद - घिसावट (साधन कीमत)
सकल राष्ट्रीय उत्पाद (बाजार कीमत)	=	सकल घरेलू उत्पाद + विदेशों से प्राप्त शुद्ध आय (बाजार कीमत)
शुद्ध राष्ट्रीय उत्पाद (बाजार कीमत)	=	सकल राष्ट्रीय उत्पाद - घिसावट (बाजार कीमत)
शुद्ध राष्ट्रीय उत्पाद (साधन कीमत) अथवा राष्ट्रीय आय	=	शुद्ध राष्ट्रीय उत्पाद - अप्रत्यक्ष कर + अनुदान (बाजार कीमत)
वास्तविक घरेलू उत्पाद	=	$\frac{\text{वर्तमान घरेलू उत्पाद}}{\text{वर्तमान सूचकांग}}$ X आधार वर्ष सूचकांक
व्यक्तिगत आय	=	निजी आय - अवतरित निगम आधिक्य - निगम कर
खर्च योग्य व्यक्तिगत आय	=	व्यक्तिगत आय - व्यक्तिगत कर

20.4 राष्ट्रीय आय की गणना के तरीके (Methods of Measuring National Income)

राष्ट्रीय आय की गणना के लिए तीन तरीके काम में लिये जाते हैं:-

1. उत्पाद प्रणाली अथवा मूल्य जोड़ प्रणाली (Product method or value added method)
2. आय प्रणाली (Income method)
3. व्यय प्रणाली (Expenditure)

1. **उत्पाद प्रणाली (Product Method or Value Added Method) -** यह उत्पादन की गणना (census of output) प्रणाली भी कहलाता है । इसे हम 'व्यवसाय' उद्‌गम (industry of origin) पर आधारित आय की प्रणाली भी कह सकते हैं । जब एक वर्ष के दौरान उत्पादित सभी उत्पाद का मूल्य जोडा जाता है तो वह राष्ट्रीय उत्पाद कहलाता है । यहां पर यह ध्यान रहे कि गणना के दौरान दोहरी गणना न हो । दोहरी गणना से बचने के लिये हम कई बार मूल्य जोड़ का सहारा लेते हैं । उदाहरण के लिये यदि कपास का मूल्य 5,000 रूपये, उससे बनाये गये सूत का मूल्य 7,500 रूपये, उससे बनाये गये कपडों का मूल्य 12,000 रूपये और उनसे तैयार सिले वस्त्रों का मूल्य 20,000 रूपये है तो यही पर हम कहेंगे कि राष्ट्रीय उत्पाद का मूल्य 20,000 रूपये है क्योंकि अंतिम वस्तु, (तैयार कपड़ों), का मूल्य 20,000 रूपये है । इसको हम मूल्य जोड से भी माप सकते हैं ।

राष्ट्रीय उत्पाद= कपास का मूल्य + सूत में मूल्य जोड + कपडों का मूल्य जोड़ तैयार वस्त्रों में मूल्य जोड़

5,000 + (7,500-5,000) (12,000-7,500) + (20,000+12,000)

=2,500 =4,500 =8,000 = 20,000

यदि हम कपास, सूत, कपडे व तैयार वस्त्रों सभी के मूल्य को जोड़ देंगे तो हमारा राष्ट्रीय उत्पाद 44,500 रूपये (5,000+,5000+12,000+20,000) होगा जो कि सही नहीं है क्योंकि इसमें सूत, कपडा, वस्त्र की दोहरी गणना सम्मिलित है ।

अर्थव्यवस्था के सभी क्षेत्रों को हम तीन भागों में बांटते हैं:-

प्राथमिक क्षेत्र (Primary Sector) जिसमें कृषि, वानिकी, मत्स्यपालन व खनन आते हैं ।

द्वितीयक क्षेत्र (Secondary sector) जिसमें उद्योग, निर्माणन, प्रसंस्करण, गैस आपूर्ति आदि आते हैं ।

तृतीयक क्षेत्र (Tertiary sector) जिसमें परिवहन, दूर संचार, बैंकिंग, बीमा, सार्वजनिक प्रशासन आदि आते हैं ।

इन क्षेत्रों को विस्तृतता की दृष्टि से आगे कई भागों में उपविभाजित किया जाता है जिससे कि विभिन्न समूहों की गणना सरल एवं दोहरी गणना को न्यूनतम करके की जा सके । इस प्रणाली में जिन तथ्यों पर विशेष ध्यान दिया जाता है वे हैं:-

a) स्व-उपभोग के लिये किया गया उत्पादन
b) स्वयं-रिहायशी आवासों का किराया

क्योंकि इनको मापना कई बार असंभव तो नहीं परन्तु कठिन अवश्य होता है क्योंकि ये बाजार अर्थव्यवस्था में नहीं आ पाते हैं ।

2. **आय प्रणाली (Income Method) -** इस प्रणाली से प्राप्त राष्ट्रीय आय को हम वितरणात्मक भाग से प्राप्त आय (income by distributive share) भी कहते हैं । उत्पादन में विभिन्न साधनों का जब प्रयोग होता है तो इन सभी साधनों को भी पारिश्रमिक (compensation) प्राप्त होता है । अत: सभी साधनों को प्राप्त आय (factor income) को यदि हम जोड़ दे तो वह साधनों की आय कहलायेगी । कई बार हम गणना के लिहाज से (मुख्यतया सेवाओं में) उत्पाद का मूल्य ज्ञात करने में सफल नहीं होते हैं । उदाहरण के लिये एक अध्यापक, क्लर्क, अधिकारी के उत्पादन का मूल्य क्या है यह जानना अत्यंत कठिन है । ऐसी अवस्था में हम उस संबंधित व्यक्ति को प्राप्त वेतन को ही आधार बना सकते हैं । अत: सही मायने में देखा जाये तो राष्ट्रीय उत्पाद का अंतिम मूल्य उस उत्पाद में लगे सभी साधनों की आय के योग के बराबर होगा । इस तरह उत्पाद प्रणाली के अंतर्गत यदि मूल्य जोड़ो का प्रयोग करें तो उसका योग आय प्रणाली के अंतर्गत सभी साधनों की आय के योग के बराबर होगा । यह अवश्य है कि हमें यह सब करने के लिये अत्यंत सावधानी एवं विशिष्टता की आवश्यकता होगी । साधन आय को तीन भागों में बांटा जाता है-

a. कर्मचारियों को दिया गया पारिश्रमिक जिसमें हम उनके वेतन, सामाजिक सुरक्षा, अंशदान, पेंशन ग्रेच्युटी, आदि का आकलन करते हैं ।

b. संचालन आधिक्य (operating surplus) जो कि सम्पत्ति एवं उद्‍यमकर्ताओं की आय है (अर्थात् किराया+ब्याज + लाभ)

c. स्वरोजगार लोगों की मिश्रित आय (mixed income of self employed) जिसमें हम असंगठित क्षेत्र में कार्यरत लोगों की आय को सम्मिलित करते हैं । उदाहरण के लिये किसान, वकील, चिकित्सक कलाकार आदि ।

उपरोक्त तीनों (a,b&c) को मिलाने पर हमें घरेलू साधन आय (domestic factor income) प्राप्त होती है और इसमें जब हम विदेशों से प्राप्त आय शुद्ध आय (NFIA) जोड़ते हैं तो राष्ट्रीय आय प्राप्त होती है ।

इस प्रणाली में कुछ सावधानियां रखनी चाहिए-

(1) अवैधानिक आय सम्मिलित न हो ।

(2) हस्तांतरण आय सम्मिलित न हो ।

(3) स्व रिहायशी मकानों का अभ्यारोपित किराया (imputed rent) सम्मिलित करना

(4) आकस्मिक लाभों यथा लॉटरी से प्राप्त आय सम्मिलित करना

(5) निगम कर निगमों के लाभ का हिस्सा है, जिसे राष्ट्रीय आय में पृथक से सम्मिलित नहीं करना चाहिए ।

(6) स्व-उपभोग के लिये उत्पादन का मूल्य शामिल करना ।

(7) पुरानी वस्तुओं व सम्पत्तियों के खरीद बेचान को सम्मिलित नहीं करना चाहिये ।

ये कुछ ऐसी सावधानियां हैं जिनको आय प्रणाली के प्रयोग के समय ध्यान में रखना चाहिये ।

3. **व्यय प्रणाली (Expenditure Method) -** राष्ट्रीय उत्पाद तथा राष्ट्रीय आय दोनों एक ही स्थिति के दो पहलू हैं । जो भी राष्ट्रीय आय होगी उसका व्यय किया जायेगा जिसको भी दो भागों में बांटा जा सकता है-उपभोग, एवं बचत । अर्थव्यवस्था के सभी क्षेत्र चाहे वह परिवार हो, उत्पादक हों अथवा सरकार, उन्हें खर्च करना होता है । सम्पूर्ण व्यय को निम्न भागों में बांटा जा सकता है-

1. निजी अंतिम उपभोग
2. सरकारी अंतिम उपभोग
3. सकल स्थिर पूँजी निर्माण
4. स्टॉक में परिवर्तन
5. वस्तुओं व सेवाओं का शुद्ध निर्यात

सूत्र के अनुसार

$Y=C+I+G=(X-M)$

इसमें Y = राष्ट्रीय आय

C= उपभोग व्यय

I= निवेश व्यय या पूँजी निर्माण

G=सरकारी व्यय

X= निर्यात

M= आयात

सभी को यदि योग रूप में प्रस्तुत करें तो व्यय विधि के अनुसार

राष्ट्रीय आय = निजी अंतिम उपभोग व्यय + सरकारी अंतिम उपभोग व्यय + सकल घरेलू पूँजी निर्माण + स्टॉक में परिवर्तन + निर्यात - आयात

अगर हम इसकी और अधिक विस्तार से चर्चा करें तो अंतिम व्यय को दो भागों में बांटा जा सकता है-

a) **निजी अंतिम उपभोग व्यय** इसके अंतर्गत अस्थायी एवं अर्द्ध स्थायी **(durable and semi-durable goods),** सामान्य उपभोग की वस्तुएं एवं सभी निजी संस्थाओं द्वारा उपभोग किया गया व्यय सम्मिलित है ।

b) **सरकारी उपभोग में** सरकार द्वारा खरीदी वस्तुओं पर व्यय, कर्मचारियों को दिया गया पारिश्रमिक विदेशों से की गई सरकारी खरीद तथा सरकार द्वारा विभिन्न सेवाओं पर किया गया व्यय (जैसे स्वास्थ्य, शिक्षा, रक्षा आदि) सम्मिलित किया जाता है । यहां यह बताना महत्वपूर्ण है कि स्व-उपभोग के लिये किया गया उत्पादन भी अंतिम उपभोग व्यय का हिस्सा है ।

c) **घरेलू पूँजी निर्माण (Gross domestic capital formation)** के अन्तर्गत निर्माण व मशीनरी, औजार आदि पर किये गये व्यय एवं स्टॉक मे परिवर्तन को लिया जाता है । स्टॉक में परिवर्तन इस प्रकार निकाला जाता है-

स्टॉक में परिवर्तन = अंतिम स्टॉक - प्रारम्भिक स्टॉक

d) **शुद्ध निर्यात (Net export)** यह निर्यातों एवं आयातों का अंतर है । इसे शुद्ध विदेशी विनियोग (Net foreign investment) भी कहा जाता है ।

व्यय प्रणाली का प्रयोग करने में निम्न सावधानियां आवश्यक हैं:-

1. अंतिम व्यय होना चाहिए ।
2. पुरानी वस्तुओं पर किया गया व्यय, व्यय नहीं है ।
3. अंशों व ऋण पत्रों पर व्यय सम्मिलित नहीं होंगे ।
4. सकल विनियोग व्यय में शामिल है ।
5. सरकार द्वारा किये गये हस्तांतरण भुगतान पर व्यय कुल व्यय का भाग नहीं है ।

मूलत: उपरोक्त तीनों प्रणालियों से क्रमश: राष्ट्रीय उत्पाद, राष्ट्रीय आय एवं राष्ट्रीय व्यय प्राप्त होंगे जो कि पारिभाषिक अर्थ में एक ही हैं ।

अर्थात्

राष्ट्रीय उत्पाद = राष्ट्रीय आय = राष्ट्रीय व्यय

20.5 राष्ट्रीय आय गणना की कठिनाइयाँ (Problems of measurement of national income) -

राष्ट्रीय आय की गणना में कई प्रकार की पारिभाषिक अवधारणाएं एवं क्रियात्मक कठिनाइयां आती हैं । कुछ कठिनाइयों की चर्चा निम्न प्रकार से की जा सकती है-

(1) **दोहरी गणना की समस्या -** जब हम राष्ट्रीय आय की गणना करते हैं तो वस्तुओं व सेवाओं का मूल्य जोड़ते समय हम किसी एक चरण अथवा स्तर को एक से अधिक बार जोड़ देते हैं जिससे राष्ट्रीय आय के अनुमान में दोहरी गणना का दोष आ जाता है । कई बार पूँजी व श्रम की आय में हम अंतर नहीं कर पाते हैं जिससे राष्ट्रीय आय का आंकडा या तो अधिक हो जाता है या कम हो जाता है और राष्ट्रीय आय की गणना अवास्तविक हो जाती है । अर्तक्षेत्रीय लेनदेन कई बार एक दूसरे से अलग कर के देखना भी कठिन हो जाता है इस कारण भी दोहरी गणना हो जाती है ।

(2) **अवधारणात्मक कठिनाइयों -** राष्ट्रीय आय के मापने में विभिन्न देशों में विभिन्न पारिभाषिक शब्द जैसे उपभोग, बचत, विनियोग व्यय, आदि भिन्न भिन्न रूपों में प्रयुक्त किये जाते हैं । इसी प्रकार विभिन्न देशों में आवासों का निर्माण, रक्षा पर व्यय, पूँजी व्यय विभिन्न अर्थो में प्रयुक्त होते हैं जिससे राष्ट्रीय आय के समंकों में असंगतता आ जाती है और उन आँकडों का प्रयोग तुलनात्मक अध्ययन के लिये नहीं हो पाता ।

(3) **आर्थिक द्वयवाद की कठिनाई -** देश में सम्पूर्ण उत्पादन की गतिविधियाँ पूर्ण रूप से बाजार व्यवस्था के अंतर्गत नहीं आ पाती है । बाजार व्यवस्था संगठित क्षेत्र में तो संभव है लेकिन असंगठित क्षेत्र में एक ऐसा भी भाग है जो कई बार वस्तु विनिमय प्रणाली पर आधारित होता है । ऐसी स्थिति में इस लेनदेन को मौद्रिक मापदण्ड में लाना कठिन होता है ।

(4) **विश्वसनीय एवं अद्‌यतन समंको का अभाव -** राष्ट्रीय आय की गणना के लिये विश्वसनीय एवं अद्‌यतन आँकडों का सामान्यत: अभाव रहता है । हम स्वयं हमारे देश में ही देखते हैं कि विभिन्न संस्थाओं द्‌वारा प्रयुक्त किये गये आकड़े भिन्न भिन्न हैं । ऐसी परिस्थिति में सही एवं अद्‌यतन राष्ट्रीय आय का आंकडा संदिग्ध रहता है, हालांकि अब इस कठिनाई को काफी सीमा तक दूर कर दिया गया है ।

(5) **सूचकांकों में परिवर्तन की कठिनाई -** देश में लगातार एक समयावधि के बाद सूचकांकों के परिवर्तन से कीमत स्तर में भी परिवर्तन होता रहता है जिससे राष्ट्रीय आय से संबंधित आंकड़ों में परिवर्तन होता रहता है तथा उनकी तुलनात्मक महत्ता कम हो जाती है ।

(6) **सार्वजनिक सेवाओं संबंधी कठिनाइयाँ -** कई बार महत्वपूर्ण सार्वजनिक सेवाओं का मूल्यांकन अत्यधिक कठिन होता है । इसी प्रकार सार्वजनिक उपयोगिता वाली सेवाओं-सिंचाई परियोजनाओं, बिजली परियोजनाओं, सड़कों एवं पुलों की महत्ता का मौद्रिक मापन अत्यंत कठिन होता है । यदि इन सेवाओं का विनिमय मापन विशेष परिस्थितियों में किया जाये तो और भी कठिन है । उदाहरण के लिये दंगों एवं प्राकृतिक आपदा के समय पुलिस व सेना की सेवाएं ।

(7) **जनसंख्या का लोचशील व्यवसाय -** जनसंख्या का एक बडा भाग विभिन्न प्रकार के व्यवसायों के बीच आता जाता रहता है । इन सबके आय व्यय का लेखा रखना काफी कठिन कार्य है । कई बार तो जनगणना में भी इस प्रकार की कठिनाइयाँ सामने आती हैं ।

(8) **उत्पादक एवं अनुत्पादक गतिविधियों में अंतर की कठिनाई -** अनेक बार उत्पादक एवं अनुत्पादक गतिविधियों में अंतर करना कठिन होता है । गृहलक्ष्मी द्‌वारा किया गया कार्य मुद्रा के मापदण्ड में नहीं आता, ग्रामीण क्षेत्रों में महिलाएं जो अपने खेत में मानव कार्य करती हैं, इन

सबका उत्पादन पर अप्रत्यक्ष प्रभाव पडता है । परन्तु इनकी सेवाओं को हम राष्ट्रीय आय का भाग नहीं मान पाते ।

(9) **मानक प्रणाली एवं कार्यविधि का अभाव -** हम कोई ऐसी मानक प्रणाली या कार्यविधि विकसित करने में असफल रहे हैं जिससे एक नि पक्ष एवं पारदर्शी मापन का कार्य संभव हो सके । यद्यपि, संयुक्त राष्ट्र संघ ने इस दिशा में कुछ पहल की है परन्तु प्रत्येक देश की परिस्थितियाँ इन मानकों को स्वीकार करने की स्थिति में नहीं है साथ ही ये मानक भी अपने आप में परिपूर्ण नहीं हैं ।

(10) **कर वंचना -** देश में काफी अधिक मात्रा में करों की चोरी होने के कारण आय से संबंधित सही आकड़े प्राप्त नहीं होते हैं । आय का सही स्तर प्रदर्शित न करने से आय का आकलन भी सही तरीके से संभव नहीं हो पाता ।

20.6 राष्ट्रीय आय एवं कल्याण (National income and welfare)

राष्ट्रीय आय एवं मानव कल्याण परस्पर संबंधित हैं । सामान्यतया यही माना जाता है कि राष्ट्रीय आय में वृद्धि से कल्याण में वृद्धि होती है । यही पर यह उल्लेखनीय है कि केवल राष्ट्रीय आय का आकार ही नहीं वरन् उसकी वितरण संरचना विभिन्न वर्गो अथवा क्षेत्रों का योगदान भी कल्याण की स्थिति को दर्शाता है । पीगू के विचार मे राष्ट्रीय आय की वृद्धि से यदि मुद्रा के रूप मे मापे जाने वाले कल्याण में वृद्धि होती है तो कल्याण का राष्ट्रीय आय से धनात्मक संबंध होता है । इस बात की पुष्टि के लिये कि राष्ट्रीय आय में वृद्धि से कल्याण में वृद्धि होती है या नहीं हमें कुछ आधारभूत प्रश्नों पर विचार करना होगा ।

इन प्रश्नों की विवेचना निम्न प्रकार है:-

(1) **यदि राष्ट्रीय आय के आकार में वृद्धि** होती है तो हम यह मानते हैं कि कल्याण में वृद्धि होगी क्योंकि इसका मतलब है कि अधिक आय से अधिक 'सेवाओं का उपयोग हो सकता है ।

(2) यदि राष्ट्रीय आय के आकार में वृद्धि हो रही है तो हमें यह देखना होगा कि क्या **वास्तविक आय** भी बढ़ रही है । पूर्व के विश्लेषण में हम यह बता चुके हैं कि आय में वृद्धि मूल्य में वृद्धि से बढ़ जाती है तो हम उसे आधार वर्ष के सूचकांकों के आधार पर मापते हैं । यदि वास्तविक आय में वृद्धि होती है तो हम यह मानेंगे कि राष्ट्रीय आय में वृद्धि हुई है और कल्याण में भी वृद्धि हुई है ।

(3) तीसरा प्रश्न पहले के दोनों प्रश्नों से भी अधिक महत्वपूर्ण है । यह प्रश्न है कि बढी हुई **राष्ट्रीय आय का वितरण** किस प्रकार हो रहा है । यदि धनी अधिक धनवान एवं निर्धन अधिक निर्धन हो रहे हैं तो राष्ट्रीय आय की वृद्धि से कल्याण में वृद्धि नहीं होगी । यहां तक कि प्रति व्यक्ति आय के समंक भी भ्रामक हो सकते हैं । यदि आय बढ़ने के साथ निर्धनों की संख्या भी बढे तो कल्याण नहीं होगा ।

(4) राष्ट्रीय आय और कल्याण के संबंध में **राष्ट्रीय आय की संरचना** अति महत्वपूर्ण है । देश में हर प्रकार के उत्पादन से आय में वृद्धि होती है । यदि विलासिता की वस्तुओं तथा गैर-आवश्यक वस्तुओं के उत्पादन में वृद्धि से आय बढती है और आवश्यक वस्तुओं की कमी हो जाती है तो राष्ट्रीय आय बढने के बावजूद भी कल्याण में वृद्धि नहीं होगी ।

(5) क्या राष्ट्रीय आय में वृद्धि **सम्मानजनक कार्य की दशाओं** के अन्तर्गत होती है विश्व इतिहास में औद्योगिक क्रांति का काल इसका जीता जागता उदाहरण है जिसमें वृद्धों, महिलाओं व बच्चों को भी काम पर लगाकर अमानवीय दशाओं में कार्य करने से औद्योगिक देशों की राष्ट्रीय आय में तो अप्रत्याशित वृद्धि हुई लेकिन मानव कल्याण में वृद्धि न हो सकी ।

(6) राष्ट्रीय आय की वृद्धि के साथ साथ देश की जनसंख्या को **वस्तुओं व सेवाओं की उपलब्धि** का एक महत्वपूर्ण प्रश्न है । अगर हमारे पास पैसा है लेकिन बाजार में वस्तुओं व सेवाएं अनुपलब्ध है अथवा आवश्यकता से कम है तो देश में मुद्रास्फीति का प्रकोप हो सकता है । कालाबाजारी व जमाखोरी बढ़ सकती है । ऐसे में मानव कल्याण की कल्पना राष्ट्रीय आय में वृद्धि के फलस्वरूप करना उपयुक्त नहीं होगा ।

(7) देश में रहने वाले व्यक्तियों की **सामाजिक लागत** एक महत्वपूर्ण विषय है । यदि समाज में प्रदूषण, अपराध, नैतिक स्तर में गिरावट, जनसंख्या में होने वाली तुलनात्मक वृद्धि अधिक है तो सामाजिक कल्याण में वृद्धि की अपेक्षा नहीं की जा सकती । यदि बेकारी तथा अशिक्षा का राष्ट्रीय आय में वृद्धि के बावजूद भी वही हाल है और देश में आर्थिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक असमानता बढती है तो कल्याण में वृद्धि संभव नहीं है ।

अत: हमें इन सभी प्रश्नों पर गंभीरता से विचार करने के बाद ही इस निष्कर्ष पर पहुंचना होगा कि राष्ट्रीय आय में वृद्धि से मानव कल्याण में वृद्धि होती है अथवा नहीं ।

20.7 सारांश

राष्ट्रीय आय समष्टि अर्थशास्त्र का भाग है जिससे हमें पता चलता है कि देश में उत्पादन गतिविधियाँ किस प्रकार संचालित होती हैं, उनसे आय का निर्माण एवं वितरण किस प्रकार होता है । विभिन्न क्षेत्रों में आय के निर्माण एवं वितरण को राष्ट्रीय आय में क्या भूमिका रहती है । राष्ट्रीय आय की विभिन्न अवधारणाओं, सकल घरेलू उत्पाद, शुद्ध घरेलू उत्पाद, सकल राष्ट्रीय उत्पाद, शुद्ध राष्ट्रीय उत्पाद, व्यक्तिगत आय, खर्च करने योग्य व्यक्तिगत आय एवं प्रति व्यक्ति आय की गणना किस प्रकार की जाती है तथा उनका क्या महत्व है ।

राष्ट्रीय आय की गणना में उत्पाद विधि, आय विधि एवं व्यय विधि का प्रयोग किया जाता है और उनकी विभिन्न कठिनाइयॉ हैं । अंत में, राष्ट्रीय आय व कल्याण में क्या संबंध है इस प्रश्न पर विचार किया गया है ।

20.8 स्वपरख प्रश्न

1. राष्ट्रीय आय का अर्थ समझाइये । इसकी विभिन्न अवधारणाएं क्या हैं?
2. राष्ट्रीय आय की गणना के विभिन्न तरीके समझाइये । गणना में क्या कठिनाईयां आती हैं?
3. राष्ट्रीय आय एवं कल्याण में क्या संबंध है?

20.9 उपयोगी पुस्तकें

1. T.R. Schultz; National income Analysis

2. Wilfred Beckerman; an Introduction to National income Analysis, Third Edition, 1965 Universal Book Stall, New Delhi
3. Agarwal M.D. & Som Deo : Business Economics
4. अग्रवाल, अग्रवाल एवं गुप्ता: व्यावसायिक अर्थशास्त्र

BC-05

ISBN - 13/978-81-8496-195-9